रीतिकाव्य के स्रोत

रीतिकाव्य के स्रोत

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध]

लेखक
डा० रामजी मिश्र

वार्त्तिक प्रवचन
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आदर्श साहित्य प्रकाशन
वेस्ट सीलमपुर, दिल्ली - ३१

रीतिकाव्य के स्रोत

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध]

लेखक
डा० रामजी मिश्र

वार्त्तिक अनुवचन
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आदर्श साहित्य प्रकाशन
वेस्ट आलमपुर, दिल्ली - 31

विषयानुक्रमणिका

किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध, रामायण मंजरी विक्रमांकदेवचरित श्रीकण्ठचरित, नवसाहसांकचरित—प्रबन्ध काव्य (प्राकृत)—रावणवहो (सेतुबंध) गउडवहो—प्रबन्ध काव्य (अपभ्रंश) पउमचरिउ महापुराण—प्रबन्ध काव्य (हिन्दी)—पृथ्वीराजरासो छिताई वार्ता पद्मावत मधुमालती रामचरितमानस रस रतन रामचन्द्रिका सूरसागर मुक्तक काव्य (संस्कृत)—अमरुशतक शृंगारशतक आर्या सप्तशती गीतगोविन्द मुक्तक काव्य (अपभ्रंश)—सुदंसणचरिउ (सुदंसणचरिउ) करकंडचरिउ पउमसिरी चरिउ णायकुमार चरिउ, सन्देश रासक—मुक्तक काव्य (अपभ्रंश) कीर्तिलता स्वयम्भू की दोहा गाथा ... मुक्तक काव्य (हिन्दी) ... रामायण आदि ... कवितावली गीतावली श्रीकृष्णगीतावली ... रस मंजरी विरह मंजरी भ्रमरगीत—मुक्तक परिभाषा और भेद शृंगारपरक मुक्तक (संस्कृत) अमरुशतक शृंगारशतक ... आर्या सप्तशती ... विरह शृंगार ... शृंगारपरक मुक्तक (प्राकृत अपभ्रंश)—गाथा सप्तशती वज्जालग्ग प्राकृत व्याकरण शृंगारपरक मुक्तक (हिन्दी)—विद्यापति पदावली एवं मैथिली साहित्य ... रहीम ... अष्टछाप ... भक्तिपरक मुक्तक (संस्कृत) ... भक्तिपरक मुक्तक (प्राकृत अपभ्रंश) ... प्राकृत पैंगलम—भक्तिपरक मुक्तक (हिन्दी) नीतिपरक मुक्तक (संस्कृत हिन्दी) नीतिपरक मुक्तक (संस्कृत हिन्दी) नाटक—स्वप्नवासवदत्ता, अभिज्ञान शाकुन्तल विक्रमोर्वशीय मालविकाग्निमित्र रत्नावली प्रियदर्शिका नागानन्द मालतीमाधव हनुमन्नाटक, कर्पूरमंजरी ... चम्पू काव्य नलचम्पू जीवन्धर चम्पू गद्य (संस्कृत) वासवदत्ता कादम्बरी।

वार्त्तिक अनुवचन

रीतिकाव्य का अध्ययन बहुत कम होता है। सम्प्रति और ज्यों-ज्यों काल की गति तीव्र होती जा रही है उसमें पराङ्मुख होने वाले ही अधिक दिखते हैं जिस युग में यौन सबधों की चर्चा साहित्य अनेक शाखाओं में कर रहा हो और जिस युग में विश्वविद्यालयों में कामशास्त्र की पढ़ाई पर बल दिया जाने लगा हो, उस युग में रीतिकाव्य का अध्ययन-अध्यापन बढ़ना चाहिए था। कामशास्त्र की पढ़ाई आरम्भ हो जाने पर कदाचित् कोई रीतिकाव्य का पीठ (चेयर) स्थापित हो और उसके विशेषज्ञ उस पर आसीन कराए जाएँ। 'ऐहैं बहुरि बसंतरितु इन डारन वे फूल' आशा लगाए मरन्दलोभी मधुप भले ही बैठे रहें। मैं जानता हूँ न बहार आने वाली है और न रीतिकाव्य विशेषज्ञों की पूछ (पूँछ' नहीं) होने वाली है। उसका कारण क्या है? आज 'विज्ञान' का जोर है और विज्ञान प्रत्यक्ष या दृष्ट से संबद्ध है। रीतिकाव्य भी पारंपरिक काव्य है, प्रत्यक्ष से उसका संबंध नहीं है। जो विज्ञान की दृष्टि से रीतिकाव्य को देखेगा वह उसे कामशास्त्र से जोड़े बिना नहीं रहेगा। इधर हिन्दी के रीतिकाव्य में जैसी रचनाएँ हुई हैं उनकी परंपरा संस्कृत तक चली गई है। 'कामशास्त्र' 'काम' की शिक्षा देता है। क्या रीतिकाव्य 'काम' की शिक्षा देता है? शास्त्र में लिखा रहता है कि 'ऐसा करो' या 'ऐसा किया जाए'। ऐसा तो किसी रीतिकाव्य में नहीं लिखा रहता। इसी से काव्य या साहित्य का उद्देश्य या फल यहाँ 'चतुर्वर्ग फल प्राप्ति' ही माना गया है, चतुर्वर्ग की प्राप्ति नहीं 'चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति'। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाए कि चतुर्वर्ग में 'काम' भी है और कामशास्त्र से उसका संबंध जुड़ भी जा सकता है पर 'धर्म' का किससे जोड़ें, धर्मशास्त्र से अर्थ का किससे जोड़ें, अर्थशास्त्र से और मोक्ष का किससे जोड़ें, मोक्षशास्त्र से, काव्य का निर्माण कवि की भावना का निर्माण है और भारतीय परंपरा में उसका पर्यवसान 'रस' में है इसलिए कोरे कामशास्त्र से उसे कैसे जोड़ा जा सकता है। काव्यानंद यदि ब्रह्मानंद की भांति विषय निरपेक्ष नहीं है तो विषय सापेक्ष भी तो नहीं है। वासनानंद तो नहीं है। आज हिन्दी का साहित्य साहित्येतर प्रत्यक्ष जीवन के विषयों की अपेक्षा में बढ़ता जा रहा है। ऐसे युग में वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में यदि काव्य या साहित्य का विचार हो तो हो, पर रीतिकाव्य का विचार विशुद्ध वैज्ञानिक धरातल पर होने से वह उपलब्ध नहीं हो सकती

जिससे यथार्थ [illegible] जा सके। तो [illegible] करते समय प्राचीन या भारतीय परंपरा के काव्य का निरूपण करते समय इस पर ध्यान रखना अस्वाभाविक है।

यहाँ कहा जा सकता है कि रीतिकाव्य से कामशास्त्र की परंपरा का संबंध तो ठीक है पर सारा [illegible] नहीं है। नायिकाभेद लिखने वाले पूर्ववर्ती नायिकाभेद के ग्रंथ अवश्य देखते थे कामशास्त्र के नहीं। नायिकाभेद में विपरीत रति का केवल एक ऐसा वर्णन है जिसका कामशास्त्र से संबंध जुड़ता है। पर वहाँ तो रतिबंध बहुत से हैं। एक यह भी रतिबंध है। पर यहाँ उदाहरण देकर यह बताने की अपेक्षा नहीं कि कामशास्त्र में उसका जैसा उल्लेख है वैसा ही नायिकाभेद के ग्रंथों में भी है। काव्य में तो कान्तासम्मित ही उपयुक्त हो सकता है अर्थात् रचना में ही संकेत से ही उसको व्यंजित किया जा सकता है। उसकी तरह वर्णना नहीं रहती। नाट्यशास्त्र में भी नायिकाभेद का विवरण कामशास्त्रीय प्रयोजन से नहीं है। नायक नायिका जब रूपकोपरूपक में होते हैं तो उनकी साज सज्जा उनका रूपग्रहण किस प्रकार का हो इतना ही तो वहाँ निर्दिष्ट है। फिर रीतिशास्त्र या रीतिकाव्य लिखने वाला हिंदी का आचार्य या कवि नाट्यशास्त्र भी कहाँ पढ़ता था। यह तो नाट्यशास्त्र से पृथक् किए गए इस अंश को काव्य के वर्ण्य विषय के रूप में ही अन्य परवर्ती ग्रंथों से ही ग्रहण करता रहा है। किसी ने काव्यप्रकाश से किसी ने साहित्यदर्पण से लिया किसी ने शृंगारतिलक से और किसी ने रसमंजरी से। अधिकतर रसमंजरी को आधार बनाने वाले ही दिखते हैं। रसमंजरी नाट्यशास्त्रीय प्रयोजन से नहीं [illegible] प्रयोजन से बनी [illegible] काव्यशास्त्रीय प्रयोजन से बनी है। काव्य के वर्ण्य विषय के रूप में वहाँ नायिकाभेद है। वर्णरचना में उसका संबंध नहीं है वर्णना से उसका संबंध है। हिंदी में रीतिकाव्य और रीतिशास्त्र के निर्माण में कुछ प्रधानतः हिंदी साहित्य की रचना की दृष्टि से किए गए हैं। रीतिशास्त्र में जैसा सूक्ष्म विवेचन संस्कृत में हो चुका था उसकी अपेक्षा हिंदी को [illegible] थी। उसका निदर्शन या निर्वाह ही उसके लिए उपयोगी था। हिंदी के रीतिशास्त्रों में रीति वक्रोक्ति औचित्य पर गंभीर विचार क्यों नहीं हुआ, इसीसे कि संस्कृत में पर्याप्त विमर्श हो चुका था। रीति रही गई अनुप्रास की क्रिया में वक्रोक्ति एक अलंकार ही बनकर पड़ी रही। औचित्य रस के पेटे में समा गया। रस नायिकाभेद ऋतुवर्णन नखशिख बारहमासा अलंकार इन प्रमुख रूपों में [illegible] और हिंदी का [illegible] था। ध्वनि के प्रपंच में कुछ आचार्य अवश्य पड़े हैं पर वह भी प्रवाह में न [illegible] सका। कहने के लिए हिंदी में वह भी है [illegible] हो कह सकते हैं। उसमें सरसता नहीं थी। [illegible] ऊपर आ गए। अस्तु।

रस के लिए [illegible] रही। नायिकाभेद के लिए रसमंजरी। अलंकार के लिए [illegible] कुवलयानंद। पर [illegible] से था [illegible]। [illegible] कि [illegible] कुवलयानंद [illegible] ग्रहण किया है। [illegible] में भी [illegible] मिलता है। पर [illegible]। [illegible] निर्माण किया है। फिर [illegible] और पद्य में ग्रंथों का [illegible] होता है। जायसी

की पद्मावत मे पद्मावती का निखनख ही है। पर सूरदास तुलसीदास मे तो नखशिख आया है। पर म सिर तक क्रम से अगो का वणन हुआ है। तब उन्ह निर्णय करना पडा और उदाहरण के रूप म नेना प्रसंग का रखना पडा। तीन प्रकार से वर्ण्य बताने पड—दिव्य दिव्यादिव्य और अदिव्य।

नखतें सिखलौं बरनिय देवी दीपति देखि।
सिखतें नखलौं मानुषी केशवदास बिसेखि॥
जग के देवी देव के श्रीहरि देव बखानि।
तिन हरि की श्री राधिका इष्ट देवता जानि॥

दिव्य (देवी) और दिव्यादिव्य (जग के देवी देव अवतार) का वणन नख स शिख की ओर और मानुषी (अदिव्य) का शिख से नख की ओर। फारसी म वर्णन 'सरापा' सर से पा (पर) की ओर था। वहा केवल मानुषी का अदिव्य वणन ही था। हिन्दी म नखशिख बन गया। हिंदी म पृथक रूप स नखशिख ही लिखे गए हैं शिखनख नहीं। श्रीराधाकृष्ण के साथ जुड जाने से नायिका भेद म यह परिष्कार भी आ गया कि केशवदास ने निविड नायिका—स्वकीया परकीया और सामा या म सामान्या को परित्यक्त ही कर दिया। हिन्दी के रीतिग्रथो म सामान्या या वेश्या का वणन तो है पर उसका विस्तार नहीं है। बहुत थोड ही उदाहरणो मे छुट्टी ले ली गई है। रसिकप्रिया म शृगार निरूपण का आधार लिया गया है वहा वेश्या के उदाहरणो का बहुत विस्तार है। चातुर ने गुरुदेव केशवदास ने ऐसा परिष्कार किया है यह भी विस्मरणीय नहीं है।

हिन्दी म कविशिक्षा और रसिक शिक्षा की दृष्टि से ग्रथो का निर्माण करने का प्रयोजन था। कोई कविता करना चाहता हो तो उसके लिए कवि समय काव्य प्रणाली परम्परा आदि का ज्ञान अपेक्षित था। पर ऐसा न समझ लेना चाहिए कि यह ज्ञान ही पर्याप्त है। प्रतिभा के बिना सब बेकार है। इनके बिना भी प्रतिभा बेकार है। बस हिन्दी वालो का पक्ष इतना ही था। जिन सस्कृत वालो ने प्रतिभा को ही सवस्व मान लिया था उन्होने उसी के दो भेद कर दिए—सहजा और उत्पाद्या। उत्पाद्या म ही निपुणता और अभ्यास को सन्निविष्ट कर दिया। मम्मटाचाय एसे आचायधुरीण भी तीनो को अनिवाय कहते हैं। काव्य के लिए प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास को हेतु मानते है अर्थात तीनो के सामञ्जस्य को एक करके कहते हैं। केशवदास कुलपति सूरति मिश्र आदि आचार्यों ने सस्कृत ग्रथो का पर्याप्त अध्ययन किया है। लक्षण ग्रथो की अपेक्षा निर्माण की ही उस समय महत्ती अपेक्षा थी। लक्षण ग्रथो का निर्माण तत्त्वत इसी प्रयोजन से कर सारी भारतीय परपरा को हृदयगम करके निर्माण किया जाय पर हमारा तात्पय छायानुकृति नहीं था। किन्ही नहीं लगा ऐसा न था। लोक साहित्य का स्पर्श नहीं करेंगे ऐसी कोई बात नहीं थी। हिन्दी भाषा और साहित्य का उद्भव और विकास तो जनता की आकाक्षा जनभाषा की आकाक्षा और जन साहित्य की आकाक्षा से था। पर शासन दूसरा का था उनकी भी सस्कृति थी और उनका भी साहित्य था। पर अपने साहित्य को रीतिकालीन आचार्यों या कवियो ने

भारतीय परम्परा से विच्छिन्न नहीं होने दिया। कौन भारतीय हो रहा। प्रकाश भी खोज की रही पर दूसरी संस्कृति के अनुरूप भी अपना प्रवाह न जो कुछ हो सकता था किया। स्रोत संस्कृत का ही रहा फारसी पारसी का स्थान खोजने व नहीं गए। पर सारा संस्कृत का मूल ही हो रचनाएँ हिन्दी की ही हैं। लक्षण ग्रन्थ ही अधिकतर संस्कृत के आधारभूत ग्रन्थों के सहारे ही लिखे गए हैं पर उदाहरण व अधिकांश ग्रन्थ अपने रहे। जो रीतिकाव्य के विरोधी भी हैं वे भी स्वीकार करते हैं कि रीतिकाव्य में इतने नवीन उदाहरण संस्कृत में भी नहीं हैं। शृंगाराधिक्य कुछ हुआ अन्य संस्कृति के सम्पर्क, अन्य साहित्य के समस्तरीय उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण। संस्कृत साहित्य विशाल जटिल है। उसके समझने में उसका अनुवाद करने में कहीं किसी से त्रुटि का हो जाना असम्भव नहीं है। प्रत्युत यह भी कह सकते हैं कि साम्प्रतिक युग के हिन्दी के आचार्य तो अधिक सावधान माने जाते हैं। फिर भी उनसे पश्चात् भारतीय साहित्य शास्त्र को समझने समझाने में भूलें क्या हो रही है। उसकी जटिलता के ही कारण। प्रत्युत यह भी कह सकते हैं कि जितनी त्रुटियाँ आज हुई हैं या हो रही हैं उतनी उनसे नहीं हुई हैं। तुलनात्मक दृष्टि से उन्हें देखकर वही समीचीन हैं।

यदि कोई यह कहे कि दूसरी संस्कृति से इन्होंने उठान क्या बढ़ाया तो इतना ही वह सकते हैं कि जितना उन्होंने उनसे ग्रहण किया उतना अनिवार्य था। ग्रहण से दोष गुण दोनों होते हैं। अतिशृंगारिकता का दोष आया कहीं रहे तो विरहवेदना की वह विशेषता भी आई जिसने घनआनन्द जैसा कवि भी सामने किया। दूसरी संस्कृति उन्होंने पूरी की पूरी ओढ़ ही नहीं ली है। पर वर्तमान साहित्य तो स्वतः के लिए भारत के बाहर देखता है। निर्माण ही तो वर्तमान साहित्य का अपना कहा जा सकता है पर शास्त्र भी क्या अपना है या भारतीय है? भारत के संकुचित घरे से तो वे बाहर निकल गए हैं विश्व विराट फलक पर जा खड़े हुए हैं। उदाहरण ही तो अपने उनके हैं। फलक चाहे जितना विस्तृत हो गया हो पर शास्त्र अपना नहीं है। संस्कृति? आजकल भारतीय संस्कृति का उद्घोष बहुत होता है। पर जो संस्कृति उसके नाम पर रखी जा रही है वह कौन सचाई के साथ कह सकता है कि भारतीय है। उसे भारतीय संस्कृति कहना उस पवित्र संस्कृति का बहुत बड़ा अपमान करना है।

इस प्रबंध की उपलब्धियों के विषय में वक्तव्य भी अपेक्षित है। क्रमशः उसका विचार किया जाता है—

(१) रीति-कवियों ने काव्य के आभ्यंतर धर्म रमणीयता और बाह्य धर्म अलंकृति का अपने काव्य में सम्यक् संयोजन किया है। भारतीय परम्परा में शब्द और अर्थ दोनों को सम्मिलित रूप में काव्य माना गया है। इसलिए रीतिकाव्य ही प्राचीन काल में वास्तविक काव्य था उसमें दोनों का सह अस्तित्व है। रीतिकाव्य की उक्तियाँ जैसी अनूठी और रमणीय हैं और परिमाण में जितनी हैं भारतीय क्या कोई भी साहित्य उतनी और वैसी उक्तियाँ नहीं दे सका है यह भी सत्य है। इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है जो उस काव्य के तीखे आलोचक थे।

(२) रीतिकाव्य का प्रणयन प्राय शास्त्रस्थिति सपादन के लिए हुआ। अत उस पर पूववर्ती काव्यशास्त्रीय ग्रथो का प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे मिलना है। जि होने रीतिशास्त्र के ग्रथ लिखे उनके लिए शास्त्रस्थिति सपादन अनिवाय था। पर यही यह भी ध्यान म रखना है कि उनके उदाहरण सवत्र अनुवदन नही है। सिद्धात पक्ष म भी रीतिशास्त्र उत्था नही है। व्यक्तित्व के न उभरने की चर्चा भी होती है। पर किसी धारा म सवत्र व्यक्तित्व का उभार नही होता। व्यक्तित्व की पुकार आधुनिक है। रस सप्रदाय तो साधारणीकरण का उपासक रहा है, असाधारणीकरण का नही। व्यक्तित्व के उभार की खोज करते हुए इधर भी दृष्टि रखनी चाहिए। फिर भी कौन कह सकता कि मतिराम और पद्माकर का व्यक्तित्व एक सा है। चिंतामणि और मतिराम भाई थ, पर ये दोना भी एकरूप नही हैं।

(३) रीतिका य वग विशेष का चित्र उपस्थित करता है।' यह विचारणीय वग भावना भी साम्प्रतिक है। जिस परिवश म कोई रहता है उसका प्रभाव होता ही है। आज उप यास-कहानिया म अधिकतर विशिष्ट वग युवा-वग मध्यम वग, विद्यार्थी वग ही क्यो चित्रित होता ह ? मिथुन वत्ति की ही चर्चा विशेष क्या रहती है। यह सब रीति काव्य म सवत्र सोद्देश्य नही है। आज सोद्देश्य अधिक है। इसलिए वग साहित्य नाम वग भावना वाले ही देने लग है उसे।

(४) महाकाव्य और मुक्तक के सबध म भी यह विचारणीय है कि समय की गति क साथ प्रबधो स मुक्तक की प्रवत्ति बढ रही है। अब तो मुक्तको और उनम भी गीतो का ही प्रबध काव्यो स उत्तम कहा जा रहा है। इसी का फल यह भी है कि सूर सागर को महाका य तक कहा जाने लगा है। महाका य और मुक्तक भारतीय साहित्य शास्त्र के पारिभाषिक श द है। उनका मनमाना प्रयोग नहा किया जा सकता। सूरसागर को महाकाव्य से उत्कृष्ट रचना कोइ कहना चाहे तो कह पर उसे प्रब धकाव्य या महा का य नही कहा जा सकता। किसी कथा क सहारे प्रब धका य भी लिखा जा सकता है और मुक्तक का य भी, किसी मुक्तक का य म किसी कथा की सारी की सारी घटनाएँ आ जाने पर भी वह मुक्तक ही रहगा। किसी कथा की कुछ ही बात आन पर भी अम-बद्धता या सधियोजना से वह प्रबध ही होगा। नषधचरित मे विवाह की ही कथा है पर वह प्रबध है महाका य है। सूरसागर म श्रीकृष्ण का सारा जीवन वृत्त आ गया है पर वह मुक्तक ही है। इन नामो का सकेत स्वरूप विशेष की ओर है। इसलिए सूर-सागर को प्रब धात्मक मुक्तक भी नही कह सकते। सपूण जीवन कथात्मक मुक्तक कहिए प्रबधात्मक मुक्तक नही—

बह्वपि स्वेच्छया काम प्रकीण मभिधीयत ।
अनुज्झिताथ सबध प्रबधो दुरुदाहर ॥

प्रबध मे अनुज्झिताथ सबध होता ह कथा ना। यह सूरसागर म नही ह। उज्झिताथ सम्ब ध होन से वह मुक्तक ही ह। 'प्रब ध' महाका य भी होता ह खडका य भी होता ह। इसलिए बरव रामायण और कृष्ण गीतावली का भी खडकाव्य नही कहा जा

सकता। अनुभिनाथ संबंध का अभाव हो सकता।

भाषा रीतिकाव्य की परिष्कृत है, हाँ, उसमें अनेक प्रकार के। हिन्दी काव्य की भाषा की दृष्टि से देखने पर अनेक नए तथ्य सामने आते हैं। आज के आलोचक ब्रज और अवधी में भेद करते चलते हैं। पर पहले भाषा के नाम पर प्रादेशिक स्तर पर विकसित सभी भाषाओं का ग्रहण होता था। इसलिए रीतिकाल ने भाषाभेद समाप्त करने का प्रयास किया जो भी थोड़ा बहुत दृग्गोचर हो रहा था। जायसी कबीर तुलसीदास केशवदास सभी अपनी रचना में प्रयुक्त भाषा को भाषा या भाखा कहते हैं। उनके स्वरूप में अंतर है। रीतिकाव्य ने इस दिशा अंतर को दूर करके घटाने का प्रयास किया है। सर्वसामान्य भाषा एक हो यह उनका एक आदर्श था। इसका प्रयास भक्तिकाल में तुलसीदास ने किया और रीतिकाल में गंग ने। भिखारीदास जो कहते हैं उसका तात्पर्य समझने की आवश्यकता है —

तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इनकी काव्य मे मिली भाषा विविध प्रकार॥

अतः छन्दभया की भाषा का दबाकर रीतिकाव्य की भाषा को अपरिष्कृत या खिचड़ी भाषा कहना सुसंगत प्रतीत नहीं होता।

डा० रामजी मिश्र ने रीतिकाव्य के स्रोत को बड़ी तन्मयीलता से खोजा है। मैं तो केवल स्रोत के उत्स की चर्चा कर रहा था और उसके रीतिकाव्य कर्ताओं द्वारा ग्रहण में गिमा का संकेत भर दे रहा हूँ। श्री मिश्र की श्रमशीलता से बहुत पूर्व से परिचित था। जब राम ने अयोध्या से बाहर पग नहीं रखा था तब से उनकी उदारता से परिचित हूँ। मुझे तो यही प्रसन्नता है कि जिस बगीचे में मैं बहुत दिनों से टहलता रहा हूं वहाँ और सज्जन भी टहलने आने लगे हैं और उनकी छटा निहार रहे हैं। श्री मिश्र की दृष्टि बहुत साफ-सुथरी है इसमें वह भी देख लिया है जो अभी तक कोई नहीं देख पाया था। उत्तराधिकारी का प्रश्न प्रत्येक अधिकारी के सम्मुख रहता है। मैं निश्चिन्त हूँ कि उत्तराधिकार का अभार सम्हालने वाले मुझे अभूतपूर्व व्यक्तित्व का उपलब्धि हो गई है। संयोग है कि डा० रामजी भी मिश्र हैं। अब मुझे राम राम करने की उलझन न होगी और सानंद राम राम भी कर सकूंगा परिणत वय में। तथास्तु।

श्रीपंचमी २०२६ विक्रम
३ विश्वविद्यालय आवास
कोठी रोड उज्जैन

—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

प्राक्कथन

रीतिकाव्य में शृंगाराधिक्य की जितनी आलोचना की गई है उसकी तुलना में रीतिकालीन काव्य के साहित्यिक सौंदर्य का उद्घाटन और विश्लेषण कम हो पाया है।

भाषा के वैभव के दृष्टिकोण से भी इस काल का साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भाषा का अभिधेयार्थक स्वरूप काव्य के लिए उपयुक्त नहीं होता। उसमें अर्थव्यंजना की पूर्ण क्षमता आवश्यक है। इस दृष्टि से अलंकार, गुण और रीति आदि कलात्मक वैशिष्ट्य भी अपेक्षित है। रीतिकाव्य और भी वैभवपूर्ण दीखेगा। यदि समग्र रूप से रीतिकाल की परंपरा, प्रेरणा और तत्कालीन स्थितियों पर विचार किया जाय तो उसकी रमणीयता और स्वाभाविक विकासशीलता पर समुचित प्रकाश पड़ सकता है जिसका प्रवर्तन रीति कवियों ने किया है। इन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती काव्य साहित्य से जो कुछ ग्रहण किया उसे और भी रमणीय रूप में उपन्यस्त किया। यह बात दूसरी है कि तत्कालीन परिस्थितियों ने शृंगार काव्य के लिए अधिक प्रेरणा दी।

रीतिकाव्य की शृंगार धारा और प्रशस्ति धारा का मूल स्रोत वैदिक साहित्य माना जाता रहा है। लौकिक और पौराणिक काव्य धाराओं का रीतिकाल तक प्रवाह-नैरंतर्य दिखलाने में यह प्रयत्न बराबर किया गया है कि अपने परिवेश से प्रभावित परिचालित होने पर भी उक्त काव्य धाराएँ कहाँ तक रीति-काव्य की प्रेरणा की स्रोत बन सकी हैं।

शृंगारी अभिव्यक्ति के क्षेत्र में रीतिकाव्य अपना सानी नहीं रखता। नारी और पुरुष की मनोवृत्ति, काम और तज्जन्य विभिन्न चेष्टाओं को देश काल और अपने परिवेश के अनुकूल इन कवियों ने बड़ी सूक्ष्मता से व्यापक संदर्भ में अंकित किया है। इसकी पुष्टि के लिए तीसरे और चौथे अध्यायों में पर्याप्त सामग्री दी गई है।

काव्य अलंकरण की जितनी भी विधाएँ रीतिकाल के पूर्व विद्यमान थीं, वाणी की जितनी भंगिमाएँ भाव प्रकाशन में प्रयुक्त थीं और काव्य गुण, शब्द शक्ति का जिन रूपों में काव्योत्कर्ष के लिए प्रयोग किया गया था उन सबका सम्यक् नियोजन रीतिकाव्य में किया गया है। शब्द की प्रकृति, उसकी व्यंजना और ध्वनि का भी इन कवियों ने पूर्ण ध्यान रखा है।

प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने बिहारी की भूमिका में काव्य म शृ गार की प्रवृत्ति के प्रसगत उसके स्रोत का निर्देश किया है। भिखारीदास के काव्यनिर्णय के प्रसग छन्दो की तुलना सस्कृत प्राकृत आदि के छन्दो से की गई है। डा० नगेन्द्र ने अपने शोध ग्रथ में रीतिकाव्य की भूमिका का विश्लेषणात्मक परिचय देते हुए उसके स्रोतो की ओर सकेत किया है पर वह इतना सक्षिप्त है कि उससे रीतिकाव्य के विभिन्न पक्षो का पूर्ण उद्घाटन नहीं होता। डा० बच्चनसिंह ने रीतिकालीन कवियो की प्रेम-व्यजना में उसके वस्तुपक्ष का ही उद्घाटन किया है। उसकी काव्य परम्परा का अत्यत सक्षिप्त निरूपण उसमें किया गया है। डा० त्रिभुवनसिंह ने अपने शोध प्रबन्ध में महाकवि मतिराम मध्यकालीन हिन्दी कविता म अनुकरण वृत्ति में रीतिकाव्य की केवल एक प्रवृत्ति अनुकरण का ही विवेचन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार डा० गिरिजादत्त जोशी ने उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ही विवेचन प्रस्तुत किया है। डा० ओम प्रकाश ने हिन्दी अलकार साहित्य म अलकारो का ही विश्लेषण किया है। हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास रीति-कालीन कविता एव शृगार रस विवेचन आचार्य केशवदास 'व्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद' 'मुक्तक काव्य, परम्परा और बिहारी, 'मतिराम कवि और आचार्य आदि ग्रथ भी हैं जिनसे रीतिकालीन साहित्य का परिचय मिलता है। लेकिन किसी ने उसके बाह्य पक्ष का रूप निरूपण किया है तो किसी ने केवल आन्तर पक्ष का ही। अनेक अनुसधाताओ ने रीतिकालीन कवि आचार्य के कवि कर्म और आचार्यत्व का विवेचन विश्लेषण किया है।

रीतिकाव्य के विभिन्न पक्षो का आशिक रूप म या खडश विवेचन हुआ है परन्तु समग्र रूप म शृखलाबद्ध क्रम से उसका ग्रथ रूप मे एकत्र निरूपण अब तक नही किया गया है। इन प्रमुख सदर्भ स्रोतो का व्यापक रूप म मूलभूत ग्रथों के आधार पर सकलन किया गया है तथा उनके उपयोग, विनियोग और परिष्कार का मौलिक ढग से विवेचन प्रस्तुत किया गया है।[१] अद्यावधि रीतिकाव्य के स्रोतो का सम्यक विश्लेषण नहीं किया गया। इस ओर अगुलि निर्देश तो प्राय प्रत्येक तद्विषयक शोध-ग्रथ मे किया गया किन्तु गहरे पठकर रत्नों की उपलब्धि और उनका मूल्याकन नही प्राप्त होता। प्रस्तुत प्रबध इसी दिशा म एक प्रयास है।

यद्यपि रीतिकाव्य के स्रोत निर्देश म उसकी भावगवलित कलात्मकता की परपरा का भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है परन्तु उसका यथोचित विस्तार यहा सम्भव नहीं।

रीतिकाव्य का प्रभावित करने म अरबी फारसी का पुष्कल साहित्य कम महत्त्वपूर्ण नही है, किन्तु उसका तुलनात्मक दृष्टि से सम्यक उपस्थापन समय न था अत केवल कहीं-कहीं सकेत मात्र करके सतोष करना पडा है। इसी प्रकार रीतिकाव्य की भाव धारा का परिचालित करने वाली वैष्णव काव्याभिव्यक्तियो का भी स्वरूप परि

---

१ दे प्रस्तुत प्रबध चतुर्थ अध्याय

चय मात्र ही दिया जा सका है। उसमें वर्तमान प्रेरणा बीजों का सम्यक आकलन और निर्देश कर सकना जितना महत्वपूर्ण है उतना ही श्रमसाध्य भी।

पौराणिक साहित्य केवल रीतिकाव्य के लिए ही नहीं समस्त भारतीय वाङ्मय के लिए उपजीव्य रहा है। प्रस्तुत प्रबंध में उसका पूरा विवरण नहीं उपस्थित किया जा सका है, केवल कुछ प्रमुख पुराणों के कतिपय शृंगाररसपूर्ण स्थलों का उल्लेख मात्र किया गया है।

ब्रजभाषा का जो रूप रीतिकाव्य में मिलता है उसका विकास क्रम पूर्णरूप से विवेचित न हो सका। डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपने शोध प्रबंध में एतद् तत्वों का संकेत किया है जो ब्रजभाषा के प्रमुख विधायक रहे हैं। उनकी परंपरा भी उन्होंने पूर्वप्रचलित काव्य भाषाओं से स्थापित की है।

रीतिकाव्य के उचित मूल्यांकन के लिए उपयुक्त तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रस्तुत प्रबंध में इन तथ्यों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण दिए गए हैं और यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि रीतिकाव्य के अनुरंजक तत्व अपने में पूर्ण और निर्दोष हैं।

रीतिकाव्य के कवियों का सौंदर्य बोध और कवि कर्म सामाजिक संदर्भों से सर्वथा विलग और कटा हुआ नहीं है। इसके प्रतिपादनार्थ रीतिकाव्य की आधार भूमि का संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है।

रीतिकाव्य के स्रोत के रूप में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और रीतिकाल के पूर्व हिंदी की शृंगारपरक काव्यधाराओं का यथासंभव परिचय दिया गया है। स्थान स्थान पर रीतिकाव्य पर पड़े पूर्ववर्ती काव्यों के प्रत्यक्ष प्रभावों का विनिर्देश भी कर दिया गया है।

रीतिकाव्य केवल शृंगारी अभिव्यक्तियों के लिए ही पूर्व परंपरा का ऋणी नहीं है अपितु अभिव्यक्ति के उपादान और माध्यम के लिए भी वह उनका आभारी है। उसको संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और हिंदी की रसपेशलता ही नहीं अलंकृत शैली भी मिली। काव्य चित्रों की विविधता कोमल वर्णों का लालित्य, शब्द झंकृति या शब्द योजना और संगीतमयता भी पूर्व परम्परा से प्राप्त हुई।

प्रस्तुत प्रबंध का विषय इतना व्यापक है कि उसके आभोग में पूरा भारतीय वाङ्मय आ जाता है। रीतिकाव्य के स्रोत ज्ञात अज्ञात न जाने कितने संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और हिंदी के ग्रंथ हैं जिनका सम्यक विवेचन शोध प्रबंध के इस लघु कलेवर में हो सकना संभव नहीं है और उनका आकलन एक व्यक्ति की सामर्थ्य सीमा के सर्वथा परे है। ऐसी स्थिति में जिन प्रमुख ग्रंथों की ग्रंथियों को सुलझाया जा सका है उन्हें ही स्थान दिया गया है। भविष्य में यदि समृद्ध पुस्तकालय और समय का सुयोग मिला तो इस क्षेत्र में और भी प्रगति की जा सकेगी।

प्रस्तुत प्रबंध में रीतिकाव्य के स्रोत के अनवधिन मूल्यों का सम्यक परिचय और निष्कर्ष उपसंहार में उल्लिखित है। यह कार्य जिन गुरुजनों, बंधुओं और

की प्रेरणा, सहायता से सम्पन्न हुआ उनके प्रति आभार प्रदर्शन मेरा प्रथम कर्त्तव्य है।
आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व से लेखक इस विश्वनाथ की नगरी में आने के पूर्व ही प्रभावित था। यहाँ आने और उनका प्रसाद पाने पर तो और भी अधिक श्रद्धावनत हुआ। एम०ए० में रीतिकाव्य को विशेष अध्ययन के लिए ग्रहण करने पर मैं उनके और भी निकट सम्पर्क में आ गया। उन्होंने अपने अध्यापन काल में मुझे बराबर प्रोत्साहन दिया और एम०ए० करने के उपरान्त शोध कार्य में उन्हीं की वात्सल्यपूर्ण प्रेरणा से प्रवृत्त हुआ। उनकी कृपा का सबल मेरी कष्टसाध्य साधना का प्रमुख सहारा रहा है।

श्रद्धेय पं० करुणापति जी त्रिपाठी ने जिस स्नेह और तत्परता से मेरा मार्ग प्रशस्त किया उसके महत्त्व प्रकाशन में शब्द असमर्थ हैं। इतने दिनों तक रुग्णावस्था में भी मुझे प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने मेरी कठिनाइयों को दूर कर इस दिशा में नवीन दृष्टि दी उनकी कृपा का मैं चिर ऋणी हूँ।

यदि डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा एम० ए० डी० लिट० अध्यक्ष हिन्दी विभाग का असीम अनुग्रह और वात्सल्यपूर्ण झिड़कियाँ यथासमय न मिली होतीं तो मेरी शोध इच्छा की परिपूर्ति न हो पाती। उनकी उदारता ने मुझे प्रारम्भ में ही हताश होने से बचाकर जिस स्नेह का परिचय दिया है उसका आभार प्रदर्शन किस रूप में करूँ।

डा० नगेन्द्र के शोध ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध 'रीतिकाव्य की भूमिका' ने मेरे अनुसंधान की भूमिका ही नहीं प्रस्तुत की अपितु उचित दिशा का निर्देश भी किया अतः उनके प्रति मैं हृदय से भी आभारी हूँ।

उक्त गुरुजनों की सत्प्रेरणा के बिना मेरा यह कार्य कभी पूर्णता को प्राप्त न होता। उन सबके प्रति श्रद्धावनत होकर मैं आशीर्वाद प्राप्ति की कामना करता हूँ।

इस अनुसंधान कार्य को डा० रुद्रकाशसिंह और डा० शिवप्रसादसिंह ने समय समय पर अपने बहुमूल्य सुझाव देकर सुगम बनाने में मेरी जैसी सहायता की है उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

महत् कार्य की पूर्णता में सहयोग देने वालों का योग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। इस दृष्टि से मेरे अनुज चि० श्यामजी मिश्र और अनुजवत् स्नेहभाजन चि० मुक्तप्रसाद द्विवेदी आशीर्वादाई हैं। अपने व्यस्त समय में से मेरे सहयोग के लिए जिन सहृदय मित्रों ने अपना समय दिया उनमें सबसे अपने सहपाठी डा० सोमनाथ सिंह के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिनकी प्रेरणा [redacted] इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका। पं० शान्तिचन्द्रजी मिश्र व मास्टरजी गुप्त शम्भुनाथ राय पं० दुर्गाप्रसाद तिवारी प्रभृति का भी मैं आभारी हूँ। श्री आर० एस० चौहान आदर्श प्रकाशन ने जिस तत्परता और परिश्रम [redacted] शोध प्रबन्ध का प्रकाशन किया है उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

दिल्ली कालेज
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
अजमेरी गेट, दिल्ली ६

— रामजी मिश्र

पहला अध्याय

रीतिकाव्य स्रोत और सीमा

रीतिकाव्य के स्रोत की विवेचना के पूर्व रीतिकाव्य का स्वरूप स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। इसका जो रूप आज विकसित हुआ उसे दो भागों में सुविधा के लिए विभाजित किया जा सकता है। एक रीति दूसरा काव्य। रीति प्रमुख है और काव्य गौण। यद्यपि काव्य विशेष्य है और रीति उसका विशेषण। रीतिकाव्य व वैशिष्ट्य को द्योतित करता है। रीति से विशिष्ट काव्य की चर्चा आगे में की जाएगी। पहले काव्य का सामान्य परिचय विवक्षित है।

काव्य परिचय (संस्कृत)

मूलतः कवि की अपनी प्रतिभा से प्रसूत निपुण वाङ्मय शिल्प को काव्य कहा जाता है, सामान्यतः जिसका तात्पर्य कवि वाङ्निर्मिति से होता है।[1] इसके आभोग में सम्पूर्ण मुललित साहित्य—गद्य, पद्य चम्पू सब आ जाते हैं। काव्य के लक्षण निर्धारण में दो तत्त्वों का विवेचन होता है। एक बहिरंग दूसरा अन्तरंग। पहले में काव्य के केवल वाह्यरूप का उसके अवयवों के संघटन का उल्लेख रहता है और दूसरे में कोई ऐसी विशेषता लक्षित कराने का यत्न किया जाता है जो केवल काव्य में ही पाई जाती है। शब्द और अर्थ काव्य के बहिरंग का द्योतन करते हैं अंतरंग का द्योतन रस या रमणीयता से होता है।[2]

संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य के स्वरूप विवेचन में मुख्यतः उपयुक्त इन्हीं दो तत्त्वों का विश्लेषण किया है। उनके अपने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण काव्य के अनेक लक्षण किए गए। काव्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण परिचय भरत के नाट्य

---

१ कवि वाङ्निर्मिति काव्यम्।

२ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र वाङ्मय विमर्श पृ० १२

नाट्य में प्राप्त होना है। उसी नाटक को आधार मानकर काव्य का लक्षण दिया।[1] आचार्य भरत का लक्षण काव्य की बाह्य और आंतरिक विशेषताओं को व्यक्त करता है। इसमें रीति, गुण, अलंकार और रस सबका सन्निवेश कर दिया है।

आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आचार्य वामन ने काव्य को अलंकारसहित और दोषरहित होना आवश्यक माना है, अर्थात् वामन ने काव्य का अलंकृत, निर्दुष्ट और सगुण रूप ही स्वीकृत किया।[2]

वामन ने काव्यात्मा के रूप में रीति की प्रतिष्ठा की[3] जिसके परिणामस्वरूप रीति सम्प्रदाय का प्रवर्तन हुआ। आनन्दवर्धन ने शब्दार्थ समूह को काव्य शरीर मानकर ध्वन्यर्थ को उसकी आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया।[4] आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मानते हुए कहते हैं, भंगिमायुक्त कवि व्यापारशालिनी व्यवस्थित शब्द और अर्थ के साहित्य से तद्विदों को आह्लादित करनेवाली रचना काव्य है।[5] कुन्तक काव्य को भंगिमायुक्त मानते हुए भी पूर्ववर्ती आचार्यों के ही अनुरूप काव्य लक्षण देते हैं।

मम्मटाचार्य वामन के काव्य लक्षण को परिष्कृत रूप में ग्रहण करते हुए अलंकार को अधिक महत्त्व देना अनुचित समझते हैं। उनका मत है कि अलंकार तो गौण है, गुणसहित और दोषरहित होने पर काव्य के रसास्वादन में कोई बाधा नहीं पहुँचती।[6] अर्थात् यदि अलंकार स्फुट न हो तो भी काव्यत्व की हानि नहीं होती, परन्तु जैसे मनुष्य शरीर में प्रधान आत्मा के गुण शूरता आदि होते हैं उसी प्रकार काव्य में प्रधान रस के उत्कर्ष हेतु धर्म गुण की स्थिति आवश्यक है।[7] भोज ने भी प्रायः काव्य के इसी लक्षण को स्वीकार किया है।[8]

चन्द्रालोककार जयदेव काव्य को दोषरहित, लक्षणायुक्त, रीति, गुण, अलंकार, रस और वृत्ति से समन्वित मानते हैं, पर मम्मटाचार्य की उक्ति 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि'

---

१ मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
यत्कृत रसमार्ग संधियुक्तं स काव्यं भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्॥ —नाट्यशास्त्र १६।११८

२ काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलंकारः। स दोषगुणालंकारहानादानाभ्याम्।
—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १।१।१-३

३ रीतिरात्मा काव्यस्य।—वही १।२।६

४ काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः।—ध्वन्यालोक १।१

५ शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनी।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी॥ वक्रोक्तिजीवित १।७

६ तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। काव्यप्रकाश

७ ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥—वही ८।६६

८ निर्दोषं गुणवत् काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति॥ स० क० १।२

का खण्डन करते हुए काव्य के लिए अलंकार को उतना ही अनिवार्य मानते हैं जितना अग्नि के लिए उष्णता।[1]

काव्य-लक्षण की विवेचना करते हुए विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ ने उसके अंतरंग पर विशेष बल दिया है। विश्वनाथ ने शब्द और अर्थ पर विशेष ध्यान देनेवाले अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मत का खण्डन करते हुए रसात्मक वाक्य को काव्य माना है।[2] अर्थात् काव्यत्व की प्रतिष्ठा उसकी आस्वादिता में ही है। पण्डितराज जगन्नाथ ने मन को रमाने और तन्मय करने वाले गुण से विशिष्ट अर्थ का निरूपण करते हुए 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य' माना है।[3]

जाने अनजाने रीतिकाल में जब संस्कृत साहित्यशास्त्र की प्रेरणा पाकर रीति कवियों ने काव्य रीतियों की चर्चा की तो काव्य का लक्षण भी दिया और उदाहरण स्वरूप काव्य रचना भी की। संस्कृत के आचार्यों की भांति हिंदी-कवियों में न तो शास्त्र स्थिति सम्पादन की क्षमता ही थी और न आग्रह ही। इनका श्रेय इतना ही है कि संस्कृत काव्यशास्त्र को हिन्दी के काव्य रस-ग्राहियों के लिए सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत कर दिया।

काव्य परिचय (हिंदी)

हिन्दी में काव्यशास्त्र निरूपण का सूत्रपात कृपाराम ने किया। इनका रीति निरूपण मौलिक और सर्वमान्य भले ही न हो किंतु हिन्दी साहित्य के लिए उसका ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। कृपाराम से अधिक मान्यता आचार्य केशवदास को मिली। इन्होंने जयदेव के ही समान काव्य में अलंकार तत्त्व की अनिवार्यता सिद्ध की। इनके लक्षण पर दण्डी और उनसे भी अधिक रुद्रट का प्रभाव है। चिंतामणि त्रिपाठी का काव्य-लक्षण मम्मट से मिलता जुलता है। इन्होंने सगुण अलंकारसहित और दोषरहित शब्द और अर्थ को काव्य माना है।[4] कवि कुलपति ने अलौकिक आनंद देनेवाले शब्द और अर्थ को काव्य माना है।[5] कुछ अंशों में इनका लक्षण पंडितराज जगन्नाथ से मिलता-

---

१ निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक्॥
अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥—चन्द्रालोक १।७ =

२ वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।—सा० द० १।३

३ रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। र० ग० १।१

४ सगुन अलंकारन सहित दोष रहित जो होइ।
शब्द अर्थ ताको कवित कहत विबुध सब कोइ॥—कविकुलकल्पतरु १।५

५ जग तें अद्भुत सुख सदन शब्द रु अर्थ कवित्त।
यह लच्छन मैंने कियो समुझि ग्रंथ बहु चित्त॥—रसरहस्य, १।१६

गया है।[1] इससे स्पष्ट है कि रस-सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए कहा कि शब्द और अर्थ तो काव्य का शरीर मात्र हैं और रस उस काव्य का परम सार।[2] इसे स्पष्ट करते हुए अलंकार भूषण, रस को प्राण और छन्द को शरीर माना है। रस की महत्ता स्थापित करते हुए लिखा है कि शरीर तो बिना भूषण के भी रह सकता है पर बिना जीवन के शरीर राख है।[3] सोमनाथ ने व्यंग्य को प्राण और शब्दार्थ को शरीर माना है।[4] प्रतापसाहि भी सोमनाथ की ही बात कहता है।[5]

उपरिलिखित काव्य के परिभाषागत लक्षणों से स्पष्ट होता है कि आचार्यों ने बहुधा काव्य-लक्षण के रूप में शब्द और अर्थ को स्वीकार किया है। उनके आत्मिक तत्त्व की खोज में किसी एक प्रकार का मतैक्य नहीं है। किसी आचार्य ने उसे रस के रूप में माना तो किसी ने रीति या अलंकार के रूप में। इसी प्रकार ध्वनि या वक्रोक्ति को भी काव्यात्मा के रूप में ग्रहण किया गया। इस मत-वैभिन्न्य के परिणामस्वरूप अनेक सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ।

सम्प्रदाय विवेचन

आचार्य रुय्यक के अलंकार सर्वस्व की टीका करते हुए समुद्रबन्ध ने इन काव्य सम्प्रदायों की विवेचना की है। शब्द और अर्थ में चमत्कार पैदा करने वाले तीन प्रमुख तत्त्व हैं—धर्म, व्यापार और व्यंग्य।[6] उन्होंने धर्म की दो कोटियाँ मानी हैं—एक नित्य धर्म दूसरा अनित्य धर्म। नित्य धर्म की व्याख्या अलंकार सम्प्रदाय करता है और अनित्य धर्म की विवेचना रीति या गुण सम्प्रदाय। शब्द और अर्थ में चारुत्व पैदा करनेवाला दूसरा कारण व्यापारमूलक है। इसके भी दो भेद हैं—वक्रोक्ति व्यापार और भावकत्व व्यापार। समुद्रबन्ध ने वक्रोक्ति व्यापार से वक्रोक्ति सम्प्रदाय और भोजकत्व से रस सम्प्रदाय का ग्रहण माना है। तीसरे तत्त्व व्यंग्य से ध्वनि-सम्प्रदाय की नींव पड़ी।

सम्पूर्ण काव्य शास्त्र को इन पाँच सम्प्रदायों ने पूर्णतः प्रभावित किया। रीति काव्य को जिन सम्प्रदायों ने प्रभावित किया वे क्रमशः रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि सम्प्रदाय हैं जिनका परिचय सर्वविदित है।

---

१ रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता।—र० ग० पृ० १ (चौ० सं०)

२ काव्य-सार शब्दार्थ को रस ताहि काव्य सुसार।—श० र०

३ अलंकार भूषण गुरुन जीव छन्द तन मान्य।
तन भूषण हू बिन जियै बिन जीवन तन राख॥—शब्दरसायन।

४ व्यंग्य प्राण अरु अंग पुनि शब्द अर्थ पहिचान।
दोष और गुन अलंकृति दूषनादि उर आन॥ र० पी० नि० ६।६

५ व्यंग्य जीवन कहि कवित को हृदय सु धुनि पहिचानि।
शब्द अर्थ कहि देह पुनि भूषन भूषण जानि॥— काव्य विलास १।१६

६ विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तद् वैशिष्ट्यं धर्ममुखेन व्यापारमुखेन व्यंग्यमुखेनेति त्रयः पक्षाः। अलंकार सर्वस्व टीका (त्रिवेन्द्रम संस्करण) पृ० ४।

डा० नगेन्द्र ने हिन्दी रीतिशास्त्र पर इनका प्रभाव निर्देश करते हुए लिखा है कि वास्तव में ध्वनि और रस सिद्धान्तों का समन्वय, जिसका आरम्भ अभिनव ने ही कर दिया था इस समय तक आते आते पूर्ण हो चुका था और अब आचार्य दोनों में विशेष भेद नहीं करते थे। हिन्दी रीति ग्रन्थों को जो परम्परा प्राप्त हुई उसमें ध्वनि का रस में बहुत कुछ अन्तर्भाव हो चुका था इसलिए हिन्दी के आचार्यों ने ध्वनि का साधारण रूप से उल्लेख करते हुए रस का ही विवेचन किया है। [1]

रीति का काव्य-पक्ष मुख्य रूप से रसात्मक है। अलंकारों का योग उसके शोभा वर्द्धन के लिए ही हुआ है। शास्त्र स्थिति सम्पादन में भी रीतिकालीन आचार्यों ने रस और अलकार का ही व्यापक विवेचन किया है। इस प्रकार रीति शास्त्र और रीतिकाव्य दोनों पक्ष रस की महत्ता सर्वोपरि मानते हैं। रस और ध्वनि दोनों काव्य के आन्तरपक्ष का ही उद्घाटन करते हैं। अलकार रीति और वक्रोक्ति उसके बाह्यपक्ष का विश्लेषण करते हैं। रीतिकाव्य की आत्मा रस है जिसका मन, बुद्धि और चित्त पर व्यापक प्रभाव ध्वनि के कारण पड़ता है उसका बाह्य रूप अलंकार से अलंकृत रीति से सुसंगठित और वक्रोक्ति से भंगिमापूर्ण है।

रीति शब्द व्युत्पत्ति और प्रयोग

रीति शब्द, जैसा कि पहले निर्देश किया गया है 'रीङ्गतौ' धातु से बना जिसका अर्थ सामान्य प्रणाली पद्धति गति मार्ग या पथ होता है। संस्कृत में सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग ८वीं शताब्दी में वामन ने सम्प्रदाय विशेष के लिए किया। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है जैसा कि शास्त्रीय पृष्ठभूमि से स्पष्ट है रीति सम्प्रदाय रचना अथवा बाह्याकार को ही काव्य का सर्वस्व मानकर चला है। सम्भव है आरम्भ में हिन्दी में रीति शब्द का मूल संकेत रीति सम्प्रदाय से ही लिया गया हो परन्तु वास्तव में यहाँ इसका प्रयोग सर्वथा सामान्य एवं व्यापक अर्थ में ही हुआ है।' [2] हिन्दी में इसका प्रयोग विशिष्ट रूढिबद्ध रचना के लिए किया गया। ऐसी रचना जिसमें काव्यशास्त्रीय विवचन के साथ ऐन्द्रिक तथा शृंगारिक उदाहरणों की परम्परा मिलती हो। इस प्रकार काव्य शास्त्रीय विधान के अर्थ में रीति शब्द का प्रयोग हिन्दी की अपनी विशेषता है। ऐसी बात नहीं कि उस सन्दर्भ में रीति का प्रयोग सर्वप्रथम आधुनिक काल के आलोचक आचार्य शुक्ल ने ही किया हो। इसकी प्राचीन परम्परा स्वयं रीतिकाल के कवियों में मिलती है। उन्होंने वामन की विशिष्ट पद रचना के अर्थ में भी रीति का प्रयोग किया और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के लिए भी। इस ओर अधिक स्पष्ट करने के लिए रीतिकाल और उसके पूर्ववर्ती कवि आचार्यों के द्वारा विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त रीति शब्द को देखा जा सकता है—चिन्तामणि 'रीति सु भाषा कविन की' [3] बरनत कवि इहि

---

१ डा नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ० ११४ १५

२ वही पृ०१२८

३ क क त ११६

रीति[1] बरनन पथ अगाध,[2] मतिराम रस रीति[3] देव, कवि रीति[4] भिखारीदास काव्य की रीति,[5] कविताई को पथ,[6] दूलह 'अलकार की रीति,'[7] पदमाकर रस ग्रथन की रीति,[8] आदि।

इन उद्धरणो से यह स्पष्ट है कि रीति या पथ का प्रयोग काव्यशास्त्र की विभिन्न शाखाओ के लिए हुआ है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि रीति या पथ शब्द कभी अकेल नही प्रयुक्त हुए। उनके साथ काव्य, अलकार छद रस आदि का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि उस समय रीति का अर्थ या शास्त्रीय विधान या शास्त्रीय परम्परा। डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि रीतिकाल के उत्तरार्द्ध मे 'रीति' शब्द प्रकार प्रणाली के अर्थ मे काफी प्रचलित हो गया था। सरदार आदि कवियो के समय मे यह शब्द इस रूप मे सर्वसाधारण मे स्वीकृत था।[9]

प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने रीतिकाल के नामकरण प्रसग मे लिखा है कि मिश्रबन्धु विनोद के अनुसार उत्तर मध्यकाल 'अलकृत काल' है और हिंदी साहित्य का इतिहास के अनुसार रीतिकाल। मिश्रबधुओ ने अलकृत शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। अलकार शास्त्र कहने से सस्कृत मे जैसे रस अलकार रीति पिंगल आदि समस्त काव्यागो का बोध होता है उसी प्रकार हिंदी साहित्य का इतिहास मे 'रीति' शब्द का प्रयोग रस अलकार पिंगल आदि काव्यागो के लिए किया गया है।[10] इस प्रकार प० रामचन्द्र शुक्ल ने रीति का प्रयोग केवल शास्त्रीय विधान तक ही सीमित न करके एक दृष्टिकोण विशेष के अर्थ मे किया है। अर्थात् रीतिकाव्य से तात्पर्य केवल रीतिकाल के कवियो की उन रचनाओ से ही नही है जिनकी रचना विधान शास्त्रीय विवेचन पर आधृत हो अपितु उन रचनाओ से भी है जो रीतिबद्ध दृष्टिकोण से रचित हो।[11]

नामकरण

हिंदी साहित्य का काल विभाजन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का आदिकाल (वीरगाथाकाल स०१०५०–१३७५ वि०) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल

---

१ र प्रि २।२४
२ क प्रि ३।१
३ र रा २७
४ शब्द रसायन
५ का नि ११।२
६ शृ नि ५
७ क कु भ १
८ ज वि ३।५
९ रीतिकाव्य की भूमिका पृ १
१० विगरा विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृ २
११ विशेष देखिए, डा० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ १३

१३७५–१७०० वि०) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल १७००–१६०० वि०) एवं आधुनिक काल (गद्यकाल, १६००–१६८८ वि०) में विभाजित किया है।[1] विवेच्य काल को उन्होंने उत्तरमध्यकाल या रीतिकाल नाम दिया है किन्तु उनके पूर्ववर्ती इतिहासकार मिश्रबन्धुओं ने इसे अलंकृत काल माना है।[2] जैसा कि पहले लिखाया गया है रीतिकाल में रीति शब्द का प्रयोग चल पड़ा था। यद्यपि मिश्रबन्धुओं ने उत्तर मध्यकाल को अलंकृत काल कहा किंतु इस काल के शास्त्रीय पद्धति पर विनिर्मित ग्रंथों के लिए रीति ग्रंथ ही नाम दिया। सम्भवतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को इस काल के नामकरण में उक्त मिश्रबंधु विनोद और रीतिकालीन कवियों के 'रीति' नाम के प्रयोगों से प्रेरणा मिली हो। ऐसी ही सम्भावना डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी व्यक्त की है।[3]

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उत्तर मध्यकाल का नाम रीतिकाल की अपेक्षा शृंगारकाल रखना अधिक उपयुक्त समझा। उन्होंने बतलाया कि किसी साहित्यकाल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। एक तो सबसामान्य प्रवृत्ति का बोधक हो दूसरे अंतर्विभाग का मार्ग अवरुद्ध न रखे।[4] इस दृष्टि से विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि रीतिकाल के समस्त ग्रंथों की छानबीन करने पर शृंगारपरक ग्रंथ ही अधिक मिलेंगे। रसों में शृंगार का वर्णन जितने विस्तार से किया गया उतने विस्तार से अन्य रसों का नहीं। नायक नायिका भेद के ग्रंथ तो शृंगार के आलंबन पक्ष को सामने रखते ही हैं नखशिख षड्ऋतु अलंकार शब्दशक्ति आदि पिंगल के भी ग्रंथों में सर्वत्र अधिकतर उदाहरण शृंगार के ही हैं। बिहारी ने यद्यपि अपनी सतसैया रीति ग्रंथ के रूप में नहीं प्रस्तुत की पर उनकी सारी रचना टीकाकारों ने शृंगार के आलंबन उद्दीपन अनुभाव आदि के भेदोपभेदों में खतिया कर रख दी है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र आगे लिखते हैं कि यदि टीकाकारों या संग्रहकर्त्ताओं के अनुसार चले तो आलम ठाकुर घनानन्द आदि की भी रचनाएँ नायक नायिका भेद के अंतर्गत ही खींचकर बटोरी जा सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि इन कवियों का साधन शृंगार था रीति में ये कभी कभी साधन के काम अवश्य लेते थे। यदि शृंगारकाल नाम रखा जाता तो यह तक देने की भी आवश्यकता न पड़ती और वे तथा उनके अतिरिक्त फुटकल खाते में फेंके हुए और भी बहुत से कवि उसकी सीमा में आराम से आ जाते।[5] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस काल की प्रवृत्ति का अंतःप्रेरणा रस की दृष्टि से शृंगारकाल

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ० १

२ मिश्रबन्धु विनोद भाग १

३ यहाँ साहित्य की गति देने में अलंकारशास्त्र का ही जोर रहा जिसे उस काल में रीति कवित्त रीति या सुकवि रीति कहने लगे थे। सम्भवतः इसी शब्द से प्रेरणा पाकर शुक्लजी ने इस श्रेणी की रचनाओं को रीतिकाव्य कहा।

—हिन्दी साहित्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी १६५२ पृ० २६१

४ बिहारी विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृ० ४

५ विशेष द्रष्टव्य वही पृ० ६८

कहने में कोई आपत्ति नहीं मानी है।[1] इस प्रकार यदि प्रेरणा या सर्वमान्य प्रवृत्ति की दृष्टि से इसे शृंगारकाल मान लिया जाय तो अन्तर्विभाग की भी सुविधा स्वतः प्राप्त हो जायगी। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है 'शृंगारिक रचना रीतिबद्ध थी। रीतिबद्ध कृति उन्हीं की नहीं थी जो लक्षण लिखकर लक्ष्य बनाकर उसमें उसका विनियोग करते थे, प्रत्युत उनकी कृति भी रीतिबद्ध ही थी जो लक्षण ग्रंथ न रचकर रीति का सम्भार लेकर केवल लक्ष्य प्रस्तुत करते थे जैसे बिहारी, रसनिधि आदि।'[2] दूसरे प्रकार के वे कवि हैं जिन्होंने रीतिबद्ध या शास्त्रीय परिपाटी से पृथक प्रेम के मानसिक पक्ष के उद्घाटन में दक्षता और रमणीयता प्रदर्शित की।

शुक्लजी का नामकरण यद्यपि रीतिकाल के सम्पूर्ण साहित्य को अपने में समाहित नहीं करता और इसीलिए घनानन्द जैसे रीतिमुक्त कवि फुटकल खाते में जा पड़े परन्तु हिन्दी में प्रचलित और सर्वमान्य नामकरण उन्हीं का हुआ।

रीति काव्य का स्वरूप

रीति काव्य का तात्पर्य उस काव्य से है जिसका निर्माण रीति निरूपण या शास्त्र स्थिति सम्पादन में उदाहरण-स्वरूप हुआ। इसके अन्तर्गत उन आचार्यों की रचनाएँ आती हैं जो रस, अलंकार, पिंगल आदि के लक्षणों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए काव्य प्रणयन करते थे। इसके साथ ही उन कवियों की भी रचनाएँ ले ली जाती हैं जो लक्षण-लक्ष्य की परम्परा में आबद्ध न होकर केवल लक्ष्य मात्र हैं। इन कवियों ने यद्यपि रीति ग्रंथों की रचना नहीं कि परन्तु यदि इनकी सतसई, शतक या हजारा के दोहों को कोई चाहे, तो शृंगार के विविध पक्षों के अनुसार वर्गीकृत कर सकता है। बहुत-कुछ संभव है इसी कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस परम्परा के प्रमुख कवि बिहारी को रीतिकाल के प्रमुख कवियों में रखते हुए लिखा है 'बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रंथ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है पर नखशिख, नायिकाभेद, षड्ऋतु के अन्तर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते हैं।'[3] इस प्रकार रीतिकाव्य के आभास में लक्षणसहित और लक्षणरहित दोनों प्रकार की शृंगारी कविता आ जाती है।

इनमें से प्रथम कोटि के काव्य को पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने रीतिबद्ध और द्वितीय कोटि के काव्य को रीतिसिद्ध कहा है।[4] इनके स्वरूप निर्माण में परम्परा और परिवेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कोई भी काव्य अपनी पूर्ववर्ती परम्परा का विकास होता है। परम्परा के विकास में युग धर्म का योगदान अक्षुण्ण होता है। इस युग धर्म को कई

---

१ वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है।
—हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० २२३

२ बिहारी पृ० ११

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ० २ ?

४ बिहारी विश्वनाथप्रसाद मिश्र

दृष्टिकोणों से देखना परखना होता है। आधुनिक समीक्षक इस युग बोध या परिवेश कहते हैं। परम्परा और परिवेश का प्रभाव काव्य विशेष की प्रवृत्तियों का निर्माण करता है।

रीतिकाव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए परम्परा परिवेश और प्रवृत्तियों का अध्ययन आवश्यक है। सम्प्रति रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का निरूपण करते हुए उसके निर्माण में परम्परा और परिवेश का महत्त्व द्रष्टव्य है।

रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ

रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृत्तियों को ही ध्यान में रखकर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों—मिश्रबन्धु, प० रामचन्द्र शुक्ल और प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया। अलंकृत रीति और शृंगार काल नाम से रीतिकाव्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों का द्योतन होता है। इन्हें क्रमश शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीति निरूपण की प्रवृत्ति और अलंकरण की प्रवृत्ति कहा जा सकता है।

शृंगारिकता परम्परा

रीतिकाव्य में शृंगार की धारा बड़े वेग के साथ प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है। यदि पूरे भारतीय वाङ्मय की सुदीर्घ परम्परा पर दृष्टिपात किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि रीतिकाव्य की यह शृंगारिकता किसी आकस्मिक संयोग के कारण नहीं आई अपितु यह प्राचीन काव्य-भावना के क्रमिक विकास की स्वाभाविक परिणति है। आगे के अध्यायों में हम देखेंगे कि किस प्रकार वेदों के पुरुरवा उर्वशी और यम यमी के संवाद सूक्तों से निःसृत शृंगार की धारा निकलकर संस्कृत के महाकाव्यों नाटकों और मुक्तक काव्यों में संवर्धित हुई। कालान्तर में कालिदासोत्तर कवियों ने काव्य रूढ़ियों में ढालकर इन स्वाभाविक और स्वच्छन्द अभिव्यक्तियों को परम्पराबद्ध कर लिया। नीति काव्य के वस्तुगत के स्वरूप की गर्हितापरक इस शृंगार धारा ने काफी प्रभावित किया जिसके परिणामस्वरूप रीतिकाव्य की शृंगारिकता को पुष्ट संबल मिला।

भक्ति काव्य धारा का प्राचीनतम उपजीव्य स्रोत भी वैदिक देवताओं की स्तुतियों को माना जाता है। कालान्तर में इन स्तोत्रों में धीरे धीरे रस रूप की प्रधानता होती गई और पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी तक आते आते इनमें शृंगार का स्वर प्रधान हो गया। वैदिक देवता के स्थान पर पौराणिक देव विष्णु या कृष्ण शिव और शक्ति की स्थापना हुई। साथ ही उनके मानवी रूप और क्रीडाओं का विस्तृत निरूपण किया गया। इन मानवी क्रीडाओं में शनै शनै शृंगार की भावना उभरने लगी।

कृष्ण और राधा की भक्ति ने परवर्ती साहित्य को नया मोड़ दिया। कृष्ण की कैशोर लीलाओं में शृंगार के जिन तत्त्वों का विकास पुराणों में हुआ मुख्यत श्रीमद् भागवत में उसने हिन्दी के पूर्वमध्यकालीन काव्य को विशेष रूप से प्रभावित किया।

रीतिकाव्य में नायक-नायिका के रूप में राधा कृष्ण की स्वीकृति ने कवियों को शृंगार वर्णन के लिए विशेष व्यापक पृष्ठभूमि दी।

कृष्ण भक्ति धारा में शृंगार रस को विशिष्ट सन्दर्भ में उज्ज्वल रस के रूप में स्वीकार किया गया। गौड़ीय वैष्णवों की रसोपासना ने मर्यादित शृंगार का निरूपण बड़े व्यापक रूप से किया। इसके अंतर्गत भक्ति के आलम्बन और उद्दीपन का विस्तार नायिकाभेद की प्रणाली पर किया गया। राधाकृष्ण की विविध विहार-लीलाएँ — दानलीला, मानलीला, पनघटलीला, नौका क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, उपवन विहार, होरी लीला आदि प्रभूत परिमाण में वर्णित हुई।

इसके अतिरिक्त राधा कृष्ण की रूपमाधुरी, नखशिख, अष्टयाम, षड्ऋतु आदि के वर्णन की जो धारा उमड़ी कि आलम्बन का अलौकिकत्व विलुप्त-सा हो गया।

रीतिकाव्य में मिलने वाले उपर्युक्त वर्णन पूर्णतः कृष्ण-राधा विहार से ही अनुप्रेरित नहीं थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और रीति-पूर्व हिन्दी काव्य में भी ऐसे ऐहिकतापरक वर्णन भी प्रभूत परिमाण में मिलते हैं। इनकी चर्चा आगे के अध्यायों में यथास्थान की जाएगी।

रीतिकाव्य मुक्तक प्रधान है। रीति के मुक्तकों की प्राचीन परम्परा ऐहिकतापरक उन गाथाओं, श्लोकों और दूहों से जोड़ी जा सकती है जिनका संकलन सप्तशतक नाम वाले सतसई, सप्तशती, शतक, पंचाशिका आदि ग्रंथों में मिलता है।

इन मुक्तकों का अधिकांश शृंगारपरक है। मानवीय प्रणय-व्यापार के नाना रूपों का मार्मिक उद्घाटन उनकी शारीरिक और मानसिक स्थितियों के व्यंजक चित्र इन मुक्तकों में प्रभूत परिमाण में मिलते हैं।

रीतिकाव्य में शृंगार प्रधान मुक्तकों में इन पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के मुक्तकों की छाया देखी जा सकती है।[1]

रीतिकाव्य को प्रभावित प्रेरित करनेवाली साहित्यिक परम्परा का संकेत करने के उपरान्त शास्त्रीय परम्परा पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। रीतिकाव्य की शृंगारिक प्रवृत्ति को काव्य साहित्य की परम्परा ने जितनी प्रेरणा दी उससे किसी भी स्थिति में काव्यशास्त्र ने कम प्रेरणा नहीं दी। मानव मन में काम की उत्पत्ति और उसके प्राकट्य का वर्णन विवेचन शृंगार के अंतर्गत किया जाता है। अनन्त काल से भारतीय मनीषा मानव की इस मूल वृत्ति काम का विश्लेषण करती आई है। इस क्षेत्र में कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र का महत्त्व अक्षुण्ण है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही काम वृत्ति को धर्म नियन्त्रित करके मात्र ऐन्द्रिक लिप्सा से भिन्न उदात्त रूप दिया गया। कामशास्त्र इस धर्म समर्थित काम का सम्यक विवेचन प्रस्तुत करता है। रीतिकाल के पूर्व कालिदासोत्तर संस्कृत साहित्य में शृंगारिक अभिव्यक्तियाँ कामशास्त्र की परम्परा को आत्मसात करके आगे बढ़ीं। रीतिकाव्य की

---

१ विशेष देखिए,—प्रस्तुत प्रबंध तृतीय अध्याय।

शृंगार प्रवृत्ति कामशास्त्र से कहाँ प्रभावित है, इसका विवेचन आगे किया जाएगा।

नाट्यशास्त्र भारतीय काव्यशास्त्र का समृद्ध भंडार है। भरत मुनि ने वाचिक और आंगिक अभिनयों में शृंगार की अभिव्यक्ति का जो मार्ग निर्धारित किया उसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से रीतिकाव्य की शृंगारिकता पर अवश्य पडा।

काव्यशास्त्र में शृंगार को रसराज के रूप में प्रतिष्ठा मिली। शृंगार का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अंतर्गत अधिक से अधिक संचारीभाव विविध विभाव अनुभाव आदि का समावेश हो जाता है। शृंगार निरूपण के अतिरिक्त अलंकार पिंगल शब्द शक्ति और गुण दोष के विवेचन में भी अधिकतर उदाहरण शृंगार के ही दिए गए हैं। जितना सर्वजनसंवेद्य शृंगार रस रहा है उतना शायद ही कोई अन्य रस हो सका हो।

शृंगारिकता की इस प्रवृत्ति को, जो रीतिकाल के पूर्व नाना रूपों में प्राप्त होती है रीतिकाव्य ने रिक्थ के रूप में प्राप्त किया।

शृंगारिकता परिवेश

रीतिकाव्य का प्रणयन जिस परिस्थिति और परिवेश में हो रहा था उसका परिचय अगले अध्याय में दिया जाएगा। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल सामंतवादी युग का ह्रासोन्मुख काल था। रीतिकाव्य ऐसे ही विलासितापूर्ण दरबारी परिवेश में रचा गया अतः उसमें ह्रासोन्मुख सामंती जीवन मूल्यों का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है।

उस समय जीवन के प्रति गहरी और व्यापक अनुभूतियों का नितांत अभाव था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति काल के रसोपासक कृष्ण भक्त कवियों में ही इस जीवन दृष्टि के प्रसार का संकेत करते हुए लिखा है 'भगवान के धर्मस्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित होने और आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्ण भक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्ण भक्त कवि अधिकतर फुटकल शृंगारी पदों की ही रचना में लगे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गंभीर पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए न अनेकरूपता आई।'[1]

रीतिकालीन कवियों ने भी कृष्ण के इसी मधुर रूप का चित्रण किया अतः उनमें जीवन की व्यापक और पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाई। भक्तिकाल के रामभक्तिशाखा में जीवन के प्रति ऐसी संकुचित दृष्टि नहीं पाई जाती। संतों ने जीवन के व्यापक उपादेय तत्वों का अच्छा विश्लेषण किया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रीतिकाल में उस जीवन दृष्टि के अभाव में उत्पन्न होनेवाली भोगवृत्ति का निरूपण करते हुए लिखा है, इस काल तक आते आते हिंदी कविता का वह तेज क्षीण हो आया था जो पंद्रहवीं शताब्दी के भक्त कवियों में दिखाई पडा था। जीवन के सामने कोई और

---

१ हिंदी साहित्य का इतिहास रामचंद्र शुक्ल पृ० १४६

नया आदर्श नहीं रह गया था। कविता प्राय पिटे पिटाए रास्ते से चल रही थी। सब ओर से अपने को समेटकर बंध मार्ग पर चलते रहने की प्रवृत्ति ने ब्रजभाषा कविता को माधुर्य और सौकुमार्य तो दिया परन्तु तेज और तारुण्य दीप्ति उसमें नहीं रह गई।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि भक्तिकाल में ही उस व्यापक दृष्टिकोण का अभाव हो चला था जो रीतिकाल तक आते आते प्राय निःशेष हो गया।

रीतिकाल की संकुचित जीवन दृष्टि भी किसी न किसी रूप में उन भक्त कवियों के समान ही है जिनको अपनी जाति के पौरुष से हताश होकर भगवान की शक्ति और करुणा का सहारा ढूँढना पड़ा था अर्थात् निराश और निःसहाय मन की निश्चिन्ति के लिए भक्ति का अवलंबन ग्रहण किया गया। रीतिकाल में सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के जर्जरित होने पर कवियों को अपार्थिव की अपेक्षा पार्थिव आलंबन की आवश्यकता पड़ी जिससे उन्हें दरबारों की शरण लेनी पड़ी। दरबारों में भी विलासिक वृत्ति की प्रधानता और अकर्मण्य जीवन ने उन्हें वह दृष्टि न दी जिससे वे समग्र जीवन के आनन्दोल्लास का गान करते। विलासी सामन्तवर्ग अपनी हतपौरुष मनोभूमि को नारी की उद्दीपक चेष्टाओं से सिंचित करना चाहता था। उनके अनुकूल शृंगार रस ही रह गया था जिसमें वे आकण्ठ मग्न होकर अपनी पतितावस्था में भी मनोरंजन कर सकते थे। इस वातावरण में पलने और आश्रयदाता की कृपा प्राप्त करने के कारण रीतिकालीन कवियों ने शृंगार की उच्छल धारा प्रवाहित की।

रीतिकाव्य की उक्त शृंगार धारा नैतिक काम वृत्ति की महनीयता से समन्वित न होकर उसके क्रियासाममुख अनैतिक परितृप्ति में ही सीमित है। इसका संकेत हमें रीतिकालीन नारी भावना में मिलता है। नारी की जिस गरिमा की प्रतिष्ठा भारतीय संस्कृति में है उसका यहाँ अत्यन्त गौण स्थान है। विदेशी प्रभाव के कारण परकीया की महत्ता विशेष रूप से स्वीकार की गई। फलतः प्रेम की एकनिष्ठा के स्थान पर विलास या रसिकता का उपभोग प्रधान और अन्तर्मुखी रति के स्थान होते हैं। इसीलिए रीतिकालीन कवियों में प्रेम की तीव्रता के स्थान पर रसिकता की सरलता ही दृष्टिगत होता है।

रीति निरूपण की वृत्ति

रीतिकाव्य का बहुलांश रीति निरूपण के फलस्वरूप निर्मित हुआ। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया। परिमाण में ये ग्रंथ इतनी अधिक संख्या में हैं कि उनका विस्तृत विवेचन स्वतन्त्र ग्रंथ की अपेक्षा रखता है।[2]

रीतिकाल के रीति कवियों को डा० नगेन्द्र ने तीन वर्गों में विभक्त किया है। इनमें मुख्य रूप से तीन वर्ग हैं

---

१ हिन्दी साहित्य डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी (१९५२) पृ० ३२६ ८७

२ रीतिकाव्य की भूमिका डॉ नगेन्द्र पृ १२६

सर्वांगनिरूपक आचार्य, जिन्होंने काव्यांगों का सांगोपांग विवेचन किया रस निरूपक आचार्य और अलंकारनिरूपक आचार्य।[1] प्रस्तुत प्रबंध में काव्यशास्त्रीय परम्परा के अंतर्गत इनका सम्मिलित निरूपण किया जाएगा।[2]

रीति निरूपण परंपरा

रीति निरूपण की परम्परा का प्रवर्तन किसने किया यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। भारतीय काव्यशास्त्र का सर्वप्रथम निरूपण नाट्यशास्त्र में मिलता है। किन्तु भरतमुनि ने अपने शास्त्र की प्राचीनता और महत्ता सिद्ध करते हुए जिस पौराणिक शैली का समाश्रयण लिया है वह बिना किसी पुष्ट प्रमाण के सहसा विश्वास करने योग्य नहीं है। उन्होंने इस शास्त्र का आदिप्रवर्तक ब्रह्मा को सिद्ध करते हुए नाट्यशास्त्र को पंचमवेद या नाट्यवेद की संज्ञा प्रदान की है। साथ ही उन ऋषियों की लम्बी नामावली दी गई है जिन्हें प्रजापति ब्रह्मा ने नाट्यशास्त्र के विभिन्न अंगों के संवर्द्धन का कार्य सौंपा।

भारतीय काव्यशास्त्र की सुसंबद्ध शृंखला भरत के नाट्यशास्त्र से मिलने लगती है जिसका अक्षुण्ण प्रवाह अठारहवीं शताब्दी तक मिलता है।

रीति निरूपण परिवेश

हिन्दी का रीतिकाल बौद्धिक ह्रास का काल था। रीति निरूपण या शास्त्र स्थिति सम्पादन में भी किसी हिन्दी के आचार्य की मौलिक प्रतिभा या सूझ बूझ का परिचय नहीं मिलता। किसी भी व्यक्ति में चाहे वह शासकवर्ग का हो अथवा शासित वर्ग का वह शक्ति न थी कि उस समय की राजनीतिक या सामाजिक स्थिति में कुछ परिवर्तन ला सके। व्यक्तित्व का ऐसा ह्रास हो गया था कि कोई भी कवि या आचार्य अपनी रचनाओं में अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप नहीं छोड़ सका। इसी सन्दर्भ में एक बात और ध्यान देने की है कि रीति निरूपक आचार्यों ने कवि-कर्म को भी ग्रहण कर लिया था। वे स्वयं ही लक्षण और उसके अनुरूप लक्ष्य की भी रचना करने लगे थे। ऐसा उन्हें युगानुरोध से ही करना पड़ा था। उस समय के सामंतवर्ग की बौद्धिक अनुरंजन के लिए कलाओं का ज्ञान कराया जाता था। काव्यकला की पूरी जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक रसिक सामंतों को रीतिकालीन कवियों ने काव्यशास्त्र का परिचय कराया। यहां सामंतवर्ग काव्यशास्त्र की गूढ़ गुत्थियों को न तो समझना चाहता था और न आचार्यवर्ग उसे समझाने को प्रस्तुत ही था। फलस्वरूप रीति निरूपण की जिस शैली का विकास संस्कृत में हुआ उसका निर्वाह हिन्दी में न हो पाया। आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन और पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ।

---

१ रीतिकाव्य की भूमिका डा० नगेन्द्र, पृ० १४२-१४३

२ देखिए द्वितीय अध्याय।

काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन मंडन, नए-नए सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ।[1] ऐसी स्थिति में काव्यांगों का जैसा सर्वांगीण विवेचन होना चाहिए था न हो सका। रीति-कवि आचार्यत्व का गुरु गौरव न पा सके क्योंकि उन्होंने अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह नहीं किया। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'उनमें आचार्यत्व के गुण नहीं थे। उनके अपर्याप्त लक्षण साहित्यशास्त्र का सम्यक् बोध कराने में असमर्थ हैं। *बहुत स्थलों पर तो उनके द्वारा अलंकार आदि के स्वरूप का भी ठीक ठीक बोध नहीं हो सकता।*'[2] सामंती परिवेश में श्रव्य-काव्य का तो कुछ आदर भी हुआ दृश्य-काव्य नितान्त उपेक्षित रहा। इसीलिए इन आचार्यों ने नाट्यशास्त्रीय विवेचन को अपने ग्रंथों में स्थान नहीं दिया। काव्यशास्त्र में भी शृंगार का जितना विस्तृत निरूपण हुआ उतना अन्य रसों का नहीं। अलंकार निरूपण में जितनी रुचि दिखलाई गई उतनी न तो पिंगल में न गुण दोष या शब्द शक्ति विवेचन में ही।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस समय सबसे अधिक रस उसमें भी शृंगार तथा नायक-नायिकाभेद का निरूपण हुआ। यह सामंतों की मानसिक विलास तृप्ति के लिए आवश्यक था। दूसरा काव्यांग अलंकार है जिसको रीतिकाल में महत्व मिला। अधिकांश आचार्यों ने अलंकारों का निरूपण किया। इसके द्वारा सामंतों का बौद्धिक अनुरंजन होता था।

हिन्दी का आचार्यवर्ग दरबारी था। अतः दरबार के ही अनुकूल उसे काव्य रचना और शास्त्र निरूपण करना पड़ता था। जो विषय दरबार में सम्मानित नहीं थे उनकी चर्चा इन कवि आचार्यों ने नहीं की।

अलंकरण की प्रवृत्ति : परम्परा

भारतीय वाङ्मय में अलंकरण की वृत्ति का उन्मेष वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होने लगता है। भरत के नाट्यशास्त्र में अलंकारों की संख्या बड़ी सीमित है। उन्होंने कुल चार—रूपक, दीपक, उपमा और यमक का ही उल्लेख किया है।[3] भामह ने काव्यालंकार में इनकी संख्या वृद्धि की। फिर दण्डी धनंजय मम्मट विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ ने उनका विस्तृत निरूपण किया।

रीतिकालीन कवियों ने इस क्षेत्र में जयदेव के चन्द्रालोक और अप्पय दीक्षित के कुवलयानन्द से विशेष प्रेरणा प्राप्त की। यह तो हुई शास्त्रीय निरूपण की पद्धति। काव्यशास्त्र में अलंकारवाद की सुदृढ़ प्रतिष्ठा ने रीतिकवियों को भी प्रभावित किया। वाणी के चमत्कार के सृजन में इन कवियों ने अलंकारों का भरपूर प्रयोग किया।

---

१ पं० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २१६

२ वही पृ० २१७

उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा।
काव्यस्यैते ह्यलंकाराश्चत्वारः परिकीर्तिता॥ —नाट्यशास्त्र १६.४

रीतिकाव्य की अलकरण वत्ति को उत्तरवर्ती सस्कृत काव्या ने भी प्रभावित किया। माघ और श्रीहर्ष के महाकाय की परम्परा मे विनिर्मित रत्नाकर के हरविजय कविराज क राघवपाण्डवीय हेमचद्र के द्वयाश्रय महाकाव्य एव कृष्णान द के सहृदया न द म नितान्त कृत्रिम और अलकार प्रधान शली का आश्रय लिया गया है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से इन महाकाया ने अलकरण वत्ति का विशष प्रश्रय दिया। मुक्तका म भी अमरु सप्तशतिया शतक आदि का निर्माण हुआ जिसने सम्मिलित रूप स रीतिकालीन अलकरण-वत्ति को प्रोत्साहित किया।

अलकरण की प्रवृत्ति परिवेश

रीतिकाव्य जिस परिवश म निर्मित हो रहा था उसम उक्ति चमत्कार और दूर की कौडी लान की विशेष महत्ता थी। इसके परिणामस्वरूप काव्य मे गभीरता का अभाव होन लगा। आत्मा म अधिक महत्त्व शरीर का दिया जाने लगा। डा० हजारीप्रसाद द्विवदी ने इस ओर सकेत किया है। वे लिखत हैं "य (रीति ग्रथ) भी सब ओर से बाधा पाकर सिमटे हुए चित्त को भुलान का बहाना मात्र हैं जिसमे उक्ति चमत्कार के साथ भी बहुत न्याय नही किया गया है। इन ग्रथा के पाठक के चित्त म न तो मनुष्य-जीवन के किसी बड लक्ष्य को प्राप्त करन की स्फूर्ति सचारित होती है और न काव्य क ही व्यापक स्वरूप का परिचय मिलता है। यहा सब कुछ उक्ति चमत्कार म ही सीमाबद्ध हो गया है। यहा प्रत्यक वक्तव्य किसी विशिष्ट वचन भगिमा का आश्रय लेकर काव्य बन सकता है।"[1]

उपयु क्त मुख्य प्रवृत्तिया के साथ ही रीतिकालीन मुक्तक रचना की प्रवृत्ति का भी परिचय पाना आवश्यक है।

मुक्तक रचना की प्रवृत्ति परपरा

रीतिकाव्य मुक्तक प्रधान है। मुक्तका की परपरा प्राचीन काल स पाई जाती है। यदि विषयवस्तु की दृष्टि से विचार किया जाए तो इन मुक्तका म सर्वाधिक मुक्तक शृ गार प्रधान मिलग चाह व सस्कृत के हो या प्राकृत और अपभ्र श के। शृ गारी मुक्तका म सयोग और वियोग की नाना चेष्टाओ और अवस्थाओ का बडा सुन्दर निरूपण किया गया है। अनेक छद नायिकाभेद के सुदर उदाहरण हैं। प्रकृति की उद्दीपक स्थिति का मार्मिक उदघाटन तथा उससे परिचालित मानव मन की भाव-लहरिया के उत्थान पतन का सवदनापूण अकन इन मुक्तका म मिलता है।

शृगाररसेतर मुक्तका की भी एक लम्बी परपरा रीतिकवियो को प्राप्त हुई जिसम वीर प्रशस्ति, नीति और भक्ति का सुदर वणन मिलता है। हिन्दी रीतिकाव्य का इन मुक्तका की परपरा ने भी पर्याप्त रूप स प्रभावित किया। रीतिसिद्ध काव्या म

1 डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-साहित्य पृ० ३०७-८

इसके अच्छे उदाहरण प्राप्त होते हैं। इन सभी मुक्तकों में अलंकृत शैली के आश्रयण से उक्ति चमत्कार के साथ भावों को नया का भी प्रयास दृष्टिगत होता है। रीतिकालीन मुक्तकों में ऊहात्मक दूरारूढ़ कल्पनाओं का सहसा प्रादुर्भाव नहीं हुआ, इसके लिए भी प्राकृत संस्कृत की सप्तशतियाँ, शतक और हेमचन्द्रादि के फुटकल दोहे उत्तरदायी हैं किंतु इनकी अधिकता का कारण बहुत कुछ फारसी काव्य रूढ़ियाँ हैं जिनका प्रचलन तद्युगीन सामंती वातावरण में खूब पाया जाता है।[1]

मुक्तक रचना की प्रवृत्ति : परिवेश

रीतिकाल में मुक्तकों की प्रधानता का बहुत-कुछ श्रेय उस दरबारी परिवेश को है जिसमें क्षणिक अनुरंजन को विशेष महत्त्व दिया गया और क्रमशः वर्द्धमान रस-दशा को उपेक्षित किया गया। थोड़े ही समय में अपनी पूरी रसवत्ता से श्रोता या पाठक की मन-बुद्धि को चमत्कृत कर देने वाले मुक्तकों का सामंती वातावरण में बड़ा सम्मान था। कथा मूलक प्रबन्ध ऐसे वातावरण के लिए बिलकुल अनुपयुक्त होते हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि दरबारी कविता में प्रभाव जमाने के लिए नाद तत्त्व का होना अनिवार्य होता है अतः रीति कवियों ने कवित्त सवैया जैसे छन्दों को ही अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम चुना। दोहों में यद्यपि नाद तत्त्व उतना नहीं होता पर लक्षण को संक्षेप में कहने के लिए सबसे अधिक उपयोगी यही छन्द सिद्ध हुआ अतः काव्यशास्त्र निरूपण में इसका उपयोग किया गया। दूसरे जिन हिन्दी कवियों को दो पंक्तियोंवाले छोटे आकार के छन्द की प्रौढ़ता रखनी होती थी वे दोहा सामने लाते थे और उसमें पूरी कारीगरी दिखाया करते थे।[2] उनका साहित्यिक परिवेश ऐसा था कि उसमें मुक्तक ही उपयुक्त सिद्ध हुए। इन मुक्तकों का कला प्रधान और संगीत प्रमुख होना अनिवार्य था। उन्होंने जो अनेक प्रकार की उद्भावनाएँ की हैं उसके लिए वे समय की गति से विवश थे।

रीतिकालीन मुक्तकों के निर्धारक तत्त्वों में—शास्त्रस्थिति संपादन, आचरण वृत्ति, ऐहिकतापरक मुक्तकों की सुदृढ़ परंपरा का आश्रयण और राधा कृष्ण की नायक नायिका के रूप में स्वीकृति आदि प्रमुख हैं। जहाँ तक वीर प्रशस्तियों का प्रश्न है अधिकांश रचना प्रबन्धों में हुई है। जो प्रशस्तिपरक मुक्तक मिलते हैं उनमें आश्रयदाता की वीरता, दान, रूप, लावण्य और ऐश्वर्य का वर्णन विशेष रूप से मिलता है।

जिन रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया गया है उनका विस्तृत निरूपण आगे के अध्यायों में किया जाएगा। यहाँ प्रत्येक प्रवृत्ति के उद्भव और विकास को समझने के लिए उनकी परंपरा और परिवेश का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

---

१ देखिए प्रस्तुत प्रबन्ध द्वितीय अध्याय साहित्यिक पृष्ठभूमि।
२ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र बिहारी पृ० ५३-५६
३ वही पृ० ५६

रीतिकाव्य के स्रोत अन्वेषण का प्रस्ताव

रीतिकाव्य का महत्त्व कई दृष्टियों से हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने आंका है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास में यही काव्य काल अपनी कलात्मक साधना के लिए प्रसिद्ध है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र इसकी स्वरूप विवेचना करते हुए लिखते हैं भक्तिकाल की जो सजना साहित्यिक सफलता से युक्त है वह भी विशुद्ध साहित्यिक नहीं कही जा सकती। जिसका साध्य और साधन दोनों साहित्य है ऐसी विशुद्ध सजना शृंगारकाल में हुई। उसकी साहित्यगत संपत्ति को अपेक्षाकृत हीन भी कह लिया जाए तो कोई आपत्ति नहीं। सूर और तुलसी अथवा सूर्य और शशि की प्रभा में चाहे शृंगारकाल का एक भी नक्षत्र न पहुंच सके पर विशुद्ध साहित्य की सदीप्ति उस काल के प्रत्येक प्रकाशपिंड में है इससे विमति रखनेवाले लोचन चाहे जो दर्शन करते हों उनमें भारतीय साहित्य परंपरा की दृष्टि तो नहीं ही है।[1] इस सन्दर्भ में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने दो बातों को और स्पष्ट संकेत किया है—रीतिकाव्य का साध्य और साधन दोनों काव्य ही है और यह भारतीय साहित्य परंपरा का स्वाभाविक विकास है। अन्यत्र भी मिश्रजी ने रीतिकाल को हिंदी का प्रकारोपित काव्यकाल मानते हुए लिखा है कि 'उसमें जितने अधिक उत्कृष्ट कवि हुए उतने किसी युग में नहीं। शृंगार की एक से एक उत्कृष्ट उक्तियां उसमें प्रभूत परिमाण में हैं इतनी अधिक हैं कि संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध होने पर भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता।'[2] रीतिकाव्य की इस विशेषता की प्रशंसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी की है।[3]

स्रोत का अर्थ

काल की काव्यधारा अपने विकास में उन पूर्व परम्पराओं की ऋणी होती है जो उसे विशिष्ट रूप आकार देती है। किसी भी काव्यधारा के स्वरूप को समझने के लिए उन पूर्व-परम्पराओं का अध्ययन आवश्यक होता है। वे पूर्व परम्पराएँ भी अपने निर्माण में विभिन्न युगों की सांस्कृतिक राजनैतिक सामाजिक कलात्मक और साहित्यिक पृष्ठभूमियों से प्रभावित होती हुई विकसित होती हैं।

हिन्दी साहित्य के आदि युग में जो साहित्यिक प्रवृत्तियां—वीर शृंगार, प्रशस्ति, भक्ति वैराग्य आदि की मिलती है उनके लिए पूर्ववर्तिनी पुरानी हिन्दी और अपभ्रंश की (एवं संस्कृत की भी) साहित्यिक प्रवृत्तियाँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अपभ्रंश में जो शौर्य और शृंगार की प्रवृत्ति है उसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व उन लोक गीतियों पर है जिनसे उसने प्रेरणा प्राप्त की। उसके साथ ही प्राकृत साहित्य का अपरिमेय साहित्य भी कम

१ हिन्दी साहित्य का अतीत पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र भाग २ अनुवचन पृ० ६
२ पद्माकर ग्रंथावली सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्रस्तावना पृ० ५७
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २१६

सहायक नहीं रहा। हाँ, यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि उनके पीछे प्रवृत्ति रही है किन्तु उसका जो भूमिका रूप हमें उपलब्ध होता है उस पर उसके पूर्ववर्ती मौखिक और लोक परम्परा साहित्य का प्रचुर प्रभाव देखा जा सकता है।

इस प्रकार यदि रीतिकाव्य के स्रोत की खोज के लिए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। रीतिकाव्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ भी इसी प्रकार धार्मिक, दरबारी और अभिजात वर्ग के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करके ही विकसित हुई हैं। रीतिकाव्य के अध्ययन के लिए पूर्ववर्ती साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्पराओं का सम्यक् विवेचन अपेक्षित है।

स्रोत अध्ययन : उपलब्धियाँ और सम्भावनाएँ

अद्यावधि हिन्दी में प्रकाशित शोध प्रबन्धों में रीतिकाव्य के स्रोत का संकेत किया गया है। संस्कृत और प्राकृत अपभ्रंश का हिन्दी पर प्रभाव भी अनेक अनुसन्धाताओं ने दिखाने का प्रयास किया है। रीतिशास्त्र का विकास, विश्लेषण तथा रीति रचयिता के आचार्यत्व का निरूपण स्वीकृत शोध प्रबन्धों में किया गया है। डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने घनानन्द पर प्रबन्ध में लिखा है "रीतिकाल के काव्य का शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन अब तक प्रौढ़ विद्वानों द्वारा किया गया है। पर उसकी रचनाओं अद्यावधि उतनी प्रौढ़ि से विचारित नहीं हुआ। और वही काम उनका अन्त है। रचना की दृष्टि से उनका समन्वयात्मक मूल्यांकन होना चाहिए।"[1] इसके पूर्व पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने बिहारी की भूमिका में गाथा सप्तशती और शृंगार की प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए बिहारी के प्रेरणा स्रोत के रूप में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दों को उद्धृत किया है।[2] डॉ० बच्चनसिंह ने रीतिकाव्य के रचनाओं और वस्तुगत के अध्ययन के लिए प्राकृत-संस्कृत अपभ्रंश की काव्य परम्परा का निर्देश किया है।[3] ऐसे ही अनेक शोध ग्रन्थों में रीतिकाव्य के स्रोत की ओर निर्देश किया गया है पर अभी तक किसी ने इस दिशा में महत्वपूर्ण और व्यापक प्रयास नहीं किया है।

इधर आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रीतिकाव्य की काव्य सम्पत्ति का अवलोकन करनेवाले आलोचक इसमें अश्लीलता का नग्न रूप देखकर इसे हेय सिद्ध करते हैं, किन्तु यदि रीतिकाव्य के स्रोत का सम्यक् अध्ययन किया जाए तो इस वर्णन परम्परा से समर्थित ही रह जाएँगे। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने स्पष्ट ही लिखा है "उन्होंने जो अनेक प्रकार की उद्भावनाएँ की हैं उनके लिए वे समय की गति से विवश थे। जान बूझकर काव्य का स्वरूप उन्होंने विकृत नहीं किया है। रही घोर शृंगारिकता की बात सो विपरीत रति और सुरतान्त के वर्णन संस्कृत और प्राकृत की परम्परा में पहले ही

---

१ डा० मनोहरलाल गौड़ घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा निवेदन पृ० ३

२ बिहारी पृ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृ० ६७ ७६

३ डॉ० बच्चन सिंह रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना पृ० ४५ ५५

स च त ग्रा रह थ ।[1]

ग्रत रीनिकाव्य क स्वरूप को समझने क लिए उसक स्रोत का ग्रध्ययन ग्रावश्यक है। बिना इसक सम्यक ज्ञान क या ता रीतिकाव्य का ग्रवमूल्यन किया गया है या ग्रतिमूल्यन। दोनो दृष्टिया ग्रनिवार्य हैं। वैज्ञानिक दृष्टि तभी प्राप्त हो सकती है जब रीतिकाव्य के विषय का पूर्ण परीक्षण किया जाए। इस दिशा म मेरा प्रयास प्रथम महत्प्रयास है। रीतिशास्त्र की प्रेरणा-सीमा बहुत से ग्रनुसधित्सुग्रो न निर्धारित की किन्तु रीति का काव्यपक्ष ग्रद्यावधि उपेक्षित रहा।

शास्त्रीय परम्परा का निर्धारण कई दृष्टियो से सरल है उसकी विकास रेखा भी ग्रपेक्षाकृत स्पष्ट है, किन्तु काव्य परम्परा का विवेचन ग्रनेकमुखी प्रभावो से परिचालित होने क कारण बडा कठिन है।

प्रस्तुत प्रबन्ध म सस्कृत प्राकृत ग्रपभ्र श ग्रौर रीतिपूर्व हिन्दी-काव्य का रीति काव्य पर प्रभाव विवेचित है।

शोध की सीमा

यहा यह स्पष्ट कर देना ग्रावश्यक होगा कि मेरे शोध की सीमा क्या है। यद्यपि रीतिकाव्य का ग्रध्ययन बिना रीतिशास्त्र क ज्ञान के ग्रसम्भव है। ग्रत प्रस्तुत प्रबध म जहा तक सम्भव हो सका है शास्त्रपक्ष का सहारा लिया गया है। परन्तु ग्रधिकाश निरूपण स्वतन्त्र रूप म काव्य प्रवृत्तियो के ग्राधार पर किया गया है। रीतिकाव्य के भाव ग्रौर कला-पक्ष को प्रभावित करने म फारसी साहित्य का योगदान बडा महत्त्वपूर्ण है। यह कार्य स्वय इतना विशाल है कि इसके लिए स्वतन्त्र प्रबन्ध की ग्रपेक्षा है। प्रस्तुत प्रबन्ध म यत्र तत्र इसका सकेत-मात्र कर दिया गया है।

रीतिकाल की ग्रन्य प्रवृत्तिया—नीति भक्ति वैराग्य ग्रौर स्वच्छन्द काव्यधारा तथा रामकाव्यधारा का सम्यक विवेचन नही किया जा सका है। वह मेरी शोध सीमा के ग्रन्दर कोई महत्त्वपूर्ण स्थान भी नही रखती ग्रत उस इसम सनिविष्ट नही किया गया है।

---

1 विहारी प विश्वनाथप्रसाद मिश्र प ५६ ५७

से भिन्न होता है। रीतिकाव्य गोष्ठी साहित्य है, इसलिए उसमें लोकमंगल की अपेक्षा लोकरंजन साधना ही प्रमुख है। इस साधना के परिणामस्वरूप उसमें जीवन के गत्वर क्रिया के स्थान पर स्थिर चित्र ही अधिक हैं। वह मुक्तक प्रधान है। लोक-मंगल की साधना जन-साहित्य का लक्ष्य होती है। उसका आधार फलक विस्तृत और परिप्रेक्ष्य समग्र जीवन होता है। महदुद्देश्य से प्रेरित साहित्य साधना महाकाव्यात्मक होती है।

रीतिकाव्य की समाज परम्परा के अन्तर्गत दरबारी प्रवृत्ति और परिवेश का ही अध्ययन प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

किसी भी समाज में मुख्य रूप से दो वर्ग देखने को मिलते हैं—एक शासक वर्ग, दूसरा शासित वर्ग। कभी राजनीतिक कारणों से इन दो वर्गों का अन्तर कुछ कम हो जाता है कभी ज्यादा।

रीतिकाल में यह अन्तर बहुत अधिक बढ़ गया था। शासित वर्ग का सारा श्रम और उत्पादन शासक वर्ग के भोग विलास में व्यय होता था। अठारहवीं शताब्दी में भी भारतीय समाज सामन्तशाही आधार पर स्थित था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उस समाज का चित्रण करते हुए लिखा है "उस समय की भारतीय समृद्धि की बात सुनकर आप शायद सतयुग का स्वप्न देखने लगेंगे और कह उठेंगे यह वस्तुतः राम राज्य था।'[1] पर उस समय भी आर्थिक वैषम्य चरम सीमा को पहुंच गया था। सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिक भाग विलासी शासकों के वैलासिक उपकरणों के जुटाने में खर्च किया जाता था। राहुल जी अवध के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह के उदाहरण द्वारा अपने कथ्य की पुष्टि करते हुए लिखते हैं जिन्होंने हाल के वाजिदअली शाह तथा दूसरे विलासी शासकों के भोग विलास के बारे में पढ़ा है वह आसानी से समझ सकते हैं कि उस वक्त के कन्नौज, मान्यखेट और पटना के राजमहलों में विलासी भाजन, शौकीनी के जन्तु, सुगन्धित द्रव्य आदि पर कितना खर्च होता रहा होगा। इसके अतिरिक्त सामन्तों के भारी खर्च थे—नाना-नाना महल, क्रीडा उपवन, सिंहासन, राज-पलंग, मोरछल, चमर और लाखों के हारे मोती, महार्घ रत्नों के आभूषण, राजमहलों की सजावट, चित्रकला, क्रीडामृग, सोने के पिंजड़ों में बन्द शुक-सारिका, लोहे के पिंजड़ों में बन्द केसरी।[2] मुगल दरबार में भी इस प्रकार के विलास और क्रीडा विनोद के साधनों की कमी न थी। शाहजहां के शासनकाल में मुगलों का राज-वैभव चरमोत्कर्ष को पहुंच गया था। वह वास्तव में सारे जहां का शाह लगता था। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है, "शाहजहां का राज्यकाल वैभव और ऐश्वर्य से जगमग था। बर्नियर, टैवर्नियर, मनूची आदि विदेशी यात्री सम्राट के दरबार का ऐश्वर्य देखकर स्तब्ध हो गए थे। उन सभी ने मुगल-दरबार की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।'[3] राजवैभव की वृद्धि के साथ विलासिता और ऐश्वर्य प्रदर्शन की वृत्ति भी बढ़ती गई। इसका प्रभाव देशी राजाओं और मनसबदारों

---

१ राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा भूमिका पृ० १४
२ राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा भूमिका पृ० १४-१५
३ डॉ० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ० ९-१०

पर भी पड़ा। भोग के साधनों की वृद्धि होने लगी। समाज की दयनीय स्थिति को देखने सुधारने का समय न तो मुगल बादशाह के पास था न उनके राजाओं के पास ही। *उनका सारा समय नारी की रूप आराधना और विलास क्रीडाओं में ही व्यतीत हो जाता* था। उन्हें चिन्ता थी तो केवल सुन्दरियों की, उन्हें इच्छा थी तो केवल स्वर्ण की और प्यास थी तो केवल सुरा की। जिस राजा या नवाब के अन्तःपुर में जितनी ही सुन्दरियाँ रहती थीं वह उतना ही समृद्ध समझा जाता था। ये सुन्दरियाँ भी विभिन्न देश और जाति की होती थीं। इनकी परिचारिकाएँ, सखियाँ और दूतियाँ संख्या में इससे दुगुनी और तिगुनी होती थीं। विलासिता इस सीमा तक पहुँची थी कि मुगल सेना की सहायता के लिए कामरूप की भी बहुत मना चला करती थी। छोटे छोटे अधिकारियों और रईसों के सामने भी यही आदर्श था और उनका भी सारा समय भोग विलास में ही व्यतीत होता था, जिसका विवरण देव और अन्य कवियों के अष्टयामों में अत्यन्त स्पष्ट रूप में मिलता है।[1] पूरे सामन्त वर्ग के लिए सारा जगत एक सुन्दर क्रीडोद्यान की तरह था और जीवन की सार्थकता शारीरिक सुखोपभोग में ही केन्द्रित हो गई थी। शतरंज, चौसर, शिकार (वन विहार) उपवन विहार जलक्रीडा और रागरंग में ही उसका सारा समय व्यतीत होता था।

लक्ष्मी के कृपाभाजन ये राजा महाराजा बादशाह और नवाब देश की समस्त जनता के तीन चौथाई भाग की खून पसीने की कमाई को अपनी विलासिक वृत्तियों के परितोष के लिए पानी की तरह बहाते थे। राहुलजी रीतिकाल से लगभग एक हजार वर्ष पहले की सामाजिक दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं "स्वयंभू और पुष्पदन्त के गीत अप्सराओं, नर्तकियों के मोटे गान और द्राक्षा लताओं को देखकर आप यह समझने की गलती न करें कि वह उन्हीं सामन्तवालियों के उपभोग के लिए थे। वहाँ सारा शिल्प सारा व्यवसाय सारी कृषि मुट्ठीभर आदमियों के उपभोग के लिए होती थी। दूसरों को तो सिर्फ जीने और खाने भर का अधिकार था।"[2] समाज की यही स्थिति रीतिकाल में भी थी। अकालादि दैवी प्रकोप से पीड़ित सामान्य जनता पशुता से भी निम्न वृत्ति पर उतर आई थी। इसकी पुष्टि शाहजहाँ के समसामयिक लेखक अब्दुल हमीद के बादशाहनामा के विवरण से हो जाती है।[3]

कवि और कलाकार जन्मना निम्न या मध्यम वर्ग के होते थे किन्तु उनका पालन पोषण उच्चवर्गीय सामन्तों के आश्रय में होता था क्योंकि निम्न वर्ग में न तो कलात्मक रुचि होती थी न उनके पास इतना समय और धन ही था अतः उन्हें विवश होकर श्रीपतियों की शरण लेनी पड़ती थी। कवि और कलाकार सामाजिक चेतना से शून्य नहीं थे किन्तु विवश थे। *आश्रय प्रथा की पाशविक वणियाँ में जकड़ा हुआ कवि कराहता था* फिर भी कवि आश्रयदाता की प्रशस्ति गान के लिए विवश थे।

---

१ डॉ॰ नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ १२
२ हिन्दी काव्यधारा भूमिका, पृ॰ १८
३ स्मिथ एवं मोरलैंड : हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर पृ॰ ३१

रीतिकालीन कवियों ने इसीलिए ऐसी रचना की जिसमें उन्हें धन और सम्मान मिला। जिन दरबारी परिवेशों में वे थे उसका वर्णन उन्होंने पूरी ईमानदारी से किया। उनकी वासकसज्जाएँ वस्तुतः मुगल हरम की बेगमों की प्रतिरूप होती थीं, जो रत्नजटित वस्त्राभूषण पहनतीं तथा इत्र की सुगन्ध से मादक वातावरण सर्जित करती थीं। रीतिकाव्य में जब भवनों का वर्णन मिलता है वे सामन्ती वैभव भवनों के ही कल्पना मय चित्र हैं। ये भवन कई खण्डों के होते थे तथा उनमें वातायन और झरोखों की भी संख्या काफी होती थी। सम्भवतः भवभूति के समय में भी ऐसे झरोखेदार भवन होते रहे होंगे जिनमें से मकरिका या मालती सड़क पर आते जाते अपने प्रेमी माधव को देखा करती थी।[1] रीतिकालीन नायिका को पावक झर सी झाँकते हुए बिहारी ने ऐसे ही किसी झरोखे में देखा होगा। इन महलों में भी प्रत्येक खण्ड की बनावट में विशेषता और भिन्नता होती थी। अट्टालिका का ऊपरी भाग विशेष रूप में आकर्षक बनता और संगमरमर का बना होता था जिसकी शोभा पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना में दूध के फेन की तरह नेत्राकर्षक होती थी। यहीं पर बड़ी नायिकाएँ प्रिय से प्रणय क्रीड़ा किया करती थीं।

शीशमहल में अनेक महार्घ रत्नों और शीशों की छटा निराली होती थी। पर्वों और उत्सवों पर उन्हें विशेष रूप से सजाया जाता था। ऐसे स्थलों पर बिम्ब प्रतिबिम्ब की आँखमिचौनी में दृष्टि भ्रमित हो जाया करती थी। सम्भवतः ऐसा ही दृष्टि भ्रम दुर्योधन को हुआ रहा होगा कि उसे द्रौपदी के उपहास का भाजन बनना पड़ा। रीतिकालीन कवियों ने ऐसे भवनों का यत्र-तत्र बिम्बग्राही चित्र उपस्थित किया है।

रनिवास से प्रेरणा ग्रहण करने वाले कवि रीतिकाल में ही नहीं हुए और न तो सामन्तवाद का प्रभाव रीतिकाल तक ही सीमित रहा। इसकी परम्परा बहुत पुरानी है। सामन्तीय परिवेश को काव्य में निबद्ध करने में अपभ्रंश को भी पर्याप्त सफलता मिल चुकी थी। राहुलजी उनका सारा श्रेय तत्युगीन सामन्त-समाज को देते हुए लिखते हैं "चित्रकार की भाँति कवि के सामने कोई साकार नमूना रहना चाहिए। स्वयंभू ने राष्ट्रकूटों के रनिवास और उनके आमोद प्रमोद को नजदीक से देखा था। कम परदा बिलकुल नहीं था इसलिए और सुविधा थी। उन्होंने सीता को उसने रावण और अयोध्या के रनिवासों के रूप में चित्रित किया है।[2] सम्भवतः जहाँगीर के दरबार में कवीन्द्राचार्य को बादशाह के आन्तरिक जीवन में प्रवेश करने की छूट थी। हरम में भी वे जा सकते थे। शाहजहाँ ने यद्यपि इसे अनुचित समझा था फिर भी उनके दरबार में रहने वाले पण्डितराज जगन्नाथ की यवनी सम्बन्धी रसिकता के स्वच्छन्द होने में सफल होने थे। उसी की प्रेरणा से फलस्वरूप उन्होंने भामिनी विलास की रचना की थी।

सामन्तीय विलासिता के उपकरण तत्वों में राजसभा, उपवन या राजोद्यान, क्रीड़ा सरोवर, नर्तन कलाएँ और विभिन्न कलामिश्रित क्रीड़ाएँ थीं।

---

१ भवभूति मालतीमाधव १।१५

२ हिंदी काव्यधारा भूमिका पृ० २१

राजसभा

रीतिकाल तक आते आते मुगल साम्राज्य विघटित होने लगा था। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "सत्रहवीं शताब्दी में मुगलों का विशाल साम्राज्य ह्रासोन्मुख हो चला था उस समय दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट शाहजहाँ आसीन था। शाहजहाँ का शासनकाल मुगल साम्राज्य का मध्याह्न काल था। उसके जीवन काल में ही गृह में कलह आरम्भ हो गया और उदार तथा लोकप्रिय दाराशिकोह को हटाकर औरंगजेब सम्राट बन बैठा था।"[१] इसके परिणामस्वरूप अन्य कलाकारों की भाँति कवि को भी छोटे राजाओं मनसबदारों नवाबों और रईसों की राजसभाओं में शरण लेनी पड़ी थी।

पुराचीन काल में राजा गुणग्राही और उदार होते थे। उनकी सभाएँ सप्तांग — विद्वान कवि भट्ट गायक विदूषक (परिहासक) इतिहास वेत्ता और पुराणज्ञ से भूषित हुआ करती थी।[२] भोजप्रबन्ध में भोजराज की सभा का विस्तृत वर्णन मिलता है। लगभग पाँच सौ विद्वान और कवि उसकी सभा को अलंकृत करते थे। स्वयं भोज ने यह घोषणा की थी कि यदि मूर्ख ब्राह्मण भी हो तो हमारे नगर से चला जाय और यदि विद्वान कुम्भकार भी हो तो वह मेरे नगर में निवास करे।[४] इन गुणज्ञ राजाओं की सभा को छोड़ कवि को अन्यत्र सम्मान और यश की प्राप्ति दुर्लभ थी। बाणभट्ट ने कवियों और वृद्धों के लिए उचित स्थान अपना घर अथवा राजसभा को बतलाया है।[५] सम्भवतः इसीलिए पंडितराज जगन्नाथ दिल्लीश्वर अथवा जगदीश्वर की उपासना विहित बतलाते हैं। इसी राजाओं के दरबार में रीतियुगीन कवि का जो सम्मान मिला वह उस उज्ज्वल परम्परा का निर्वाह मात्र है जिसकी यश गाथा संस्कृत कवियों ने मुक्तकंठ से गाई थी।

प्राकृत भाषा के उदय के साथ सातवीं शताब्दी से संस्कृत का सम्पर्क सामान्य लोक जीवन से विच्छिन्न होकर केवल वर्ग विशेष तक ही सीमित हो गया था। कालिदासोत्तर संस्कृत साहित्य में जिस अस्वाभाविक अनुकरण और कृत्रिम शैली में क्लासिक वृत्ति के अनुरूप पौरुषहीन भावों का वर्णन मिलता है वह बहुत कुछ उस परिवेश की उपज था जो परवर्ती राजन्य वर्ग में कवियों को प्राप्त हुआ। प्राकृत भी जब लोक सम्पर्क से दूर हो गई (दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में) तब उसमें भी जीवन्त तत्त्व विलुप्त होने लगे

१　हिन्दी साहित्य पृ० २६६-२६७

२　विद्वांसः कवयो भट्टा गायकाः परिहासकाः।
　इतिहासपुराणज्ञाः सभा सप्तांगसंयुता॥

३　तत्र क्रमेण पञ्चशतानि विदुषां [illegible]
　विनोदकोविदा तारेन्द्र प्रमुखाः　सर्वशास्त्रविचक्षणाः　सर्वदा　श्रीभोजराजसभामलंचक्रुः॥
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　—भोजप्रबन्ध पृ० ८७

४　वही पृ० ८७ श्लोक ७४।

५　स्थितिं कवीनामिव कुञ्जराणां स्वमन्दिरे वा नृपमन्दिरे वा।
　गृहे गृहे किं मशका इवैते भवन्ति भूपालविभूषिताः॥—भो० प्र० श्लो० १६३।

और कृत्रिमता आ गई। इसी प्रकार अपभ्रंश और बाद में हिंदी के साथ भी हुआ। यद्यपि हिंदी भाषा लोक सम्पर्क से दूर नहीं थी परन्तु उसकी विशिष्ट काव्यधारा सभाओं में ही प्रवाहित होने लगी थी।

राजसभा में वाहवाही पाने के लिए कवितावामिनी को भी उसी प्रकार हाव भाव विचक्षणा और सदलङ्कृता बनना पड़ा जैसे हरम की बेगमें या अंतःपुर की राजमहिषियाँ रहती थीं। उसे अपनी स्वाभाविक ऋजुता को त्यागकर बाह्य प्रदर्शन और चमत्कृत करनेवाली उक्तियों का ग्रहण करना पड़ा। पहले प्राकृतजनों के गुणगान में जो गिरा सिर धुनकर पछताती थी अब उसी के गुणगान को अपना सौभाग्य मानने लगी। राजसभा के व्यामोह ने कविता को गंभीर मनन भरी साधना से दूर करके उसे मात्र मनोरंजन और कामोद्दीपन का साधन बना दिया।

उपवन या राजोद्यान

रीतिकाल में उपवन या राजोद्यान नगर के बाहर खुले वातावरण में भी होते थे और प्रासाद के पास और कहीं कहीं सामने भी। वात्स्यायन के नागरक के गृहोद्यान में भी सुगंध और सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले पुष्पों में मल्लिका, जाती या नवमालिका, जपा या कुरण्टक पुष्पों का वर्णन मिलता है।[1] रीतिकालीन उद्यानों में भारतीय-पारसी सम्मिलनों का मिश्रित रूप दृष्टिगत होता है जैसे भारतीय पुष्प चंपा, केतकी, जूही, कुन्द, कचनार, जपा और हरसिंगार के साथ पारसी पुष्प गुलाब, गुल्लाला, इश्क पेचा, मोगरा आदि भी खिलते थे।

तुजुके जहाँगीरी (ममायर्स आफ जहाँगीर) के आरंभ में जहाँगीर के (आगरे में यमुना के किनारे पर स्थित) गुले अफ्शाँ' नामक शाही उद्यान के अनेक पुष्पों की प्रशंसा की गई है। जहाँगीर को पुष्पों से विशेष प्रेम था। उसकी आज्ञा से मतिराम ने इसी उद्यान की प्रशंसा में फूलमंजरी की रचना की थी।[2] उपवन रसिकों के मनोरंजन के साधन तो थे ही प्रेमी प्रेमिकाओं के संकेत स्थल भी थे। उन्हें पुष्प चयन का सुंदर बहाना भी मिल जाता था। ऐसे उद्दीपक वातावरण में विलासी वृत्ति और भी अधिक रमती थी। रीति काव्य में पुष्पोद्यान के वर्णन और अप्रस्तुत विधान में पुष्पों का महत्वपूर्ण स्थान संभवतः इन्हीं उद्यानों की प्रेरणा स्वरूप मिलता है। ऐसे ही उद्यानों में दोला क्रीड़ा और सरोवर क्रीड़ा का भी विधान किया गया है।[3] रीतिकालीन कवियों के लिए विभिन्न ऋतुओं में परिवर्तनशील प्रकृति का रूप बहुत कुछ इन्हीं

---

१ कामसूत्र १।४।४

२ हुकुम पाय जहाँगीर को नगर आगरे धाम।
फूलन की माला करी मति सों कवि मतिराम॥ —फूलमंजरी ६

३ कामसूत्र १।४।४२

उद्यानों या उपवनों में मिलता था। क्रीड़ा सरोवर भी विलासिता का प्रमुख साधन रहा है।

क्रीड़ा सरोवर

राहुल सांकृत्यायन ने क्रीड़ा-सरोवर के महत्त्व का वर्णन करते हुए लिखा है—स्वयम्भू ने राष्ट्रकूट भूप और उनके उत्तराधिकारी के जल क्रीड़ा मण्डप को देखा सुना था, उसी का वर्णन अपनी रामायण में जलक्रीड़ा के रूप में किया। उस समय सामन्तों के स्नानागार, स्नान मण्डप उनके नाम और शोभा के अनुरूप बनाने में जगह और रुपया का ध्यान दिए बिना खर्च किया जाता था। सामन्तों की रुचि का प्रधान उद्देश्य रहता था कामोद्दीपन।[1] रीतिकाल के सामन्त भी क्रीड़ा-सरोवरों में सुन्दरियों के साथ स्नान और उनके मनानुकूल [illegible] का पान करते थे। बिहारी आदि कवियों ने सरोवरों के तीर को प्रेमी प्रेमिकाओं के मिलन का उपयुक्त स्थल ही नहीं बनाया अपितु नायक-नायिकाओं की क्रियाविदग्धता का उपयुक्त वातावरण भी उन्हें यहीं मिला। ये उपवन और सरोवर उन्मुक्त शृंगार के साधन थे अतः इनकी सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता था। यदि स्वच्छता का पूरा प्रबन्ध न होता तो बिहारी के नायक को मानो प्रेयसी का सारा शरीर जल के भीतर भी स्पष्ट दिखलाई देता। देव और बिहारी सरीखे रसिक कवियों की कल्पना को सहारा देने में इन सरोवरों में स्नान करनेवाली या किनारे बैठकर साजसज्जा करनेवाली अथवा आँचल के बीच हाथ डालकर पानी में से निकलने वाली कमल मुखियों का योग कम नहीं है।

रसिक वर्ग

रीतिकाल का रसिक वर्ग वस्तुतः सामन्त वर्ग ही था। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि रीतिकाल का रसिक बहुत कुछ वात्स्यायन के नागरक वर्ग का ही संकुचित और अपरिष्कृत प्रतिनिधि है। वात्स्यायन का नागरक परिष्कृत रुचि और चौंसठ कलाओं से सम्पन्न विदग्धजन गोष्ठी का मंडन होता था। वात्स्यायन का नागरक, संस्कृत साहित्य का धीरललित नायक और रीतिकाल का रसिक ये तीनों रुचि साम्य के कारण बहुत अंशों में एक ही वातावरण की उपज थे। इनमें विलासिता, अलंकरणप्रियता और कलात्मक विनोद की प्रवृत्ति समान रूप से मिलती है।

निवास स्थान

कामसूत्र के प्रथम अधिकरण के चतुर्थ अध्याय में नागरकवृत्त प्रकरण के अन्तर्गत उसके निवास स्थान का जैसा वर्णन मिलता है वह रीतिकाल के किसी भी सम्मानित ऐश्वर्यशाली सामन्त के राजप्रासाद से हीन न था। वह निर्मल जल से पूर्ण

---

१ हिन्दी काव्यधारा भूमिका पृ० ४५

सरोवर लताओं से आवेष्टित कुंजों से युक्त गृहोद्यान से सुशोभित रमणीय दृश्यों से पूर्ण स्वच्छ स्थान पर विनिर्मित होना था।[1] कई-कई खण्डों के इन भवनों में अन्तःपुर और वहिःप्रकोष्ठ आदि की समुचित व्यवस्था होती थी। इन हर्म्यों में ऋतु अनुकूल सुख सुविधाएँ सुलभ होती थी। रीतिकालीन राजभवनों की चर्चा पहले हो चुकी है। ऐसे ही भवनों में रीति कवियों के आश्रयदाता और रसिक रहते थे।

शयनकक्ष

नागरक के शयनकक्ष का जैसा वर्णन वात्स्यायन ने किया है[2] उसे पढ़ने के बाद यदि रीतिकाव्य के साम्य पर रीतिकाल की नायिकाओं के शयन मंदिर की कल्पना की जाय तो बहुत-कुछ साम्य मिल सकता है। नागरक के शयनकक्ष में रखे हुए आकर्ष फलक और द्यूतफलक[3] रीतिकालीन रसिकवर्ग के शतरंज चौसर आदि की याद दिलाते है।[4]

अष्टयाम

रीतिकाल में देव जैसे कवियों ने रसिक सामन्तों की दिनचर्या का वर्णन किया है। यह दिनचर्या वात्स्यायन के नागरक की दिनचर्या से बहुत कुछ अभिन्न है। नागरक प्रातःकाल शय्या त्यागकर नित्यकर्म दातौन धूप माला लेना में अंजन आदि का प्रयोग करता था। ताम्बूल आलक्तक अंगूठी सुगन्धित द्रव्य दर्पण आदि के प्रयोग द्वारा अपने को शोभन बनाता था। स्नान आहार के उपरान्त पूर्वाह्न में भोजन करके शुक-सारिका लावक मेष आदि के साथ अपना मनोविनोद करता था।[5] विट विदूषक के साथ हास-परिहास में भी कुछ समय व्यतीत करता था। मध्याह्न में विश्राम करने के बाद अपराह्न में गोष्ठी का आयोजन करके गायकों के द्वारा मनोविनोद और पानादान करता था। सायंकाल संगीत गोष्ठी होती थी। रात्रि में शयनकक्ष को धूपित करके अभिसारिकाओं की प्रतीक्षा करता था। उनके आने पर मनोहर आलाप मंडन और मनोरंजन करता हुआ शयन करता था। ... का उद्देश्य सुखोपभोग ही था। इस जीवन दृष्टि का परिचय स्वयम् ... काव्य में भी मिलता है।[7]

---

१ वात्स्यायन कामसूत्र १।४।४

२ वही १।४।५ १

३ वही १।४।१२

४ अन्तःपुर में शतरंज चौसर और ... के साथ ... मनोरंजन करते थे बाहर शिकार या पन बाजी। —डा० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ० १२

५ तरह-तरह के पशु-पक्षी—कबूतर लाल तोता मैना आदि के स्वरों से रनिवास गूँजते थे।

— डा० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ० १

६ कामसूत्र १।४।१६ २५

७ राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा पृ० ८५

हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों का अन्योन्याश्रयण

हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियाँ पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते आते एक दूसरे को काफी प्रभावित कर चुकी थीं। दीने इलाही का अकबर बादशाह द्वारा प्रवर्तन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। मुगल दरबारों में हिन्दुओं को सम्मान और उच्च पद भी मिलने लगे थे। डा० बेनीप्रसाद ने लिखा है इस प्रकार सभी वर्गों के हिन्दुओं को राज दरबार में पद इत्यादि प्राप्त हुए थे। वे मुगल दरबार के ऐश्वर्य तथा उनके शिष्टाचार से प्रभावित होकर अपने सामाजिक जीवन में भी इसी प्रकार के परिवर्तन करने लगे थे।[1] अब हिन्दू और मुसलमानों के रहन सहन और वेश भूषा में उतना वैषम्य नहीं रह गया था जितना पहले था। अब एक नवीन हिन्दू मुस्लिम संस्कृति की स्थापना मध्ययुगीन भारत में हुई। मुस्लिम संस्कृति ने धर्म कला साहित्य और विज्ञान इत्यादि सभी क्षेत्रों में हिन्दू संस्कृति को प्रभावित किया।[2] मध्यकाल के हिन्दू कवियों की रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुओं के सौन्दर्य बोध को भी मुस्लिम संस्कृति ने दूर तक प्रभावित किया है। *किमखाब रेशम तथा मलमल के कपड़ों का प्रयोग मुसलमान नवाब और हिन्दू राजा दोनों समान रूप से करते थे।* मुस्लिम संस्कृति जितनी बुद्धिवादी है उतनी भावनावादी नहीं यही कारण है कि मुगल साम्राज्य के स्थापित होते ही उनमें भोगवृत्ति की प्रधानता हो गई। हिन्दू भी उनके प्रभाव में आकर परलोक का भय छोड़ प्रत्यक्ष सुरा सुन्दरी और रंग की उपासना करने लगे। परिणाम स्वरूप पूरे समाज में विलासिता और ऐश्वर्य प्रदर्शन की वृत्ति का प्राबल्य हो गया। रीतिकालीन नैतिक अधःपतन में इस सामाजिक जीवन में व्याप्त विलासिता और ऐश्वर्य प्रदर्शन की तीव्र इच्छा का योग कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। नारी के प्रति उनकी दृष्टि सर्वदा भोग्य की ही रही पूज्य की नहीं। भारतीय दृष्टि पर फारसी चश्मा लग चुका था जिसके परिणामस्वरूप नारी की महनीयता दृष्टि से ओझल हो गई। स्वकीया की सीमा में संतोष न करके परकीया प्रेम को अपनी रसिकता का साध्य बनाया गया। यह प्रभाव केवल रीति-कवियों तक ही सीमित नहीं था। भक्त कवियों ने भी परकीया प्रेम को महत्त्व दिया। भक्ति सम्प्रदायों में स्वकीया भाव और परकीया भाव दोनों की उपासनाएँ दिखाई पड़ीं और हिन्दी काव्य परकीया परक रचनाएँ करके तथा उन्हें राधा कृष्ण से सम्बद्ध करके सामाजिक नाटक में बच गया।[3] भक्ति के क्षेत्र में परकीयात्व भावनात्मक स्तर पर स्वीकृत हुआ किन्तु इस्लाम संस्कृति से प्रभावित रीति की शृंगारधारा में उसका रूप व्यावहारिक हो गया। स्वयं राधाकृष्ण की वेशभूषा और सौन्दर्य पर भी मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से न बच सका। कृष्ण की वेशभूषा में

---

१ डा० बेनीप्रसाद हिस्ट्री आफ जहाँगीर पृ० ८४
२ डा० ताराचन्द इन्फ्लुएंस आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर पृ० १ ३
प विश्वनाथप्रसाद मिश्र बिहारी पृ० ५५

पायजामा, चुन्नीदार पायजामा तथा उनकी कटारियों पर जड़े हुए मुक्ता जटित जंजीरों में मुसलमानी वेशभूषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भागवत के नटवर नन्दलाल यहाँ रसिक सवार बन गए हैं। मध्यकालीन वातावरण का प्रभाव कृष्ण और राधा से सम्बद्ध रूप विषयक भावनाओं को दबाए हुए है—कृष्ण के रूप चित्रण में संयोजित शृंगार से सम्बद्ध अलंकरण सामग्री ने कृष्ण को प्रायः स्त्रैण बना दिया है। कृष्ण और राधा की रति लीलाओं में तत्कालीन सामन्तों के हरम के ही चित्र खींचे गए हैं।[1] सम्पूर्ण रीतिकाव्य में यद्यपि नैतिक चेतना के कारण राधाकृष्ण का नाम बार बार लिया गया है परन्तु कवियों के अवचेतन मस्तिष्क पर मुस्लिम संस्कृति की छाप इतनी गहरी थी कि उनका काव्य उसमें पूर्णतः प्रभावित है। अतः रीतिकाल के कवि ने हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों के सम्मिलित प्रभाव के कारण एक साथ ही लौकिक और पारलौकिक अभिव्यक्ति में अपने काव्य का सान्द्र रूप में उपस्थित किया है। रीति कवि की नायिकाएँ हरम की बेगमों को भी लज्जित कर सकती हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की उक्ति इस मत को और भी पुष्ट करती है "वस्तुतः उसके (शृंगारी कवि के) चित्त में रईसी की धाक है। नायिकाओं के चित्र को मादक बनाने के लिए उसने आडम्बरपूर्ण वातावरण और महार्घ वेशभूषा का सहारा लिया है। उनकी नायिकाएँ विशाल प्रासादों में रहती हैं, उनके गात की चादर चाँदनी और धूप की उज्ज्वलता को लज्जित करती हैं, उनके पायदान में बहुमूल्य मखमल का उपयोग होता है, उनकी सेवा में नियुक्त दासियाँ जिन पानदानों, इत्रदानों और फूलदानों का व्यवहार करती हैं उनमें सोने चाँदी की बहार रहती है। नायिकाओं के परिधान में किमख्वाब, साटन, मखमल और अतलस के वस्त्र प्रयुक्त होते हैं। उनकी साड़ियों की किनारी सुवर्णखचित होती है और चारु चूनरी चटकीले रंगों में लहरदार बनी होती है। पुरुषों के वस्त्रों का उतना उल्लेख नहीं है। कभी कभी पाग और पटुका, चादर और अम्बर, जामा और पजामे की चर्चा आ जाती है, पर स्त्रियों के वस्त्राभूषण की घटा के सामने इनका कोई मूल्य नहीं है। रीतिकाल की रचनाएँ अलंकारों के अध्ययन का उत्तम साधन हैं। अनेक प्रकार के अंगराग उबटन, पान, मिस्सी, मंजन, अंजन, काजल, सिंदूर, रोरी, कुंकुम, जावक (महावर) के साथ ही साथ सीसफूल, करनफूल, तरौना, झुमका, बेसर, नथ, कण्ठश्री, तारा के हार, हँसुली, कठुला, दुगदुगी, दाम, बाजूबन्द, कंगन, पहुँची, चूरी, अँगूठी, मुँदरी, आरसी, करधनी, पायल, बिछुआ नायिका की शोभा को सौगुनी बनाते रहते हैं। गुलाब और बेला के गजरे, जूही और चमेली की भीनी भीनी महक, चम्पा और मौलसिरी के सुहावने हार, कस्तूरी और केसर के अंगराग और गेंदा, गुलदाउदी, गुलाब, गुलदाम, गुलशब्बो, गुलमेंहदी, गुलअब्बास की गमक से यह शोभा मानो मूर्तिमान सी बनकर प्रकट होती है।"[2]

---

१ डा० सावित्री सिन्हा: ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, पृ० १४६-१४७

२ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य, पृ० ३३८-९

उपरिलिखित लम्बे विवरण से हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों के सम्मिलित प्रभाव का द्योतन हो जाता है। शासक और शासित दोनों वर्गों में हिन्दू और पारसी शैलियों के वस्त्राभूषणों का प्रयोग होने लगा था। सामन्तवर्ग तो पूर्णतः मुसलमानी वेशभूषा को धारण करता था। इसका एक कारण यह भी था कि देशी राजे महाराजे विदेशी वस्तुओं का प्रयोग उस समय ऐश्वर्य और फैशन का एक अनिवार्य अंग मानते थे।

इसी प्रकार रहन सहन, खानपान और शिष्टाचार में भी दोनों संस्कृतियों का समन्वित रूप दृष्टिगत होता है। हुक्का तम्बाकू का प्रयोग दोनों करते थे, यहाँ तक कि बिहारी के लाल भी तमाखू पीने लगे थे।[1] नागरीदास की गोपांगनियाँ तो कृष्ण के लिए 'नजरें' ले लेकर आने लगीं। कृष्ण भक्तों में सहजनरिशरण की अलंकार-योजना में उर्दू और हिन्दी का संगम तथा यवन संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।[2]

रीतिकाल में हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों के अन्योन्याश्रयण से एक तीसरी अहिन्दू अमुस्लिम संस्कृति का जन्म हुआ जिसका तत्कालीन भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। धर्म कला और साहित्य भी उसके प्रभाव से बच न सके।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

साहित्यिक उपलब्धियों का मूल्यांकन बिना तद्युगीन राजनीतिक पृष्ठभूमि को समझे नहीं किया जा सकता। किसी भी काव्य के स्वरूपनिर्माण में उस काव्य काल की राजनीति का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है।

सम्राट अकबर की समन्वयवादी दृष्टि ने जिस भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का स्वप्न देखा था वह उसके साथ ही साकार होकर समाप्त हो गई। उसका व्यक्तित्व महान था। उसने सम्पूर्ण युग चेतना को प्रभावित और परिचालित किया था। उसके बाद मुगल वंश में कोई प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं उत्पन्न हुआ। जहाँगीर को सुदृढ़ और विशाल साम्राज्य विरासत में मिला। उसके सम्मुख वैयक्तिक सुखोपभोग को छोड़कर दूसरा कर्तव्य-कर्म शेष नहीं रह गया था। उसकी दृष्टि में वह उदारता और समन्वयता न थी जिससे अकबर की नीति पल्लवित होती। वह मदिरा और मदिरेक्षणा को ही जीवन की चरम उपलब्धि मान बैठा। विलास जर्जर जहाँगीर के हाथों में पड़कर शासन सूत्र शिथिल हो गया। शासकवर्ग व्यक्तिगत स्वार्थ और सुख की चिंता में समाज की उपेक्षा करने लगा। शाहजहाँ के समय में भी लगभग यही स्थिति रही। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है शाहजहाँ का शासनकाल मुगल साम्राज्य का मध्याह्न था। उसके समय में साम्राज्य का ऐश्वर्य पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुका था। देश में शांति और सम्पन्नता चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। सामाजिक मनोदशा कला-साधना और सौन्दर्य साधना के अनुकूल थी। किंतु विलासिता, स्वार्थपरता और ऐश्वर्य प्रदर्शन की

---

१ आठ न्हें हाँसी भरी दृग भौंहन की चाल।
मो मन कहा न पी लियो पियत तमाकू लाल॥ —बिहारी दो ५४

२ डॉ० सावित्री सिन्हा ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प पृ० १२४

वृत्ति ने इस मनोदशा का सम्यक उन्नयन न होने दिया। कलाकारों में शाही रौब और दबदबे की भावना ने आत्मसम्मान का लोप कर दिया था। उच्चादर्श और महान् उद्देश्य कला-साधना का लक्ष्य न बन सका। अकबर के राज्यकाल में कला साधना ने जिस विकास सीमा का स्पर्श किया था, वह धीरे धीरे पतन की ओर अग्रसर होने लगी थी। जिस प्रकार मुगल साम्राज्य बाहर से सम्पन्न किन्तु आन्तरिक कलह में खोखला होने लगा था उसी प्रकार अकबर के बाद की कला साधना भी बाहर से अलङ्कृत किन्तु आन्तरिक सौन्दर्य से रिक्त हो चली थी। डा० नगेन्द्र ने इस स्थिति का निरूपण करते हुए लिखा है, "जहाँगीर की मस्ती और शाहजहाँ के ऐश्वर्य दोनों का परिणाम अहितकर हुआ। जिस प्रकार साहित्य के इतिहास में भक्तिकाव्य के चरम वैभव के बाद सं० १७०० के आसपास ही कविता क्षय ग्रस्त होने लगी थी ठीक उसी प्रकार राजनीतिक इतिहास में मुगल साम्राज्य भी अपने सम्पूर्ण यौवन को प्राप्त करने के उपरान्त ह्रासोन्मुख हो चला था।[1]

शाहजहाँ के शासनकाल का अन्तिम दृश्य नैतिक-पतन का ज्वलन्त रूप उपस्थित करता है। रीतिकाल के प्रथम दशक में ही वह बीमार पड़ गया। उसके उत्तराधिकारी उसकी मृत्यु की घोषणा करके राजसिंहासन प्राप्त करने में नैतिक अनैतिक उपायों का प्रयोग करने लगे। डा० नगेन्द्र ने इस युद्ध को रीतिकाल के आरम्भ की सबसे प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण घटना माना है।[2] शाहजहाँ के पुत्रों में सबसे उदार, कलाप्रिय और प्रभावशाली व्यक्तित्ववाला दारा दुर्दान्त कूटनीतिज्ञ निष्ठुर और कट्टर सुन्नी औरंगजेब के द्वारा निर्दयतापूर्वक मारा गया। अकबर के 'दीने इलाही' का एकमात्र अङ्कुर औरंगजेब के खूनी पैरों तले रौंद डाला गया। यह घटना शाहजहाँ के जीवन के अन्तिम क्षणों की सबसे कारुणिक घटना थी। औरंगजेब का शासनकाल सामाजिक अशान्ति और नैतिक अधःपतन का काल था। उसकी धार्मिक असहिष्णुता ने हिन्दुओं के प्राण संकट में डाल दिए।

शाहजहाँ ने राजकीय कर्मचारियों को जागीरें देकर सामन्तवाद को जो प्रोत्साहन दिया, औरंगजेब ने उनमें भेंट के रूप में ऊँची रकम लेकर उन्हें भी लालची और हतोत्साह बना दिया था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पूर्ण पतन हो गया। उसके उत्तराधिकारियों में वह शक्ति शेष नहीं थी कि इतने बड़े साम्राज्य का संचालन कर सकें। इसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय शासन विघटित हो गया। मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकारी न तो उचित शिक्षा ही प्राप्त कर सके न संस्कार ही। उनका अधिक समय भोगविलास में ही व्यतीत होने लगा। अब तक औरंगजेब के आतंक से जो दबी रियासतें सन्नद्ध थीं पुनः सिर उठाने लगीं।

शाहआलम के समय से ही मराठे जाट, रुहेले और अवध के नवाब में दिल्ली

---

१ रीतिकाव्य की भूमिका पृ० २

२ वही पृ० ३

दरबार में वजीर पद की प्राप्ति के लिए अनेक षडयन्त्र और लड़ाइयाँ होने लगी थी। इस गृह-कलह ने अंग्रेजों को अपनी सत्ता के विस्तार का सुअवसर प्रदान किया। पूर्वी प्रान्त और अवध के कई जिलों को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया था।

केन्द्रीय शासन सत्ता निष्प्राण थी और अन्य छोटी बड़ी रियासतें अपने सुखोपभोग और ईर्ष्या अहंकार में डूबी हुई थी अतः राष्ट्रीय चेतना और आत्माभिमान किसी में शेष नहीं रह गया था।

राजनीतिक अव्यवस्था, स्वार्थपरता और प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक प्रतिभा की कमी का प्रभाव रीतिकाल के साहित्य, कला और सामाजिक स्थिति पर भी पड़ा।

रीतिकाल की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का परिचय पा लेने के बाद कलात्मक पृष्ठभूमि का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

कलात्मक पृष्ठभूमि

ललित कलाओं के माध्यम से मानव युगों से अपनी अभिव्यक्ति करता आया है। जिस देश काल में कलाएं पनपती हैं उनका प्रभाव उन पर लक्षित होता है। साहित्य भी एक विशिष्ट कला ही है अतः उस पर पड़नेवाले युग प्रभाव के अध्ययन के पूर्व ललित कलाओं पर युग धर्म का सूक्ष्म स्पन्दन देखना अभीष्ट है। यदि ललित कलाओं और साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो दोनों में एक ही अन्तर्धारा प्रवाहित होती हुई मालूम पड़ेगी।

कला की समृद्धि देश-काल की समृद्धि से प्रभावित होती है। भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल गुप्तकाल माना जाता है। इसकी स्पष्ट छाप तत्कालीन कलाओं पर देखी जा सकती है। गुप्तकाल के पश्चात् मुगलकाल (अकबर जहाँगीर काल) में पुनः कलाओं का समृद्ध रूप सामने आता है। अकबर के शासनकाल में ललित कलाएँ जिस उल्लास गरिमा का परिचय देती हैं वह उसके बाद क्रमशः क्षीयमाण हो गई। अकबर के बाद जहाँगीर के समय से कला के क्षेत्र में विलासिता, स्वर्ण अलंकरण और कोमलता का प्रभुत्व बढ़ने लगा था। शाहजहाँ के समय में वह चरमावस्था को प्राप्त हो गया। डा० नगेन्द्र के शब्दों में "मुगल वैभव का युग कला के वैभव का भी युग था। कलाप्रिय मुगल सम्राटों ने फारसी और हिन्दू शैली के सम्यक् संयोग से विलासपूर्ण मुगल शैली का निर्माण किया जिसकी छाप तत्कालीन स्थापत्य, चित्रण, आभरण आदि ललित कलाओं और जवाहरात-सोने चाँदी के काम, कपड़े बुनाई इत्यादि पर भी स्पष्ट अंकित है।"[1]

चित्रकला

मुगलकाल की चित्रकला में भारत ईरानी शैली का समन्वित रूप दृष्टिगत

---

1. रीतिकाव्य की भूमिका पृ० २१

होता है। राजनीतिक और सामाजिक अवस्थाओं की तरह चित्रकला की भी सम्वर्द्धना अकबर के काल में हुई। जहाँगीर की कलाप्रियता और रसिकता ने उसे उत्कर्ष की पराकाष्ठा तक पहुँचाया और शाहजहाँ ने उसका पूर्णरूप में पोषण किया।

अकबर के दरबार में सत्रह निपुण चित्रकार थे जिनमें दसावन पृष्ठभूमि चित्रण और भाव-व्यंजना में सर्वोत्कृष्ट था। इन चित्रकारों ने अकबर की प्रेरणा से चंगेजनामा, रामायण और कृष्णचरित्र से सम्बद्ध चित्र बनाए।[1]

यद्यपि ईरानी शैली हुमायूँ के प्रिय चित्रकार मीर सैयदअली तबरेजी और ख्वाजा अब्दुस्समद के साथ भारत में आई और मुगल-बादशाहों के संरक्षण में विकसित हुई तथा भारत की विशिष्ट राजपूत शैली देशी राजाओं की छत्रछाया में पल्लवित हुई किन्तु दोनों में काफी साम्य हो चला था। अकबर ने धर्म, संस्कृति और साहित्य को जिस प्रकार हिन्दू मुस्लिम विभेदक रेखा से दूर ले जाने का प्रयास किया उसी प्रकार चित्रकला को भी। डा० कुमारस्वामी ने राजपूत और मुगल शैली में जिस भिन्नता का प्रतिपादन किया था, आधुनिक शोध के परिणामस्वरूप उसका निराकरण हो गया।[2] उन्होंने राजपूत शैली को जनभावना और मुगल शैली को सामंती भावना पर आधारित माना था, पर ऐसी कोई भेदक रेखा इन चित्र शैलियों में नहीं पाई जाती। दरबारी वातावरण में पोषित होने से शैलियों में शृंगारिक अलंकरणप्रियता की प्रधानता पाई जाती है। नायिका भेद और राग रागिनियों के भेदाभेद को लेकर जो चित्र अंकित किए गए उनमें भावात्मक गहराई के स्थान पर बाह्य प्रदर्शन की प्रधानता हो गई। 'जहाँगीर के समय से चित्रकला में अनुदिन रंगीनता और चमत्कार का तत्त्व बढ़ता जा रहा था। पुरुषों के वस्त्रों में भी कंचुकी का प्रयोग होता था, स्त्री और पुरुष दोनों को जामे पहनाए जाने लगे थे उसी प्रकार का चित्रण हम तत्कालीन काव्य में भी मिलता है। कारीगरी और अलंकरण की प्रवृत्ति का आधिक्य दोनों कलाओं की शैलियों में समान रूप में स्थान पाता दिखाई देता है।'[3]

मुगल शासक वैभव की सम्पन्नता में विलासिता की ओर उन्मुख हो गए थे। उनमें अपने वैभव से संसार को चमत्कृत करने की भावना जागृत हो गई थी। अतः उनकी इस भावना से चित्रकला में भी शाही तड़क भड़क की अभिवृद्धि हुई। राय कृष्णदास ने इसका पूर्ण विवरण उपस्थित करते हुए लिखा है, 'अब (शाहजहाँ काल में) चित्रों में हद से ज्यादा रियाज़ मोहनकारी, अत्यधिक प्यारे रंगों की खूबी तथा शान शौकत तथा अंग प्रत्यंगों—विशेषतः हस्तमुद्राओं की लिखाई में बड़ी सफाई और कलम में कहीं से कमजोरी न रहने पर भी दरबारी अदब-कायदों की जकड़बंदी और शाही दबदबे के कारण इन चित्रों में भावों का सर्वथा अभाव बल्कि एक प्रकार का सन्नाटा

---

१ शिवलाल जोशी रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पृ० १८४-८५

२ देखिए—इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर पृ० २७२-७३

३ डा० सावित्री सिन्हा ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजनाशिल्प पृ० ३

पाया जाता है यहाँ तक कि जी ऊब जाता है।[१]

यह स्थिति बसन्त मुगल की ही नहीं थी। ब्रजभाषा के रस ग्रन्थ परम्परावादी भारतीय चित्र शैलियों में भी मध्ययुगीन साथ से विलासिता के चित्रण मिलते हैं। उड़ीसा के राजा नरसिंह (१२३८–१२६४ ई०) के समय में बुन्देलखण्डी बसन्त शैली पूर्णता को पहुँच गई थी। उस समय रूप के सम्बन्ध विहारी मतिराम, भूषण, मतिराम के रसराज की पूरी चित्रावली तथा शरीर और भाषिक चित्र यहाँ बड़ी मात्रा में तैयार हुए। इसका रंग विधान मधुर और भाव व्यंजना विशुद्ध भावप्रधान है। पात्र मुद्राओं में रहे हैं। इन चित्रों का मुख सौन्दर्य बड़ा मनोरम सुन्दर है और भावों रंगीनी।[२] इस प्रकार रीतिकालीन चित्रों में कलाकार की अनुभूति की गम्भीरता उतनी नहीं पाई जाती जितनी रूढ़ियों के निर्वाह की प्रवृत्ति।

राजपूत और मिश्र शैली का प्रभूतपूर्व साम्य राजस्थानी शैलियों में मिलता है। डॉ० सावित्री सिन्हा ने इस साम्य का निरूपण करते हुए लिखा है कि शैली के चित्रों में विरह भाव का प्राधान्य है जिसमें कृष्ण राधा की भावना के रूप में हुआ है। कांगड़ा शैली के चित्रों में वल्लभ सम्प्रदाय में सम्बन्धित विषयों का आलेखन किया गया है।[३] राजपूत-शैली के चित्रों में राधा कृष्ण का केवल रूपांकन ही स्वभाव नहीं है अपितु उनकी मधुर लीलाओं के चित्रण द्वारा कोमल भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति भी हुई है। डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने लिखा है कि कृष्ण कथा के अपार्थिव यौवन और सौन्दर्य के अवतार राधा और कृष्ण के रूप में भारतीय माधुर्य का सर्वोत्तम प्रदर्शन राजपूत शैली के चित्रों में पाया जाता है। मानवीय रूप का ऐसा सम्मोहक चित्रण रीति एवं कल्पना सरसता और कोमलता के साथ अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होता।[४]

पहाड़ी शैली में शिव के उन्मत्त और कल्याणकारक चित्रों की अपेक्षा शिव पार्वती के शृंगारपरक चित्र अधिक अंकित हुए। राधाकृष्ण की विलास लीलाओं का भी अंकन प्रभूत परिमाण में हुआ। जयदेव के गीतों और विद्यापति के पदों पर आधारित चित्र शृंगारिक वृत्ति की पराकाष्ठा के द्योतक हैं। लगभग पूरे उत्तरी भारत में शृंगार प्रधान अलंकृत शैली की प्रमुखता के कारण मुख्य चित्र की अपेक्षा उसके हाशिए सजधज के साथ सामने आने लगे। ऐसे हाशिए भी उत्कृष्ट दस्तकारी के नमूने हैं। उन पर बेल-बूटे, शिकारगाह, बेल-बूटों के बीच-बीच पशु पक्षी व ऐसे दृश्य, जिनका सम्बन्ध चित्र से हो या जो चित्र से अलग जाते हों बने रहते हैं।[५] जिस प्रकार अलंकार रीतिकाव्य के साध्य बन गए थे उसी प्रकार लगता है इन चित्रों में भी हाशिए ही साध्य बन गए थे।

---

१ राय कृष्णदास भारत की चित्रकला पृ० ६३-६४
२ वही पृ० ६७
३ डॉ० सावित्री सिन्हा ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजनाशिल्प पृ० २ ०
४ वही पृ० १६७
५ राय कृष्णदास भारत की चित्रकला पृ० ८७

उस समय के चित्रों में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण नहीं हुआ। उसका जो रूप अंकित है वह प्राय रंगण और सुलभ सुकुमारता तथा नारी अंगों के साम्य पर आधारित है। अभिसारिका के जो चित्र मिलते हैं उनमें बिजली की क्षीणरेखा में लक्षित नायिका का सौन्दर्य तथा मूसलाधार वर्षा, सर्प तूफानी झंझा आदि परकीया की विह्वल कामनाओं के प्रतीक के रूप में अंकित हैं।

रीतिकाल में काव्य-कला की ही तरह चित्रकला भी भाव शून्य, अभ्यास और श्रमसाध्य अलंकरण में युक्त विलास प्रधान स्वर्ण कोमलता और सामंती ऐश्वर्य प्रदर्शन की वृत्ति पर आधारित है। ये चित्र चाहे धार्मिक हों या सामंती इनमें सर्वत्र एक ही मूल भावना प्रवाहित मिलती है।

स्थापत्य-कला

चित्रकला का जैसा उत्कर्ष जहांगीर के समय में हुआ स्थापत्य कला का वैसा ही उत्कर्ष शाहजहां के शासनकाल में पाया जाता है। अकबर महान ने अपनी महती आकांक्षाओं को फतहपुर सीकरी के लाल पत्थरों से विनिर्मित बुलंद दरवाजे में रूपायित किया। उसके सुदृढ़ व्यक्तित्व की अमिट छाप आगरे के दुर्ग पर लक्षित होती है किन्तु उसके परवर्ती मुगल शासकों ने शुभ्रज्योतित संगमरमर की कठोरता में अपने हृदय की कोमलतम भावनाओं और सूक्ष्म स्पन्दनों को चिरत्व प्रदान किया अर्थात् अकबरकालीन स्थापत्य में जीवन की गहराई और व्यापकता है तो शाहजहां का स्थापत्य जीवन-खण्ड की चमत्कारप्रधान रसिकता का मूर्त रूप। डा० नगेन्द्र ने एक की कला में महाकाव्य (रामचरितमानस) की विराट गरिमा और स्थित विस्तार माना है तो दूसरे की कला में अलंकृत गान काव्य (बिहारी के दोहा) की रमणीयता और सूक्ष्म चमत्कार का आधिक्य।[1] आगरे के विशाल और सुदृढ़ किले के ऊपरी भाग पर शाहजहां द्वारा बनवाए गए संगमरमर के नक्काशीदार सुन्दर भवन अकबर के पौरुष और कमठता पर शाहजहां की विलासप्रियता एवं वैभव प्रदर्शन की वृत्ति के प्रतीक हैं।

शाहजहां ने अनेक भवन, राजप्रासाद दुर्ग, उद्यान और मसजिद आगरा दिल्ली, लाहौर काबुल, काश्मीर कंधार अजमेर और अहमदाबाद आदि स्थानों पर बनवाईं जिनमें ताजमहल सर्वोत्कृष्ट है। हजारों मजदूरों के बाईस वर्ष के निरंतर श्रम और तीन करोड़ रुपयों के व्यय से शाहजहां की प्रेमिका मुमताजमहल की कब्र तैयार हुई। शाहजहां के शासनकाल की दूसरी प्रसिद्ध कलाकृति मयूर सिंहासन (तख्तेताऊस) है। इस बात के भवनों के विषय में हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में स्पष्ट विवरण मिलता है — संगमरमर के बनावटदार महराब मूल्यवान पत्थरों की जड़ाई, परिष्कृत सज्जा तथा सूक्ष्म अलंकरण शाहजहां द्वारा निर्मित भवनों की मुख्य विशेषताएँ हैं। दीवाने आम, दीवाने खास खास महल शीश महल, मुसम्मन बुर्ज तथा मच्छीभवन शाहजहां द्वारा बनवाई

---

१ रीतिकाव्य की भूमिका पृ० २१

गई मुख्य इमारत हैं। इन सभी की भावना शृंगारिक है। गृह पच्चीकारी चित्रनिमित सी सजीवता गुदहले तथा रंगीन स्तम्भ इन सभी में एक विलासपरक, ऐश्वयप्रधान जीवन दृष्टि का परिचय मिलता है। मोती महल, हीरा महल, रंगमहल, गहरे बहिश्त तथा शाहबुर्ज नाम ही इस तथ्य की पुष्टि के लिए यथेष्ट हैं।[१]

औरंगजेब का समय कलाओं का अवसानकाल का समय रहा है। उसने धार्मिक भावना से प्रेरित कुछ मस्जिदें और मकबरों का निर्माण कराया जिसमें सूनापन और नम्रता का ही अभिव्यक्ति हुई है। राजपूताने की कुछ इमारतें—वारसिंह बुन्देला का विशाल महल, जोधपुर दुर्ग और राजप्रासाद आमेर के मन्दिर और अजमेर के भील के भवन अपनी नम्रता और सौन्दर्य के लिए उल्लेख्य हैं।

संगीत-कला

अन्य रीतिकालीन कलाओं की भाँति संगीत कला पर भी युग धर्म की गति विधि के प्रभाव स्पष्ट लक्षित होते हैं। अकबर के राजत्व काल में अन्य कलाओं के साथ संगीत की भी उन्नति हुई। उस समय ग्वालियर के महाराजा मानसिंह ने ध्रुपद जैसी मन्य संगीत-शैली उपस्थित की। तानसेन और पुण्डरीक विट्ठल जैसे श्रेष्ठ कलाकारों ने संगीत का चरम विकास किया। जहाँगीर के समय में दामोदर ने संगीत को प्रौढ़ और सुव्यवस्थित रूप देने के लिए 'संगीत दर्पण' जैसे शास्त्रीय ग्रंथ का प्रणयन किया।

शाहजहाँ के समय में अन्य कलाओं की भाँति इसमें भी अलंकरण और कलात्मक शक्तियों का प्रभुत्व बढ़ा। तानसेन की गुरु गम्भीर शैली में आलंकारिक गिटकारियों का योग इसी समय की देन है। शाहजहाँ ने अन्य संगीतज्ञों के साथ हिन्दू संगीतज्ञों को भी आश्रय दिया। उसकी मृत्यु के बाद औरंगजेब की कट्टरवादिता ने संगीत-कला को भी भारी क्षति पहुँचाई। कलावन्तों के द्वारा संगीत की अरथी निकाले जाने पर उसे देखकर औरंगजेब ने उसे जमीन में खूब गहरा दफनाने को कहा था।[२]

बीकानेर नरेश अनूपसिंह जैसे गुणज्ञ राजा के दरबार में रहकर भावभट्ट ने इसी समय अनेक ग्रंथों का निर्माण किया किन्तु इनमें मौलिक उद्भावना और उन्नत वृत्ति के स्थान पर गतानुगतिकता की प्रधानता पाई जाती है।

मुहम्मदशाह रंगीले ने अपनी रसिक वृत्ति के अभिरंजन हेतु दिल्ली दरबार में पुनः संगीतज्ञों और रसिक कलाकारों को जुटाया। दरबार का सारा वातावरण अदारंग सदारंग के ख्याल से प्रतिध्वनित हो उठा। ठुमरी दादरा टप्पा और ख्याली जैसी नाजुक राग रागिनियों से पूर्ण गायन शैली का अपूर्व विकास हुआ।

भारतीय संगीत का गरिमामय इतिहास फारसी प्रभाव में पड़कर अनुरंजनप्रधान हो गया। उसका साध्य विलासवृत्ति का परिपोषण मात्र रह गया। 'ख्याल' में तो शृंगार

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास षष्ठभाग पृ २४ २५

२ एच एच गोवेन ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर पृ० ५१२

का पूर्णरूप से प्रभुत्व पाया जाता है। उसका मजमून केवल नारी की प्रणय कामना या विरहानुभूति का वर्णन होता है। चतुरंग शैली में रूयाल तराना, सरगम और त्रिपट (मृदंग के बोल) के सम्मिश्रण से चमत्कारपूर्ण वैचित्र्य का अद्भुत सृजन किया गया। भावराहित्य का प्रमाण इस काल की संगीत शैलियों में अर्थहीन शब्द 'ताना दे,' देना, 'दानी' तोय, आदि का प्रयोग-बाहुल्य है।

धार्मिक पृष्ठभूमि

रीतिकाल में क्या धर्म क्या राजनीति क्या ललित कलाएँ सबमें महान व्यक्तित्व चिन्तनकी मौलिकता और अनुभूतियों की गहराई की कमी परिलक्षित होती है। धर्म में तो उदात्त वृत्तियों का सर्वथा लोप हो गया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों धार्मिक आडम्बर, आपसी द्वेष और स्वेच्छाचार के शिकार हो गए थे। डा० नगेन्द्र ने डा० ताराचन्द के साक्ष्य पर लिखा है कि "हिन्दी प्रान्तों में शास्त्रीय धर्मों में इस समय मुख्यत वैष्णव धर्म की शाखा प्रशाखाओं का प्रचार था और उनमें भी सबसे अधिक प्रचलित थी कृष्ण भक्ति शाखा क्योंकि वही युग की प्रवृत्ति के अनुकूल थी। कृष्ण सम्प्रदाय में भी इस समय तक कई उपसम्प्रदाय आविर्भूत हो गए थे और विभिन्न स्थानों पर उनकी गद्दियाँ विद्यमान थीं। बाद में गद्दियों के स्थापित हो जाने से इन लोगों पर भी देश की तत्कालीन लोकरुचि का प्रभाव पड़ा। वैभव के अभिशाप से ये भी अछूते नहीं रह पाए। धर्म का तात्त्विक विकास एकदम रुक गया था और उसके स्थान पर भक्ति के बाह्य विलास अत्यन्त समृद्ध हो गए थे।"[1]

आचार्य शांडिल्य ने भक्ति की व्याख्या करते हुए ईश्वर के प्रति जिस परानुरक्ति या उत्कृष्ट प्रेम की प्राप्ति भक्त का परम लक्ष्य सिद्ध किया था[2] कालान्तर में वही भक्ति भाव तत्त्व से विहीन होकर स्थूल काम चेष्टाओं की अभिव्यक्ति का साधन बन गई।

श्री सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य रामानुज ने विशिष्टाद्वैत की स्थापना करते हुए चित् अचित और ईश्वर तीन तत्वों का स्वीकार करके प्रपत्तिवाद या दास्य भाव की भक्ति का प्रचार किया। उन्हीं की शिष्य परम्परा में आनेवाले रीतिकालीन सतनामी लालदासी नारायणी आदि सम्प्रदायों के शिष्य अपनी अपनी गद्दियों में विलास और वैभव की आराधना करने लगे। अग्रदास के—ध्यानमंजरी अष्टयाम, कुंडलिया तथा पदावली आदि ग्रन्थों में रीतिकालीन ऐहिकतापरक शृंगार का प्रभाव स्पष्ट पाया जाता है।

वृन्दावन के निम्बार्काचार्य ने कृष्णभक्ति की जिस मधुरधारा को प्रवाहित किया केशव काश्मीरी ने जिसे सैद्धान्तिक पीठिका प्रदान की और श्रीभट्ट ने 'जुगल सतक' में उसे साहित्यिक रूप दिया, वह कालान्तर में ऐहिक भावनाओं से पूर्ण हो गई।

---

१ रीतिकाव्य की भूमिका पृ १५ १६

२ सा परानुरक्तिरीश्वरे। —शांडिल्य भक्तिसूत्र म ३

हितहरिवंश ने राधावल्लभ सम्प्रदाय में जिस निकुंज रस-साधना या सेवा पद्धति की बड़ी ही गूढ़ और उच्च आदर्श भूमि पर प्रतिष्ठा की और श्रुति-स्मृति के विधि निषेधों से सर्वथा परे आनन्दकन्द श्रीकृष्ण की अनन्य प्राण वल्लभा निकुंजेश्वरी श्रीराधारानी के चरणारविन्दों की निरंतर उपासना और उनके केलि निकुंज की चाकरी करना भक्तों का परम कर्तव्य माना था वही रसोपासना अधिकारी भक्तों की दमित वासना के प्रकाशन का माध्यम बन गई। परमाराध्या राधा का अपार रसपारावार के रूप में और श्रीकृष्ण का उस विहार करने वाले मीन के रूप में चित्रण स्पष्ट ही राधा को प्रमुख और कृष्ण को गौण स्थान देता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने ऐसे ही अनेक दृष्टान्तों से राधा का प्राधान्य प्रतिपादित किया है। रीतिकाल के रसिक भक्तों को इस सम्प्रदाय ने रसात्मक अभिव्यक्तियों के लिए पर्याप्त अवकाश दिया।

माध्व सम्प्रदाय में ब्रह्म और जीव का जो सनातन सम्बन्ध अनन्यानुभूति और मोक्ष का साधक था वही कालान्तर में गौडीय वैष्णव भक्ति के प्रभाव में आकर लौकिक प्रेमी और प्रेमिका के सम्बन्ध का आलम्बन बन गया। माधवेन्द्र पुरी से लेकर रूप गोस्वामी तक मधुराभक्ति का जो भावात्मक और शास्त्रीय विकास हुआ, वह बहुत कुछ रसराज शृंगार के निकट आ गया। रसकोटि में मधुराभक्ति और शृंगार तत्त्वत एक ही है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "वस्तुत काव्यशास्त्रियों का शृंगाररस और भक्तिशास्त्रियों का मधुररस मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक ही है। दोनों को पृथक मानने का आधार आध्यात्मिक है वैज्ञानिक नहीं। लौकिक शृंगार में रति काममूला है और मधुररस की रति प्रेममूला है। प्रथम जड विषयक अनुराग है और द्वितीय भगवद्विषयक।"[1]

वृन्दावन के चैतन्यमतानुयायी गोस्वामियों ने अपनी रसमयी कृतियों से जिस माधुर्यधारा का पोषण किया वही रीतिकाल के विलास जर्जर रसिक जन के लिए विश्राम स्थल बना।

वल्लभाचार्य ने यद्यपि भगवान कृष्ण की बाल लीला को ही अपनी भक्ति साधना का केन्द्र बनाया पर ऐसी बात थी नहीं। कभी कभी भ्रमवश ऐसा सोचा जाता है कि श्रीकृष्ण के बाल रूप के उपासक होने के कारण वे उनकी शृंगार लीलाओं के विरोधी थे। भागवत की अपनी सुबोधिनी टीका में भी (१० ४४ २६) श्रीवल्लभाचार्य ने इस बात का स्पष्ट कथन किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने कामशास्त्रीय विधि के अनुसार भी गोपियों के साथ रमण किया। वस्तुत सम्भव है कि अष्टछाप के महाकवि सूरदास और नन्ददास ने महाप्रभु द्वारा ऐसी व्याख्या से प्रेरणा ग्रहण करके ही प्रत्यक्ष रतिक्रीडा सम्बन्धी पदों की रचना की है।[2] कालान्तर में अन्य भक्त कवियों ने इसी आधार पर

---

1 मध्यकालीन धर्म-साधना डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ २१३
2 [illegible] राकेश गुप्त आलोचना संख्या १० वर्ष २ सन् १९५४ पृ ७६-७७

अनेक शृंगार प्रधान ग्रन्थों की रचना की। राधा-कृष्ण के अष्टयाम, झूला, होली, भोग-राग और रति केलि से सामंती भोग विलास का साम्य स्थापित किया जाने लगा।

रीतिकाल में पूर्ववर्ती भक्त-कवियों की रचनाओं का पिष्टपेषण ही हुआ फिर भी शैली और भाव दोनों ही क्षेत्रों में युगानुसार परिवर्तन हुआ है। शृंगार के क्षेत्र में स्थूलता के साथ ही उर्दू के प्रभावस्वरूप उत्थान फारसी काव्य का आशिकी रंग-ढंग भी दिखाया है। उत्तर मध्य युग में कृष्णभक्ति-काव्य में दार्शनिकता के नाम पर केवल बाह्याडम्बर ही शेष रह गया। राधावल्लभ और सखी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में दार्शनिकता ने विकृत रूप धारण किया। रास की आध्यात्मिक अनुभूति भक्तों द्वारा स्त्रीवेश धारण करके स्वांग करने तक ही सीमित रह गई।'[१]

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भक्तों की ऐसी साधना में आतरिक प्रेम निवेदन की भावना के साथ ही साथ बाह्य उपकरणों में भी स्त्री भाव, वेश भूषा और हाव भाव का अनुकरण साधना पक्ष के ह्रास का द्योतक माना है।[२]

संक्षेप में रीतिकाव्य की धार्मिक पृष्ठभूमि भी ऐसी सुदृढ़ और कालुष्यहीन नहीं रह गई थी कि समाज में व्याप्त अन्धविश्वास स्वार्थपरता और नैतिक दुर्बलता को दूर करनेवाले कबीर या तुलसीदास के समान प्रतिभावान और प्रभावशाली व्यक्तित्व का निर्माण करती।

इस संदर्भ में रीतिकालीन वैष्णव भक्ति में मधुरोपासना में उत्पन्न होने वाली ऐहिक भोग भावना का किंचित परिचय यहां दिया गया है। रीतिकाव्य में 'राधिका कन्हाई को सुमिरन' के व्याज से काव्य-साधना करने की परम्परा का विकासक्रम समझने के लिए वैष्णव काव्याभिव्यक्ति की शृंगारी परिणति का ऐतिहासिक अध्ययन आवश्यक है। *प्रस्तुत प्रबन्ध में इसका उल्लेख यथावसर किया जाएगा।*

साहित्यिक पृष्ठभूमि

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है साहित्य पर समाज और संस्कृति का पूरा प्रभाव पड़ता है। रीतिकाल का साहित्य अन्य ललितकलाओं की भांति सामंती परिवेश से पूर्णतः प्रभावित है। रीतिकालीन कवियों का सौंदर्य बोध मुगलकालीन वैभव तथा विलास से प्रभावित था। राजपूत राजाओं तथा सामंतों की विलासवृत्ति के प्रतिबिम्ब रीतिकाल के साहित्य की मुख्य विशेषता है। ऐसी स्थिति में भारत के शासक पण्डित और कलाकार विदेशी शासन के आतंक और त्रास के कारण विकास कला में जागरित कुतूहल को लेकर काव्यानुरंजन के माध्यम से मनस्तोष की साधना करने लगे। परिणाम यह हुआ कि रीतियुग में पहुंचकर साहित्य की तेजस्विनी शक्ति के द्वारा कलास्वादन की प्रवृत्ति का प्रायः विलोपन हो गया और उसके आसन पर आसनारूढ़ हुई आतंक

१ डा. सावित्री सिन्हा ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति-काव्य में अभिव्यंजना शिल्प
२ हिंदी-साहित्य पृ० २१०

सकुचित हृदय की शरणकामना करनेवाली येनकेनप्रकारेण आरक्षातुर मनोवत्ति जो अपने ही आडम्बर म विभ्रात होकर समययापन करती हुइ सताप प्राप्त करना चाहती थी। आत्मविभोर कर देनेवाली भावना की सहज गहराई को छोडकर भौतिक वासना से उदभावित बौद्धिक अनुरजन के प्रयास म पडकर वही मनोवत्ति नारी को अपनी सकेत दासी समझने लगी। उसके अगो की कोमलता को, हृदय की स्नेहाकुल मजुलता को तथा अग चेष्टाओ की सहज भावप्रवणता को अपनी विलास तष्णा का सतपण मानने लगी। अतएव हृदयगत वासना की भूख अस्वस्थ प्राणी की रोगज तष्णा सी असयत हो उठी थी, अमर्यादित हो गई थी। तत्कालीन काव्यशास्त्र के आचाय अपने अनुरजनशील बुद्धि वभव द्वारा उस सतप्त करने क प्रयास मे लग गए थ। बौद्धिक विश्लेषण और वैलासिक वर्गीकरण का प्रमाव लेकर इस युग न अपने कालानुमोदित पाण्डित्य का सुन्दर प्रदशन किया।'[१] उपयुक्त उद्धरण म प० करुणापति जी न रीतिकालीन कविता की सम्पूण विशेषता की ओर सुस्पष्ट और मार्मिक सकेत किया है। जसा कि पहले उल्लख किया जा चुका है राजनीति घम और कला क क्षेत्र म प्रभावशाली व्यक्तित्व का अभाव रहा है। साहित्य के क्षेत्र म भी उसी प्रकार मौलिक और युग प्रवतक व्यक्तित्व का अभाव था। इस ओर सकेत करते हुए प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र न लिखा है कवि वशिष्ट्य का जसा विकास उपस्थित था वह न हो सका वह विशेषता कविराज न ला सक जिसके द्वारा प्रत्येक की रचना पथक की जा सकती। रीतिबद्ध कवियो की रचना म से यदि छाप निकाल दी जाय तो स्मृति शक्ति क आधार पर भले ही कुछ पाथक्य किया जा सके अन्यथा व्यक्ति वशिष्ट्य क आधार पर भेद करना कठिन ही नही असभव है।[२]

अन्य कलाओ की भाति साहित्य का क्षेत्र भी सकुचित हो गया था। उसम न तो प्रकृति की व्यापकता थी और न जीवन तथा जगत की व्यापक समस्याओ का कोई समाधान ही। इसकी पुष्टि प० रामचन्द्र शुक्ल क कथन स हो जाती है कि वह (कवियो की दृष्टि) एक प्रकार स बद्ध और परिमित सा हो गई, उसका क्षेत्र सकुचित हो गया। वाग्धारा बधी हुई नालियो म प्रवाहित होन लगी जिसस अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रस सिक्त होकर सामन आन स रह गए। दूसरी बात यह हुई कि कवियो की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया।[३]

विषयवस्तु का ऐसा सकोच अकबर क समय म न था। उस समय कवि का व्यक्तित्व उन्मुक्त और व्यापक चेतना म समन्वित था। रीतिकाल म कलात्मक परिवेश क सकोच क कारण साहित्य की सीमा भी सकुचित हो गई। दूरारूढ कल्पना और बहुज्ञता प्रदशन का व्यामोह ऐसा बना कि काव्य का लक्ष्य केवल राजसभा म प्रशसा पाना

१ प० करुणापति त्रिपाठी सस्कृत म नायिका भेद और रसिक जीवनम् नागरी प्रचारिणी पत्रिका (स० २ १६) पृ० ११४
२ बिहारी पृ० २८
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २२

ही रह गया। अधिकांश कवि देशी विदेशी राजाओं-नवाबों की दरबारदारी करने लगे। इन दरबारों में पण्डित और प्रवीण, विलासी सामंत या राजा की कृपा की कामना करने वाले छोटे छोटे ताल्लुकेदार और रईस ही रह गए थे जिनकी बुद्धि अनगारा के चमत्कार और मन विलासानुप्रेरित रसिकता से परे नहीं जा सकता था। ऐसी दशा में साहित्य भी अन्य ललितकलाओं की भांति मात्र मनोरंजन ही रह गया था। फारसी सभ्यता ने भारतीय रहन सहन वेश भूषा संस्कृति और कला के साथ साथ साहित्य को भी प्रभावित किया। अदब व कायदे की पाबन्दी फारसी काव्य में विशेष रूप से पाई जाती है। मुगल दरबार का एक खास अदब था जिसके अनुसार दरबार से सम्बद्ध लोगों को चलना उठना बैठना और बोलना पड़ता था। इस अदब में भी बादशाही रौब और आभिजात्य का परिचय मिलता है। कवि और कलाकार उस दरबारी अदब से पूर्णत प्रभावित थे। राजा महाराजाओं के दरबार में विदेशी शिष्टता और सभ्यता के व्यवहार का अनुकरण हुआ और फारसी के लच्छेदार शब्द वहाँ बारा बार सुनाई देन लगे। अत भाट या कवि लोग आयुष्मान् और 'जयजयकार' ही तक अपने को कैसे रख सकते थे? वे भी दरबार में खड़े होकर 'उमरदराज महाराज तेरी चाहिए' पुकारने लगे।[1]

विदेशी यात्रियों के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि मुगल बादशाहों की सेवा में नियुक्त दास और दासियाँ भी काई-दान अलङ्कृत शैली में ही कहती थीं। समय की सूचना देने वाली दासियों को उनकी उक्ति चमत्कार के ही अनुसार पद और पुरस्कार दिये जाते थे। यही बात दरबारी कवियों के विषय में भी कही जा सकती है। चमत्कार पूर्ण उक्तियों की उस समय होड़ सी लग जाती थी जब हिन्दी के कवियों को देशी दरबारों में संस्कृत के कवियों और विदेशी दरबारों में फारसी या उर्दू के शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। अपनी उक्ति को प्रभावशाली और वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए इन कवियों को शृंगार या नायक नायिका भेद की रचना प्रस्तुत करनी पड़ती थी। इसीलिए वर्ण्य-वस्तु का संकोच स्थूल ऐंद्रियता एवं निष्प्राण अलंकरण की अधिकता काव्य की नैसर्गिक कोमलता और व्यापकता को समाप्त करती जा रही थी। फारसी काव्य में भी वह आत्मबल और जहांगीर और शाहजहां के समय में नहीं रह गया था जो अकबर के समय में था। यद्यपि जहांगीर हिन्दी कविता का प्रेमी था और हिन्दी कवियों को पुरस्कार भी देता था[2] किन्तु अकबर की तरह उसके शासन-काल में कोई भी कवि अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर महान न बन सका।

फारसी के कवियों में प्रेम के बँधे बँधाए विषय को छोड़कर आगे बढ़ने की प्रतिभा न थी। उनका फन केवल गुलोबुलबुल शीरी फरहाद और लैला मजनूं के प्रेम प्रधान आख्यानों का ही पूरी रंगीनी से पेश करना था। 'कसीदा' में तो राजाओं की अत्युक्तिपूर्ण प्रशस्ति के अतिरिक्त और कुछ भी शेष न रहा। रीतिकवि भी इससे

---

१ पं० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ २२२

२ हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल पृ० ४८

प्रभावित होकर अनेक प्रशस्ति काव्यों की रचना करने लगे। संस्कृत के अंतिम प्रकाण्ड विद्वान पंडितराज जगन्नाथ के काव्य में दरबारी परिवेश का पूर्णरूप से अंकन मिलता है। उन्होंने शृंगारी रचनाओं के अतिरिक्त प्रशस्ति काव्यों की भी रचना की। औरंगजेब ने अन्य कलाकारों की भांति कवियों को भी मुगल दरबार से बहिष्कृत कर दिया था।[1] औरंगजेब की मृत्यु के बाद तो साम्राज्य की शक्ति का पूर्णत विघटन प्रारम्भ हो गया। रहे-सहे कवि और कलाकार भी देशी नरेशों सामन्तों और नवाबों के दरबार में खिसकने लगे थे। औरंगजेब के उत्तराधिकारी मुहम्मदशाह के समय में साहित्य और कला को पुन दिल्ली दरबार में प्रश्रय मिला, किन्तु बादशाह की अत्यन्त विलासिता और रसिकता ने साहित्य की अनुरंजनकारी प्रवृत्ति को ही प्रोत्साहित किया।

आगे के अध्यायों में रीतिकालीन कवियों की अभिव्यंजना शैली और अप्रस्तुत विधान पर तद्युगीन दरबारी संस्कृति और शिल्प प्रभाव का संकेत किया जाएगा। जहाँ तक रीतिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रश्न है उसका निरूपण प्रथम अध्याय में ही 'रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ' के अंतर्गत संक्षेप में कर दिया गया है।

वैष्णव काव्याभिव्यक्ति की शृंगारी परिणति

रीति-काव्य ने शृंगार रस के आलम्बन रूप में कृष्ण के आराध्य श्रीकृष्ण और राधा को ग्रहण किया। राधा-कृष्ण के प्रति युगों से जन मानस का बद्धमूल श्रद्धाभाव रीतिकाव्य में आकर रतिभाव के रूप में परिवर्तित हो गया है। यह परिवर्तन कोई अप्रत्याशित संयोग नहीं था अपितु भारतीय संस्कृति के विलासोन्मुख क्रमिक विकास का परिणाम था।

विद्वानों का मत है कि प्राचीनकाल में भारत में द्रविड संस्कृति थी। उस समय यहाँ शैव साधना का प्रचार था। शैव साधना में लिंग पूजा और शाक्त साधना में मुद्रा का महत्त्व था। बाद में आर्य आये और उनके साथ वैदिक देवता इन्द्र वरुण वायु उषस और पूषा की कर्मकाण्ड प्रधान उपासना आई। आभीरों का भारत में आगमन एक भावनात्मक क्रान्ति का कारण हुआ। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों का कथन है कि गोपवेषधारी कृष्ण इन्हीं आभीरों के देवता थे। "इनके आगमन के पूर्व द्रविडों का ताण्डव जैसा रौद्ररस प्रधान पार्वती का लास्य जैसा कोमल शृंगारिक नृत्य भारत में प्रचलित थे किन्तु आभीरों के आगमन से कृष्ण और उनके साथ समरस रामालिनिन नृत्य आये।

भारतीय चिन्ताधारा के क्रमिक विकास का स्पष्ट हुआ क्या अनुमान किया जा

---

1 As for the arts Au an zeb was a thorough going Philistine Painting to him savored of idolatry poetry was a pand ring to effeminacy and music was on abomination

—A History of Indian Literature p 512

सकता है कि पहले मुख्य रूप से दो धाराएँ थीं। एक धारा विधि निषेधों को माननेवाले आर्यों की थी जिसमें मर्यादा के अनुकूल परम दैवत विष्णु की उपासना विहित थी, दूसरी धारा स्वच्छन्द प्रेम विलास को लेकर प्रवाहित होनेवाली आभीरों की थी जिसमें कृष्ण और गोपियों की प्रेम लीला की प्रधानता थी। इन दोनों की कुछ-कुछ सम्मिलित अभिव्यक्ति श्रीमद्भागवत में दृष्टिगत होती है जो आर्यों के देवता विष्णु की भक्तिधारा का सबसे प्रबल और गीता के बाद सबसे अधिक प्रचारित प्रसारित ग्रंथ है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण का मधुर रूप मुखरित है। श्रीमद्भागवत के बाद गीतगोविंद में आर्य और आभीर संस्कृतियों का मिलित रूप दृष्टिगोचर होता है। राधा और कृष्ण की मधुर क्रीड़ाओं का पूर्णतः आत्मसात करके उसे भक्ति की चाशनी में लपेट कर उपस्थित करने का काम पीयूषवर्षी जयदेव ने किया।

जयदेव का गीतगोविंद संस्कृत साहित्य की रूढ़ परम्परा से अलग जन-गीतियों के आधार पर लिखा गया गीतात्मक खण्डकाव्य है। उसमें आभीरों के द्वारा गाए जानेवाले लोक प्रचलित राधा-कृष्ण विषयक प्रेम क्रीड़ा के गीतों को सुव्यवस्थित शास्त्रीय परिपाटी में निबद्ध करने का प्रथम शान प्रयास दृष्ट होता है।

गीतगोविंद के पूर्व शृंगार भक्ति का ऐसा यामुनगीय संगम किसी साहित्यिक कृति में प्राप्त नहीं होता।

अद्यावधि उपलब्ध साहित्य के विवेचन परीक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक काल से लेकर गीतगोविंद तक साहित्य की दो धाराएँ थीं—एक धारा आध्यात्मिक शक्तियों या देवी-देवताओं के श्रद्धा प्रेममय रूप का विकसित करनेवाली स्तोत्रों की थी, दूसरी लौकिक मानवीय प्रणय व्यापार के स्थूल रूप को विकसित करनेवाली। भक्ति-काव्य के विकास का सम्बन्ध वैदिक स्तोत्रों से माना जा सकता है। ऋग्वेद के ऋषियों ने अपनी धार्मिक भावना को काव्यात्मक रूप देकर देवताओं की प्रशंसा और प्रार्थना की। बाद में वैदिक देवताओं के रूप में परिवर्तन आने लगा और उनके स्थान पर नए देवता प्रतिष्ठित हुए तथा शुष्क कर्मकाण्ड के स्थान पर व्यक्तिगत और भावात्मक पूजा पद्धति प्रचलित हो गई। धीरे धीरे इष्ट की आराधना में मनोवैज्ञानिक भावों का योग हुआ फलतः वैदिक देवताओं से भय और संत्रास के स्थान पर नए देवताओं से प्रेम भी किया जाने लगा और देवता भी भक्तवत्सल रूप में चित्रित किए गए। इस भावाच्छादित आराधना के परिणामस्वरूप भगवान् जन भावना और जन-जीवन के अधिक निकट हो गए। वैदिक देवता लौकिक साहित्य में काल्पनिक न रहकर जीवित सत्य हो गए।

वैदिक युग का आनन्दवाद परवर्ती जीवन में नहीं दिखाई देता। उसके स्थान पर कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास ने निराशावादी जीवन दृष्टि को उत्पन्न किया और अपने शरण्य की कामना से आराधक ने अवतारवाद की कल्पना की। मानव की सम्पूर्ण इच्छा और भावना शरण्य भगवान के प्रति अर्पित हो गई।

परवर्ती स्तोत्र साहित्य नई परिस्थिति में नूतन भाव भूमियों का सर्जक सिद्ध

हुआ। जैन और बौद्ध भी अपनी दुरवस्था के कारण हिंदुओं की शरण्य कामना के अधिक निकट आ गए। इन स्तोत्रों का विस्तार डा० सुशीलकुमार दे के अनुसार महाकाव्यों और पुराणों में भी दृष्टिगत होता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि कठोपनिषद और श्वेताश्वतरोपनिषद तथा विष्णु, ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, पद्म, स्कन्द, भागवत, ब्रह्मवैवर्त और देवीभागवत को ऐसे स्तोत्रों का भाण्डार कहा जा सकता है।[1]

पुराणों और उपनिषदों के अतिरिक्त तन्त्रों में प्रपंच सार, रुद्रयामल, विश्वसार, शारदातिलक, महानिर्वाण और तन्त्र सार तथा बाद के साम्प्रदायिक उपनिषदों—नारायण, कैवल्य तथा गोपाल तापनी में कुछ साहित्यिक स्तोत्रों के नमूने मिलते हैं। डा० गोपीनाथ कविराज ने श्रीकृष्णयामल, गौतमीय तन्त्र, सनत्कुमार संहिता, भालव दार संहिता, सुंदरीतन्त्र आदि आगम ग्रन्थों का प्रभाव परवर्ती कृष्ण और राम विषयक लीला साहित्यों पर माना है। उन्होंने श्रीकृष्णलीला का त्रिपुरसुन्दरी की उपासना के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध की ओर भी संकेत किया है।[2]

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परवर्ती राम और कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं के मूल स्थान भक्ति भावित के स्तोत्र माने जा सकते हैं जिसकी शृंखला वैदिक स्तोत्रों से जुड़ती है।

पूर्वोल्लिखित भक्ति साधना को प्रभावित करनेवाली भारतीय चिंताधारा की दूसरी शाखा का क्रम विकास जो मूलतः ऐहिक इंद्रियोपभोग को लेकर प्रवर्तित हुआ—वैदिक प्रेमपरक आख्यानों से निरूपित किया जा सकता है। डा० दे ने इसका प्राचीन और मूल उत्स वैदिक संवाद सूक्तों को माना है जो ऋग्वेद के दशम मण्डल में निबद्ध हैं। यह संवाद मर्त्य पुरूरवस और अप्सरा उर्वशी—के मध्य हुआ माना जाता है।[3] भारतीय साहित्य को इस प्रणय संवाद ने दूर तक प्रभावित किया और कालिदास की प्रसिद्ध कृति विक्रमोर्वशीयम में रूपायित हुआ।[4] दूसरा प्रेमाख्यान ऋग्वेद के दशम मण्डल में ही यम और यमी के संवाद सूक्तों में व्यक्त हुआ है।[5] सृष्टि के आदिम मानव की बलवती काम बुभुक्षा का ज्वलंत उदाहरण यमी की अपने भाई यम से प्रणय याचना है। प्रथम संवाद सूक्तों में पुरुष की असफल प्रणय याचना है और दूसरे में नारी की। इस प्रकार दोनों विप्रलंभ शृंगार के ही उदाहरण हैं। विश्व साहित्य में प्रेमपरक सर्वप्रथम पद्य होने के कारण इन संवाद सूक्तों का महत्वपूर्ण स्थान है। संभोग शृंगार के उदाहरण सूर्या सूक्त की दाम्पत्य प्रेम विषयक उक्तियाँ मानी जा सकती हैं।

वैदिक साहित्य में प्राप्त ऐसे प्रणय संवाद इस धारणा की पुष्टि करते हैं कि

---

१ डॉ० एस० के० दे, एस्पेक्ट्स आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० १०२। ३
२ डॉ० गोपीनाथ कविराज (भूमिका), रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ७
३ ऋग्वेद १०।९५
४ डॉ० सु० कु० दे, ए हिस्ट्री आव सं० लि० (?) ऐंड ई० एल० पृ० १
५ ऋग्वेद १०।१०

प्राचीनकाल में भी ऐसी न जाने कितनी प्रणय कथाएँ प्रचलित रही होंगी जिनके अवशेष इस रूप मे सुरक्षित रह सके।

वास्तव में आदिम जातियों में सन्तानोत्पादन और सम्भोग सुख का कारण होने के कारण धीरे धीरे काम को महत्त्व मिला होगा और उसके परिणामस्वरूप उसे पुरुषार्थों में गृहीत किया गया होगा। वैदिक साहित्य में काम भावना की महत्ता को स्वीकार करके याग यज्ञादि को यौन प्रतीकों से सम्बद्ध किया गया है।[1]

काम भावना को उत्तरोत्तर सर्वाधिक शक्तिशाली भावना के रूप में मान्यता मिलती गई और अन्त मे इसे एक देवता के रूप में मानवीकृत करके पूज्य घोषित किया गया। यद्यपि इसके पूजन अर्चन का उल्लेख काम या प्रेम शक्ति के परम देवत के रूप में कहीं नहीं मिलता। ऋग्वेद में एक अमूर्त रूप में 'काम' का उल्लेख मिलता है। हां प्रसिद्ध नासदीय सूक्त में 'काम' या इच्छा का उल्लेख ब्रह्म के मन में सर्वप्रथम उद्भूत विकार के रूप में हुआ है।[2] अथर्ववेद में काम को सबसे शक्तिशाली देवता माना गया और इसकी समता अग्नि से की गई है। साथ ही उसके शक्तिशाली बाणों का भी वर्णन है जो हृदय बेधने में परम सक्षम हैं। परवर्ती काव्यों में सभवत पुष्पबाण धारी कामदेव का अवतरण इसी वैदिक देवता का विकसित रूप है।[3]

ब्राह्मण साहित्य में यद्यपि प्रेम कथाओं का अभाव है तथापि पुरूरवा और उर्वशी तथा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रेम कथा का शतपथ ब्राह्मण में सविस्तर उल्लेख मिलता है।[4]

ब्राह्मण साहित्य की ही तरह बौद्ध जीवन दर्शन में भी प्रेम या कामभावना के विकास की भूमि उर्वर नहीं थी तथापि लोकगीतों की प्रचुर राशि में से केवल एक प्रेम गीति दीघ निकाय में संगृहीत रह गई जिसके आधार पर डा० दे ने उसकी विपुल राशि में होने की कल्पना की है।[5]

---

१ दे० डा० मिथिलेश कान्ति हिन्दी भक्ति शृंगार का स्वरूप (१९७०) पृ० ६७

२ ऋग्वेद १०।१२९।४

३ "One of the spells already quoted above (Atharv iii 25) mentions the arrows with which the disquieter pierces hearts arrows which are winged with pain barbed with longing and has desire foe its shafts He is the forerunner of the flower arrowed god of love, whose appearance names and personality were established in the Epics and became fully familiar in later classical literature

—Dr S K De A I S & E L p 6

४ वही पृ० ८

५ The only pretty love song which breathes freely the atmosphere of human sentiment is the one called the Question of Sakka in

वदिक साहित्य म काम को धार्मिक दृष्टि से महत्त्व दिया गया और धार्मिक क्रियाग्रा की तुलना काम क्रियाग्रा स करते हुए यमोगादि को भी धार्मिक कृत्य के रूप म स्वीकार कर उस व्यवस्थित किया गया। धार्मिक रूढ़ियो म आबद्ध काम भावना बहुत कुछ कर्तव्य बुद्धि से अनुशासित हो चुकी थी किन्तु प्रणय कथाग्रो के माध्यम से स्वच्छन्द विकास की परपरा भी जीवित रही। उसके क्रमिक विकास का एक रूप हम परवर्ती धार्मिक सप्रदायो म पाते है। धार्मिक सम्प्रदायो म काम भावना का विकास मूलत श्रृगारात्मक रहस्यवाद के रूप म हुआ जिसका सम्ब व मानसिक और ऐन्द्रिक विषय वस्तु के अधिक समीप दिखाई पडता है। इसकी कुछ चर्चा पहले की जा चुकी है। श्रृगारात्मक भक्ति प्रधान स्तोत्रो ने मध्यकालीन भक्ति को एक नया मोड दिया। इसके परिणामस्वरूप शाकर स्तोत्रो की गभीर दार्शनिकता के स्थान पर कामवृत्ति प्रधान श्रृगारिकता को अधिक उन्मुक्त वातावरण मिला और धार्मिक भावना ऐहिक भावना के अधिक निकट आ गई।

भक्ति आदोलन म कृष्ण के पौराणिक श्रृगार प्रधान जीवन को विशेष प्रश्रय मिला। उसम श्रृगार का मर्यादित और उज्ज्वल पक्ष गृहीत हुआ। बाद म मध्ययुग की गोपी-कृष्ण सम्बन्धी प्रणय-कथाग्रा या श्रृगार प्रधान लीलाग्रो को ग्रहण करके भक्त कवियो ने शिव या बुद्धि की अपेक्षा कृष्ण-लीलाग्रो म यौवन और तज्जन्य श्रृगारी भावनाग्रो का विशद गान किया। वष्णव सम्प्रदाय म ऐसी भाव भक्ति को विभूति को प्रधानता मिली। डा० दे के अनुसार कृष्णपरक प्रणय कथाग्रा ने वष्णव भक्ति म श्रृगारपूर्ण अभिव्यक्तियो की धारा प्रवाहित की। हरिवश और विष्णुपुराण की अपेक्षा श्रीमदभागवत की वर्ण्य-वस्तु कृष्ण की शशव और यौवन काल की लीलाग्रा चेष्टाग्रा तक ही सीमित है। कृष्ण के प्रति गोपी की भावमयी तन्मयता ब्रह्म और जीव के मिलन का प्रतीक बन गई। इस प्रकार की लीलाग्रो का विशेष विकास पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण म दृष्टिगोचर होता है।[1]

परवर्ती भक्ति काव्यो म रामायण महाभारत और पुराणो के देवी देवताग्रो का अवतरण हुआ। महाभारत और रामायण म श्रृगारिक वृत्ति को उतना अवकाश नही मिला जितना पुराणो म। इन पुराणो म भी श्रीकृष्ण का ही प्रणय-लीलाग्रो का विस्तार मिलता है अन्य देवी-देवताग्रो का नही। महाभारत म श्रीकृष्ण की श्रृगारिक

the Digh Nikaya This exquisite little love song is like a little oasis in the immense and arid tract of Brahmanical and Budhistic literature of many centuries but it is also a sure indication that in the popular gathas, of which this is the only surviving specimen love must have been an important theme

—Dr De A I E & E L p 9–10

१ वही प १२८ १३०

लीलाओं का विस्तार नहीं है। संभवतः सबसे पहले विष्णुपुराण में श्रीकृष्ण और गोपी की प्रणय लीला का उल्लेख मिलता है। इसमें कृष्ण की शौर्य और परोपकार प्रधान लीलाओं के साथ उनके माधुर्य के उद्घाटक तत्वों का भी संनिवेश किया गया है। विष्णुपुराण के तेरहवें अध्याय में रासलीला का वर्णन है। चौबीसवें अध्याय में गोपियां मथुरा में आए हुए बलराम को कृष्ण के कठोर आचरणों के लिए उपालंभ देती हैं। यद्यपि इस पुराण से कृष्ण की प्रणय लीलाओं का उल्लेख करते हुए कवि अधिक संयमित और मर्यादित है किंतु गोपी विरह में गोपियों के प्रसंग की उक्तियां उनके असंयमित भावोद्वेग का पूर्णरूप से अभिव्यक्त करती हैं। हरिवंशपुराण में रासलीला का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें गोपियों की रति प्रियता तथा कृष्ण के साथ उनके रमण का उल्लेख किया गया है। इसमें आलिंगन, रति, रात्रि मिलन और नृत्यादि का सांगोपांग निरूपण रीति परंपरा के अनुकूल हुआ है।[1]

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में कृष्णलीला का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। इसमें अष्टयाम, जलक्रीडा, मधुपान, जलक्रीडा, धूतक्रीडा, अभिसार आदि का सांगोपांग निरूपण मिलता है।[2]

ब्रह्मवैवर्तपुराण में यद्यपि श्रीकृष्ण और राधा के देवत्व का संकेत किया गया तथापि उनकी लीलाओं में स्थूल मांसलता की कमी नहीं।[3] कई स्थलों पर तो ऐसे वर्णन हैं कि उनके समक्ष रीतिकाल की स्थूल शृंगारिकता भी मर्यादित-सी लगती है।[4]

परवर्ती संहिताओं में गर्ग संहिता श्रीकृष्ण लीला को जिस रूप में उपस्थित करती है वह रीतियुगीन विलासिता के काफी निकट है।[5] कवि ने प्रस्तुत महिमा में संयोग और वियोग का रूढ़िबद्ध वर्णन किया है। वियोग-वर्णन में जो रूढ़ियां रीतिकाव्य में प्रयुक्त हैं उनकी पूर्ण विवृत्ति संहिता में मिलती है।[6]

उपर्युक्त पुराणों में कृष्ण की वृंदावन लीलाओं का जैसा वर्णन मिलता है उसके आधार पर धार्मिक सम्प्रदायों में शृंगारात्मक रहस्यवाद का प्रचलन हुआ। पौराणिक राधा-कृष्ण की प्रणय कथा अपनी समग्र शृंगारिक लीलाओं के साथ भक्ति साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध हुई। इस प्रकार धर्म में इन लीलाओं ने शृंगार को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसमें एक ओर तो मानव की शक्तिशाली वृत्ति को उज्ज्वल रूप मिला और दूसरी ओर धार्मिक जीवन में स्वाभाविक मानवीय भावना और सौंदर्य बोध को भी स्थान मिला जिसमें उसकी नीरस कर्मकाण्ड पद्धति और साधना पद्धति

१ हरिवंशपुराण २।२०।१५ ३८

२ पद्मपुराण पाताल खंड ७२।१६ ८३।१०५

३ ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।३।११५ ४।११।१८ ४।१५।१४ १६१ ४।२१।१८४ १८६ ४।२८।७२ ७६ ८८ ८६

४ वही ४।२८।६ ४।२६।१८

५ गर्ग संहिता २।१२।२४ ४।३।३

६ वही ५।१५।१ ५।१६।२५

में भी परिवर्तन हुआ।[1]

साहित्य में प्रारम्भिक निर्माण काल से ही प्रेम-तत्त्व की मर्यादित विवृति मिलती है। इसका विकास असंयमित आत्मोपभोग के लिए नहीं हुआ। इसीलिए काम को धर्म का अनिवार्य अंग स्वीकार करते हुए उसे शास्त्रीय नियम में संयमित और परिपुष्ट किया गया। बाद में वैयक्तिक भावनाओं को कलात्मक रस का रूप दिया गया। भक्ति-साहित्य में हम कलात्मक रस रूप का दर्शन होता है। भक्ति सम्प्रदाय का विशाल साहित्य प्रेम के समुज्ज्वल और मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। प० करुणापति त्रिपाठी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कृष्ण भक्ति की समस्त प्रेमोपासना – बालकृष्ण का माध्यम वात्सल्यभाव या प्रेयोभाव की भक्ति, युगल सरकार की रागमयी उपासना गोपीभाव सहचरी भाव सखी भाव सख्य भाव और सेवक भाव की भक्ति दृष्टि भी प्रेम के ही उल्लास दिव्य और अप्राकृत रूप को लेकर चली। इस प्रकार राग सवलित प्रेमाश्रित कृष्ण भक्ति की समस्त ललित और मधुर उपासनाएं जिनमें लीला और केलि विलास का मधुमय प्रवाह बहता दिखाई देता है सभी प्रेम के ही विवर्त हैं।[2] प्रेम शृंगार की इस भावना का वैष्णव कवियों ने रसशास्त्र के आधार पर पल्लवित किया। कृष्ण और राधा की लीला परस्पर आकर्षण प्रेम मिलन विरह मान आदि का समग्र साहित्य रस सिद्धान्त पर आधारित है। लीलाओं के वर्णन में कवियों ने रसशास्त्र का ही नहीं अपितु अलंकारशास्त्र का भी आधार ग्रहण किया। साहित्यशास्त्र और कामशास्त्र ने मानवीय भावों का वर्गानिक वर्गीकरण उनके हेतु और परिणामों की सम्यक विवेचना करके ही निर्धारित किया था। इसी वर्गानिक पद्धति का विकास परवर्ती वैष्णव सम्प्रदाय और सिद्धान्त में पूर्ण मधुरता के साथ पाया जाता है।[3] डॉ० शशिभूषणदास गुप्त ने लिखा है अप्राकृत वृन्दावन धाम के श्रीराधाकृष्ण की नित्यलीला को साहित्य में रूपायित करते हुए वैष्णव कवियों को मनुष्य का हृदय और मनुष्य की भाषा को ही अपनाना पड़ा है। राधाकृष्ण प्रेम भी इसीलिए मानवीय प्रेमलीला के सभी वैचित्र्य माधुर्य में प्रकट हुआ है। अलंकारशास्त्र सम्मत नायक नायिका

१ डॉ एस० के दे एस्पेक्टस आफ संस्कृत लिटरेचर प १२६ १

२ प करुणापति त्रिपाठी रसरतन विभागीय प्राक्कथन प १२

3 The technical analysis and authority of the older Poetics and Erotics had already evolved a system of meticulous classification of the ways means and effects of the erotic sentiment and established a series of rigid conventionalities to be expressed in stock poetic and emotional phrases analogies and conceites To all this the neo Vaisnava theology and theory of sentiment added a further mass of well defined subtleties and elegancies

—Dr S K De Aspects of Sanskrit Literature, p 331

के सभी प्रकार के भेदों पर विचार करके कृष्ण और राधा को ही सर्वश्रेष्ठ नायक-नायिका सिद्ध किया है। राधा के जिन अनुभावादि का वर्णन किया गया है और रतिरूप स्थायी भाव के जो व्यभिचारी भावादि वर्णित हुए हैं उनके अन्दर भारतीय अलंकार शास्त्र और कामशास्त्र का मिश्रण हुआ है। भारतीय कामशास्त्र में एक श्रेष्ठ नायिका में जो देह धर्म और मनोधर्म वर्णित हुए हैं हम उन सभी को राधिका के ही अन्दर पाते हैं। वात्स्यायन ने कामसूत्र में नायिका के जिन गुणों का वर्णन किया गया है, उज्ज्वलनीलमणि की नायिका के वर्णन में हम प्रकारान्तर से उसी की प्रतिध्वनि सुनते हैं।[1] रूपगोस्वामी ने मधुररस का शास्त्रीय विवेचन करते हुए इसे कृष्णविषयक शृंगार माना है। इसके आलम्बन कृष्ण तथा कृष्णप्रिया हैं। उद्दीपन मुरली निस्वनादि, अनुभाव नयनकोण से देखना और स्मित आदि व्यभिचारी आलस्य, उग्रता के अतिरिक्त अन्य सब तथा स्थायी भाव मधुरा रति है। विप्रलम्भ तथा संभोग इसके दो भेद हैं और विप्रलम्भ के अन्तर्गत पूर्वराग मानप्रवास आदि भेद किए गए हैं। इससे यह निश्चित होता है कि मधुररस शृंगाररस का ही भक्तिपरक नाम है। डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने मधुररस के सिद्धान्त और स्वरूप का विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष रूप में लिखा है "उज्ज्वलनीलमणि" के मधुर भक्तिरस का विस्तार शृंगार की अनेकानेक दशाओं तक है संयोग वियोग की मिश्रित अवस्था भी उसके ही अन्तर्गत आती है। वस्तुतः वह दशा तो समझने मात्र के लिए है। यदि शेष सम्पूर्ण वर्णन कृष्णपरक अर्थों में न देखा जाय तो शृंगार का ही वर्णन है उसके भेदोपभेद में आवश्यक अनेक स्थितियों का विचार करके भिन्नता का प्रदर्शन किया गया है।[2]

चैतन्य वैष्णवों ने भक्ति को सर्वाधिक महत्त्व दिया और इसे पंचम पुरुषार्थ माना। यद्यपि भक्ति की प्राचीन धारा का स्फीत प्रवाह पुराणों में मिलता है तथापि श्री रूपगोस्वामी ने वह पथ प्रदर्शित किया जिसमें भक्ति को भी रस-कोटि की प्राप्ति हुई। भक्ति धारा में पहले भगवान् के जिस रूप का भावन किया जाता था उसमें ऐश्वर्य की प्रधानता थी किन्तु रूपगोस्वामी ने उनके जिस लीला विलास वाले रूप का उद्घाटन किया उसमें जन अनुरंजन की प्रवृत्ति प्रधान थी। इस रागानुगा भक्ति में रसशास्त्र की वे सारी मान्यताएँ प्राप्त होती हैं जो किसी भाव को रसदशा तक पहुँचाने में पूर्ण समर्थ होती हैं। भक्तों का भावोच्छ्वास केवल रसशास्त्रानुवर्ती ही नहीं अपितु अलंकार-शास्त्रानुवर्ती और कामशास्त्रानुप्रेरित भी सिद्ध हुआ।[3] मैथिल कवि विद्यापति में राधा-कृष्ण के जनरंजक रूप का चित्रण बड़ा ही मांसल हुआ है। इसीलिए विद्यापति भक्त कवि की अपेक्षा शृंगारी कवि ही अधिक सिद्ध होते हैं। भक्त कवियों में उनके रस रूप का ही ग्रहण हुआ जिसके कारण भक्तों में भाव लालित्य की प्रधानता लक्षित

---

१ डा० शशिभूषणदास गुप्त श्रीराधा का क्रम विकास पृ० २२५-२२७

२ डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित रससिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृ० २८०

३ डा० एस० के० दे अर्लीहिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० १२१

होती है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है "कृष्ण भक्तों ने भगवान् के ऐश्वर्य रूप का ग्रहण नहीं किया, माधुर्य का ही ग्रहण किया। उन्होंने श्रीकृष्ण की द्वारका लीला महाभारत की नीति आदि में अपना प्रयोजन नहीं रखा। केवल ब्रज का हँसना-खेलना रूप ही ग्रहण किया।"[1]

राधावल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक हितहरिवंश ने राधा कृष्ण के पौराणिक रूप को उतना ही ग्रहण किया जितना उनकी अनन्य उपासना के लिए आवश्यक था। सेवकजी ने श्रीहरिवंश के उपासना मार्ग का ग्रहण करने के अपने कारणों को बताया है "मैंने सब प्रकारों का भजन करके अनुभव किया है किन्तु उनमें प्रीति का प्राधान्य उतना नहीं था, क्योंकि उनमें रस का मधुर आस्वादन नहीं होता।"[2] इसीलिए भक्ति सम्प्रदाय में मधुराभक्ति का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें जितनी विविधता है उतनी न तो शान्तभाव में है न दास्य न सख्य या वात्सल्य में ही है। तथ्य यह है कि मधुराभक्ति या प्रेमलक्षणा भक्ति का स्वरूप विकास बहुत कुछ रसराज शृंगार के स्थायी भाव रति के उन्नत रूप पर आधारित है। अतः शृंगार की पूरी रस-सामग्री इस भक्तिमार्ग में गृहीत हुई। डॉ० शशिभूषणदास गुप्त ने स्पष्ट लिखा है कि राधा प्रेम का आलम्बन करके बारहवीं शती से जो वैष्णव कविता लिखी गई उसका बारहवीं शती और उसके बहुत पहले की लिखी पार्थिव प्रेम-कविता का साम्य राधावाद की उत्पत्ति और क्रमविकास के इतिहास में एक दिशा से विशेष तात्पर्यपूर्ण है। हमने देखा है कि बारहवीं शती में जयदेव ने अथवा दूसरे सभी कवियों की लिखी राधा प्रेम की कविता और बारहवीं शती के बहुत पहले लिखी राधा प्रेम की कविता एवं समसामयिक पार्थिव प्रेम कविता एक ही सुर में ध्वनित है।[3] भक्ति सम्प्रदाय में स्वीकृत शृंगारिक प्रसंगों का निरूपण करते हुए भक्त आचार्यों ने इस प्रतीकात्मक अर्थ देने का प्रयास किया है। शृंगारपरक काव्य को आत्मा परमात्मा की मिलनोत्कंठा भावोल्लास योगसाधना और आत्मसमर्पण आदि मानकर समझाने का प्रयत्न किया गया है। डा० दे ने स्पष्ट ही लिखा है कि भक्त कवियों ने यद्यपि राधा कृष्ण का वर्णन किया है किन्तु इस झीने आवरण के अन्दर उन्होंने अपने ही आशा आशा और भय हर्ष और अवसाद का वर्णन किया है।[4] इस काव्य में लीला शुक का कर्णामृत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उक्त ग्रंथ में अनेक छन्दों में भक्तिपरक गीतों का संग्रहीत किया गया है। यह

---

१ [1] विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत भाग १ पृ ३८

२ ललिताचरण गोस्वामी श्री हरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य पृ ८७

३ डॉ शशिभूषणदास गुप्त श्रीराधा का क्रम विकास पृ १७७ १७८

४ 'The Devotee poet speaks indeed of Radha and Krishna but under this thin veil he speaks of his own feelings of his own hope and fear of his own joys and sorrows

—Dr S K De Aspects of Sanskrit Literature, p 135

कृष्णपरक स्तोत्र-काव्य है। इसमें कृष्ण के जीवन और उनकी लीलाओं का वर्णन नहीं अपितु भक्त के भावोच्छ्वसित हृदय के उद्गार वर्णित हैं। वैष्णव सिद्धांत को निम्नलिखित श्लोक में बड़े कौशल से निबद्ध किया गया है—

स एष वासुदेवोऽसौ साक्षात् पुरुष उच्यते।
स्त्री प्रायम् इतरत्सर्वं जगद्ब्रह्मपुर:सरम्॥[1]

अर्थात् वह वासुदेव ही केवल साक्षात् पुरुष है और सम्पूर्ण जगत् स्त्रीवत् उससे सम्बद्ध है। लीलाशुक ने इसी गोपीभाव से भगवान् के कृपाकटाक्ष की याचना अनेक श्लोकों में की है। उक्त ग्रंथ का केवल काव्यगत माधुर्य के कारण ही महत्त्व नहीं अपितु मध्यकालीन भक्तिभावना के प्रतिनिधि काव्य के रूप में भी है जिसमें शृंगारिक रूढ़ियों की धर्म के परिवेश में स्थापना की गई है।[2] लीलाशुक के कृष्ण कर्णामृत की ही तरह अनेक स्तोत्र-काव्यों की रचना हुई। जयदेव का गीतगोविन्द यद्यपि स्तोत्र काव्य नहीं है तथापि इसने भक्ति के दूसरे रूप को उन्मीलित किया है जिसका वर्णन पहले हम कर आए हैं। जयदेव के गीतगोविन्द ने मध्यकालीन साहित्य और धर्म-साधनाओं को पूर्ण प्रभावित किया इसमें दो मत नहीं। इसीलिए उक्त ग्रंथ का जितना समादर भक्ति के क्षेत्र में है उससे कम साहित्य के क्षेत्र में नहीं।

एक कवि या एक भक्त के रूप में जयदेव ने इस ग्रंथ की रचना किसी भक्ति पद्धति के आधार पर नहीं की थी। सम्भवतः ऐसा लीलाशुक ने भी नहीं किया कि किसी वैष्णव पद्धति का आधार लिया हो। उसमें कवित्व शक्ति अद्भुत थी फिर भी भक्ति तत्त्व को गौण स्थान इसमें नहीं दिया गया।[3]

एक बात और ध्यान देने की है कि सर्वप्रथम अपने गीत की अंतिम पंक्तियों में अपना नाम देने की प्रथा का प्रारम्भ जयदेव ने ही किया, जिसे 'भणिता' कहते हैं।[4]

---

१ दास गुप्त एण्ड डे : हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० १३४

२ वही पृ० १२६

३ As a poet as well as a devotee, of undoubted gifts Jayadeva could not have made it his concern to compose a religious treatise as perhaps Lilasuka also never did according to any particular Vaisnava dogmatics he claims merit as a poet and his religious emotion or inspiration should not be allowed to obscure his proper claim

Ibid p 154

४ The rhymed and melodious moric metres with their refrain are hardly akin to older Sanskrit metres, while the last line gives what is called the Bhanita—a method not found in earlier

ऐसी परम्परा प्राचीन काव्यों में नहीं पाई जाती। हिन्दी की गीत-परम्परा में [illegible] की परम्परा सम्भवतः जयदेव से ही आई। उसका पूर्ण विकास रीतिकाव्य में पाया जाता है। रीतिकाव्य में तो प्रत्येक गाथा या कवित्त में [illegible] कवि अपना नाम या नामांक जरूर देने लगा।

गीतगोविन्द के अनुकरण पर कई ग्रंथों की रचना हुई और संस्कृत के अनुकरण पर अनेक स्तुति काव्य लिखे गए। जयदेव के बाद [illegible] लिखी गई और पदावलियों मिलती हैं जिनमें पदावलियों में गीतगोविन्द की भी छाया रहती है। इस श्रेणी में भानुदत्त का गीतगौरीपति, प्रभाकर और हरिहर का गीतराघव, [illegible] का 'गीतगिरीश' आदि प्रमुख हैं जिनमें राधा और कृष्ण के स्थान पर हर और गौरी तथा राम और सीता की विलास-लीलाओं का वर्णन किया गया है। इन अनुकरण-प्रधान काव्यों के अतिरिक्त वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रचारक वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ की रचना 'शृंगाररसमण्डन' भी गीतगोविन्द की [illegible] शैली पर आधारित है। बंगाल के चैतन्य-सम्प्रदायानुयायी कवियों की अनेक काव्य-कृतियाँ ऐसी भक्ति-प्रधान [illegible] में विनिर्मित हुई हैं जिन कवियों का आदर्श [illegible] [illegible] कृष्ण-प्रधान [illegible] और [illegible] की गीतावली। [illegible] की पदावलियों में जयदेव के गीतगोविन्द का मानवीकरण और [illegible] पाया जा सकता है।[1]

जयदेव के बाद शृंगार-रसपरक [illegible] [illegible] संस्कृत काव्य-साहित्य ही [illegible] हो गया था। उदाहरणार्थ सन् १३०० ई० में [illegible] [illegible] की रचना [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] हरिवल्लभ पर [illegible] कथा वर्णित है। इसमें [illegible] प्रयोग किया गया है। [illegible] [illegible] और [illegible] उस पर [illegible] सकता है।

जयदेव के बाद [illegible] [illegible] और [illegible] चमत्कार का प्राधान्य पाया जाता है। [illegible] प्रभावित काव्य में भी [illegible] पाई जाती है। [illegible] [illegible] किया गया है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] है। [illegible] प्रसिद्ध

1 [illegible] ... p. 144

"Th[illegible] a c[illegible] the [illegible] of the later Kavya and [illegible] [illegible] and [illegible] [illegible] p. 144

अनुयायी रूपगोस्वामी का पूरा भक्तिकाव्य कृष्ण की शृंगारी भावनात्मक भक्ति का पोषक है जिसका सूत्रपात चैतन्य ने किया था। इन काव्यों में प्रेरणा से अधिक शास्त्राभ्यास, वास्तविकता से अधिक अलंकरण, विश्वास से अधिक शब्द भण्डार और मानवीय भावसम्प्रेषण की अपेक्षा कलात्मकता अधिक है।[1] राधा कृष्ण की शृंगारपूर्ण वृन्दावन लीलाओं से सम्बद्ध रूपगोस्वामी के लगभग साठ स्तोत्र, गीतों और विरुदावलियों का बृहद् संग्रह 'स्तवमाला' के नाम से श्री जीवगोस्वामी ने प्रस्तुत किया है।

मध्यकालीन भक्ति शृंगार का चरम विकास हिंदी-साहित्य की कृष्णभक्ति शाखा में प्राप्त होता है। कृष्णभक्ति का सम्पूर्ण साहित्य उपलब्ध नहीं है फिर भी खोज विवरणों में ऐसे शताधिक ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जिनमें कृष्ण राधा की विकास लीलाओं का वर्णन भक्ति भाव से समन्वित किया गया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रेमलक्षणा भक्ति की स्वीकृति ने इस साहित्य को दूर तक प्रभावित किया। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने रसरूप राधाकृष्ण की भक्ति के विधायक तत्त्वों का विश्लेषण करते हुए लिखा है 'प्रेम की ऐहिक और आमुष्मिक महत्ता प्रदर्शित करते हुए इस सम्प्रदाय की वाणियों में इसका जो विशद प्रचुर वर्णन हुआ है वह इस बात का प्रमाण है कि प्रारंभिक साधना के सिवा नवधा भक्ति का भी प्रेम के आगे कोई महत्त्व नहीं दिया गया है।'[2] विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में प्रेम की स्वीकृति का विश्लेषण करते हुए डा० स्नातक ने लिखा है 'तात्त्विक दृष्टि से इस सम्प्रदाय में प्रेम नित्य मिलन के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखनेवाला एक स्थायी भाव है जो विरह की दशा में भ्रान्तिरहित होकर क्षण भर भी नहीं ठहरता। गौडीय सम्प्रदाय में विरह की भावना पर आश्रित प्रेम को प्रधानता देता है। परकीया भाव के कारण विरह भावना का उसमें स्वतः महत्त्व हो जाता है।'[3] निम्बार्क सम्प्रदाय स्वकीया भाव का समर्थक है अतः वहां मिलन में ही रस-सृष्टि संभव है। वल्लभ सम्प्रदाय में गोपियों के विरह की स्थिति को प्रेम की उत्कर्ष स्थिति कहा गया है।[4] यद्यपि प्रेमलक्षणा भक्ति का बाह्य रूप लौकिक शृंगार के विधान पर आधृत है, पर उसकी भावदशा सर्वथा भिन्न है। डा० स्नातक ने दोनों का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है "शृंगार

---

१ 'As they are deliberately meant to illustrate the many menaces of erotics emotional worship of Krishna made current by the Chaitanya movement they have more learning than inspiration more rhetoric than reality more wealth of words than fervour of faith more artistic than human appeal

—Dr S K De Aspects of Sanskrit Literature p 145

२ डा० विजयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० १२४ ३५

३ संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्य।
एकः स एव संगे त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥ —रूपगोस्वामी पद्यावली

४ डॉ० विजयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य पृ० १३४ ३५

और प्रेम के सांसारिक चित्रों के माध्यम से उन्होंने (रूपगोस्वामी ने) हरिभक्ति का उज्ज्वल एवं दिव्य रूप खड़ा करके शृंगार की भोग वृत्ति का भलीभाँति परिमार्जन भी किया। भक्ति के क्षेत्र में जिस शृंगार को चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्यों ने अवतरित किया था उसका कृष्णभक्ति-परक परवर्ती सभी वैष्णव सम्प्रदायों पर गहरा प्रभाव पड़ा और उसमें शृंगारमयी शैली से रसोपासना प्रवर्तित हो गई। रसिकाचार्यों ने प्रेम और शृंगार का वर्णन करके जो शैली ग्रहण की उसमें प्रेम के प्रतिपादन में काम, मनोज आदि शब्दों का प्रचुर परिमाण में प्रयोग हुआ। साथ ही भाववस्तु के लिए भी स्थूल काम चेष्टाओं का सांगोपांग वर्णन किया गया है।[1] ऐसे वर्णन सामान्य पाठक की दृष्टि से स्थूल ऐन्द्रिय बोध से समन्वित माने जाएँ तो अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। इस परिणाम से सुधी आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल अपरिचित न थे। उन्होंने वैष्णव काव्याभिव्यक्ति की शृंगारी परिणति की ओर संकेत करते हुए लिखा है "कृष्ण के जिस मधुर रूप को लेकर ये भक्त कवि चले हैं वह हास विलास की तरंगों से परिपूर्ण अनन्त सौन्दर्य का समुद्र है। उस सार्वभौम प्रेमालम्बन के सम्मुख मनुष्य का हृदय निराले प्रेम लोक में फूला फूला फिरता है। अतः इन कृष्ण भक्त कवियों के विषय में यह कह देना आवश्यक है कि ये अपने रंग में मस्त रहनेवाले जीव थे, तुलसीदासजी के समान लोक संग्रह का भाव इनमें न था। समाज किधर जा रहा है, इस बात की परवा ये नहीं रखते थे, यहाँ तक कि अपने भगवत्प्रेम की पुष्टि के लिए जिस शृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से उन्होंने जनता को रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखनेवाले विषय वासनापूर्ण जीवों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर उन्होंने ध्यान न दिया। जिस राधा और कृष्ण के प्रेम को इन भक्तों ने अपनी गूढ़ातिगूढ़ चरम भक्ति का व्यंजक बनाया उसको लेकर आगे के कवियों ने शृंगार की उन्मादकारिणी उक्तियों से हिन्दी काव्य को भर दिया।"[2]

मोटे तौर पर रीतिकालीन धार्मिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत जिन वैष्णव सम्प्रदायों की चर्चा की गई है सबमें रसोपासना का प्राधान्य हो गया था। भक्ति में शृंगार-संवलित होकर जिस माधुर्य भावना को प्रश्रय दिया उससे आगे चलकर निराभाव और लौकिक शृंगारधारा का प्रादुर्भाव हुआ। रीतिकाव्य में राधा कृष्ण के नाम के साथ उनकी वे सारी लीलाएँ भी आ गईं जो रूपगोस्वामी आदि की अभिव्यक्ति में व्यक्त हुईं।

---
1. डा० विजयेन्द्र स्नातक : राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० १६१
2. पं० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १२१

तीसरा अध्याय

रीतिकाव्य के उपजीव्य

शास्त्र

हिंदी रीतिकाव्य भारतीय वाङ्मय में चिरंतन काल से निबद्ध शृंगार-वर्णन की परम्परा का स्वाभाविक विकास है। शृंगारिक उक्तियाँ आदिकाव्य से लेकर अब तक प्रभूत परिमाण में पाई जाती हैं। साथ ही शृंगारिक मनोवृत्ति का विवेचन भी प्राचीन ऋषियों से लेकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक आलोचकों तक ने बड़े मनोयोगपूर्वक और वैज्ञानिक पद्धति पर किया है। यद्यपि भारतीय साहित्यशास्त्र का बहुलांश अद्यावधि अनुपलब्ध है, फिर भी जो कुछ ज्ञात है उसी के आधार पर भारतीय आचार्यों की मौलिक विवेचना का अनुमान लगाया जा सकता है।

रीतिकाव्य के उपजीव्य शास्त्रों में तीन कोटि के ग्रंथ आते हैं—कामशास्त्रीय, नाट्यशास्त्रीय और काव्यशास्त्रीय।

कामशास्त्र

शृंगार को रसशास्त्रियों ने आदिरस के रूप में और उसकी मूलवृत्ति काम को प्राचीन मनीषियों ने पुरुषार्थों में स्थान देकर उसके महत्त्व को स्वीकार किया है। सृष्टि का मूल आधार होने के कारण धर्मशास्त्र में भी काम और शृंगार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विधि निषेधों में मर्यादित और संयमित करने के लिए आचार्यों ने कुछ नियमों का निर्माण करके उसके शास्त्रीय आधार को पुष्ट बनाया। ऐसा प्रथम ज्ञात प्रयास महर्षि वात्स्यायन का कामसूत्र है। हिंदू संस्कृति में कामशास्त्र का महत्त्व केवल यौन वृत्तियों की परितृप्ति में योग देने के कारण ही नहीं अपितु ऐहिक और आमुष्मिक सुख शांति के साधनों के निर्देशन के कारण भी है। उसका मुख्य उद्देश्य अविच्छिन्न वंश परम्परा का निर्वाह तथा कलात्मक और परिष्कृत वृत्तियों का मार्ग निर्देशन है।

कामशास्त्र परम्परा

विद्वानों का मत है कि ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में मानव के पथ प्रदर्शन के लिए

गय बहुत ग्रंथ का निर्माण इन सात अध्यायों में किया था जिसमें धर्म, अर्थ और काम के सिद्धान्तों का विस्तृत निरूपण किया गया था। [illegible] [illegible] उपर्युक्त ग्रंथ के [illegible] गह और [illegible] (अवर के बाद) [illegible] [illegible] अध्यायों में सम्यक् निरूपण किया।[1] [illegible] और [illegible] [illegible] (नागर) दत्तक, सुवर्णनाभ, घोटकमुख आदि आचार्यों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की।[2] उपर्युक्त आचार्यों के ग्रंथ सम्प्रति [illegible] है।

जिस समाज का भीतरी कामसूत्र में चित्रित है [illegible] सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक सुव्यवस्था से [illegible] रहा होगा। [illegible] [illegible] कला और विज्ञान का भी अध्ययन प्रस्तुत किया उसमें उसकी [illegible] [illegible] परिचित [illegible] नागरक का जीवन चर्या भी इसमें [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] भारतीय [illegible] प्राचीनकाल से ही प्रचलित होता रहा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कामसूत्र का जो कुछ भी महत्त्व रहा हो किन्तु परवर्ती [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] रुचियों के विश्लेषण में इसका पर्याप्त सहायता [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उल्लेख किया है।[3]

भारतीय साहित्य चिंताधारा को दूसरी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रभावित किया। हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य का [illegible] सामाजिक परम्परा के [illegible] निर्मित परवर्ती [illegible] ग्रंथों ने अवश्य ही प्रभावित किया होगा, ऐसा डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है। उन्होंने लिखा है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आदर्श थे। नायिका के भेद में नायक [illegible] [illegible] [illegible] शृंगार चेष्टा और दक्षिण [illegible] समूह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नागर का वह पुराना आदर्श (उसका अतिरिक्त विलासमय [illegible]) [illegible] [illegible] साधारण गृहस्थ के रूप में परिणत हो गया था।[4]

रीतिकाव्य में जिस अभिजात्य का [illegible] [illegible] होता है उसकी मूल प्रेरणा कामशास्त्र में वर्णित नागरक वृत्ति ही है। रीतिकाल के सामन्त और रीतिकाव्य के नायक (श्रीकृष्ण) मूलतः वात्स्यायन के नागरक की अनुकृति हैं। रीतिकाव्य जिस संस्कृत काव्य परम्परा से प्रभावित है उसमें नागरकत्व का पूरा परिचय प्राप्त होता है। श्रीहर्ष ने दमयन्ती की सखियों की विलास क्रीडाओं का [illegible] [illegible] [illegible] शृंगार रचना, कामपत्र-लेखन, चित्र रचना, रति चिह्न, माल्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] क्रीडा

---

१ महा[illegible]नुचरश्च [illegible] सहस्र [illegible] पृथक् [illegible] प्रोवाच।
वात्स्यायन कामसूत्र (चौखम्भा काशी) १।१।८

२ कामसूत्र १।१।६ १७

३ सीत्कृतानि भणित [illegible] स्निग्ध[illegible]।
हासभूषण[illegible] [illegible] कामसूत्र[illegible] ॥ –शिशु० १ १३६

४ हिंदी साहित्य की भूमिका पृ० १२४

आदि का जसा वणन किया है वह कवि के कामशास्त्रीय कलाओं के सम्यक ज्ञान का परिचायक है।[1] इसी प्रकार कुट्टनियों का भी प्रयोग कामशास्त्रीय आधार पर किया गया है।[2] नल के अत प्रकोष्ठ और शैया का जसा वणन श्रीहष ने किया है उसे कामसूत्र म वर्णित नागरक के अत प्रकोष्ठ और शया रचना से तुलना करने पर पर्याप्त साम्य दृष्टिगत होता है।[3] एस ही अत प्रकोष्ठ का वणन श्रीकण्ठचरित म भी मिलता है।[4]

नागरक वृत्ति

गोष्ठी साहित्य (क्लास लिटरेचर) के आधार कलाविदग्ध, एश्वयशाली नागरकों के निवास स्थान, भवन शयनकक्ष, गृहोद्यान क्रीडा विलास, अष्टयाम रुचि अरुचि आदि का जसा परिचय हम कामसूत्र म प्राप्त होता है उसका प्रतिबिम्ब संस्कृत और हिन्दी के दरबारी काव्यों म आसानी से देखा जा सकता है।

राजशेखर ने आन्ध्र के शातवाहन सम्राटों की सम्पन्नता और विलास प्रियता का चित्रण किया है। उनके आश्रय म पलने वाले कवि भी रीतिकालीन कवियों की तरह उस वातावरण स अछूते न रह सके। उनका भी जीवन स्पन्दन स्वच्छन्द वातावरण की अपेक्षा दरबारी विलासिता से व्याप्त हो गया था। संस्कृत के वृहत्त्रयी (किरात० शिशुपाल० नषध०) म इस प्रकार की विलासिता का वणन प्राप्त होता है।

रसिक सहृदयों ने प्रकृति के सौन्दय म भी जहा तक नारी सुलभ कोमलता और विलास है उसे ग्राह्य माना है। रसात्मक काव्यों म नारी के आंगिक और मानसिक सौन्दय तथा पुरुषों की प्रणय लीलाओं और उनकी कलात्मक अभिव्यक्तियों की अधिकता मिलती है। स्वयं भरतमुनि ने नाट्य कला म कामकला का योग महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार नाट्य या काव्य म कामशास्त्रीय पद्धति पर उपचार विधि होनी चाहिए। सात अधिकरणों स युक्त वात्स्यायन का कामसूत्र रसिक सामन्तों का प्रिय ग्रंथ हो गया। उनकी कामिक वृत्ति के परितोष के लिए सामाजिक और दनिक आमोद प्रमोदों से लेकर राजसिक उत्सवों तक का पूरा विधान उन्हें कामसूत्र म सुलभ हो गया। रति क्रीडा की विदग्धता गूढ भावनाओं के परिज्ञान अवस्थानुसार अवस्था-त्रयी के समीप दूती सम्प्रेषण अभिसरण और चेष्टित इंगित का सम्यक अवगाहन आदि के लिए एकमात्र यह ग्रंथ ही उनका आदश बन गया।

कामसूत्र के द्वितीय अधिकरण म वर्णित साम्प्रयोगिक कर्मों का काव्य म कभी व्यंग्य और कभी वाच्य रूप म प्रयोग होने लगा। मुक्तकों म अमरुक ने रसिकों और परसम्भोगदु:खिता के चित्रणों के व्याज से इनकी मन्द व्यंजना कराई है। विलास कला

१ नषध० ६।१८६ ७१
२ वही ६।३६ ८२
३ वही १८।८ २५
४ श्रीकण्ठचरित १३।२ ६

के कौतूहल के सतर्पण और हरिस्मरण के लिए काव्य रचना करने वाले गीतगोविन्दकार जयदेव ने अपने माधव को कामकला विदग्ध अंकित करके विद्यापति, सूरदास और तमाम परवर्ती रीति कवियों के लिए कामशास्त्रीय कला चर्चा का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

रीतिकालीन कविता अभिनव गुप्त, जगन्नाथ, दण्डी या मम्मट से सम्पृक्त तो ही नहीं, विपरीत रति में भी कामशास्त्र के ग्रन्थों ने रीतिकाल की उत्तरवर्ती प्रवृत्ति के काव्य ग्रन्थों के माध्यम से अवश्य प्रभावित हुई।

बाद के कामशास्त्रीय ग्रन्थों में विभिन्न प्रकरणों में परिवर्तन-परिवर्द्धन होता गया। कोक पंडित ने रतिरहस्य में 'नागरक' का उल्लेख नहीं किया जो कि नागरक युग की समाप्ति का सूचक है। इनकी जिज्ञासायें मे रति रहस्य की सीमा केवल सामन्तों और अभिजात वर्ग तक ही थी। सामान्य जनता जीविकोपार्जन में इतनी व्यस्त थी कि उसे न तो काव्य रचना और न विलास सीखने का ही अवसर मिल पाता था। रति रहस्य के पन्द्रहवें परिच्छेद में जिन औषधियों का उल्लेख है उनसे काम भावना के उद्दाम रूप का धीरे धीरे लोप भी घोषित होता है। पन्द्रहवाँ परिच्छेद कल्याणमल्ल के रति रहस्य की टिप्पणीकृत 'शृंगारवेष्टनीपिका' नामक टीका में उल्लिखित मन्त्र और औषधियों का विस्तार सामाजिक दुर्बलता का द्योतक है। इसके अतिरिक्त देवराज के रतिरत्न प्रदीपिका, अनंगरंग, ज्योतिरीश्वर ठाकुर के पंचसायक, वात्स्यायन के रतिशास्त्र आदि ग्रन्थों में केवल उन्हीं अंगों को ग्रहण किया गया जो सरलतापूर्वक रसिकों के व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ हो सकें।

कामशास्त्रीय ग्रन्थों की चर्चा करते हुए डा० बच्चनसिंह ने लिखा है, "सोलहवीं शताब्दी ईसवी से ही इस देश में बौद्धिक चिन्तन की क्षमता दिखाई पड़ने लगती है। बाद में पहले के निर्णीत मतों को धारण करने की क्षमता भी निःशेष हो गई। अस्तव्यस्त सामन्तीय वातावरण से और आशा भी क्या की जाती? इस ह्रासोन्मुखता ने नारी के प्रति दृष्टिकोण में जो परिवर्तन किया उसका स्पष्ट आभास, रीतिकाल के कुछ कवियों के कामशास्त्रीय ग्रन्थों में दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में आनन्दकवि की कोकमंजरी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका रचनाकाल सं० १७६१ है। यह ग्रन्थ बारह सर्गों में समाप्त हुआ है। इसमें तरुणी लक्षण, रति भेद, काम समय और आसनों का विशद वर्णन है। उक्त कवि के आधारभूत ग्रन्थ 'रतिरहस्य', 'पंचसायक' आदि हैं जो कामशास्त्र की पिछली परम्परा में चलते हैं।"[1]

हिन्दी के मध्यकाल में साहिर अरमान, मुकुन्ददास, रामराइ (आगरा), दसनीश लोपकवि, आनन्द कवि, श्री गोविन्द आदि के कामशास्त्रीय ग्रन्थों पर सामुद्रिक शास्त्र का भी प्रभाव लक्षित होता है। ये ग्रन्थ कामशास्त्रीय परम्परा की अन्तिम कड़ी हैं। समाज में ज्यों-ज्यों सामन्तवादी परम्परा दृढ़ होती गई नागर वर्ग का लय और नागरक वृत्ति की प्रधानता होती गई, काव्य में भी उनके अनुकूल विषय वस्तु प्रस्तुत करने की

---

१ रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना पृ २६

विवशता बढ़ती गई। शृंगारपरक साहित्य के विकास में कामशास्त्रीय नागरकों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। डा० सुशीलकुमार ने लिखा है कि केवल दरबारी वातावरण ने ही नहीं अपितु नगर में रहनेवाले अन्य परिष्कृत रुचि के नागरकों ने भी इस साहित्य को प्रोत्साहित किया। वे कीथ के साक्ष्य पर कहते हैं कि जिस प्रकार ब्राह्मण और उपनिषद ग्रंथों को धर्मोपदेशक और दार्शनिकों ने प्रोत्साहित किया उसी प्रकार नागरकों ने धर्मोपदेशक और दार्शनिक शृंगारपरक काव्य को प्रोत्साहन दिया। वे आगे कहते हैं कि वात्स्यायन के प्रसिद्ध ग्रंथ में जिन प्रेम कलाओं और प्रणय-व्यापारों की विवेचना एवं प्रतिष्ठा है उनको तब रसशास्त्र का आधार ग्रहण करके ही शृंगारपरक काव्यों की रचना हुई।[1] अन्य समसामयिक और पूर्ववर्ती कामशास्त्रीय ग्रंथों से रीतिकालीन कवियों ने पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की इसमें सन्देह नहीं। बिहारी और देव की रचनाओं में काम शास्त्रीय प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। आगे के अध्यायों में इनके प्रभावों का यथास्थान निर्देश किया गया है। यहाँ कामशास्त्रीय परम्परा में आनेवाले दामोदर गुप्त के कुट्टनीमतम की चर्चा अपेक्षित है।

कुट्टनीमतम—रीतिकालीन काव्य परम्परा को प्रभावित करने वाले काम शास्त्रीय ग्रंथों में कश्मीर के शासक जयापीड (७७९–८१३ ई०) के प्रधानमंत्री दामोदर गुप्त के उक्त ग्रंथ का महत्त्व अक्षुण्ण है। रीतिकाव्य में गणिका या सामान्या का निरूपण प्रायः सभी रस और नायिका भेद निरूपक ग्रंथों में किया गया है। ऐसी नायिका के वर्णन में वणिक शास्त्र का योगदान तो है ही साथ ही शृंगार के विविध पक्षों के निरूपण में भी इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है। युवक और युवतियों के यौन सम्बन्ध स्थापन में कुट्टनियों का विशिष्ट स्थान है। रीतिकाव्य की दूतियों में कुट्टनियों के गुण धर्मों का समावेश हो गया था। नागरक-वृत्ति में भी इन कुट्टनियों से पर्याप्त सहायता ली जाती थी। प्राचीन साहित्य में किसी न किसी रूप में इनकी चर्चा अवश्य पाई जाती है। वित्तमात्रोपाधिक प्रणय होने से वेश्याओं की काम चेष्टाओं को रसशास्त्र अपने आभोग से बाहर चाहे कर दे किन्तु काव्य-ग्रंथों में रसिकता का जो रूप मिलता है उसमें काम लिप्सा और वासनात्मक प्रेम की चर्चा बहुत कुछ वेश्याओं की उक्त चेष्टाओं से अनुप्राणित है।

कुट्टनीमतम' के शृंगारिक वर्णनों को रीतिकाव्य के स्रोत के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

कुट्टनीविकराला मालती के रूप की प्रशंसा करती हुई यद्यपि नखशिख के परम्परित उपमानों का प्रयोग करती है तथापि उसका संयोजन बहुत ही रमणीय है।[2] इस ग्रंथ में मालती की विरह-व्यथा[3] तथा शीतोपचार की व्यर्थता[4] और सौन्दर्य तथा

---

१ डॉ० एस० के० डे : ए आई० के० एन्ड ई० गल, पृ० १८०
२ दामोदर गुप्त : कुट्टनीमतम्, श्लोक ४४–५३
३ वही, श्लो० ९९–१००
४ अपसारयघनसारं कुरु हारं दूर एव कि कमलैः
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला ॥
—कु० म० १०२

उसके उद्दीपक प्रभावों का विस्तृत वर्णन है। मालती को विलास चेष्टा की शिक्षा देती हुई विकराला कहती है 'वनिता को थोड़ा बिना प्रयत्न के अपनी बाहु ऊपर, बाहुमूल दोनों स्तन प्रकट दिखाकर भ्रूक्षेप से उसकी आशों से ओझल हो जाना। बिहारी आदि रीतिकालीन कवियों ने नायिकाओं की उक्त विलास चेष्टा का अच्छा चित्रण किया है।[1] रतिक्रीडा में जिन जिन चेष्टाओं और उपायों से मालती को बनिता में कामोद्दीपन करने की शिक्षा देती है रीतिकालीन कवियों ने उन उन चेष्टाओं का प्रसगानुकूल उपयोग किया है।[2] नायिका के रूप वर्णन में कवि ने श्लेषानुप्राणित विरोधाभास का जैसा निर्वाह किया है रीतिकाल के चमत्कारप्रिय कवियों के भी ऐसे वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।[3] सखी के नायक के प्रति उक्ति रीतिकाव्य की सयन्न करानेवाली दूतियों की उक्ति में प्रतिध्वनित भी होती है।[4]

रीतिकालीन चेष्टाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुए दामोदर भट्ट ने रीतिकालीन कवियों के लिए सम्भोग शृंगार वर्णन में चेष्टाओं के निरूपण की पर्याप्त प्रेरणा दी होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है।[5] मानिनी को समझाती हुई सखी कहती है अरी मानिनी पैरों पर गिरे प्रिय को उठा हुए प्रेम का बंधन भी अधिक खींचने पर टूट जाता है।[6] प्रिय के बिना यौवन यौवन के बिना प्रिय और शास्त्रीय रति सुख के बिना यौवन और प्रिय दोनों व्यर्थ हैं।[7] इसी प्रकार इसमें उपवन विहार जल विहार वलासिक चेष्टाओं[8] भ्रमर और पुष्प पर की गई अन्योक्तियाँ[9] सकर मार्ग में प्रिय से असम्भावित टक्कर[10] सुरत सुरतान्त[11] आदि के वर्णन शृंगार वर्णन परम्परा की महत्त्वपूर्ण कड़ी है जिनका निर्वाह रीतिकाल में भी किया गया है।

नाट्यशास्त्र

रीतिकाव्य के शास्त्रीय आधार ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र का स्थान रस और अलकार

---

१ कुट्टनीमतम् १३६ तुलनीय—बिहारी २६६ ३८४
२ वही १५४ ५७
३ वही २८४ ९६
४ वही २६५ ६६
५ वही ४७१ ७६
६ उत्थाप्य मानरसमन्थित चरणावनिपतित नृपम्।
प्रणयस्य तु टयति सुस्न्निग्धपि प्रमातवन मद ॥ —कु म ६७२
७ कु म ६७७ तुलनीय—
मरमिज बिन मर सर बिन सरमिज की सरमिज बिन सूर।
जौवन बिन तन तन बिन जौवन की जौवन पिय दूर ॥ —बि प १९।२
८ कु म ६६५ ७६ तथा ६८४ ६७
९ वही ७१३ १४ ७२८
१० वही ८२२ तुलनीय—बिहारी १४१
११ कु म ७४ ॥

दोना के मूल प्रेरणा-स्रोत होने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। भरतमुनि ने रसविकरण और भाव -रजना के अन्तगत रस और भाव के स्वरूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा रसा के वर्णों और देवताओं का निर्देश किया है। सातवें अध्याय म रस के उपागो की अभिव्यक्ति रगमच पर किस प्रकार हो इसका विवरण उपस्थित किया गया है। आठवें अध्याय से लेकर सत्रहवें अध्याय तक अभिनय मे प्रयुक्त होने वाली विविध आगिक चेष्टाओ का वणन है। सत्रहवें अध्याय म वाचिक अभिनय के अन्तगत अलकारो का निर्देश किया गया है। तईसवें अध्याय म वर्णित आभूषणा म ■ वस्तुओ का प्रयोग रीति काल तक आते आते लुप्त हो गया था फिर भी कुछ आभूषणो का वणन पाया जाता है। चौबीसवें अध्याय म सामा अभिनय के अन्तगत सत्त्वो का विवेचन किया गया है। इसी सदभ म नारी पौरुष्य की अभिवृद्धि करने वाले अगज सहज और अयत्नज अलकारो की व्याख्या की गई है। भरतमुनि ने नारी की शारीरिक कमनीयता भाव हाव और हेला आदि का वणन अभिनय की दृष्टि से किया है किन्तु परवर्ती रस निरूपक आचार्यों ने सामान्यत नायिकाओ के उद्दीपक तत्त्वो के रूप म और कुछ आचार्यों ने आलम्बन के रूप म विवेचन किया है।[1] चौबीसवें अध्याय म नायिका की दश विरह दशाओ शीतोपचार, दूतिया और आठ प्रकार की नायिकाओ का वणन किया है।

भरतमुनि के द्वारा प्रस्तुत रसविषयक सामग्री का ही परवर्ती आचार्यों ने उसी का विश्लेषण विवेचन किया। इस शास्त्रीय प्रयास के फलस्वरूप रस, भावादि का पूर्ण विवेचन हुआ। भरत ने नाटय तत्त्वो म रस को प्रमुख माना। अभिनय (सात्विक वाचिक और आगिक) को उसका व्यजक या उपकारक सिद्ध किया है। धीरे धीरे यही नाटयरस काव्यशास्त्र म स्वतन्त्र विषय के रूप म स्वीकृत हो गया।

समाज म रसास्वादन की प्रवृत्ति विलासिता और कामुकता की वृद्धि के साथ ही आचार्य भरत के द्वारा निरूपित नाटयशास्त्रीय नायिकाओ का स्वतन्त्र रूप से प्रसग्य भेदो म विकास हुआ। दशरूपककार ने नाट्यधर्मानुसार ही नायिकाओ का विवेचन किया है कि तु शृगारतिलककार ने अथ ग्रन्थ के अतगत इसका स्वत त्र विवेचन किया है जिसम रीतियुगीन नारी के सहज गुणधम—कोमलता रमणीयता कामिनीत्व निवलता और विदग्धता के प्रारूप मिलते हैं। प० करुणापति त्रिपाठी के शब्दो म 'शृगारतिलक म इसी विलासानुप्राणित शृगारी मनोरजन का राग अधिक प्रखर और प्रमुख दिखाई देता है। इस प्रेरणा के फलस्वरूप ही काव्य म रस निरन्तरता (शृगार रस की पुष्कलता) को प्रमुखता दी गई जिसके बिना काव्य विद्वद्गोष्ठी म उबाने वाला हो जाता है।[2] वास्तव म स्पष्टत नायिका भेद के उद्देश्य म पूर्ण परिवतन

१ देखिए चतुथ अध्याय शृगार और उसके विविध पक्ष।

२ तस्मादन्न कतव्य काव्य रसनिरन्तरम्।
अन्यथा शास्त्रविन्निगोष्ठ्यां तत्स्यादुद्वेगदायकम्॥ —शृगार तिलक १।८
सस्कृत म नायिकाभेद और रसिकजीवनम् ना प्र प २ १६ अ २ पृ ११४

हो गया।[1]

रुद्रभट्ट ने शृंगारतिलक में शृंगार की महत्ता का प्रतिपादन करने से पहले दृश्य काव्य में तत्त्व को श्रव्य काव्य में विवेचन करने का संकल्प किया है।[2]

नाट्यशास्त्रीय परंपरा में शारदातनय का 'भावप्रकाशन' महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए रामास्वामी शास्त्री ने लिखा है कि 'नाट्यशास्त्र और दशरूपक के मध्य शताब्दियों में कोहल, मातृगुप्त, सुबंधु और दूसरे प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रियों के विशाल साहित्य के उद्धरण भावप्रकाशन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलते।'[3]

भावप्रकाशन में भरत के परवर्ती नाट्यशास्त्रीय कोहल इत्यादि का शास्त्रीय निरूपण मिलता है। इसमें भरत के नाट्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन और उनके परवर्ती आचार्यों के मतों का निरूपण किया गया है। धनंजय ने अपने दशरूपक में भरत के कुछ अध्यायों का विवेचन प्रस्तुत किया है जिनका सीधा संबंध नाटक और रस से रहा है जबकि शारदातनय, विश्वनाथ और शिंगभूपाल ने उनकी अपेक्षा विस्तृत दृष्टिकोण अपनाया है। शारदातनय ने भावप्रकाशन में नाट्यशास्त्र के छत्तीस अध्यायों की विषय वस्तु को चार विभागों—भाव, रस, नाट्य संबंध और रूपक भेद में समाहित कर दिया है। नाट्यशास्त्रीय प्रभावों का आगे भी निर्देशित किया जाएगा। यहाँ दिशा मात्र कर दिया गया है।

काव्यशास्त्र

काव्यशास्त्रीय परंपरा और हिंदी रीतिकाव्य पर उसका प्रभाव अनेक विद्वत्तापूर्ण शोधप्रबंधों के द्वारा निरूपित हो चुका है। प्रस्तुत सन्दर्भ में पिष्टपेषण से बचने के लिए उसका उल्लेख अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रथम अध्याय के प्रारंभ में ही कर दिया गया है फिर भी शृंगार रस और उसके विविध पक्षों के विवेचन में काव्यशास्त्रीय आधार का समुचित निर्देश आगे के अध्याय में किया जाएगा।

रीतिकाल में उपजीव्य शास्त्रों का उल्लेख करने के उपरांत प्रमुख काव्यों का विवरण उपस्थित किया जाएगा। जैसा कि पहले बताया जा चुका है रीतिकाल का काव्य पर्याप्त उर्वर रहा है। अतएव संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और रीतिकाल के पूर्व की हिंदी काव्य धाराओं का रीतिकाव्य के भाव और कलापक्ष के संवर्द्धन में कितना योगदान रहा है इसका भी इसमें उल्लेख किया जाएगा।

---

१ देखिए चतुर्थ अध्याय नायिका भेद और स्वरूप।

२ प्रायो नाट्यं प्रति प्रोक्ता भरताद्यै रसस्थितिः।
यथामति मयाप्येषा काव्यं प्रति निगद्यते॥ १।५

३ द० भूमिका रामस्वामी शास्त्री भावप्रकाशनम्, पृ० ७

काव्य

रीतिकाव्य के उपजीव्य ग्रन्थों में वेद पुराण और संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के महाकाव्य खण्डकाव्य मुक्तक ही नहीं अपितु नाटक चम्पू और कथा कृतियों का भी उल्लेखनीय महत्त्व है। सामान्यतः कोई भी वर्णित साहित्य ऐसा नहीं जिसमें शृंगार रस की प्रवहमान धारा थोड़ी बहुत कम से कम रसमिक्त छींटे न हों।

पुराण काव्य

भारतीय साहित्य को प्रेरणा प्रदान करनेवाले प्रमुख ग्रन्थों में श्रीमद्भागवत और अन्य पुराण एवं संहिता ग्रन्थों का महत्त्व सर्वपूर्ण है। भक्ति का समग्र साहित्य तो इन पुराणों और संहिताओं से प्रभावित है ही उसकी मधुरोपासना वाली धारा पर भी इनका प्रभाव पाया जाता है। भारत में भक्तिभावना के विकास और संवर्द्धन में श्रीमद्भागवत और अन्य वैष्णव पुराणों का असन्दिग्ध महत्त्वपूर्ण होने के कारण उनकी चर्चा वैष्णव कवियों की भक्ति की शृंगारी परिणति के अन्तर्गत पहले ही विस्तारपूर्वक की जा चुकी है। सम्प्रति शृंगार रस के क्रमिक विकास और रीतिकाव्य के स्रोतों के रूप में इनका परिचय दिया जाएगा।

यहाँ ध्यान रहे कि सभी पुराणों और पौराणिक संहिताओं का समावेश करने से अध्याय के कलेवर में अनावश्यक अतिविस्तार हो जाएगा अतः कुछ प्रमुख पुराणों का संक्षिप्त संकेत मात्र करके सन्तोष किया जाएगा। संहिताओं में यद्यपि पांचरात्र एवं सात्वत संहिताओं का महत्त्व शृंगारपरक अभिव्यक्तियों की दृष्टि से कम नहीं है फिर भी यहाँ केवल गर्गसंहिता का ही परिचय दिया जा सकेगा। प्रवृत्ति निर्देश के लिए यहाँ कुछ विशिष्ट पुराणों का परिचय द्रष्टव्य होगा।

श्रीमद्भागवत

भारतीय वाङ्मय का श्रीमद्भागवत प्रमुख उपजीव्य रहा है। इसके आधार पर अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना हुई। पं० बलदेव उपाध्याय ने लिखा है भारतीय धर्म के विकास में भागवत का व्यापक प्रभाव किसी भी विज्ञ आलोचक से छिपा नहीं है परन्तु भारतीय काव्य के कोमल विकास तथा प्रचुर प्रसार में भी भागवत का नितान्त स्मरणीय प्रभाव आलोचकों की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता है। यह तो निर्विवाद है कि भारतीय साहित्य में जो मधुरिमा सरलता तथा हृदयावर्जकता है वह वैष्णव धर्म की देन है रसावेश से प्रत्यक्ष निकेतनभूत रसिक शिरोमणि श्यामसुन्दर की ललित लीला तथा लावण्यमय विग्रह को मधुर झाँकी करानेवाला यह भागवतपुराण भारतीय साहित्य के गीतिकाव्यों तथा प्रगीत मुक्तकों का अक्षय स्थान है जिसकी माधुर्य भावना का ग्रहण कर कृष्णभक्त कवियों ने अपने काव्य में लालित्य सरलता तथा हृदयानुरंजकता का पुट देकर उन्हें शोभन तथा हृदयावर्जक बनाया है।[1] श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध तो

---

१ पं० बलदेव उपाध्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ११४ १५

शृंगार वर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण है ही जयदेव की कोमलकान्त पदावलियाँ श्रीमद्भागवत के ही आधार पर निर्मित सी लगती हैं। कृष्णभक्त कवियों ने भक्ति के परिवेश में शृंगार की छटा का दर्शन इसी ग्रंथ में किया होगा। इसमें राधा का उल्लेख नहीं है। संभवतः यह गौडीय वैष्णवों की देन है। गोपी कृष्ण कि विलासलीला जलक्रीडा और शरद ऋतु की उद्दीपन छटा का वर्णन[1] करने के उपरान्त गोपिकाओं का प्रेम वर्णन किया गया है[2] जिसके प्रतिबिम्ब भक्तिकाल और रीतिकाल के काव्य में पूर्वानुरागजन्य अभिलाष दशा के अंकन में मिलते हैं।[3]

श्रीकृष्ण को परब्रह्म और गोपिकाओं को रागिनियों और रूपियों का अवतार भले ही माना जाय परन्तु यहाँ उनका जो स्थूल रूप सामने आता है वह रीतिकाल की नायिका के कामिनीत्व का प्रतिनिधित्व करता है। श्रीमद्भागवत की गोपियाँ का विरह रीतिकालीन विरहिणियाँ (प्रोषितपतिकाओं) के समान ही है। उनके स्मृति संचारी[4] की छाया बिहारी की 'मन ह्वै जात अजौ वहै वा यमुना के तीर' वाली उक्ति में पाई जाती है।

इन प्रेम विह्वला गोपिकाओं की अभिलाषा को श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार पूर्ण किया वह संयोग शृंगार का अच्छा उदाहरण है।[5] द्वारिका के कृष्ण का वर्णन सामन्ती वातावरण से पूर्णतः प्रभावित है।[6]

श्रीमद्भागवत के शृंगार और उसके विविध पक्षों के निरूपक स्थलों का रीतियुगीन कवियों ने अपने परिवेश के अनुसार अनेक प्रसंगों में वर्णन किया है जिसका उल्लेख अगले अध्याय में यथास्थान किया जाएगा।

इतर पुराण

श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त हरिवंश पुराण और विष्णु पुराण का महत्व प्राचीनता की दृष्टि से मान्य है। इन पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण के लीला विहारी रूप का संवर्द्धन अष्टछाप और अन्य भक्ति सम्प्रदायों के कवियों की कृतियों में विशेष रूप से उभरकर सामने आया है। गोपी कृष्ण की मधुमयी चेष्टाओं और लीलाओं को कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय में और भी व्यापकता मिली। उनके संयोगकालीन हाव भाव अष्टयाम रासलीला दानलीला और अनेक प्रकार की छद्म लीलाओं का वर्णन भक्ति भाव भावित कवियों ने विस्तार के साथ किया है। रीतिकालीन कवियों के मुक्तक छन्दों में

---

१ भागवत १०।२६।४६ १०।३३।२४
२ वही १०।२२।४
३ गर्गसंहिता २।१३।१६ २६ रास पंचाध्यायी १।१४ सूरदास सूरसागर १०।७८१ ८३ भा का ४।१३३ स्नेह वरवना भ ११ मतिराम रसराज ६३
४ भागवत १०।४६।२१ २२
५ श्रीमद्भागवत १०।३२।१ २६
६ भागवत १०।५३।२१ २२ १०।६०।७११ १०।३३।१७

यत्र-तत्र एसी चेष्टाओं एवं लीलाओं का निर्देश मिलता है। संयोग वणन में कृष्ण की पुराण-वर्णित य लीलाएँ रूढि सी हो गई थी। इसी प्रकार वियोग वणन में भी गोपियों की दशा का जैसा निरूपण इन पुराणों में है रीतिकालीन कवियों के लिए व्यापक पृष्ठ-भूमि के रूप में गृहीत हुआ।

पद्मपुराण के उत्तर खड में कृष्णलीला का सक्षिप्त वणन मिलता है पर वह अत्य त परिचयात्मक है। ७७वें अध्याय में एक तपस्वियों का वणन है जो तप के फल स्वरूप कृष्ण की सखियाँ हुए। इन लोगों ने तपस्या की अवधि में कृष्ण की जिस मूर्ति का ध्यान किया वह परम शृगारिक थी। उदाहरणस्वरूप हरिधाम मुनि का ध्यान लिया जा सकता है व रम्य वृ दावन में माधवी मडप में सुन्दर पल्लवों के विस्तर पर लेटे हुए कृष्ण का ध्यान करते है जो कभी कामातुर होकर रक्तनेत्रा चलनयिनी के कनोज द्वय से अचल विपुल उर का आच्छादित किए हुए तप्त ओठों से उनके कपोल चूमते हैं और हास एव हर्ष से समर्पित होकर प्रिया को बाहुओं में भर लेते है।[1]

पद्मपुराण में वृ दा से नारदजी कृष्ण की अष्टयाम लीला के विषय में पूछते हैं। वृ दा उनसे गोपों के द्वारा प्रातःकाल पाक निर्माण का वणन करती है। श्रीकृष्ण स्नानादि से निवृत्त हो भोजन करते हैं। भोजनोपरात वे गायों को लेकर वन में चराने जाते हैं। वन में पहुँचकर सखियों के साथ थोडी देर क्रीडा करते हैं। तदुपरात उन्हें धोखा देकर प्रिया को देखने की लालसा से सकेत-स्थल की ओर चल देते हैं। इधर राधा भी कृष्ण को वन में गया हुआ जानकर अपने गुरुओं से पूजा के लिए पुष्प लाने के व्याज से अनुमति लेकर प्रियमिलन की अभिलाषा से वन में आ जाती है। राधा और कृष्ण दोलाक्रीडा करते हैं। वहा उनकी वशी कहीं गिर जाती है और सखियाँ उसे चुरा लेती हैं।[2] इस प्रकार वसन्त के मादक वातावरण में श्रीकृष्ण और गोपियाँ हास परिहास करती है। उस समय के अनुकूल अनेक क्रीडाओं का आनन्द लेते हुए वे थक जाते हैं। थकान को मिटाने के लिए कृष्ण मधुपान करते है। मधुमत्त होकर श्रीकृष्ण काम के वशीभूत हो जाते हैं और रमण की इच्छा में कुज में प्रवेश करते है। वहा से उसी प्रकार क्रीडा करते है जैसे हथिनियों में गजराज करता है। तदुपरात जलक्रीडा के लिए सरोवर में जाते हैं। जल-क्रीडा के बाद वे फल, ताबूल आदि ग्रहण करते हैं। राधा भी कृष्ण का उच्छिष्ट भोजन करके शय्या निकेत में जाती है और चर्वित तांबूल का चवण करती है। थोडी

---

१ ध्यायी वृन्दावनरम्ये माधवी मण्डपे प्रभुम्।
रत्तानशायिन चारु पल्लवास्तरणोपरि॥
कदाचि त्कामातवन्नया रक्तनेत्रया।
कर्णा जयुगमाच्छाद्य विपुलोर स्तन मुहु॥
सचुम्बमान गण्डान्तस्तप्यमानवरच्छदम्।
कलयन्त प्रियां दोर्भ्यां मन्नाम समुदा न्मनाम॥ —पद्म पाताल खण्ड, ७२। १६ १९

२ पद्मपुराण पाताल खंड ८।४ ५

देर निद्रा सुख प्राप्त करने के पश्चात् कृष्ण स्निग्ध आसन पर बैठकर द्यूत क्रीड़ा करते हैं। चुम्बन और आलिंगन की बारी लगती है।[1] कभी कृष्ण के ब्राह्मण वेश धारण कर राधा के धाम सूर्यगृह में जाने की भी उल्लेख है।[2] गोधूली-बेला में कृष्ण गायों को लेकर वंशी बजाते हुए घर लौटते हैं। रात्रि में भोजन आदि से निवृत्त हो श्रीकृष्ण सभागृह को जाते हैं। राधा की सखियाँ उनका मंडन करके प्रिय के पास अभिसरण कराती हैं।[3] यहाँ अवसर के अनुकूल राधा शुक्ला या कृष्णाभिसारिका के योग्य वस्त्राभूषण धारण करती है।[4] वहाँ राधा और कृष्ण दो याम रात्रि तक विविध प्रकार से विहार करते हैं। अन्त में सखियों से सेवित वे लतागृह में सुखपूर्वक सोते हैं।[5] ऐसा अनुमान है कि उक्त राधा कृष्ण क्रीड़ा सम्बन्धी अंश प्रक्षिप्त है। कुछ भी हो इतना तो निश्चित है कि मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के पूर्व ही इसकी रचना हुई होगी।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण के प्रेमी स्वरूप को पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त की। पूर्व पुराणों में जिन शृंगार प्रवण लीलाओं का संकेत मात्र है उनका इस पुराण में सविस्तार निरूपण किया गया है। साथ ही अनेक नवीन प्रसंगों की उद्भावना द्वारा इस अंग को सर्वांगपूर्ण बनाने का भी प्रयास किया गया है। श्रीमद्भागवत में आए ऐसे प्रसंगों की चर्चा अन्यत्र की जाएगी।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में श्रीकृष्ण की वृन्दावनलीला का विस्तृत उल्लेख किया गया है। यद्यपि इसमें श्रीकृष्ण और राधा के देवत्व का स्पष्ट संकेत है तथापि उनकी लीलाओं में स्थूल मांसलता की कमी नहीं है।

अनुकूल नायक की भाँति श्रीकृष्ण राधा के साथ जल क्रीड़ा करते हैं उनका वेणीग्रथन अलक्तकरंजन उनके लिए मालाग्रथन तथा उनके द्वारा चर्वित ताम्बूल का चर्वण भी करते हैं।[6] श्रीकृष्ण का विरजा के साथ विपरीत रति का भी वर्णन किया गया है।[7] राजा सहस्राक्ष के बलासित प्रसंगों में अपनी रानी के साथ उनका विपरीत रति,

---

१ पद्मपुराण पाताल खंड ८१५ ७१
२ वही ८३।७८
३ वही ८३।८ ६७
४ सितकृष्णनिशायोग्यवेषा याति सखीयुता। पद्म ८३।६६
५ पद्म पाताल खंड ८।१ १ ५
६ जलक्रीडाप्रकुर्वन्त राधया सह कुत्रचित।
राधिकाकबरीभार कुर्वन्त कुत्रचिद्वने॥
कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम।
राधाचर्वितताम्बूल गह्णान्त कुत्रचिन्मुदा॥
पश्यन्त कुत्रचिद्राधा पश्यन्ती वक्रचक्षुषा।
दत्तवन्त च राधाय कृत्वा मालाच कुत्रचित॥ ब्रह्मवैवर्त ४।२१।१८४ ८६
७ ब्रह्म० ४।३।१५

नखक्षत और दन्तक्षत आदि का वर्णन किया गया है।[1] राधा-कृष्ण के परस्पर चर्वित ताम्बूल के आदान प्रदान और अधर पान का ही वर्णन इस पुराणकार ने नहीं किया है अपितु नखदन्तक्षत में कंचुकी का बिगरना पुनः मण्डन करना राधा का कृष्ण की मुरली छीनना और विपरीत रति आदि का भी वर्णन किया गया है।[2]

रासक्रीडा के अनन्तर कृष्ण और गोपियों के संयोग शृंगार का विस्तृत वर्णन हुआ है।[3] इस प्रसंग में केवल राधा के साथ ही आलिंगन चुम्बन और रतियुद्ध नहीं हुआ अपितु अन्य गोपिकाओं की भी उद्दीपक चेष्टाओं का प्रदर्शन वर्णित है।[4] पुराणकार के ऐसे स्थल रीतिकाव्य की विलासिता को भी पीछे छोड़ देते हैं।[5]

इन पुराणों के अतिरिक्त गर्गसंहिता में भी राधा-कृष्ण की विलास-लीलाओं का विस्तार के साथ वर्णन मिलता है। यमुना-तट और कुंज का उद्दीपक वर्णन[6] भाण्डीरवन में श्रीकृष्ण द्वारा राधा का शृंगार किया जाना[7] ललिता विशाखा का सौंदर्य[8] कृष्ण द्वारा चित्रांकन राधा का कृष्ण का चित्र देखकर उन्हें कृष्ण के प्रति अनुरक्त करना,[9] राधा का स्वप्न में कृष्ण को देखना[10] पूर्वानुराग[11] प्रत्यक्ष स्नान[12] राधा की दूती का कृष्ण से राधा का विरह निवेदन करना[13] आदि ऐसे अनेक प्रसंगों की उद्भावना संहिताकार ने की है जिनसे राधा कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का विस्तार मिला है। वृषभानु के इष्ट आराम की लताओं पुष्पों और फलों का जैसा वर्णन यहाँ है रीतिकाव्य

---

१ ब्रह्म ४।११।१८

२ वही ४।१५।१४ १६१

३ तदनन्तर तत्र सकाम सुरतोन्मुख । सुष्वाप राधया साधं रतितल्पमनोहरे ॥
शृंगाराष्टप्रकारश्च विपरीतादि किम । नखदन्तकराणाञ्च प्रहारश्च यथोचितम ॥
कामशास्त्र य दृष्टाप्य बन्धनाष्टविध परम । कामिनीनां मनोहारि चकाररसिकेश्वर ॥
अंगरागानि प्रयग प्रयगानि स्मरातुरा । चकाराक्रमेण तत्र कामुकीना सुखावहम् ॥
शृंगारकुशलौ तौ तु कामशास्त्र सु पण्डितौ । रतियुद्ध विरामश्च न बभूव द्वयोरपि ॥
—ब्रह्म ४।२८। ७२ ७६

४ मल्लिका मकरन्दैश्च मन्दचन्द्र स्नानान्तरम् । काचिच्छ्रान्ति सुललिता वासयामास कामिन ॥
प्रेम्णो स्वामिने कामात् प्रमत्ता हेतवे । काचित्काचिन्नमाकृष्य नग्नाकृत्वा सु कामन ॥
—ब्रह्म० ४।२८।८८ ८९

५ ब्रह्म ४।२८।६८ १४८ ४।२६।७८ १८

६ गर्गसंहिता २।१२।२४ २।१६।४४ ४६

७ गर्गसंहिता २।१६।४९

८ वही २।१२।६ १ ३४ ३६

९ वही २।१२।११ १३

१० वही २।१२।१४

११ वही २।१२।१५ १६ २

१२ वही २।१२।१६

१३ वही २।१२।२५ २७

[illegible] है।[1] [illegible] है।[2] [illegible] है। [illegible] है।[3] [illegible] है। [illegible] है।[4] [illegible] है।[5] [illegible] है।[6] [illegible] है।[7] [illegible] है।[8] [illegible] है।[9] [illegible] राधा [illegible] है।[10] [illegible] है।[11] [illegible] राधा की विरहाग्नि [illegible] है।[12] [illegible] राधा [illegible] है।[13] [illegible] राधा की [illegible] हैं –

व्यापोऽपि हृत्वाहि मृगान स्मरति स्वरणातुर ।
कटाक्ष स्वप्रिया हृत्वा निर्मोही न स्मरत्यहो[14] ॥

१ गर्गसंहिता २।१७।१३ १८
२ वही २।१७।१ १८
३ वही २।१७।३ २।१६।३८ २।१७।३८ २।१६।२० २।१८।१६
४ वही २।१८।३४
५ वही २।१६।८ २।२ ।१५
६ वही २।२०।६ ११
७ वही २।२३।६ ३०
८ वही ४।३।३ तुलनीय– श्रीमद्भागवत १ ।२२।८ तथा रहीम [illegible] ११
मतिराम रसराज छं ५
९ गर्गसंहिता ४।४।१०
१० वही ४।४।११
११ राधा पत्र समहीत्वा शिरो नेत्र तथा च हृत् ।
निधाय वाचयित्वा तस्मात्वा तत्पात्पत्रजम् ॥ गर्गसंहिता ५।१४।१
तथा–कर [illegible] चमि चढ़ाय सिर उर लगाय भुज भटि।
नहि पाती पिय की लखति बांचति धरति समटि ॥७६॥ बिहारी
१२ गर्गसंहिता ५।१५।३
१३ वही ५।१५।८ १
१४ वही ५।१७।५ तुलनीय–घनानन्द घन आनन्द-कवित्त छं ६२

संयोग में जिस कुंज में कृष्ण के साथ राधा विहार किया करती थी, अब उसी की कथा बालाओं से सुनती है।[1] कवि ने राधा के अभिलाष, चिन्ता, गुणकथन आदि विरह-दशाओं का विशद वर्णन किया है।[2] साहित्य में विरह की [illegible] का वर्णन रूढ़िवत् प्रयुक्त होता रहा है। पुराणकार ने भी यहाँ उसका वर्णन करके सारी रूढ़ियों का पालन किया है। रीतिकाव्य में साहित्य-परंपरा के अनुसार विरही या विरहिणी की पत्र-लेखन में असमर्थता वर्णित है। प्रस्तुत संहिता में भी गोपी के पत्र-लेखन की असमर्थता ऐसी प्रकार वर्णित है।[3] आगतपतिका के रूप में राधा के भावों का, उसकी शारीरिक चेष्टाओं और हर्षोल्लास तथा शुभसूचक शकुनों का वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। संहिताकार ने यहाँ आगतपतिका का वर्णन परंपरा के ही अनुसार किया है।[4]

इस प्रकार काव्य साहित्य के संयोग और वियोग-वर्णन की रूढ़ियों का निर्वाह गर्ग [illegible] कृष्ण की लीला का, उनके अलौकिक चरित्र का वर्णन करनेवाले पुराण और संहिताओं में भी लगभग उसी रूप में प्राप्त है जैसा कि परवर्ती रीति काव्य में। इन स्थलों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी के रीतिकाल का शृंगार वर्णन उन समस्त काव्य रूढ़ियों और परंपराओं से अनुप्राणित है जिनका विस्तार वैदिक साहित्य से लेकर पौराणिक और लौकिक साहित्य तक फैला हुआ है। यदि उक्त ग्रंथों का सम्यक् विश्लेषण किया जाय तो उनमें शृंगार रस और उसके विविध पक्षों के वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलेंगे। प्रस्तुत प्रबंध की सीमा इतनी व्यापक है कि उसके [illegible] में पर्याप्त साहित्य आ जाता है।

संप्रति संस्कृत के उन काव्यों की ओर संकेत किया जाएगा जिनका रीतिकालीन शृंगारिक वर्णन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

प्रबंध-काव्य (संस्कृत)

संस्कृत प्रबंध-काव्यों में, मूल रूप से विकासशील महाकाव्यों में, शृंगारधारा कुछ बिखरी हुई मिलती है, किन्तु यदि ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट हो जाएगा कि परवर्ती महाकाव्यों की रूढ़ियों का प्रारम्भ किसी न किसी रूप में इनमें भी विद्यमान है। संक्षेप में यहाँ कुछ महाकाव्यों का परिचय दिया जाएगा जिनमें [illegible] का विशद विवेचन मिलता है।

वाल्मीकि रामायण

आदिकाव्य होने के कारण रामायण को भारतीय वाङ्मय का आदिस्रोत माना जा सकता है। महाभारत में पौराणिक शैली की प्रधानता होने से शृंगार का वैसा रूप

---

१ गर्गसंहिता ५।१३।६

वही ५।१३।१०-१८, ५।१८।१४

३ वही ५।१८।१२

४ वही ५।१६।२६-२८

वही मिलता जसा अलकृत महाकाव्यो म मिलता ह। रामायण काय की उस श्रेणी म आती है जिसे मक्डानेल महोदय के अनुसार अलकृत महाकाय कहा जा सकता ह। इसमे कथा की अपेक्षा शली को विशष महत्त्व दिया जाता है और कायगत अलकृति की इसमे प्रधानता होती ह। उन्होने रामायण को रामाटिक शली का सच्चा महाकाव्य माना ह।[१]

रीतिकालीन शृ गार धारा का मूलस्रोत अपने आदिम स्वरूप म इस महाकाव्य मे पाया जाता ह।

यद्यपि कालिदास की तरह वाल्मीकि ने अधिकाशत प्रकृति का वणन आलम्बन के रूप मे किया ह किन्तु अनेक स्थानो पर राम और सीता के विरह को उद्दीप्त करन वाली ऋतुओ का चित्रण प्राप्त होता ह। रामायण-काल म भी रीतिकाल की तरह वन विहार आदि हुआ करते थे जिसका सकेत प्रस्तुत ग्रथ म मिलता ह।

अरण्यकाड म सीताजी को देखकर रावण उनक सौन्दय का वणन परपरित उपमानो के प्रयोग द्वारा करता है।[२] कवि न इसी काड म विरही राम के द्वारा सीता का जैसा गुण वणन कराया है वसा रीतिकाय के प्रवसित नायको द्वारा भी कराया गया है। विरही राम की वदना बडी ही व्यापक है। जिस प्रकार वे चराचर प्रकृति से सीता के विषय म पूछते हैं, उसी प्रकार परवर्ती सस्कृत साहित्य म अनक नाटको और प्रमाख्यानो के नायक अपनी खोई हुई प्रिया का पता पूछते हुए देख जाते है। यद्यपि राम का विलाप हार्दिक करुणा से ओतप्रोत है फिर भी उनक सबोधन और रूप-सौदय क उपमान रूढिग्रस्त हैं।[३] किष्किन्धाकाण्ड म कवि ने प्रकृति क उद्दीपक रूप को उपस्थित करने क लिए जिन अप्रस्तुतो का विधान किया है वे अधिकाशत परपरित है।[४] इसी काण्ड के ३०वें सग म प्रकृति का विरहोद्दीपक चित्रण करते हुए राम की विरह दशाओ का बडा मार्मिक रूप प्रस्तुत किया गया है।[५]

लकाधिपति के अत पुर का चित्र भी दशनीय है।[६]

---

१ Ramayana belongs to the class called Kavya or artificial epic in which form is regarded as more important than the story and poetical ornament (Alamkara) is abundantly applied The Ramayana is a real epic of the romantic type and being homogeneous in plan and execution —A A Macdonell Ency clopaedia of Religion and Ethics Vol X page 574

२ रामायण अरण्य सग ४६।११ २३

३ वही सग ६०।४ ६ ।१२ २४ ३१

४ वही किष्किधाकाड सग १।१ ११३ २३ २५ २६ ३ ४० ५२

५ वही ७-२ ४५ ४६ ५८ ५६

६ रामायण सुन्दरकाड सग ५-९, ६।,५-७

सीता के गुमसूचक नेत्र आदि के फड़कने का तथा तज्जन्य हर्ष का वर्णन रीतिकालीन आगतपतिकाओं के वर्णन का पूर्वरूप सा लगता है।[1]

हनुमान का दौत्यकर्म परवर्ती दूतकाव्यों की साहित्य परंपरा का आदिरूप माना जा सकता है।[2] हनुमान की उक्ति कि 'तुम्हारे वियोग में वे (राम) न सुस्वादु पदार्थों का भोजन करते हैं और न मधुपान। तुम्हारे ध्यान में वे इस प्रकार लीन रहते हैं कि शरीर से जंगली कीड़े मकोड़ों को भी नहीं हटाते। रात को सोते भी नहीं यदि नींद आ जाती है तो तुम्हारा नाम लेकर तुरंत उठ जाते हैं—तुम्हारे वियोग में व्रत धारण करके वे तुम्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।[3] इस प्रकार के वर्णन में रीतिकाल में परिवर्द्धित होने वाले विरह निवेदन के बीज छिपे से लगते हैं।

समुद्र-तट पर विरही राम का विलाप[4] परवर्ती प्राकृत अपभ्रंश और हिंदी के वियोगी नायक नायिकाओं के करुण विलाप का स्मरण दिलाता है। अशोक वाटिका में सीता और राम का विलास वर्णित है। इस उपवन के वर्णन में कवि ने पुष्प, वृक्ष, दीर्घिका और उसमें विकसित कमल चक्रवाक आदि का उल्लेख किया है[5] जो परवर्ती रीतिबद्ध महाकाव्यों और रीतिकाव्य के उपवन वर्णन से मिलते जुलते हैं। यहाँ सामन्ती वातावरण का विकसित रूप दृष्टिगत होता है। राम के साथ सीता का मैरेय मधु पान और सुस्वादु पदार्थों का ग्रहण करना वात्स्यायन के नागरक वृत्त से काफी साम्य रखता है। राम और सीता का जैसा वलासिक चित्र यहाँ अंकित है[6] उसकी प्रतिच्छवि रीतिकालीन सामन्ती वलासिक जीवन में पाई जाती है।

डा० कामिल बुल्के ने इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है 'प्रचलित वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में राम के अशोकवन का वर्णन मिलता है और राम सीता के विहार का उल्लेख भी किया गया है। आगे चलकर इस प्रकार के शृंगारिक वर्णनों को अधिक स्थान दिया गया है। वास्तव में शृंगार रस की बढ़ती हुई व्यापकता विकास के द्वितीय सोपान के राम कथा साहित्य की विशेषता है।'[7]

उपरिलिखित सन्दर्भों से स्पष्ट है कि आदिकवि ने प्रस्तुत कृति में शृंगार के *संयोग और वियोग दोनों पक्षों का पूर्ण वर्णन किया है।*

रामायण में काव्यशैली के सभी गुण प्रारम्भिक रूप में विद्यमान हैं अन्

---

१ रामायण सुन्दर काण्ड २६। ८
२ मेघदूत २।२८
३ रामायण सुन्दरकाण्ड सर्ग ३६।४ ४७
४ न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति च।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यति वर्तते॥ रामायण युद्धकाण्ड ५।८
५ रामायण उत्तरकाण्ड ४२।२ १२
६ वही ४२।१६ २८
७ डा कामिल बुल्के रामकथा उत्पत्ति और विकास पृ ४८२

डॉ० शम्भूनाथसिंह ने रामायण को विकासशील और अलंकृत महाकाव्यों के बीच की कड़ी माना है।[1] परवर्ती महाकाव्यों पर रामायण का प्रभाव विविध रूप में पाया जाता है। रामायण के बाद के महाकाव्यों पर शास्त्रीय आचरण का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पायी जाती है। इन महाकाव्यों में अलंकार वृत्ति का प्राधान्य रहा है किन्तु 'उनमें से सादगी और ताज़गी, कथाप्रवाह, जीवन के विविध अनुभवों की अभिव्यक्ति, मंजी हुई और प्रवाहमयी भाषा, महान् उद्देश्य, महान् चरित्रों की अवतारणा आदि बातें जो महाकाव्य को शक्तिजीवी और प्राणवान् बनाने वाली होती हैं, समुचित रूप में नहीं पाई जाती हैं।[2] कालिदासीय महाकाव्यों में समग्र जीवन का संतुलित और वैविध्यपूर्ण अंकन मिलता है। उनमें रति के लिए सौन्दर्यबोध और व्यापक परिवेश की झाँकी मिलती है वह परवर्ती अलंकृत महाकाव्यों में परिलक्षित नहीं होती। कालिदास के काव्य में शृंगार का जो रूप मिलता है वह भारतीय रसिकता को उदात्त और परिष्कृत भावभूमि पर ले जाता है। इनका काव्य अपने पूरे युग का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हुए संस्कृति और सभ्यता का उच्च आदर्श प्रस्तुत करता है। उनका वर्णन चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु स्वस्थ जीवन मूल्यों के अन्वेषण के लिए होता है। कालिदास के बाद के महाकाव्य खण्डित और संकुचित जीवन दृष्टि को लेकर चले। उनमें रीति निर्वाह का आग्रह प्रमुख हो गया। डा० सिंह अलंकृत शैली का प्रवर्तन छठी शताब्दी से मानते हैं। उन्होंने लिखा है कि दण्डी ने दशकुमारचरित में यमक, श्लेष आदि की जो अतिशयता दिखाई है वह इसका प्रमाण है कि वस्तुतः छठी शताब्दी का युग ही ऐसा था जिसमें साहित्य अधिक अलंकृति, पाण्डित्य प्रदर्शन, वाक् चातुर्य और कल्पनातिरेक, कथावस्तु की उपेक्षा और वस्तु-व्यापार-वर्णन की अनावश्यक स्फीति के कृत्रिम साधनों से आक्रान्त हो गया था। कथा, आख्यायिका और महाकाव्य तीनों में यही प्रवृत्ति पायी जाती है।

संप्रति कालिदासीय महाकाव्यों के शृंगार वर्णन की विवेचना की जाएगी।

कुमारसंभव—प्रस्तुत ग्रंथ के द्वितीय सर्ग में पार्वती का रूप वर्णन और अष्टम सर्ग में शिव पार्वती के संभोग शृंगार का वर्णन मिलता है। शिव और पार्वती का जो रूप इस सर्ग में चित्रित किया गया है वह पारलौकिक न होकर लौकिक है। पार्वती की चेष्टाएँ बहुत कुछ रूढ़िबद्ध-सी हैं। उनका मुग्धात्व मनोवैज्ञानिक है किन्तु उनकी चेष्टाएँ परंपरानुसार हैं। मुग्धा से लेकर प्रौढ़ा तक नायिका की विलास चेष्टाओं का क्रमिक विकास प्रस्तुत सर्ग में निबद्ध है।[3] साथ ही इसमें संयोग शृंगार की विविध विलास लीलाओं का जैसा विवरण उपस्थित किया गया है वह कामशास्त्रानुमोदित है।[4]

---

१ डा० शम्भूनाथ सिंह, हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १४१
२ वही, पृ० १४४
३ कालिदास, कुमारसम्भव ८।१-१४
४ वही ८।२७, ६३, ८३, ६१

रघुवंश रघुवंश के आठवें सर्ग में अज विलाप बहुत कुछ वाल्मीकीय रामायण के विरही राम के विलाप के अनुकरण पर वर्णित है। नवें सर्ग में वसंत ऋतु का बड़ा ही उद्दीपक वर्णन किया गया है। कवि कालिदास की विशेषता प्राकृतिक उपादानों पर मानवीय भाव, का आरोपण है। उन्होंने प्रायः शृंगारी चेष्टाओं का प्रकृति पर आरोपण करते हुए उसका बड़ा ही अलंकृत वर्णन किया है।[1] वसंत ऋतु में दोनों क्रीड़ा का जैसा वर्णन कालिदास ने किया है वैसा उनके परवर्ती महाकाव्यों में प्रचुर परिमाण में मिलता है। ग्रीष्म ऋतु में जल विहार का भी वर्णन मिलता है। रघुवंश का अग्निवर्ण नागरक वृत्ति का सच्चा प्रतीक है। उसकी विलास लीलाएं राजदरबारीय सामंतों की याद दिलाती हैं।

कालिदासोत्तर महाकाव्य

यद्यपि महाकवि कालिदास ने शृंगारी प्रसंगों का वर्णन बहुत कुछ शास्त्रीय परिपाटी के अनुसार ही किया है। फिर भी उनका सौंदर्य-बोध परवर्ती प्रसिद्ध महाकाव्यों के वर्णनों से उन्हें भिन्न सिद्ध करता है। उन्होंने जिन शृंगारिक प्रसंगों का वर्णन किया है वे प्रायः व्यापक परिप्रेक्ष्य में होने के कारण जीवन की गहराई और सच्चाई को उद्घाटित करते हैं। शृंगारिकता उनका साध्य नहीं है अपितु महान उद्देश्य के साधन में एक सहायक तत्व है। कालिदास के बाद भारवि ने जिस परंपरा का प्रवर्तन किया उसमें न तो जीवन की उतनी व्यापकता रही उभर पाई और न जीवन का परम साध्य ही स्पष्ट हो सका। अनुकरण प्रियता और चमत्कार प्रदर्शन की वृत्ति ने परवर्ती महाकाव्यों की वर्ण्य-वस्तु को बहुत कुछ अस्पष्ट कर दिया। भाव और कला के समन्वय द्वारा जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति न हो सकी। महाकाव्य की कलेवर-वृद्धि में काव्य रूढ़ियों का आश्रय अधिक लिया गया जिसके परिणामस्वरूप मौलिकता का क्रमशः ह्रास होता गया।

कालिदास और उनके परवर्ती कवियों में विषयवस्तु की दृष्टि से जो परिवर्तन हुआ वह गुप्तकाल के बाद विघटित शासन सत्ता और सामाजिक अव्यवस्था का परिणाम माना जा सकता है। पं० गणपति त्रिपाठी के मतानुसार, गुप्तकालीन साम्राज्य व्यापी शासन परिवर्तन के साथ साथ वैभव आच्छादित अभिजातवर्गीय रसिकता और विलासिता की स्वच्छन्द क्रीड़ा—साहित्य और कला के क्षेत्र में—बड़ी तीव्रगति से चल पड़ा था। हर्षवर्द्धन के युग में तथा परवर्ती शताब्दियों में साहित्यिक माध्यम से विलास-वृत्ति के तर्पण और कलात्मक अनुरंजन की प्रवृत्ति निरंतर बढ़ता जा रहा थी पर उन दिनों साहित्यिक अनुरंजन में सवेदना की गहराई का आग्रह रसिकता का आधार माना जाता था। उस युग का अभिजातवर्गीय सहृदय सामाजिक काव्य और

१ रघुवंश ६।८२ ८४ ३८ ४६ ४७

२ वही १६।५ ५६

साहित्य के तत्त्वदर्शी आचार्य कविमनोरथ [illegible] का निर्विघ्न आस्वादन करते थे। उन दिनों ध्वनि काव्य का प्राण सर्वस्व माना जाता था। पर परवर्ती काल में सच्ची सहृदयता की यथार्थ काव्य रसिकता का यह आधार भूमि खिसक [illegible]। धीरे धीरे भोजराज के समय तक पहुंचते पहुंचते शृंगार की रसराजता [illegible] जिसकी आधारशिला बन गई।[1] कालिदास के समय की सामाजिक अवस्था और कालिदासोत्तर काल की सामाजिक अवस्था के मूल परिवर्तनों का ज्ञान प० हजारीप्रसाद द्विवेदी के उद्धरण में मिल जाता है। जब ह्रासोन्मुखी समाज व्यवस्था में कवि की रचना साधना भी ह्रासोन्मुखी हो जाती है। धीरे धीरे राज्य का परिवेश संकुचित और कवि का जीवन अधिक सीमित हो जाता है। समग्र जीवन की अपेक्षा जीवन खण्ड का प्रस्तुत करने में ही वह अपने कवि-कर्म की सार्थकता मानने लगता है। फिर चमत्कार प्रदर्शन और दुरारूढ़ कल्पना में ह्रास लक्षण देख पड़ते हैं। कवि अपने पूर्ववर्ती काव्य रचनाओं से प्राप्त सामग्री को पुनः नये [illegible] में प्रस्तुत करने लगता है। साहित्य में प्रदर्शन की अति आलंकारिक वर्णनों और उत्प्रेक्षाओं में कवि की [illegible] कर देता है। उनमें उपमानों और वस्तु वर्णन [illegible] का संतुलन नष्ट हो जाता है। डा० [illegible] ने इस प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य किया है कि [illegible] के युग प्रसिद्ध महाकाव्य [illegible] (रत्नाकर) [illegible] और श्रीहर्ष के नैषधचरित ([illegible]) आदि में भी अलंकृत और आलंकारिक वर्णन की यह प्रवृत्ति बहुत अधिक दिखाई पड़ती है। [illegible] हो गये कवि [illegible] और [illegible] जाता है [illegible] बढ़ता है।

[illegible] आलंकारिक प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके विविध रूपों के वर्णन का उपक्रम किया जायगा।

१ [illegible]

[illegible]

---

१ [illegible]
([illegible])

२ [illegible]

ही समय से कवि वृत्ति दान, दया और दमन जैसे जीवन के महत् उद्देश्यों को छोड़कर विलासानुरंजन की ओर उन्मुख हो गई थी, जिसके परिणामस्वरूप महाकाव्यों में भी यौवन और विलास के ही चित्र अधिक आए और नारी की गरिमामयी मूर्ति तिरोहित हो गई।

भारवि और उनके परवर्ती महाकवियों ने नारी के जिस रूप को महाकाव्यों में उपस्थित किया वह बहुत कुछ मुगल हरम की बेगमों और रीतिकालीन नायिकाओं के समान भोगवृत्ति का परितोषक बन गया। अधिकांश महाकाव्यों में नारी की विविध शृंगारिक चेष्टाएँ विस्तार के साथ निरूपित होने लगी। प्रणय-लीला के अनेक ऐसे प्रसंगों की उद्भावनाएँ इस महाकाव्य में की गई हैं जो परवर्ती कवियों की प्रेरणा-स्रोत बन गई, जैसे किसी नायक का स्वयं माला गूँथकर किसी परकीया के गले में पहनाना और जल के कारण भीगी हुई भी उस माला का उसके द्वारा परित्याग न किया जाना।[1] ऐसी ही चेष्टा बिहारी की भी नायिका करती है।[2]

अधिकांश महाकाव्यों में ग्रीष्म ऋतु में जल-विहार के अन्तर जलक्रीड़ा करती हुई रमणियों का चित्रण उनकी शृंगारिक चेष्टाएँ जल में धुला हुआ उनका रूप सौन्दर्य गन्ध-माधव या सखी द्वारा उनका मण्डन पुष्पावचय और दोलाक्रीड़ा आदि का वर्णन पाया जाता है। ऐसे आयोजन वसन्त ऋतु में भी किए जाते थे जिसका संकेत वात्स्यायन के कामसूत्र में मिलता है।

किरातार्जुनीय के आठवें, नवें और दसवें सर्ग में तद्युगीन सामन्ती जीवन के कलासिक्त चित्र अंकित किए गए हैं। ये प्रसंग वास्तव में सुन्दर के हैं जिनमें कामोत्तेजक विलास के स्पष्ट चित्र अंकित हैं। इस महाकाव्य में रतिविदग्धता इतनी अधिक है कि जहाँ कहीं प्रकृति का चित्रण किया गया है उसमें नैसर्गिक सौन्दर्य के उद्घाटन की अपेक्षा अलंकार चमत्कार का प्रदर्शन ही अधिक है।

२ शिशुपालवध

आदिकवि वाल्मीकि से लेकर माघ तक की काव्य परंपरा का यदि अनुशीलन किया जाय तो स्पष्ट हो जाएगा कि किस प्रकार वह स्वाभाविकता से प्रारम्भ और आनन्द से हटकर कृत्रिमता की ओर बढ़ती गई। माघ में महाकाव्य की वर्णन रूढ़ियाँ अधिक कलात्मक और प्रौढ़ हैं। मानवीय मधु क्रीड़ाओं का उद्घाटन करने में भारवि

---

१ प्रियेण संग्रथ्य विपक्षसंनिधावुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने।
स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥—किरात० ८।३७

२ तीज-परब सौतिनि सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुँह करी इन्हीं मरगजैं चीर ॥२७८॥—बिहारी
वियसौतिन देखत दई अपने हिय तें लाल।
फिरत सबन में डहडहौ वहै मरगजी माल ॥४६४॥—बिहारी

की अपेक्षा माघ का श्रृंगार सफलता मिला। डा० विंटरनित्ज ने लिखा है 'माघ की शक्ति श्रृंगार के क्षेत्र में निहित है। किसी भी प्रकार भारतीय कवि नगर का वर्णन उसमें रहने वाली युवतियों के मादक वर्णन के बिना नहीं कर सकते। वे ऋतुओं या और प्रातःकाल का वर्णन केवल इसलिए करते हैं कि उन्हें प्रमियों के वियोगियों के वर्णन का मौका मिले। हमारा कवि इन सबका वर्णन उल्लासपूर्वक ही करता है।'[1] इसका मुख्य कारण यह है कि भारवि की अपेक्षा माघ के समय में समाज और भी अधिक विलासोन्मुख हो गया था। उसमें उच्चादर्श की भावना का पूर्णतः ह्रास हो गया था।

कवि ने ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत किया है।[2] पुष्पचयन के प्रसंग में नायिका की अनावृत नाभि (उसकी उन्नत की ओर) से प्रेरणा प्राप्त करके बिहारी ने सम्भवतः दहेड़ी धरने को तत्पर नायिका का चित्रण किया है।[3]

महाकवि माघ ने वन विहार से थकी हुई यादव रमणियों का जल विहार वर्णन परम्परा के अनुसार किया है किन्तु भारवि ने जलक्रीड़ा और तदनन्तर शृंगारिक चेष्टाओं का जो वर्णन किया है उसकी अपेक्षा माघ का वर्णन अधिक नागर और कामशास्त्रीय है।[4]

माघ शृंगार रस के अनुभावों और हावों के चित्रण में जितने सफल हैं संचारियों के चित्रण में नहीं। वास्तव में कालिदास और कालिदासोत्तर काव्य प्रवृत्ति का यह मूल अन्तर है। कालिदास ने प्रेम के संचारियों के चित्रण में सफलता प्राप्त की और माघ ने प्रेम कला के अन्तर्गत नखशिख नायिका के हाव भाव और अनुभावों के चित्रण में कौशल प्रदर्शित किया है। क्षणिक चमत्कृति उत्पन्न करने वाले माघ को यदि रीतिकालीन कवियों का आचार्य कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

३ रामायणमंजरी

ग्यारहवीं शताब्दी के कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने प्रस्तुत महाकाव्य में अनेक शृंगारिक प्रसंगों की उद्भावना की है। कवि ने रामकथा में प्रसंगानुकूल शृंगारिक वर्णनों को अधिक विस्तार से उपन्यस्त किया है। आरण्यकांड में हेम न्त ऋतु का उद्दीपक वातावरण विरही राम की व्यथा द्विगुणित कर देता है।[5] इसी प्रकार वसन्त[6] वर्षा और शरद[7] ऋतुओं का भी उद्दीपक वर्णन मिलता है।

१ डॉ एम विंटरनित्ज हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग पृ० ५६
२ शिशुपालवध ६।२ ३० ४२ ५५ ७४ ७७
३ वही ७।७ तनाय बिहारी २६
४ भारवि किरात ८। ५ ३८ १ १६ ४१ तथा माघ शिशुपालवध ८।७ १३ १०।८८ ९
५ रामायण मंजरी आरण्यक श्लो ८८४ ८ ५ ९९२ ९४ ७२ ९५
६ वही ११ ९ ११५८
७ वही सुन्दरकांड श्लोक १ ५७

रावण के अन्तःपुर विलास का विवरणात्मक चित्र अंकित करते हुए क्षेमेन्द्र ने राक्षसों की सुरति आदि का भी वर्णन किया है।[1]

४ विक्रमांकदेवचरित

महाकवि बिल्हण ने प्रस्तुत महाकाव्य में विक्रमांकदेव की वीरता का अलंकृत शैली में वर्णन किया है। पूर्व उल्लिखित महाकाव्यों की भाँति इसमें भी वसन्त और दोलाक्रीडा[2] रूप और नखशिख[3] संयोग और वियोग[4] वन विहार पुष्पावचय जलविहार[5] रात्रि में कृष्णाभिसारिकाओं ज्योत्स्ना सुरापान प्रातःकाल होने पर खण्डिता और मानिनियों के मनोभावों का निरूपण नायिका मण्डन आदि का परम्परित वर्णन पाया जाता है।

प्रस्तुत महाकाव्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इसका [illegible] विलास-क्रीडाओं और शृंगार के विविध पक्षों के विस्तृत निरूपण से आपूर्ण है।

५ श्रीकण्ठचरित

मंखक (बारहवीं शती) ने प्रस्तुत महाकाव्य में त्रिपुरदाह का वर्णन शिशुपालवध की शैली में किया है। पूर्वोक्त महाकाव्यों की भाँति इसमें भी कैलाश पर्वत वसन्त देवांगनाओं और शंकर-पार्वती की दोला क्रीडा पुष्पावचय जलक्रीडा सन्ध्या चन्द्रोदय, रूपसज्जा, पानकेलि रतिक्रीडा और प्रभात का वर्णन मिलता है। छठे सर्ग से लेकर सोलहवें सर्ग तक उपर्युक्त वर्णनों को सन्निविष्ट करके महाकाव्य के कलेवर में पर्याप्त वृद्धि की गई है। मूलकथा १८वें सर्ग से लेकर चौबीसवें सर्ग तक ही निबद्ध है। पूरे छठे सर्ग में कवि ने वसन्त शोभा और ऋतु-सुलभ विलास-लीलाओं का वर्णन किया है।[8] इसी प्रसंग में देवांगनाओं की विरह-व्यथा का भी परम्परित वर्णन प्राप्त होता है।[9] मलयानिल की अनेक रूपों में उत्प्रेक्षा की गई है।[10] वन विहार करते हुए पार्वती और शंकर की लीला क्रीडा का भी वर्णन किया गया है।[11] प्रेम क्रीडा में थकी हुई पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन

---

१ सुन्दरकाण्ड श्लोक ६४-९१
२ बिल्हण विक्रमांकदेवचरित ७।८-६२
३ वही ८।४-८८
४ वही १०।३४-६, ७।३-६२, ९।६-८
५ वही १।४१, ४९, ५२, ५६, ७८, ८२
६ वही ११।२-२४, ४२-४३, ६७
७ वही ११।७६, ८७, ६७, ८८, ६७, १२।७२-७७
८ श्रीकण्ठचरित ६।८, १४, १६, ३, २४, २७, ४२, ४
९ वही ७।१६-३१
१० वही ७।४०-४२
११ वही ७।५५-६६

करने के उपरान्त पुष्पावचय के प्रसंग में नायक नायिका की विलास चेष्टाओं का वर्णन किया गया है।[1] पुष्पाभरण में मंडित पार्वती के रूप सौन्दर्य का वर्णन भी परम्परित है। उपर्युक्त महाकाव्यों की भाँति इसमें भी जलक्रीडा और प्रकृति तथा मानव की मधु क्रीडाओं का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।[3]

सूर्यास्त और चन्द्रोदय वर्णन के उपरान्त उसके उद्दीपक वातावरण में अभिसारिकाओं का वर्णन किया गया है।[4] विरहोद्दीपक चन्द्र चाँदनी आदि का रूढिग्रस्त वर्णन यहाँ भी प्राप्त होता है।[5] संयोगियों के उपकारक चन्द्र की प्रशंसा भी की गई है।[6] देवांगनाओं के सौन्दर्य प्रसाधन का वर्णन जैसा कवि ने किया है वह बहुत कुछ सामन्ती वातावरण को द्योतित करता है।[7] रत्नजटित मणियों की प्रभा के कारण दुबली पतली नायिका मांसल दिखती है।[8] ऐसी ही उक्ति बिहारी ने भी निबद्ध की है।[9] सर्वांगभूषिता नायिकाओं का मधुपान वर्णन करते हुए मद को मानरूपी दृढ सेतु को धारनेवाला मन्त्र (आरा) सिद्ध किया गया है। रीतिकाव्य में भी मान लज्जा और भय आदि के निवारक मधुपान का वर्णन मिलता है।[10] देवांगनाओं के अन्तःप्रकोष्ठ की समृद्धि एक ओर वात्स्यायन के नागरक के अन्तःपुर की याद दिलाती है दूसरी ओर रीतिकालीन सामन्ती वातावरण का पूर्वरूप उपस्थित करती है। केलि गृह में उद्दीपक वातावरण का अंकन करते हुए कवि ने संभोग शृंगार का ब्योरेवार विवरण उपस्थित किया है।[11]

प्रस्तुत महाकाव्य की शृंगारिक वर्ण्यवस्तु की तुलना रीतिकाव्य की वर्ण्यवस्तु के साथ करने से दोनों में काफी साम्य मिलेगा।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कालिदासोत्तर महाकाव्यों की बृहत्त्रयी (*किरातार्जुनीय शिशुपाल वध और नैषधचरित*) में जिन प्रवृत्तियों का क्रमशः विकास

---

१ श्रीकण्ठचरित ८।१४५
२ वही ८।५४
३ वही ६।२५ ३१ ४४
४ वही १ १२ ६ ११।४ ६ ३३
५ वही ११।४५ ६३ १२।६ १ ३२ ३३
६ वही ११।६४ ७३
७ वही १३।२ १८ २४ २६ ३१ ३५
८ पतगन्धशरीरयष्टिरैव मापमना
मणिकिरणतरङ्गराजिरुद्भासलत्वम्।
तनतरमपि कामो नागकान्यमनाना
न्थितरुचि वपुषिव्यक्तनामानिनाय ॥ १ ।४६
९ बिहारी दो स १
१० मयक श्रीकण्ठचरित १५।६ तुलनीय—बिहारी ३५४ ५
११ श्रीकण्ठचरित १९।३ ५

दिखाई पड़ता है। इसके सामने आठवीं शताब्दी उत्तरार्ध के कवि रत्नाकर के हरविजय में मिलता है जो माघ के शिशुपालवध के अनुकरण पर किया गया है। कवि ने प्रस्तुत प्रबन्ध में अपने नीतिशास्त्रीय और कामशास्त्रीय पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है।[1] पाण्डित्य प्रदर्शन की इस प्रवृत्ति के कारण कहीं कहीं कविता भाराक्रान्त सी बड़ी कुण्ठित रूप में उपस्थित हुई है। अनावश्यक आग्रह के कारण कविता ने ज्योतिष व्याकरण राजनीति कामशास्त्र स्नान यागक्रिया आदि में अपने अप्रस्तुत विधान में पर्याप्त सहायता ली है।

मौलिकता की कमी और पाण्डित्य प्रदर्शन की वृत्ति के कारण महाकाव्यों की एक दूसरी शाखा विकसित हुई जिसमें कथा वर्णन के साथ साथ व्याकरण अलंकार आदि के प्रयोग भी निदर्शित किए गए। इस शैली का सम्भवतः प्राचीनतम काव्य भट्टि का रावणवध है। भीमक (७वीं शती) का रावणार्जुनीय धनंजय (१०वीं शती) का द्विसंधान हरिश्चन्द्र (१०वीं शती) का धर्मशर्माभ्युदय कविराज (१२वीं शती) का राघवपाण्डवीय और हेमचन्द्र (१२वीं शती) का द्वयाश्रय काव्य इसी शैली में निबद्ध हैं। राघवपाण्डवीय में रामायण और महाभारत की कथा द्वयर्थक शैली में वर्णित है जिसमें श्लेष और कृत्रिम चमत्कार ही अधिक है रमणीयता नहीं।[2]

६ नैषधचरित

प्रस्तुत चरितकाव्य में आलंकारिक शैली का चरम परिपाक पाया जाता है। इसमें शाब्दिक चमत्कार छन्दवैचित्र्य अलंकारविधान और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रमुखता पाई जाती है। डा० विंटरनित्ज़ ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है अलंकारशास्त्र की सभी कलाओं का प्रयोग छन्दशास्त्र की दुरूहता का चरम निदर्शन और केवल धर्मशास्त्र का ही नहीं अपितु कामशास्त्र पर भी अपने पूर्ण अधिकार का प्रदर्शन करना इनका मुख्य ध्येय था।[3] तत्कालीन जीवन का कोई भी सम्बद्ध स्थल इनसे अछूता नहीं रह

---

१ It closely immitates Magha s Sisupalavadha in point of artificiality and informativeness The author discloses his knowledge of Nitisastra in cantos 8–16 and of the Kamasastra in canto 29
—H D Velankar Prosodial Practice of Sanskrit Poets
J B R A S Vols 24–25 (1948–49) p 61

२ Raghava pandviya is a poem in 13 cantos with a double application to the stories of the Ramayan and Mahabharat It is naturally fully of Slesa and is written in a very artificial style
—H D Velankar Prosodial Practice of Sanskrit Poets
J B R A S Vols 24 25 (1948 09) p 61

३ Whose (Sriharsas) sole aim is to apply all the arts of Alamkarsastra to surmount all the difficulties of metrics, and to

गया था। रीतिकालीन कवियों की भाँति इसमें भी शृङ्गारिक वर्णनों में कुछ आलोचकों ने अश्लीलता का दोषारोपण किया है।[1]

भारवि और माघ के काव्यों में प्रयुक्त सभी वर्णन रूढ़ियों का नैषध में [illegible] में प्रयोग मिलता है। उक्त महाकाव्यों की भाँति इसकी भी कथावस्तु बहुत छोटी है किन्तु शृङ्गारिक प्रसंगों के विस्तृत निरूपण के कारण कलेवर की अतिशय वृद्धि हुई है।

नैषधचरित में नखशिख, उपवनविहार,[3] विरह वर्णन,[4] अन्तःपुर के हास-परिहास और यथावसर[5] सम्भोग[6] एवं षोडश शृङ्गार आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है।[7]

श्रीहर्ष ने अन्तःपुर की रमणियों का मधुर वार्तालाप, [illegible] सखियों की शृंगार रचना, क्रीड़ा विनोदादि हास, काम-पत्र लेखन, चित्र रचना, माल्य एवं पत्रभंगी रचना, नखरञ्जन, [illegible] और रति चिह्न मर्यादित रमणियों का वर्णन करके अभिजातवर्गीय अन्तःपुर का सजीव चित्र उपस्थित किया है। इसी प्रकार अठारहवें सर्ग में वर्णित नल का अन्तःपुर कामसूत्र में उल्लिखित नागरक के अन्तःपुर का सफल प्रतिनिधित्व करता है। सम्भवतः रीतिकाव्य के अन्तःपुर के विलासी जीवन के चित्रों को इन वर्णनों से पर्याप्त प्रेरणा मिली होगी। कलात्मक विनोद और विलास क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन करके महाकवि ने परवर्ती कवियों के लिए इस दिशा में मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

नल ने अपनी सम्पूर्ण गोपनीय रति-लीला का दमयन्ती की सखी के सम्मुख वर्णन करके जिस छिछले स्तर की रसिकता प्रकट की है वैसी रीतिकाव्य में भी बहुत कम मिलती है।

प्राकृत

प्राकृत साहित्य की व्याप्ति ६०० ई० पू० से १८०० तक मानी जाती है। इस

---

show off not only his thorough knowledge of mythology but also his mastery of the Kamsastra

—Dr M Winternitz Indian Literature Vol III p 64

१ Dr A B Keith A History of Samskrit Literature p 140 and De and Dasgupta A History of Samskrit Literature p 330

२ काव्य नैषध चरित १।१६।२८ २।१६ ३३ ७।७ १०२ ९ ।११५ १२८

३ वही ११८ ११८

४ वही ९।८३ ४४ २ ४७ ४६ ३।१ ११४ ४।४७ १ ६

५ वही ६।५६ ८५ १८।४ ३३

६ वही १८।३६ ६१ ८ ८३ ८६ १२ २०।११ १२ ३८ ७४ ६४ २ ।१४१ ५

७ वही १५।१६ ५१

सुविधा के लिए तीन भागो म विभक्त किया जाता है—प्रारभिक रूप पालि, मध्य-कालीन रूप प्राकृत तथा उत्तरकालीन रूप अपभ्रश है। पालि विशेष रूप म बौद्धो के धम ग्रन्थो की भाषा होने के कारण रसात्मक या शुद्ध साहित्य स हीन है। यदि इसम कुछ रसात्मक साहित्य का निर्माण हुआ भी हो तो आज प्राप्त नही है। डॉ० शम्भूनाथ सिह न पालि साहित्य की चर्चा करत हुए लिखा है 'सभवत पालि केवल धम की भाषा समभी जाती थी तभी अश्वघोष को अपना महाकाव्य सस्कृत म लिखने की आवश्यकता पडी। पाचवी शताब्दी म अटठकहा के आधार पर ही सिंहल के इतिहास से सम्बधित दो ग्रथ दीपवश और महावश निर्मित हुए। विन्टरनित्ज ने इन्हे ऐतिहासिक महाकाव्य की सज्ञा दी है। इनम महावश को राजतरगिणी की तरह का ऐतिहासिक शैली का महाकाव्य कहा जा सकता है। इसम भाषा और छन्द की पूणता भी अलकृत काव्यो जैसी है।'[1] प्राकृत म अनेक प्रबन्ध-काव्यो की रचना हुई जिनम विमलसूरि का पउमचरिय सबसे प्राचीन है। इसमे राम का चरित्र ११८ सर्गों म वाल्मीकि रामायण से भिन्न शली म वर्णित है। दूसरा महत्त्वपूण महाकाव्य सेतुबध महाराष्ट्री प्राकृत म पाया जाता है। सेतुबध परवर्ती अलकृत शली म लिखा गया है। इस पर सामन्ती वातावरण का पूरा प्रभाव दृष्टिगत होता है।

कालान्तर म सस्कृत की तरह प्राकृत का भी सम्बन्ध सामान्य जनता से विच्छिन्न होकर राजदरबारो स स्थापित हो गया। इसके परिणामस्वरूप उसकी स्वाभाविक रमणीयता लुप्त होती गई और उसके स्थान पर सस्कृत काव्य परम्परा की रूढियाँ स्थान पाने लगी। दरबारी वातावरण और नागर सभ्यता में पले हुए कवियो न, चाहे वे सस्कृत के कवि हो या प्राकृत के, अलकृत काव्य शली अपनाई।[2] यह प्रभाव वाक्पतिराज के गउडवहो (७वी शताब्दी) मे और भी व्यापक रूप म पाया जाता है।

हेमचन्द्र के द्वयाश्रय महाकाव्य म अन्तिम आठ सर्गों को कुमारपालचरित नाम से एक स्वतन्त्र महाकाव्य माना जाता है। इसम अणहिलवाड या पाटण (गुजरात के राजा कुमारपाल का पराक्रम वर्णित है।

अठारहवी सदी पूर्वार्द्ध क कवि रामपाणिवाद का महाकाव्य कसवहो २३३ छन्दो का महत्त्वपूण महाकाव्य है। इसमें नगर का वणन अलकृत शली मे किया गया है।

उक्त महाकाव्यो के अतिरिक्त कुछ अन्य अलकृत शली के रसात्मक काव्यो का उल्लेख मात्र मिलता है। जसे पादलिप्त की तरगवई सवसेन का हरिविजय, वाक्पति का मधुमथविजय, आनन्दवद्धन का विषमबाणलीला और मारकण्डेय का विलासवईसट्टक आदि। प्राकृत महाकाव्यो म अलकृत और रसात्मक शली म विनिर्मित होने वाले सेतुबन्ध और गउडवहो प्रसिद्ध है।

---

१ डॉ शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ १६३ ६४
२ वही पृ १७०

यहाँ उन दो [illegible] के शृंगारिक स्थल का निर्देश किया जाएगा।

रावण वह (प्राकृत)

राजा प्रवरसेन द्वितीय (पाँचवीं शती) रचित १५ आश्वासों में विरचित यह [illegible] महाकाव्य है। प्रस्तुत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इसी महाकाव्य के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।[1]

प्रस्तुत महाकाव्य में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का विस्तृत वर्णन किया है। [illegible] रमणियों का [illegible] उनकी शृंगारिक [illegible] [illegible] का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।[2]

[illegible] के [illegible] प्रस्तुत प्रबन्ध में भी कवि जहाँ कहीं शृंगारिक वर्णन का [illegible] [illegible] है उसने [illegible] उसका पूरा [illegible] किया है। रावण की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं हुआ है। डॉ० राधागोविन्द बसाक के अनुसार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] रमणियाँ शृंगारी भावों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को भूल जाना चाहती थीं। कवि ने उनकी शृंगारी चेष्टाओं का [illegible] वर्णन किया है।[4]

गउडवहो

महाकवि वाक्पतिराज (८वीं शताब्दी ई०) [illegible] प्रस्तुत प्राकृत महाकाव्य की रचना कन्नौज के [illegible] यशोवर्मा की सभा में [illegible] थी। [illegible] यह [illegible] है [illegible] कवि का [illegible] गौड़ राजा के वध की [illegible] वर्णित करना था [illegible] कवि इसे पूरा न कर सका। प्रस्तुत ग्रंथ उस कथा की प्रस्तावना मात्र है।

कवि ने अन्य देवताओं की स्तुति के साथ [illegible] की भी वन्दना की है जिसमें

---

१ It may be said in passing that Pravarsena was the path finder in composing epics in Prakrit Later on Vakpatiraja wrote his Gaudvaho epic in imitation of the name and content of Pravarsena s work —Dr R Basak Ravana Vaho p xxi

२ रावणवहो भावसार १ श्लोक १० १२ तथा ११९ १

३ वही श्लोक १ १२ १७७

४ वही भूमिका पृ० १३

स्पष्ट होता है कि कवि ने काम और काम भावना को भी उचित महत्त्व दिया है।[1]

यद्यपि प्रस्तुत महाकाव्य यशोवर्मा की का चरितकाव्य है फिर भी इसमें वार वधुओं के साथ जलक्रीडा, मद्यपान और ग्रीष्म ऋतु के व्यतीत करने के सामन्ती-साधना का वर्णन किया गया है।[2] इसमें प्रशस्तिकाव्य के सभी गुण मिलते हैं।[3] अन्तःपुर वर्णन के प्रसंग में कवि ने ग्रीष्मकाल में सामन्त रमणियों की स्थिति और उनकी शृंगारिक चेष्टाओं का अच्छा वर्णन किया है।[4] वर्षाकाल में यशोवर्मा के विलास का वर्णन राजन्यवर्ग की वृत्तियों का उद्घाटन करता है।[5] नारी रूप वर्णन में सुकुमारता, आभिजात्य और ललित लीलाओं का उल्लेख रीतिकालीन कवियों की वर्णन शैली की याद दिलाता है। शृंगारिक प्रसंग को लेकर कवि की उत्प्रेक्षाएँ उसके शृंगार-वर्णन की निपुणता को द्योतित करती हैं। सद्य स्नाता कामिनियों के सौन्दर्य और मण्डन का वर्णन रीतिकालीन नायिकाओं के वर्णनों से बहुत कुछ साम्य रखता है।[7] शिशिर ऋतु के प्रातःकाल में सुरत क्लान्त नायिकाओं का सूक्ष्म चित्रण परवर्ती कवियों का प्रेरणा स्रोत कहा जा सकता है।[8] कवि ने वसन्त ऋतु में यशोवर्मा का उपवन विहार भी वर्णित किया है।[9] इस तरह के वर्णन संस्कृत महाकाव्यों में भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। नायिकाओं की सायंकालीन चेष्टाएँ शृंगारिक वातावरण को और भी तीव्र बना देती हैं।[10] परम्परा के अनुसार रात्रि में कृष्णाभिसारिकाओं की साज सज्जा का भी वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त मुदिता, खण्डिता मुग्धा और मानवती आदि के चित्रण प्रभावपूर्ण हैं। कवि ने सुरत और सुरतान्त का भी वर्णन किया है।[11]

इस महाकाव्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए डा० शम्भूनाथसिंह ने लिखा है 'या भी इसमें कथावस्तु नहीं के बराबर है और अत्यन्त अलङ्कृत वर्णनों दूरारूढ़ कल्पनाओं विद्वत्तापूर्ण सदर्भों तथा अनावश्यक वस्तु व्यापार वर्णन से काव्य का कलेवर स्फीत हो गया है। वाक्पतिराज ने इस काव्य में बाणभट्ट के हर्षचरित और प्राकृत के [illegible]दाबद्ध कथाकाव्यों की शैली का समन्वय किया है और साथ ही परम्परावद्ध शास्त्रीय महाकाव्य की रूढ़ियों का भी अप्रासंगिक वस्तुव्यापार-वर्णनों के रूप में पालन

---

१ गउडवहो ५७
२ गउडवहो ६२ ६६
३ वही २१२ २६६
४ वही ३५५ ५७
५ वही ३६३ ६६४
६ वही ७११ ७७६
७ वही ७७७ ८
८ वही ७८६ ८७
९ वही ७८८ ६५
१० वही ११२२ ३१
११ वही ११३६ ६२

किया है।'[१]

यद्यपि यहाँ केवल शृगार प्रधान रचना की ही चर्चा की गई है किन्तु यदि समग्र रूप से इस महाकाव्य के रचनाकाल के युग धर्म का विवेचन करते हुए प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलता कि इस युग (मुख्यत छठी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक) में वीरता धर्म और शृगार की भावनाएँ प्रधान थी। समाज वीर और धर्म प्रिय था साथ ही उसमें शृगार भावना की भी प्रबलता थी। डा० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है इस काल की साहित्यिक क्रियाशीलता और कला प्रेम की प्रवृत्ति भी कम महत्वपूर्ण नही है। इस समय साहित्य की रचना या तो राजदरबारों में रहने वाले कवियों द्वारा हुई या राजाओं के स्तुति गायक और वशावली रक्षक चारण भाटों द्वारा अथवा धर्मभावना से प्रेरित कवियों द्वारा जो या तो मठों मन्दिरों में धार्मिक सम्प्रदायों के आश्रय में रहते थे या सेठों और राजाओं के मन्त्रियों के आश्रित थे।[२] इससे स्पष्ट होता है कि इस युग में तीन प्रकार की रचनाएँ होती थी— (१) सामन्ती विलास वृत्ति के अनुकूल शृगारी रचनाएँ (२) सामन्ती शौर्य के वर्णन में वीर प्रशस्तियों की रचनाए (३) धार्मिक या भक्तिपरक रचनाए। सम्प्रति केवल शृगारिक रचनाओं का ही परिचय दिया गया है। प्रशस्ति, भक्ति और नीतिपरक रचनाओं का सक्षिप्त परिचय आगे दिया जाएगा।

अपभ्रश

अपभ्रश के महाकाव्यों में शृगार और उसके विविध पक्षों के विकास और उसके स्वरूप की विवेचना के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि अपभ्रश भाषा में काव्य प्रणयन किस रूप में और कब से प्रारभ हुआ। यों तो विद्वानों का मत है कि ईसा की दूसरी शताब्दी से ही लोक भाषा का विकास प्राकृत अपभ्रश भाषा के रूप में प्रारम हो गया था और छठी शताब्दी तक इसने पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। संस्कृत की तरह अपभ्रश भी साहित्य की मान्य भाषा बन चुकी थी। ईसा की आठवीं शताब्दी से अपभ्रश साहित्य में पूर्ण प्रौढ़ता आने लगी थी। १६वी शताब्दी तक इस भाषा में साहित्य का निर्माण होता रहा किन्तु इसका उत्कृष्ट काव्यकाल आठवीं शती से तेरहवीं शती तक ही माना जाता है। इसके उपरान्त यह जनियों की धर्मभाषा होने के कारण अत्यन्त सीमित रूप में ही उपलब्ध होता है।

अपभ्रश के महाकाव्य यद्यपि संस्कृत और प्राकृत के शास्त्रीय या रीतिबद्ध महाकाव्यों से भिन्न है फिर भी इसके पौराणिक और रोमाचक शैली के महाकाव्यों में शृगार के विविध पक्षों के वर्णन की रूढ़ परम्परा का प्रयोग मिलता है। इन चरित काव्यों में संस्कृत के नैषधचरित या विक्रमाङ्कदेव चरित की शास्त्रीय शैली का अनुसरण

१ डॉ शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ १७१
२ वही पृ २०६

नहीं किया गया है।[1] इनमें राग विराग का पृथक् पृथक् और विस्तृत निरूपण मिलता है। इन काव्य ग्रंथों का मूल प्रतिपाद्य विराग या शान्त रस है अतः इनमें सभी पात्र जिन धर्म को स्वीकार कर घर-द्वार त्याग देते हैं किन्तु उसकी पृष्ठभूमि घोर शृंगारी एवं ऐहिक है। डा० शम्भुनाथ सिंह ने अपभ्रंश महाकाव्यों की विवेचना करते हुए लिखा है 'यद्यपि ये सभी पौराणिक विषयों पर लिखे गए धार्मिक काव्य हैं पर इनमें शृंगार और युद्ध का वर्णन भी मिलता है। कथा के भीतर अवसर मिलते ही कवियों ने प्राकृतिक वस्तुओं—सन्ध्या प्रभात चन्द्रमा नदी सागर, पवन आदि—का सुन्दर चित्रण किया है।[1] डा० हरिवंश कोछड़ का मत है कि संस्कृत और प्राकृत की तरह अपभ्रंश में धर्म भावना निरपेक्ष ऐहिकतापरक महाकाव्य नहीं दिखाई पड़ते। सम्भवतः ऐसे महाकाव्यों की रचना जैनेतर कवियों द्वारा हुई हो जो सुरक्षा के अभाव में कालकवलित हो गई।[2]

अपभ्रंश में सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण महाकाव्य स्वयंभू का पद्मचरित या पउम चरिउ है।

पउमचरिउ—प्रस्तुत महाकाव्य में रामकथा का जैन रूपान्तर उपलब्ध होता है। इसमें ऋतुओं का वर्णन अनेक उपमानों के द्वारा सुन्दर शैली में किया गया है। पावस वर्णन में कवि ने पावसराज का ग्रीष्म राज पर आक्रमण के मानवीकरण द्वारा कवि-परम्परा का निर्वाह किया है।[3] रीतिकाव्य में भी ऐसे अनेक छन्द मिलते हैं जिनमें पावस का राजा के युद्ध के रूपक में वर्णन किया गया है। किन्तु उसका प्रभाव भिन्न है। वहाँ नायिका को नवोढ़ी जानकर उस पर दया करने के लिए बादलों का घुमड़ना गरजना और बूँद रूपी शर का प्रहार करना आदि वर्णित है। वहाँ प्रकृति का उद्दीपक रूप स्पष्ट है।

कवि ने जलक्रीड़ा में सहस्रार्जुन और उनकी रानियों की जिन चेष्टाओं का वर्णन किया है वह संस्कृत के शास्त्रीय महाकाव्यों की शैली पर आधारित है।[4] इनमें ऐश्वर्य और विलासिता का रूप अधिक स्पष्ट होकर आया है। वसंत ऋतु का वर्णन भी परम्परित है।[5] प्रस्तुत महाकाव्य में पवनंजय का अंजना सुंदरी के लिए विलाप[6] विक्रमोर्वशीय के पुरुरवा विलाप से मन्दोदरी विलाप[7] तथा कुमारसंभव के रतिविलाप से मिलता जुलता है।

कवि ने सीता के रूप वर्णन में परम्परित उपमानों प्रयोग किया है।[8] प्रकृति

---

१ डा० शम्भुनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १८६

२ डा० हरिवंश कोछड़ अपभ्रंश साहित्य पृ० ५२

३ स्वयंभू पउमचरिउ २८।२।३

४ वही १४।६

५ वही ७१।१२

६ वही १६।१३

७ वही ७६।१

८ वही ८।३

वर्णन में कवि का अप्रस्तुत विधान[1] बाणभट्ट की कादम्बरी की याद दिलाता है। सागरादिमुग्ध नन्दिया का कविता में विवाद में मिलन जाती हुई[2] वर्णन का वर्णन किया है। स्वयंभू ने भी उस परिपाटी का पालन किया है।[3]

महापुराण—पुष्पदन्त का यह अपभ्रंश प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें भी वीर और शृंगार रसों का विस्तृत और सांगोपांग वर्णन किया गया है। किन्तु सबका पर्यवसान शान्त रस में ही होता है। कवि ने शृंगार के विविध पक्षों—संयोग और वियोग—नायिका के सौन्दर्य और नखशिख का परम्परानुकूल वर्णन किया है।[4] भविसयत्तकहा में धनपाल ने प्रस्तुत कथा के बीच बीच में वर्णन शृंगार, वीर और शान्त रसों का वर्णन किया है। इसमें ऋतुओं की स्थापना व नारी का नखशिख आदि का वर्णन कवि परम्परा के अनुसार ही किया गया है।[5]

हिन्दी

हिन्दी में महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों की ही पिछली कड़ी माने जा सकते हैं। यद्यपि हिन्दी के आदिकालीन महाकाव्य बहुत-कुछ लोक भाषाओं व प्रशस्तिपरक और वीर गीतों से प्रभावित हैं किन्तु उनमें शास्त्रीय महाकाव्यों के तत्त्व पूर्णतः विलुप्त नहीं हुए हैं। जहाँ राजा या सामन्त की प्रशस्ति के साथ ही उसके रूप-सौन्दर्य सम्पन्न उसका विवाह और शृंगार आदि के वर्णन मिलते हैं। इसी प्रकार आदिकालीन खुमानरासो, बीसलदेवरासो और पृथ्वीराजरासो में यद्यपि प्रमुख रस वीर है फिर भी शृंगार और उसके विविध पक्षों का विस्तृत वर्णन मिलता है। स्वयं चन्दबरदाई ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए अपनी रचना को उनका उच्छिष्ट कहा है।[6]

पृथ्वीराजरासो—यद्यपि रासो की गणना वीररसात्मक महाकाव्यों में की जाती है पर वीररस शृंगाराश्रयी होकर आता है इसलिए इसमें शृंगार के विविध उपादानों—संयोग वियोग रूप चित्रण, ऋतु वर्णन आदि का वही रूप मिलता है जिसकी परम्परा रीतिकाल में विकसित हुई। प्रस्तुत ग्रंथ में शृंगार की प्रधानता बताते हुए डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी कहते हैं, "रासो में इसी प्रधानता वीर और रौद्र रसों की पाई जाती है

---

१ स्वयंभू पउमचरिउ १।४

२ वही १४।३ महापुराण १२।६ णायकुमार चरिउ १।२

३ महापुराण ५।१७ २।६।१७ ५४।२।२ ८ २८।१३ ७ १६।११

४ भविसयत्तकहा (गायकवाड ओ० सि० १९२३ ई०) प० ५

५ वही प० २३ ३३ १५।१।७ प० १ ६

६ क्वो कित्ति कित्ती उक्ती सुध्धियो।
तिनें की उचिष्टी क्वी चंद भक्वी॥ —पृथ्वीराजरासो समय १ छ० १

७ पृथ्वीराजरासो २५ २६ ३ ६

बहुत कुछ वही हाल शृगार का । वीर स्वभावत रति प्रेमी पाए गए है। किसी की रूपवती कन्या का समाचार पाकर अथवा कन्या द्वारा उसके अपने माता पिता की इच्छा के विपरीत आकर वरण करने का सन्देश पाकर, उक्त कन्या का अपहरण कर उसके घरवालो से भयकर युद्ध और इस युद्ध मे विजय प्राप्त करके कन्या का पाणिग्रहण तथा प्रथम मिलन आदि के वर्णनो मे हम वियोग और सयोग के चित्र मिलते हैं। नायक और नायिका के परस्पर श्रवण मात्र से अनुराग और तज्जनित वियोगकष्ट के वर्णन काम पीडा के प्रतीक हैं।[१]

पृथ्वीराजरासो ने प्रत्युक्तियो का सहारा लेकर पृथ्वीराज के अनेक युद्धो और सबके मूल मे मूलत कन्याहरण को लेकर अनेक सयोग वियोगात्मक चित्रो का सम्पूजन कियाहै। चन्दबरदाई को प्रस्तुत महाकाव्य मे युद्ध और विवाह की शृखला उपस्थित करने मे पर्याप्त सफलता मिली है। हर युद्ध के वर्णन थोडे-बहुत अन्तर के साथ एकसे ही हैं। हर बार कोई पथिक या गन्धर्व विशेष किसी राजा की रमणीय कन्या का रूप-वर्णन करता है जिसे सुनकर पृथ्वीराज की दशा प्रेमाख्यानक काव्यो के नायक की सी हो जाती है अर्थात् वह पूर्वानुरागजन्य विरह का अनुभव करने लगते हैं। दूसरे ही क्षण कन्याहरण के लिए वाहिनी सजती है। कवि बँधी बँधाई रीतो मे सेना सेना प्रस्थान युद्ध और शत्रु सेना की पराजय का वर्णन करता है। अधिकाश नायिका का हरण किसी देवस्थान मे ही होता है। सयोग मे कवि अभिलाषपूर्तिजन्य नायिका के रूप और प्रथम दर्शनजन्य सकोचादि का वर्णन करता है। कन्याहरण के बाद सयोग शृगार के अन्तर्गत आने वाली रूढ चेष्टाओ का सक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

जहाँ तक शृगारिक प्रसगो का प्रश्न है प्रस्तुत महाकाव्य मे उसके दोनो—सयोग[२] और वियोग[३]—पक्षो का वर्णन शास्त्रीय पद्धति पर किया गया है। कवि ने रानी हसावती आदि की वय सधि एव षोडश शृगार और द्वादश आभरण का भी वर्णन किया है।[४] अत सस्कृत प्राकृतादि साहित्य की परम्परा को आगे बढाने मे प्रस्तुत महाकाव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा० नगेन्द्र रासो की विशेषता का उल्लेख करते हुए चन्दबरदाई को काव्य रीति के प्रति निश्चित ही सावधान मानते हैं। उन्होने लिखा है कि 'पृथ्वीराज रासो के शृगार चित्रो मे अनेक चित्र एसे मिल जाते है जिनमे रूप के उपमानो को बहुत कुछ उसी प्रकार रीति मे जकडकर उपस्थित किया है जैसा रीतियुग मे हुआ है।'[५] पृथ्वीराजरासो मे षड्ऋतु वर्षा शरद् आदि के वर्णन कई स्थलो पर आए है।[६] कवि

१ डा विपिनविहारी त्रिवेदी चन्दबरदाई और उनका काव्य पृ० १५६
२ पृथ्वीराजरासो ६२।२११ २ ६६।१ ७१८
३ वही ६६।६ ,६६८
४ वही ३६।१४६ १८७ ४६।८ ४७।२७ ८८ ४८।८८ १०
५ डॉ नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ १८६
६ पृथ्वीराजरासो २४।२,२ ४४ ६७।६-७२ २४।३७ ४४ ४६ १ ७ ८, ५७।१३८ ४२

ने अधिकांश वर्णन काव्यरूढ़ि के अनुसार ही किए हैं। संयोग शृंगार के वर्णन में वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। अनेक नायिकाओं के भेदों—स्वाधीनपतिका, परकीया,[1] स्वकीया[2] अभिसारिका मुग्धा नवोढा[3] आदि के अतिरिक्त कामशास्त्रीय—पद्मिनी, चित्रिणी शंखिनी और हस्तिनी का भी उल्लेख किया गया है।

पृथ्वीराजरासो में अनेक युद्धों और विवाहों के वर्णन बहुत कुछ एक ही तरह के होने के कारण उदास पैदा कर देते हैं। लगता है बिना किसी सुनियोजित कथाक्रम के कवि ने अनेक घटनाओं का संकलन मात्र कर दिया है। यही कारण है कि इसमें प्रभावान्विति नहीं है और पृथ्वीराज को छोड़कर और किसी का चरित्र उभर नहीं सका है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने नारी पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करते हुए लिखा है रासो में स्त्री पात्रों में किसी का भी व्यक्तित्व वैसा महत्वपूर्ण नहीं है जैसा महाभारत में द्रौपदी, कुंती और रामायण में सीता कैकयी और मंदोदरी आदि का है। सामंती वीरयुग की संस्कृति के अनुरूप रासो की सभी स्त्रियाँ भोगविलास के साधन के रूप में हैं अतः सभी एक जैसी हैं।[4] रीतिकालीन नायिकाओं के प्रति भी यही बात कही जा सकती है।

छिताई वार्ता— नारायणदास कृत छिताई वार्ता (र० का० सं० १५०० वि०) में प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा के अनुसार नायिका का नखशिख और शृंगार के संयोग और वियोग पक्षों का सम्यक् निरूपण किया गया है।

सुल्तान अलाउद्दीन के द्वारा भेजे गए चित्रकार देवगिरि के राजा रामदेव के नवीन भवन में नल दमयंती की प्रणयकथा काम कला के आसनों और पद्मिनी, चित्रिणी हस्तिनी और शंखिनी नायिकाओं के मनोहर चित्र भित्ति पर अंकित करते हैं।[5] इससे प्राचीन प्रणय गाथाओं और कामशास्त्रीय विलास के प्रति लोक रुचि का संकेत मिलता है।

कवि ने रूढ़ उपमानों द्वारा छिताई का रूप एवं नखशिख वर्णन किया है।[6] छिताई का नवोढात्व मनोवैज्ञानिक आधार पर वर्णित है। फिर भी उसमें परम्परा का महत्वपूर्ण योग लक्षित होता है।[7] वियोग वर्णन में भी वर्णन रूढ़ियों—प्रकृति का उद्दीपकत्व कामदेव के प्रति उपालंभ आदि का सम्यक् निर्वाह पाया जाता है।[8]

पदमावत —मलिक मुहम्मद जायसी कृत पदमावत हिन्दी का प्रेमाख्यानपरक

---

१ पृथ्वीराजरासो ७।३१ ३२
२ वही ३६।२३१
३ वही ६१।२५५२
४ डा शम्भूनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास प ११
५ छिताई वार्ता (ना प्र स) छं १९६ ६
६ वही १५० १८ ४४ ४८
७ वही १६० ६६
८ वही २२२ २३ ३१६, ४०८ ११ ४१५ ६१६

महाकाव्य है। प्रेमप्रधान आख्यान पर आधारित कथावस्तु के कारण इसमें शृंगाररस की प्रधानता है। शृंगार के आलम्बनों के रूपलावण्य का वर्णन कवि ने विस्तृत और परम्पराभुक्त उपमानों के प्रयोग द्वारा किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "जायसी के वर्णन अधिकतर परम्परानुगत होते हैं इससे उनमें कवि समय सिद्ध उपमान ही अधिक मिलते हैं और इन परम्परागत उपमानों में कुछ ऐसे अवश्य हैं जो प्रसंग के अनुकूल भाव को स्पष्ट करने में सहायक नहीं होते।"[1]

प्रस्तुत महाकाव्य में रूप-वर्णन संस्कृत के शास्त्रीय महाकाव्यों में वर्णित नायिकाओं के नखशिख की याद दिलाते हैं। कवि ने रूप के वर्णन में वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा के अतिरिक्त रूपकातिशयोक्ति, सांगरूपक, व्यतिरेक आदि का प्रयोग किया है। बहुत कुछ यह कवि परम्परा के अनुसार ही है।[2]

रासो की भाँति पदमावत में भी पद्मावती की साज सज्जा-वर्णन के प्रसंग में उसके बारह आभरण और सोलह शृंगार का वर्णन किया गया है। कवि ने सम्भवतः भ्रमवश सोलह शृंगार को बारह आभरण कह दिया है।[3] यद्यपि सूफी प्रेमाख्यानक की परम्परा के अनुसार प्रस्तुत महाकाव्य में वियोग शृंगार की पूर्ण विवृति है तथापि संयोग वर्णन में भी कवि को पूर्ण सफलता मिली है। ऐसे अवसर पर पदमावती का परिहास[4] मतिराम पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों के द्वारा वर्णित नायिकाओं के परिहास की याद दिलाता है।[5]

कवि को संभोग सुरति के वर्णन में भी सफलता मिली है। आचार्य शुक्ल ने हावों की सम्यक् योजना न कर सकने के कारण कवि द्वारा वर्णित सम्भोग-पक्ष की खामियों का निर्देश किया है। पदमावती के समागम की कुछ पंक्तियाँ अश्लील भी हो गई हैं पर सर्वत्र जायसी ने प्रेम का भावात्मक रूप ही प्रधान रखा है। भोग विलास का वर्णन कवि ने यहाँ कुछ ब्यौरे के साथ किया है पर इस विलासिता के बीच बीच में भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित दिखाई पड़ता है।[6] कवि ने सखियों का हास-परिहास सुरत चिह्न समन्विता पद्मावती का रूप तथा षड्ऋतु आदि का वर्णन संयोग शृंगार के अंतर्गत किया है।[7] नागमती वियोगखण्ड में बारहमासा के आधार पर आषाढ़ मास से प्रारम्भ करके ज्येष्ठ मास तक की उद्दीप्त विरह-वेदना का वर्णन किया है।[8]

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० १७
२ पद्मावत सिंहलद्वीप वर्णनखंड दो० ७८ १४ जन्मखंड दो० ६
३ वही पद्मावती रतनसेन भेंटखंड दो० ६७
४ वही १७
५ मतिराम रसराज छं० ३७२ पद्माकर जगद्विनोद छं० ४५८
६ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली भूमिका पृ० ५२
७ पद्मावत पद्मावती रतनसेन भेंटखंड दो० ३८ ४१ षड्ऋतु वर्णनखंड दो० ६१०
८ पद्मावत नागमती वियोगखंड दो० ५ १६

रूप और नखशिख वर्णन के प्रसंग अनेक स्थलों पर आए हैं। रासो की भाँति यहाँ भी कवि ने कामशास्त्रीय नारी भेद का वर्णन किया है।[1] यहाँ वहाँ कवि ने अत्युक्ति के द्वारा चमत्कार प्रदर्शन किया है। पद्मावती के रूप वर्णन में ऐसे स्थलों की चर्चा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "सुकुमारता की ऐसी अत्युक्तियाँ अस्वाभाविकता के कारण केवल ऊहा द्वारा मात्रा या परिमाण के आधिक्य की व्यंजना के कारण कोई रमणीय चित्र सामने नहीं लाता।"[2] जैसे ग्रीवा की कोमलता और स्वच्छता[3] और युद्ध के लिए गमनोद्यत बादल को पीठ फेरे देखकर उसकी नवोढ़ा वधू की उत्प्रेक्षा आदि के वर्णन[4] हास्यास्पद लगते हैं।

जायसी के पद्मावत में भारतीय कथावस्तु और सूफी शैली का विचित्र सम्मिलित रूप दिखाई देता है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है 'सूफी मत में प्रेम की पीर और सौन्दर्य या आनन्द को बहुत महत्व दिया गया है और इनका वर्णन सूफी कवि बहुत बढ़ा चढ़ा कर करते हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रेम की महिमा, विरह वेदना और सौन्दर्य की महत्ता का जो इतना अधिक और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है वह फारसी काव्य धारा का प्रभाव व्यक्त करता है।'[5]

प्रस्तुत महाकाव्य में बारहमासा का वर्णन लोकगीतों की परम्परा की याद दिलाता है। रीतिकाल में भी षड्ऋतु और बारहमासा के ग्रंथ प्रचुर परिमाण में मिलते हैं।

माधवानल कामकन्दला—भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा में गणपति-कृत माधवानल कामकन्दला (र० का० सं० १५८४ वि०) एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें लोककथा, गीति के तत्वों का सुन्दर संयोजन है। कामकन्दला के विरह[6] यौवनागम, मुग्धात्व[7] नखशिख[8] संयोग[9] एवं शृंगारिक चेष्टाओं आदि का वर्णन परम्परानुगत है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में कामकन्दला के विरह का वर्णन करता हुआ कवि वेश्या व्यवसाय का वर्णन विस्तारपूर्वक करता है[10] जिससे पता चलता है कि मालदेवी सम्बन्धी

---

१ पद्मावत नागमती वियोग खंड १४

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रंथावली पृ ६२

३ पुनि तहि ठाँव परी तिनि रेखा। घूँट जो पीक लीक सब देखा॥

पद्मावत ४१।१४ तुलनीय –बिहारी १२८

४ पद्मावत ५२।६

५ डॉ शम्भुनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ ४१६

६ गणपति माधवानल कामकन्दला १।२६६ ८

७ वही ।१३ पुनलाय–श्याम बरन नायिका भेद छं ३

८ वही २।२१ ३१

९ वही ३।१११ १२ १०४।२२८

१० वही ६।१६ २४

शताब्दी में वेश्यावृत्ति खूब ज़ोरों पर थी। विरह की अवस्थाओं का वर्णन भी परम्परित है जिसमें गुण कीर्तन, उन्माद, शीतोपचार प्रलाप और प्रिय मिलन की आशा से प्राण धारण आदि का वर्णन किया गया है।[1] कामकंदला विरहोन्माद में सूर्य, अनिल, चन्द्र, जल, चातक, मयूर, कोकिला और रात्रि को उपालम्भ देती है।[2] वह बारहमासा शैली में फागुन से माघ तक के प्रत्येक महीने को कोसती हुई अपनी विरहावस्था का वर्णन करती है।[3] वह पवन और पत्र के द्वारा सन्देश प्रेषण का भी उपक्रम करती है।[4]

माधवनल और कामकंदला के संयोग शृंगार का भी सविस्तृत चित्रण किया गया है।[5] प्राकृतिक पृष्ठभूमि का उद्दीपन वर्णन षड्ऋतु की परम्परा में किया गया है।[6] कवि को फागुन और होली के उल्लासमय वातावरण का चित्रण करने में अधिक सफलता मिली है। कामकन्दला की सखी उसके स्वाभाविक सौंदर्य और सौकुमार्य का वर्णन व्याज-स्तुति के माध्यम से करती हुई उसे कपाल पर कस्तूरी का तिल लगाने को भी मना करती है।[7]

इस प्रकार माधवानल कामकन्दला में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का विस्तृत वर्णन लोक-गीति शैली में किया गया है।

रसरतन—प्रेमाख्यानकों में सामान्यतः शृंगार रस का पूर्ण परिपाक पाया जाता है। जैसा कि पहले हम देख आए हैं कि इन आख्यानों में वियोग से संयोग की ओर कथा का विकास होता है। बीच बीच में नखशिख, वय संधि, पूर्वानुराग, बारहमासा, षड्ऋतु, संयोग, विविध विहार आदि का संयोजन किया जाता है। इनमें शृंगार के उभय पक्ष—संयोग और वियोग का परिपुष्ट रूप सामने आता है। पुहकर कवि के रसरतन (र० का० लगभग १६७३ वि०) में उक्त वर्णन बहुत कुछ परम्परा के अनुसार ही मिलते हैं। कवि ने अलंकृत शैली में रसात्मक स्थलों का पूर्ण विस्तार के साथ वर्णित किया है।

पं० करुणापति त्रिपाठी ने कवि पुहकर की शृंगारी वृत्ति का निरूपण करते हुए लिखा है "प्रेम के स्वरूप और शक्ति, व्याप्ति और प्रभाव, गहराई और सीमा के साथ साथ पुहकर उसकी नाना कोटियों से—प्रेममार्गियों के आध्यात्मिक रहस्यपूर्ण और अलौकिक तथा आभिजात्यवर्गीय विलासिकता में भीतर-बाहर आर्द्रीकृत और भोगतृष्णाप्रधान, रीतिकालीन भौतिक स्थूल रूप से—पूर्णतः परिचित और प्रभावित थे। शृंगार परिधि के विविध पक्षों और आयामों के जो कितने सरस और चटकीले सम्पिष्ट और प्रभाव

---

१ वही ६।१६०-२२४-२६८
२ वही ६।३६ ३७४
३ माधवनल कामकन्दला ६।८० ५२८
४ वही ६।६२ ७४ ६३ ३१
५ वही ८।१२
६ वही ८।१६
७ वही ८।१८६

शाली कल्पना शक्ति का पुट देकर उसे सजीव प्रदान किया है। परन्तु साथ साथ स्फुट प्रभावित और अलंकारवर्णित पूर्ण उक्तियों भी रसरतन में कम नहीं हैं जिनकी धारा संस्कृत के बृहत्तया निर्माणकाल या उसके कुछ पूर्व से ही अलंकरणशृंगार वाली नायिका, तथा आख्यायिकाओं आदि में अविच्छिन्न रूप से चली आ रही थी और जिसके प्रभाव से सूर और तुलसी जैसे महाकवि भी अपने को पूर्ण मुक्त न कर सके।[1] इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि शृंगार की परम्परा आदिकाल से लेकर मध्यकाल तक लगभग एक सी चली आती है। रीतिकाल में उसकी गति और भी तीव्र हो जाती है। पुहकर रीतिकाल के पूर्ववर्ती किन्तु केशवदास के परवर्ती कवि हैं। उन्होंने आदिकाल से लेकर अपने समय तक की शृंगारपरक अलंकृत काव्यधारा की सारी उपलब्धियों को अपने ग्रंथ रसरतन में सजोया है साथ ही परवर्ती काव्यधारा की सम्भावित परिणति का भी संकेत किया है।

रसरतन में जहाँगीर की प्रशस्ति[1] के उपरान्त वय सन्धि[3] वियोग[4] सखीशिक्षा[5] नखशिख एवं रूप सौन्दर्य[6] संयोग[7] वियोग बारहमासा[8] संदेश प्रवर्णन[9] वन विहार[10] आदि का परम्पराभुक्त वर्णन किया गया है।

डा० शिवप्रसाद सिंह ने प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका में रासो और रसरतन का साम्य दिखलाते हुए सिद्ध किया है कि रसरतन में भी रस भाव वस्तु वर्णन छन्द तथा उप स्थान सम्बन्धी रूढ़ियों का निर्वाह पृथ्वीराजरासो के समान ही किया गया है।[11]

रीतिकाव्य में शृंगार के संयोग और वियोग की अवस्थाओं नायिका के रूप सौन्दर्य हाव भाव और सखी दूती ऋतु एवं ऋतूत्सवों के वर्णन बहुत कुछ इन भारतीय प्रेमाख्यानकों से अनुप्रेरित लगते हैं। अतः रीतिकाव्य के उपजीव्य ग्रंथों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इन प्रेमकथाओं में सूफी प्रभाव के कारण लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना कराई गई है किंतु शृंगारी प्रसंगों के वर्णन में बहुत कुछ शास्त्रीय और लोक परम्परा का निर्वाह उसी प्रकार इनमें पाया जाता है जैसा परवर्ती रीतिकाव्य में। मध्य

---

१ विभागीय प्राक्कथन रसरतन पृ २ २४
२ रसरतन आदि खंड छन्द २६ ४५
३ वही आदिखंड १६२ २ ६
४ वही स्वप्नखंड १४७ २१८
५ वही विजयपालखंड ५६ १३०
६ आदिखंड ६ ३५ चित्रखंड १६२ ६६ विजयपालखंड २१ १७ अप्सराखंड ६७ ७८ चंपावती खंड २४२ ४८ स्वयंवरखंड ५५ ६६ २६६ ३ २
७ वही अप्सरा खंड ८ १७१ स्वयंवर खंड २७४ ६४ ५६६ ६ ७८ युद्ध खंड ३ ३४६
८ वही युद्ध खंड ८ ६५
९ वही युद्ध खंड १० १६६
१० वही युद्ध खंड १८ २ २
११ देखिए—रसरतन की भूमिका पृ० १५२ १६५।

प्राचीन हिन्दी साहित्य में शृंगार रस की धारा को विकसित और परिवर्तित करने में इन प्रेमाख्यानकों का योग बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है।

रामचरितमानस—प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य में राम के आदर्श चरित्र की अवतारणा की गई है फिर भी प्रसंगानुरोध से राम और सीता के शृंगार का मर्यादित निरूपण किया गया है। राम के रूप वर्णन में नागरिक सौन्दर्य के साथ साथ उनके मनोविज्ञ सौन्दर्य का भी उद्घाटन किया गया है। उसमें रीतिकालीन विलासी सामन्तवर्ग की कामिनी सुन्दरता और अलंकरण प्रियता के लिए अवकाश नहीं है। सीता और राम का प्रेम वर्णन उदात्त, संयत, सात्त्विक और मर्यादित है।

शृंगारिक प्रसंग की अवतारणा में जनक वाटिका में प्रथम-नयन-प्रीति का वर्णन मिलता है। कवि ने सीता की उत्कंठा और लज्जा का चित्रण 'चकित' और 'सभीत' शब्दों के प्रयोग से किया है।[1] नायिका के आभूषणों की झंकार का वर्णन परम्परा के अनुसार कामोद्दीपक किया गया है।[2] सीता का निर्माण भी कवि रूढ़ि के अनुसार सौन्दर्य सार और ब्रह्मा की रचना निपुणता का चरम निदर्शन सिद्ध किया गया है[3] जिसकी उपमा कवि नहीं दे सकता, क्योंकि उपमान अन्य कवियों के उच्छिष्ट हैं।[4] सीता की अनुरागव्यंजना बड़ी कुशलता से की गई है।[5]

कवि की वृत्ति राम के रूप-वर्णन में जितनी रमी है उतनी सीता के रूप चित्रण में नहीं। राम तुलसी की अनन्य भक्ति के आलम्बन हैं। उनके रूप-वर्णन में प्रयुक्त उपमान प्रायः परम्परायुक्त हैं। नायिका के रूप सौन्दर्य का चित्रण कवि परिपाटी के आधार पर किया गया है। प्रसिद्ध उपमानों—सरस्वती, पार्वती, लक्ष्मी आदि की अपूर्णता सिद्ध करते हुए तुलसीदासजी ने सम्भावना व्यक्त की है कि यदि सौन्दर्यसुधा का सागर हो, परम सुन्दर कच्छप, शोभा की रस्सी, शृंगार का मन्दराचल और स्वयं कामदेव मन्थन करने वाला हो और यदि उसमें से सुन्दरता और सुख की निधि लक्ष्मी प्रकट हो तब भी उसकी तुलना सीता से करता हुआ कवि संकोच का अनुभव करेगा।[6] इस प्रकार की दूरारूढ़ कल्पनाएं अन्यत्र की गई हैं।

धनुष भंग में सीता की मानसिक स्थिति का ज्ञापन करते हुए, चन्द्रमंडल में डोलते हुए कामदेव के दो मीनों के रूप में सीता के चंचल नेत्रों की उत्प्रेक्षा की गई है।[7] विवाह मंडप के मणिमय स्तम्भों में सीता और राम की प्रतिच्छवियाँ ऐसी लगती हैं मानो

---

१ रामचरितमानस (काशिराज संस्करण) बालकांड २२९
२ वही २३०।२
३ वही २४०।६
४ वही २३।१८
५ वही २३२।४ ७
६ वही २४७।१ ८
७ वही दो० २५८—तुलनीय-बिहारी १६३ और १६५

राम विवाह देखने के लिए अनेक रूप धारण करके स्वयं रति और कामदेव आते हैं।[1] मोहवर में बैठी सीता अपने कंगन की मणि में राम की प्रतिच्छवि देख रही हैं।[2] तथा चेष्टाओं का वर्णन किया विदग्धा नायिकाओं के चित्रण में श्रृंगार रसिया ने किया है। वन मार्ग में राम वधुओं का उत्तर देती हुई ग्रामवनिता सीता की लज्जा का भ्रमण और उसके द्वारा गम्भीर भाव का प्रकाशन कवि की कला निपुणता का द्योतक है।[3] प्रिया विरही राम का चित्रण लौकिक मानवीय भावों से युक्त किया गया है। राम सीता का पता लता गुल्म और पशु पक्षियों से उसी प्रकार पूछते हैं जिस प्रकार नाटकों में प्रिया विरही नायिका का पूछना देखा जाता है। इस प्रसंग में कवि की उक्ति परम्परानुगत अधिक है।[4] इस सन्दर्भ में प्रकृति का उद्दीपन रूप चित्रित किया गया है।[5] कवि ने काम की सेना का इस पृष्ठभूमि में सांगोपांग वर्णन किया है।[6] रीतिकालीन कवि की उक्तियाँ बहुत कुछ तुलसी की इन उक्तियों से साम्य रखती हैं किन्तु जहाँ प्रकृति के रूप को माया सिद्ध करते हुए दार्शनिक परिणति दी गई है वहाँ तुलसी का वैशिष्ट्य उजागर हो गया है।[7]

सामान्य सन्देश वाहकों की तरह हनुमान भी राम का सन्देश देते हुए सीता से उनका विरह निवेदन करते हैं। राम ने कहा है कि तुम्हारे वियोग में मेरे लिए सभी विपरीत हो गए हैं। वृक्षों के नवीन किसलय अग्नि, रातें-कालरात्रि और चन्द्र-सूर्यवत् दाहक, कमल वन भाले के वन से लगते हैं और मेघ तप्त तेल की वर्षा करता हुआ लगता है। जो (संयोग काल में) हित पोषक थे वे ही अब दुःखद हो गए हैं। त्रिविध समीर सर्प की श्वास की तरह लगता है।[8] विरही का अपने प्राणों और चन्द्रमा को उपालम्भ देना परम्परा प्राप्त है।[9]

यद्यपि रामायण गरिमामयी उदात्त शैली में निबद्ध पौराणिक प्रबंध काव्य है और इसमें मुख्य काव्य प्रयोजन लोक मंगल की साधना है तथापि प्रकृति चित्रण, वसंत, वर्षा, शरत आदि ऋतुओं का वर्णन, रूप और नखशिख, संयोग और वियोग तथा विविध हाव भावों के चित्रण को भी समुचित स्थान दिया गया है।

प्रबंध-काव्यों की चर्चा करने के उपरान्त सूरदास के सूरसागर का भी उल्लेख

---

१ मानस बालकांड दो० ३२१।३ ८ तुलनीय बिहारी ४२
२ वही २० कवितावली बालकांड छं० १७
३ वही अयोध्याकांड दो० ११६।१ ८
४ वही अरण्यकांड दो० ।१ १६
५ वही अरण्यकांड दो० ७।३ १
६ वही अरण्यकांड ३८।१ १२
७ वही अरण्यकांड ८।१३ १६
८ मानस सुन्दरकांड १५।१ ४
९ वही ३१।४ ८, लंकाकांड १२।७-१

करना आवश्यक है। वह मुक्त प्रबन्धात्मक मुक्तक ग्रंथ है। प्रत्येक पद घटनाक्रम में संयोजित, पूर्ण और स्वतन्त्र है। कथासूत्र की क्षीण रेखा विद्यमान होने के कारण उसको स्वतन्त्र मुक्तक नहीं कहा जा सकता और पूर्वापर दृढ़ सम्बन्ध के अभाव के कारण उसे प्रबन्ध काव्य भी नहीं कहा जा सकता। मुक्तक प्रबन्ध इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि उसमें गेय पदों का मुक्तक रूप स्कन्धों में विभाजित भागवत से प्रभावित और कृष्णकथा के क्रमानुसार संयोजन है। इसलिए सूरसागर का अध्ययन न तो प्रबन्ध काव्यों में किया जा सकता है और न मुक्तक काव्यों में। अतः उसका पृथक् रूप से परिचय देते हुए शृंगार और रीति के तत्त्वों का निरूपण किया जाएगा।

सूरसागर—श्रीकृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में सूरसागर मधुर रस से आपूर्ण एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसके रचयिता सूरदास यद्यपि वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे जिसमें बाल कृष्ण की उपासना विहित है तथापि श्रीकृष्ण के किशोर रूप की मधुर छवि का अंकन उन्होंने पूरी तन्मयता से किया है। अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की भाँति वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों ने भी कृष्ण की शृंगार लीलाओं का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है। कृष्ण और राधा या गोपियों की शृंगार लीला का चित्रण रीतिकाल के पूर्व हरिवंश, पद्म, विष्णु तथा भागवत और ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में, दक्षिण के आलवार नामक भक्तों के साहित्य में, तथा जयदेव, उमापतिधर, चंडीदास, विद्यापति, नरसिंह मेहता, सूरदास और नन्ददास आदि कवियों की वाणी में विशद रूप में प्राप्त होता है। यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि शृंगार का जिस सीमा तक वर्णन उपर्युक्त ग्रंथों में अथवा उपर्युक्त कवियों द्वारा हुआ है उस सीमा का अतिक्रमण किसी भी प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि ने नहीं किया।[1] डा० राकेश गुप्त के मत के समर्थन में सूरसागर से ऐसे वर्णन पर्याप्त मात्रा में उद्धृत किए जा सकते हैं जिनकी अनुगूँज हमें रीतिकाव्य में मिलती है।

सम्प्रति सूरसागर के वर्ण्य विषय का परिचय देते हुए देखा जाएगा कि रीतिकाव्य के वर्ण्य विषय को उसने कितना प्रभावित किया है।

श्रीकृष्ण की बाल्य एवं किशोर लीलाओं का वर्णन चित्रण सूरसागर के दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध में ही अधिक पाया जाता है। डॉ० सत्येन्द्र ने इसी स्कंध को सूर की समस्त कीर्ति का आधार मानते हुए लिखा है "भागवत में भी यही स्कंध सबसे बड़ा है। इसमें श्रीकृष्ण की जन्म लीला, माखन चोरी, गो दोहन—राधा-कृष्ण का प्रथम साक्षात्कार, क्रीड़ा, राधा का कृष्ण के घर जाना, श्याम का राधा के घर जाना, गोचारण, धनुष यज्ञ, मुरली, चीर हरण, पनघट, गोवर्धन पूजा, दान-लीला, नेत्र-वर्णन, रासलीला, राधा कृष्ण का विवाह, मान लीला, हिंडोल लीला, वृषभ वंशी भौमासुर-वध, होरी लीला, श्रीकृष्ण का अक्रूर के साथ मथुरा जाना, आदि अतीव मनोहर और हृदयावर्जक

१ डा० राकेश गुप्त: आलोचना सं० १०, भक्ति भावना और रीतिकालीन कवि पृ० ७५

प्रसंगों के वर्णन में जितनी वृत्ति रमी है उतनी अन्यत्र नहीं।[1] इन सभी कृष्ण-लीलाओं को दो प्रकार की घटनाओं में डा० ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार बाँटा जा सकता है—एक ब्रज के आनन्दमय शान्त विलास से सम्बन्धित और दूसरी कंस के भेजे हुए विभिन्न राक्षसों के संहार से सम्बन्धित। इसमें पहली घटनाएँ बहुत-कुछ सूर की मौलिक उद्भावनाओं के परिणामस्वरूप निबद्ध हैं किन्तु दूसरे प्रकार की घटनाएँ भागवत के अनुसार संक्षेप में वर्णित हैं।[2] रीतिकाव्य की वर्ण्यवस्तु का सम्बन्ध इस पहले प्रकार की घटनाओं से है।

सूरसागर में कई पदों में श्रीकृष्ण के रूप लावण्य का परिपुष्ट वर्णन प्राप्त होता है।[3] कृष्ण के रूप प्रभाव और राधा के हृद्गत प्रेम का जैसा वर्णन सूरदास ने किया है, रीतिकालीन कवियों की कविताओं में भी वैसा ही वर्णन मिलता है।[4] कृष्ण की विलास-लीलाएँ बहुत कुछ रीतिकालीन सामन्तों की विलासिक वृत्ति के अनुकूल हैं अतः रीतिकाव्य में इनका वर्णन अनेक रूप में मिलता है।

> नीबी ललित गही जदुराइ।
> जबहिं सरोज धरयो श्रीफल पर तब जसुमति गई आइ॥[5]

आदि पदों के भावसाम्य पर रीतिकाव्य के अनेक छन्दों का निर्माण हुआ है। ऐसे वर्णनों में जयदेव के गीतगोविन्द की छाया स्पष्ट हो जाती है। यहाँ उदाहरण के लिए एक छंद का साम्य द्रष्टव्य है—

> गगन घहराइ जुरी घटा कारी।
> पवन झकझोर चपला चमक चहुँ ओर, सुवन तन चित नंद डरत भारी।
> कह्यौ वृषभानु की कुँवरि सौं बोलि कै राधिका कान्ह घर लिए जारी॥[6]

इसमें वातावरण की उद्भावना जयदेव के अनुसार है और बिहारी ने इस छंद के भाव को ग्रहण किया है।[7]

संयोग शृंगार के वर्णन में सूरदास के 'नवलकिसोर' और 'नवल नागरिया' हाव भाव एवं कटाक्ष-पात में ही नहीं अपितु कोक कला में भी प्रवीण हैं।[8]

---

१ डा० सत्येन्द्र सूरसागर आलोचना पृ० २१
२ डा० ब्रजेश्वर वर्मा सूरदास (तृतीय संस्करण) पृ० ६४
३ सूरसागर १०।६२३ ४२ ६७५ ११६४ ६७
४ वही १।६७६ ८१
५ वही १।६८२
६ सूरसागर १।६८४
७ जयदेव गीतगोविन्द श्लो० १ तुलनीय बिहारी दो० १६६
८ सूरसागर १०।६८८ ६६०

कवि ने राधा रूप[1], मयान,[2] सद्य स्नाता,[3] पूर्वराग[4] आदि का वर्णन तन्मयता के साथ किया है।

दही बिलानवाली की तन्मयता का चित्रण सूरदास ने ही नहीं बिहारी और पद्माकर ने भी किया है।[5] सूर की राधा, कृष्ण को अपनी गायें अलग करने को कहती है—बिहारी में इस प्रसंग को बड़े कौशल के साथ उपस्थित किया गया है।[6]

सूरसागर में पनघट प्रस्ताव और 'दान-लीला' भागवत से स्वतन्त्र सूरदास की रुचि का परिचय देते हैं।[7] वियोग शृंगार का वर्णन करने के उपरान्त राधा-कृष्ण की ग्रीष्म लीला का वर्णन किया गया है।[8] इस प्रसंग में संस्कृत महाकाव्यों में वर्णित जल केलि का स्मरण हो आता है।

अनुराग-व्यंजक पदों में लघुमान लीला, दान समय के पद एवं प्रातः समय के पदों में कृष्ण के रूप माधुर्य और तज्जन्य प्रभाव का सुन्दर वर्णन किया गया है।[9] डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने इस प्रसंग में लिखा है "सूरसागर का यह अंश सर्वथा मौलिक और प्रेमकाव्य का अत्युत्तम उदाहरण है। दान लीला के साथ प्रेम का यह प्रसंग सूरसागर के २६६ पृष्ठों अथवा ९९१ पदों के विस्तार में फैला हुआ है जिसमें से एक उत्तम पद कवि की गंभीर अनुभूति और रचना कौशल का परिचय देते हैं।"[10]

रासलीला में राधा का व्यक्तित्व अधिक स्फुट हुआ है। संयोग और रति क्रीडा के वर्णन के पश्चात् कवि ने खण्डिता प्रकरण में राधा के मध्यम मान का वर्णन किया है।[11] रति चिह्न मर्म वचन कृष्ण का स्पष्टीकरण राधा का रूठना, कृष्ण का मनुहार करना, दूती संयोजन आदि प्रसंगों के वर्णन में सूरदास ने शास्त्रीय शैली का आश्रय लिया है।[12] राधा के मान भंग के पश्चात् श्रीकृष्ण और राधा का हिंडोल क्रीडा वर्णित है।[13] सूरदास का यह प्रसंग भी नवीन और भागवत से स्वतन्त्र है। हिंडोल क्रीडा का वर्णन परवर्ती रीतिकाव्य में भी पाया जाता है जिसके प्रेरणास्रोत के रूप में सूरसागर का महत्व

१ सूरसागर १।७६
२ वही १।६७६ ८२, ११७८ २०२३ ७१
३ वही १।१९६७-६९
४ वही १।१९४४, ४९
५ वही १।७१५ १८ तुलनीय—पद्माकर जगद्विनोद छं० ४४२ तथा बिहारी दो० ४३
६ वही १।७३८ तथा बिहारी दो० ४८
७ वही १०।१४८९ १४७०
८ वही १०।१६२ १७१०
९ वही १९।२०७२ २४७८
१० वही १०।२४५८ २६२९
११ वही १।२६३ २८२८
१२ वही १।२८२९ २८४२
१३ वही डा० ब्रजेश्वर वर्मा सूरदास पृ० ७३

अनुगुण्ण है। इसी प्रकार वसन्त लीला, होली आदि का भी विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है डा० व्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है सूरसागर का अंतिम महत्त्वपूर्ण मौलिक कथाप्रसं 'वसन्त और फाग लीला है।'[1]

गोपी विरह के वर्णन प्रसंग में कवि ने पावस के उद्दीपक वातावरण का चित्रण किया है। इसी प्रसंग में गोपियाँ चन्द्रमा को उपालम्भ भी देती हैं।[2]

संस्कृत से लेकर हिन्दी तक आने वाली महाकाव्यों की परम्परा में शृंगार रस और उसके विविध पक्षों के निरूपण में प्रकृति-वर्णन और विलास क्रीडाएं आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। रीतिकाल के कवियों को इन ग्रंथों से पर्याप्त प्रेरणा मिली होगी चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। इसी प्रकार अब उन कतिपय खंडकाव्यों का परिचय दिया जाएगा जिनमें शृंगार की अविच्छिन्न धारा संस्कृत से लेकर रीतिकाल पर्यन्त पाई जाती है।

खंड काव्य (संस्कृत)

संस्कृत में खंड-काव्य प्रणयन की परम्परा लगभग ७वीं शताब्दी से लेकर १८वीं १६वीं शताब्दी तक पाई जाती है। सम्प्रति संपूर्ण शृंगारपरक खंड-काव्यों का अध्ययन अपेक्षित नहीं। रीतिकाव्य के स्रोत रूप में कुछ प्रमुख खंड काव्यों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा। इतिहास ग्रंथों में अनेक खंड काव्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें चक्र कवि (७वीं शती) का जानकी परिणय, नैयायिक जयंत (६वीं शती) के पुत्र अभिनन्दन के कादम्बरी कथासार आशाधर (१३वीं शती) के राजमती विप्रलंभ (अप्राप्य), सुकुमार कवि (१५वीं शती) के कृष्ण विलास कविराज विश्वनाथ के राघव विलास आदि का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

इनके अतिरिक्त संदेश-काव्य की परम्परा में अनेक ग्रन्थ आते हैं जिनका वर्ण्य विषय मूलतः वियोग शृंगारात्मक है। इस परम्परा में सर्वप्रथम नाम कालिदास के मेघदूत का लिया जाता है जो परवर्ती दूत काव्यों की प्रेरणा का अक्षय स्रोत है। कुछ विद्वान घटकर्पर काव्य को भी कालिदास-कृत मानते हैं। क्योंकि अभिनवगुप्त ने अपनी टीका में इसे कालिदास की रचना माना है। कृष्णमाचार्य के मेघ संदेश विमर्श कृष्ण मूर्ति के यक्षोल्लास रामशास्त्री के मेघप्रतिसंदेश 'रामचन्द्र के घनवृत्तम और मैथिल कवि महामहोपाध्याय परमेश्वर झा के यक्षसमागम आदि को मेघदूत से प्रभावित माना गया है। बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित कवि धोयी के पवन दूत से अन्य प्राकृतिक उपादानों को दौत्य कर्म में नियोजित करने की परम्परा चली। इस परम्परा में रूपगोस्वामी (१७वीं शती) का हंस दूत रुद्रन्याय वाचस्पति का पिक दूत भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य वादिराज का पवन दूत हरिदास का कोकिल दूत सिद्धनाथ

---

१ डा० ब्रजेश्वर वर्मा सूरदास पृ० ७३

२ सूरसागर १०।२६६६ ३४१

विद्यावागीश (१७वीं शती) का 'पवन दूत,' रामकथा विषयक वेदान्त देशिक (१३वीं शती) का हंस संदेश, रुद्रवाचस्पति (१७वीं शती) का 'भ्रमर दूत' वेंकटाचार्य का कोकिल संदेश,' कृष्णचन्द्र तर्कालंकार (१८वीं शती) का 'चन्द्रदूत', आदि शताधिक दूत-काव्यों का प्रणयन हुआ। पथिक को भी दूत बनाकर भेजने की परंपरा में अनेक दूत-काव्यों की रचना हुई जिनमें अपभ्रंश भाषा के मुसलमान कवि अब्दुलरहमान (१३वीं शती) के संदेशरासक' माधव कवीन्द्र भट्टाचार्य (१६वीं शती) के उद्धव दूत, रूपगोस्वामी (१७वीं शती) के 'उद्धव संदेश,' लम्बोदर वैद्य के गोपी दूत आदि का उल्लेख किया जा सकता है।[1]

संदेश काव्यों में अधिकांश पहले संदेश प्रेषक की विरहावस्था का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करते हैं, तदुपरान्त संदेशवाहक की सामर्थ्य और परोपकार वृत्ति की प्रशंसा। संदेश प्रेषक बड़े विनीत भाव से उसे प्रिय या प्रिया के समीप जाने का आग्रह करते हैं और दूरदेशस्थित प्रिय या प्रिया के समीप पहुँचने के मार्ग का परिचय देते हैं। फिर जिसके प्रति संदेश भेजा जाता है उसका पूरा परिचय विस्तार के साथ दिया जाता है और अन्त में विरह निवेदन के साथ-साथ विरही या विरहिणी की विरह-दशाओं का विस्तृत उल्लेख किया जाता है। इसमें कभी-कभी प्राणों की कठोरता प्रकृति की विपरीतता, कामदेव की क्रूरता और प्रिय की उपेक्षा का भी वर्णन किया जाता है।

प्रस्तुत संदर्भ में खण्ड-काव्यों के शृंगारात्मक स्थलों का निर्देश करते हुए रीति काव्य के स्रोत के रूप में उनका महत्त्व निर्दिष्ट किया जाएगा।

घटखर्पर काव्य—अभिनवगुप्त इस काव्य का रचयिता कालिदास को मानते हैं। इस ग्रन्थ में विरहिणी की मन स्थिति का अलंकृत शैली में वर्णन किया गया है। इक्कीस छन्दों में कुछ में स्वयं कवि और कुछ में सखी या दूती नायिका की वेदना का निरूपण करती है। वर्षाऋतु के उद्दीपक वातावरण में नायिका विरहोत्कंठित होकर प्रिय का स्मरण करती है। प्रकृति को कभी समदुःखभागिनी और कभी दुखदायिनी चित्रित किया गया है। नायिका बादल से कहती है कि परदेशी प्रिय से तुम कहना कि हे नाथ प्यासा चातक जल की याचना करता है और वह विरहिणी तुम्हारे मिलन की आकांक्षा करती है। चातक को तो जल प्राप्त हो गया पर विरहिणी का तुम्हारा संयोग न प्राप्त हो सका। हंस मानसरोवर को जा रहे हैं पर तुम उसके पास नहीं जाते।[2]

नायिका कदम्ब, नीप, यूथिका आदि वृक्षों लताओं को उपालम्भ देती हुई उनके विपरीत आचरण की भर्त्सना करती है। कवि ने अलंकृत शैली में विशेष रूप से यमक के प्रयोग द्वारा विरहिणी के भावचित्रों का अंकन किया है। मेघदूत की तरह भाव-गाम्भीर्य के अभाव और चमत्कार प्रदर्शन की वृत्ति के कारण यह रचना रीतिकालीन कवियों की

---

१ वाचस्पति गैरोला संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ९०५

२ हंसपङ्क्तिरपि नाथ सम्प्रति प्रस्थिता वियति मानसं प्रति ॥
चातकश्च तृषितोऽम्बु याचते दुःखिता पथिक सा च ते प्रिया ॥४॥

वणन शली म अधिक विशिष्ट है।

मघदूत —कालिदास की अपूव कल्पना शक्ति क निदशन प्रस्तुत खडकाव्य विरही यक्ष की मार्मिक उक्तियो स पूण है। जसा कि पहल कहा जा चुका है कि दूत काव्यो की रचना का मूल रूप वाल्मीकि रामायण क हनुमान लका गमन और सीता स राम सदेश निवदन तथा राम न सीता क सदेश निवदन म पाया जाता है। आदिकवि वाल्मीकि की रामायण क उक्त स्थल की प्रेरणा स अनक दूत काव्यो की रचना हुई।

पूव मेघ म रामगिरि स अलका तक जाने का रास्ता बीच-बीच म पडने वाल नगर, सर सरिता[1] और पौरागनाओ ग्राम्यवधुओ का मनोरम चित्रण किया गया है। उत्तर मेघ मे कवि ने अलकापुरी म रहने वाले यक्ष यक्षिणियो की वनासिक्त क्रीडाओ सुरत उपवन विहार और अभिसार आदि की व्यजना बडी सूक्ष्मता से की है।[2] कालिदास न यक्ष भवन का जसा वणन किया है वह कामसूत्र म वर्णित नागरक क भवन की अनुकृति जान पडता है। यक्ष अपनी प्रिया के रूप का वणन परम्परायुक्त शली मे करता है।[3] इस प्रसग मे विरहिणी की स्थिति का कवि ने बडा ही मार्मिक उदघाटन किया है।[4] प्रिय के रूप साम्य के कारण प्राकृतिक तत्वो हरिणी चन्द्र, मयूर नदी आदि के माध्यम द्वारा विरही के विरह निवेदन का वणन अनेक काव्यो म प्राप्त होता है। कवि कालिदास ने भी यक्ष का ऐसा ही वणन किया है।[5]

इस प्रकार प्रस्तुत दूत काव्य म शृगार क वियोग वणन की रूढियो क बीज सनिहित है जिनका अनुकरण परवर्ती दूतकाव्य म म पल्लवन कृष्ण भक्ति काव्य म और सवद्धन रीतिकाव्य म हुआ।

पवनदूत—बगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि धोयी की एकमात्र रचना पवनदूत महाकवि कालिदास के मेघदूत के आधार पर विनिर्मित है। मुख्यत काव्य म राजा लक्ष्मणसेन की प्रशस्ति है। विषय वस्तु की अवतारणा दक्षिण देश की मलय सुन्दरी कुवलयवती के विरह-वणन स की गई है। कुवलयवती लक्ष्मणसेन स अनुरक्त होती है किन्तु जब व दक्षिण विजय करके लौट आते है तो विरह व्याकुल वह दक्षिण पवन स सनवशी राजा लक्ष्मणसेन के प्रति अपना प्रणय सदेश भेजती है।

प्रस्तुत खडकाव्य मे कवि ने दक्षिणपवन की प्रशसा,[7] नायिकाओ के सुरतान्त[8]

---

१ मेघदूत ११४१
२ वही ११११६ २७ ३५ ३७ ४७ २।२
३ वही २।२ ५ ६ ११
४ वही २।१९ २२
५ वही २।२ ३० २।३२ ३३
६ वही २।४१
७ धोयी पवनदूत श्लो १५
८ वही ६

जलक्रीड़ा[1] ग्रक म नखक्षत धारण करने वाली वार विलासिनिया[2] ग्रभिसारिकाग्रो ग्रौर मानिनी की मानलीलाग्रो का सु दर वणन किया ह।[3] ख़ाला विलास ग्रौर प्रणय कलह के चित्रण म तथा ग्रनक न्त्रा की सु दरिया क रूप ग्रकन म कवि न पूरी सफलता प्राप्त की है।[4] कुवलयवती क पूवराग जय विरह क वर्णन म उसकी दुबलता, उ माद, निद्रानाश, जडता प्रिय वस्तुग्रो म विरक्ति विरहतापाधिक्य ग्रार मूर्च्छावस्था का चित्रण कवि क शृ गार वणन की दक्षता का द्योतक ह।

हस-सदेश – वदान्तदशिक न इसकी रचना कालिदास क मघदूत के ग्राधार पर की है।[5] इस काव्य म रामचन्द्र जी वियागिनी सीता क पास हस द्वारा ग्रपना सदश प्रेषित करत हैं। मघदूत की तरह इसम भी दो खड ह। प्रथम खड म माल्यवान पवत स लका तक के रास्त का ग्रकन वणन किया गया है। शृगारात्मक उक्तियो ग्रौर राम एव सीता की विरह दशाग्रो का विस्तृत विवरण हस सदश क दूसर खड म दिए गए है। इसी खड के प्रथम पाच श्लोको म लका का वणन करत हुए राम कहत ह, मल्लाक्ष[1] तुम उस लका को दखाग जिसम नागनाए ग्रपने गुणो क कारण तुम्हारे समान ह। तुम्हारी तरह ललित गति ग्रानूपणो स सुदर ध्वनिवाली तुम्हारी तरह मन्दहास्यक दृष्टिवाली तुम्हारी तरह पाडुर ग्रगवाली ग्रौर मधुर मुग्ध भाषावाली मानस विहारिणी स सुर युवतिया तुम्हारा ग्रनुरजन करेंगी।'[6]

कवि न राम के द्वारा सीता की विरहावस्थाजन्य दशा का चित्रण ग्रनक दनावा म कराया है। इसक ग्रनन्तर विरहावस्था म शालनीन शून्य दृष्टिवाली नेत्रो स जलवृष्टि करती हुई भागी सीता का मार्मिक चरित्र चित्रण किया गया है।[7] राम हस म वियोगकालीन रात्रि की भीषणता का वणन करत हुए मयाग म बीत शिशिर ऋतु सुखा ग्रौर ग्रव माता क वियोग म उसक कन्दप्रद प्रभावो का उल्लेख करत हुए दिगन्त व्यापी कामदव क माथी वसत स विनम्र प्रार्थना करत हैं कि वह सीता क समीप न जाए।[8]

---

१ मेघदूत १।३ ५।८३
२ वही २६
३ धोयी पवनदूत श्लो ४ ५ ४४ ४६
४ वही ४८ ५० ५८ ६० ६५ ६६
५ Hans sandesa is like Meghauuta of which it is a manifest mutation and an erotic lyric being erotic in conception and lyrical in execution —Hans sandesa Introduction p 1
६ हस सदश २।१
७ वही २।१ १६ २ २३
८ वही २।३ ५

रीतिकाव्य में कालिदास के ऋतुसंहार का अनुकरण ही या प्रकृति के उपादान रूप में है, वे यहाँ तो उद्दीपन रूप में ही हुआ और गया। कथा-प्रसंग के अभाव में कहीं दृश्य-काव्य का स्वरूप नहीं मिलता, जो उसके ... में प्राप्त होता है।

ऋतु का वर्णन काव्य के अतिरिक्त शृंगार प्रधान महाकाव्यों की दूसरी परम्परा कालिदास के ऋतुसंहार में था।

ऋतुसंहार — प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकृति के उद्दीपन रूप का नाना प्रकार से चित्रण किया गया है। इस ग्रन्थ में अतिरिक्त ... प्रदान किया गया है। यहाँ तक प्रकृति के आलम्बन रूप का भी वर्णन प्राप्त होता है।

ग्रीष्म ऋतु से षड्ऋतु का वर्णन प्रारम्भ करते हुए कालिदास ग्रीष्म ... सूर्य किरणें, जलाशय, स्नान, रात्रि, चन्द्रमा, ... विभिन्न मणियों गुम्फित चन्दन सुवासित स्तनों ... सुवासित ... का वर्णन किया गया है।[1] कालिदास ने गरमी की विकलता के कारण स्वाभाविक रूप से ... साथ निवास करते जीव-जन्तुओं का भी वर्णन किया है[2] जैसा कि बिहारी के भी दोहे में मिलता है।[3] पावस ऋतु का राजा गज ... बादलों के नगाड़े की ध्वनि, बिजली की प्रत्यञ्चा, इन्द्रधनुष धनुष और पानी की धार का तीक्ष्ण बाण के रूप में वर्णन किया गया है जो विरहिणियों के हृदय को बेधते हैं।[4] शरद ऋतु को कालिदास ने नवोढ़ा नायिका के रूप में चित्रित किया है जिसकी छाया बिहारी के दोहे में पाई जाती है।[5] इस ऋतु में ... शीतल ... हंस और मधु जीव आदि का विरहोद्दीपकत्व वर्णित है।[6] हेमन्त ऋतु में कामिनियाँ ग्रीष्म ऋतु की साज-सज्जा त्याग कर ऋतु के अनुकूल आभरण धारण करती हैं। कवि ने इस प्रसंग में संभोग शृंगार का वर्णन किया है।[7] शिशिर ऋतु में आग, सूरज की धूप, मोटे कपड़े और रमणियों के सुगन्धित होने का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त ... सुगन्धित वस्तुओं का उल्लेख किया है।[8] वसंत ऋतु के अनुकूल कामिनियों के वस्त्राभरण, पलाश पुष्प, वसंत-वायु और विरह व्यथा की तीव्रता का भी वर्णन किया गया है।[9]

प्रस्तुत ग्रंथ के आधार पर रीतिकाव्य में षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा चली तो

---

१ ऋतुसंहार सर्ग १ श्लोक १ ६ ८ १२ २८
२ वही सर्ग १ श्लोक १ १६ १८ २
३ वही १।२७ तुलनीय—बिहारी दो ८६
४ वही २।४
५ वही ३।१ २६ तुलनीय—बिहारी दो २१
६ वही ३।६ २४
७ वही ४।२ ४ ६ ११ १७
८ वही ५।२ ४
९ वही ६।४ ६ १२ १३ १९ २२ २६

अवश्य परन्तु प्रकृति का उद्दीपन रूप ही गृहीत हुआ आलम्बन रूप नहीं।

गीतगोविन्द—गीतगोविन्द का उल्लेख वैष्णव काव्याभिव्यक्ति की शृंगारी परिणति[1] के निरूपण में पहले ही किया जा चुका है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों के द्वारा विकसित होनेवाली गीति-काव्य परम्परा का मूल उत्स जयदेव के गीतगोविन्द में माना है। वे लिखते हैं कृष्णचरित के गान में गीति-काव्य की जो धारा पूरब में जयदेव और विद्यापति ने बहाई उसी का अवलम्बन ब्रज के भक्त कवियों ने भी किया। आगे चलकर अलंकार काल के कवियों ने अपनी शृंगारमयी मुक्तक कविता के लिए राधा और कृष्ण का ही प्रेम लिया।[2] राधा के खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, स्वाधीनपतिका तथा मुग्धा से लेकर प्रौढा तक के रूप सूरदास और परवर्ती रीतिकालीन कवियों की कृतियों में गीतगोविन्द से दूर तक प्रभावित हैं।

उपलब्ध संस्कृत काव्य साहित्य में गीतात्मक शृंगारिक प्रसंगों को निबद्ध करनेवाले ग्रंथों में कालिदास के मेघदूत के बाद ग्यारहवीं शती उत्तरार्द्ध में विद्यमान कवि क्षेमेन्द्र के दशावतारचरित का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसमें कृष्णावतार को शृंगारिक भूमिका में उपस्थित किया गया है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार उनके ग्रंथ के कृष्णावतार विषयक गीत जयदेव के गीतगोविन्द के आन मान जा सकते हैं।[3] वस्तुतः जयदेव से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व की लोक भाषा में गीति-तत्त्व आ चुके थे जिसका नमूना बौद्धों के चर्यापदों में मिलता है। विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि गीतगोविन्द लोक प्रचलित सरल जनगीतों के उस प्रभूत भांडार का द्योतक है जो कालकवलित हो गया।

डा० रघुवंश ने यौवन और शृंगार प्रधान उन जनगीतियों की लुप्त परम्परा की ओर संकेत किया है जिनका प्रतिनिधित्व गीतगोविन्द करता है।[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जनगीतियों से कलागीतियों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि गीतों की परम्परा तो सभ्य असभ्य सभी जातियों में अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। सभ्य जातियों में लिखित साहित्य के भीतर भी उनका समावेश किया गया है। लिखित रूप में आकर इनका रूप पंडितों की काव्य-परम्परा की रूढ़ियों के अनुसार बहुत-कुछ बदल जाता है। इस प्रकार के मौखिक गीत देश के प्रायः सब भागों में पाए जाते थे। मैथिलकवि विद्यापति (सं० १४६०) की पदावली में हमें उनका साहित्यिक रूप मिलता है। जैसा कि हम पहले कह आए हैं सूर के शृंगारी पदों की रचना बहुत-कुछ विद्यापति की पद्धति पर हुई है।[5] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि

---

१ दे०—प्रस्तुत प्रबन्ध द्वितीय अध्याय

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १५१

३ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत भाग १ पृ० ७६

४ डा० रघुवंश प्रकृति और काव्य (संस्कृत खंड) पृ० १२८

५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १५२-५३

गीतगोविन्द जनगीतियों का कलागीतियों के रूप में परिणमन है।

जयदेव ने सामान्य जन की शृंगारिक वृत्तियों की अभिव्यंजना न करके अलौकिक नायक कृष्ण और आदिशक्तिस्वरूपा राधा की प्रणय-लीलाओं को मानवीय भावभूमि पर व्यंजित किया है। कवि ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रत्येक प्रबन्ध के अंत में अपने मनोभाव को प्रकट करते हुए लिखा है कि जयदेव की इस भणिति में हरि के चरणों की स्मृति का सार और शृंगारानुप्राणित सरस वसंत का उद्दीपक वर्णन है।[1] अथवा कंसारि के वृन्दावन के अद्भुत केलि रहस्य सम्पूर्ण हैं जो शुभ और यश को प्रसारता है।[2] अंत के श्लोक में उपर्युक्त भाव और भी स्पष्ट रूप में आए हैं।[3]

यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाए तो जयदेव की कविता में भक्ति की अपेक्षा शृंगार का ही स्वर अधिक मुखर है। विद्यापति की तरह जयदेव भी मूलतः भक्ति के नहीं अपितु शृंगार के रससिद्ध कवि हैं। जयदेव का वियोग वर्णन वास्तविक की अपेक्षा आरोपित अधिक लगता है। इसमें या तो पूर्वराग की अवस्था का वियोग है या मान की अवस्था का, जबकि विरह का स्वाभाविक विकास प्रवास में ही होता है। उद्दाम यौवन की सरस शृंगार अभिव्यक्ति के कारण इस काव्य में प्रकृति उद्दीपन विभाव के अंतर्गत ही वर्णित है। गीतों में भावों की प्रधानता के कारण प्रकृति का स्वतंत्र अस्तित्व विलुप्त-सा है। कवि ने प्रथम ही सर्ग में वसंत का उद्दीपक वर्णन किया है।[4] इस वातावरण में राधा कृष्ण का स्मरण करती हुई सखी से उनकी विलास लीलाओं का वर्णन करती है।[5] स्मरण दशा के ही अन्तर्गत कवि पूर्वकालिक संयोग लीलाओं का भी वर्णन करता है।[6] इसके अतिरिक्त राधा का पश्चात्ताप, सखी का कृष्ण से राधा विरह निवेदन,[7] कृष्ण का [illegible] विरह निवेदन,[8] सखी का राधा को अभिसार के लिए प्रेरित करना,[9] [illegible] में राधा की उत्कंठित स्थिति का वर्णन,[10] विप्रलब्धा

---

१ गीतगोविन्द सर्ग १ प्रबन्ध ३ श्लोक ८
२ वही १।८।८
यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं,
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचना काव्येषु लीलायितम्।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः,
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥ १२ ॥
४ गीतगोविन्द [illegible]
५ वही १।३।८ [illegible]
६ वही [illegible]
७ वही [illegible]
८ वही [illegible]
९ वही [illegible]
१० वही [illegible]
११ वही [illegible]

राधा की उक्तियाँ[1] और अन्य समोगदुःखिता राधा की चेष्टाओं[2] का वर्णन काव्य-शास्त्रीय परम्परा के अनुसार ही सिद्ध है राधा का ईर्ष्या मान और उसका निवार साथ सखी की ... का वर्णन विद्यापति सूर और रीतिकालीन कवियों में भी इसी प्रकार मिलता है।

जयदेव के अधिकांश गीत मान मनुहार का ही वर्णन करते हैं।[3] राधा के मान मोचन के बाद ... मयाग शृंगार वर्णित है। ... अनगत पुष्पाजित और सुरता ... कृष्ण द्वारा राधा का मण्डन आदि वर्णित है।

कवि ने ... रूप का अकन किया है जिनकी वर्ण्य वस्तु की छाया परवर्ती कृष्णकाव्य और रीतिकाव्य के शृंगारी वर्णनों में पाई जाती है।

अपभ्रंश

जैसा कि पहले अपभ्रंश के महाकाव्यों के विषय में कहा गया है कि इनकी रचना मूलतः सम्प्रदायगत धार्मिक भावना से प्रेरित होकर की गई है और इनमें वीर या शृंगार रसों का वर्णन ... पर्यवसायी होता है। इसी प्रकार अपभ्रंश के ... भी धर्म भावना से आपूर्ण है किन्तु आदि से मध्य तक ... वर्णनों की अविरलता ... उसे कतिपय ... उल्लेख किया जाएगा।

सुदसण चरिउ (सुदर्शन चरित) अपभ्रंश के ... में नयनन्दी का प्रस्तुत काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ने वस्तु और भाव वर्णन में अपनी ... प्रतिभा का पूरा परिचय दिया है। ... बहुत कुछ सुबन्धु और बाणभट्ट की अलंकृत ... के अनुरूप है। यद्यपि वस्तु वर्णन में कवि ने परम्परित उपमानों का प्रयोग किया है फिर भी उसमें मौलिकता की कमी नहीं है।

ऋतुओं का वर्णन अधिकांशतः उद्दीपक ही है। सूर्योदय के वर्णन में कवि की शैली की छाप हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य कवि केशवदास कृत रामचन्द्रिका के सूर्योदय वर्णन में देखी जा सकती है।[6]

कवि ने मनोरमा के नखशिख वर्णन में परम्परित उपमानों का सफल प्रयोग किया है। ... उपमान संस्कृत ... में प्रतीप और व्यतिरेक अलंकारों के द्वारा वर्णित किए गए हैं। विद्यापति ने भी इसी शैली का आश्रय लिया है[7] और रीतिका...

---

१ गीतगोविन्द श्लोक ७।१३।१
२ वही ७।१८।१८
वही ६।१८।१ १ १६।१
४ वही श्लोक १६ पृ १८ ६६
५ वही १२।२४।१८
६ सुदसण चरिउ ५।८ ५।१
७ वही ४।१३ द्रष्टव्य—वि प० २०।२७

म तो एगा वण न करता यदि परिपाटी का पुरा था। चौथी सन्धि म कवि नेमिनेर प्राता ग्रोर जातिया की रमणियो का अगा वण न किया है उसकी प्रप्रप्र ज रहान न नगर वणन ग्रोर देश क नातिविलास म पाई जाती है।[१] मनारमा का वियोग वण न भी रूड शैली म किया गया है।[२] पांचवी सन्धि म सयोग शृगार क ग्रन्तगत सुरति ग्रादि का वणन किया गया है। इसी सन्धि म वसन्त उपवन विहार ग्रोर जल क्रीडा का परपरित वणन मिलता है।

कवि न रूप के प्रति नेत्रा की ग्रासक्ति की जैसी व्यजना की है वसी ही रीति काव्य म भी प्राप्त होती है।[३]

करकड चरिउ इसम मुनि कनकामर न मदन युद्ध ग्रोर वियाग का वण न किया है। शृगार क ग्रतगत सयाग ग्रोर वियाग तथा पद्मावती का रूप-वणन किया गया है। इन वणना म रूढि का ही ग्राश्रय लिया गया है।

पउमसिरी चरिउ इसम धाहिल न सयाग वियाग नखशिख ग्रोर ऋतुग्रा का परपरित वणन किया है। पद्मश्री क वियाग वणन म कही शास्त्रीय शैली ग्रोर कहा नीरसयात्मक शैली[४] का प्रयोग हुग्रा है।

पास चरिउ इसम पद्मकीति न नारी रूप चित्रण म परपरागुक्त उपमाना का प्रयोग किया है।[५] ग्रीष्मकालीन जलक्रीडा क वण न म ग्रलकृत शैली न नायिकाग्रा की वलासिक चेष्टाग्रा का सजीव ग्रकन किया गया है।[६]

ग्रपभ्र श के इन खडकाव्या म जिस प्रकार परपरित उपमाना क प्रयाग द्वारा नारी रूप चित्रण किया गया है उसकी परपरा ग्रन्य ग्रपभ्र श क खण्डकाव्या म भी लक्षित होती है।[७]

इन धर्माश्रित खडकाव्या के ग्रतिरिक्त नायकाश्रित या रोमाचक खडकाव्य के ग्रतगत ग्रब्दुलरहमान क सन्देशरासक का परिचय दिया जाएगा।

सदेशरासक कवि ग्रब्दुररहमान न बारहवी शताब्दी के उत्तराद्ध म सदेशरासक की रचना की।[८] इसकी शैली बहुत कुछ कालिदास क मघदूत स मिलती जुलती है।

प्रस्तुत ग्रथ के प्रथम प्रक्रम म कवि परिपाटी के ग्रनुसार मगलाचरण सविनय

---

१ सुदसण चरिउ ४।५ ७
२ वही ५।१
३ काहू वि रमणिए पिय दिट्ठि पत्त
ण चलइ ण वहमै ठोरि खुत्त ॥ —सु च० ७।१७
४ प० सि च० २।११।१२
५ वही ३।४
६ पास चरिउ ९।१
७ श्रीधर सुकुमार चरिउ १।८ देवसनगणि सुलोचना चरिउ १।१२ सनत्कुमार चरिउ सन्धि ७
८ डॉ दशरथ ग्रोझा एवं शर्मा (सम्पादक) रास ग्रोर रासान्वयी काव्य पृ २५

परिचय पूववर्ती कवियो का स्मरण एव सज्जन प्रशसा दुजन निन्दा आदि का उपक्रम किया गया है। द्वितीय प्रक्रम म विजयनगर की किसी प्रोषितपतिका के रूप और उसकी वियोग-दशा की चेष्टाओ का वणन किया गया है।[1] विरहिणी नायिका पथिक को देख कर उसका गतव्य पूछती है पथिक उसका रूप वणन करता है।[2] वह अपना गतव्य स्तम्भतीथ बतलाता है जिस सुनकर विरहिणी विरह स विकल हो जाती है। किसी प्रकार धीरे धीरे वह प्रिय के हेतु सदेश वहन का प्रयास करती है। कवि न इस सदभ मे अनेक [illegible] दो के द्वारा नायिका की विरह विकलता और सदेश प्रेषण म असमथता का वणन किया है। विरहिणी कहती है कि प्रिय से कह देना कि उसके वियोग म एक एक दिन वष के समान बीतते है। नेत्रो स निरन्तर अश्रु प्रवाह होता रहता ह और मन म कामदव उद्दीप्त रहता ह। उसे प्रिय क वियोग म नीद नही आती। वह जीवित है यही आश्चय ह।[3] इसी प्रकार नायिका अनेक छन्दो म विरह निवेदन करती हुई जिस दिन म प्रिय गए हैं उसी दिन स ऋतुओ के उद्दीपक वातावरण म उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति जसी रही ह उसका वण न करती ह। यहा कवि ने षडऋतु वण न की परपरा मे नायिका का वियोग-वण न निबद्ध किया ह।

विरहिणी के प्रियतम उसे ग्रीष्म ऋतु म छोडकर गए थे अत वह सदश वाहक पथिक को ग्रीष्म ऋतु [illegible] झेले हुए कष्टो स अवगत कराती है।[4] तदुपरान्त वर्षा शरद, हेमन्त शिशिर और बसन्त ऋतुओ के उद्दीपक वातावरण और अपनी विरहावस्था का पूर्ण विवरण उपस्थित करती हुई अन्त म कहती ह, हे पथिक मैंने गहरे दुख से युक्त, मदनाग्नि तथा विरह स लिप्त होकर कहे जिस नम्रतापूवक प्रिय से इस प्रकार कहना कि वे कुपित न हो और उन्ह अनुचित न लगे।

सदेश-वाहक को विदा करत ही प्रिय को माग म देखती हैं। ग्रथ यही समाप्त होता है।

राजस्थानी

बलि किसन रुक्मणी री (राठौडराज प्रिथीराज री कही) प्रस्तुत ग्रथ शृगार प्रधान है।[5] प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लाला भगवानदीनजी की अलकार मजूषा म उद्धत किसी पृथ्वीराज के एक छप्पय की ओर सकेत करते हुए सभावना प्रकट की है कि 'इन्होंने पिंगल म शृगार की फुटकर रचनाएँ की हैं। हो सकता है कोई रीतिग्रथ ही लिखा हो।'[6]

---

१ सदेशरासक २।२४।२५
२ वही २।३१।४०
३ सदेशरासक २।८४ ११६
४ वही ३।१३० २२२
५ प्रथियै जणि सिंगार ग्रथ कलि० ८
६ प विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत भाग १ पृ० ८४

[illegible] विवाह [illegible] वर्णन [illegible] आदि [illegible] और [illegible] विलासिता [illegible] और [illegible] प्रवृत्ति [illegible] थी। [illegible] और [illegible] और [illegible] और [illegible] प्रवृत्ति [illegible] था।

[illegible] शृंगार [illegible] दिया है।

[illegible] प्रस्तुत [illegible] किया [illegible] शास्त्रीय [illegible] किया गया है।[4] [illegible] विवरण [illegible] वातावरण की [illegible] प्रस्तुत करता है।[5]

[illegible] वर्णन [illegible] उद्दीपन वर्णन किया है।[6] [illegible] मानवीकृत [illegible]।[7]

ढोला मारू रा दूहा [illegible] और [illegible] है। [illegible] यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। मौखिक गीत परम्परा [illegible] गाती आ रही है। कुछ लोग [illegible] को उसका रचनाकार मानते हैं किन्तु [illegible] आधार पर मौखिक [illegible] परम्परा से प्रचलित [illegible]

१ [illegible] ७८ २६१
२ वही २७८
३ वही १५२७ १ ८१ ६
४ वही ८१८४
५ वही १६७७ १८५६१
६ वही १६२
७ वही १६५२ २ २५७ २८ २३१ ३ ३८ ४४ ५८ ५६
८ वही २६ [illegible] बिहारी दो १८५

कुशललाभ माने जाते हैं। जैन अपभ्रंश में निर्मित चरितकाव्य संस्कृत खण्डकाव्य ग
तारिका तथा सूफी काव्य परम्परा में निबद्ध हारकानी नार प्रचलित पुरानी प्रे
गाथाओं का सम्मिलित प्रभाव इस पर पाया जाता है। ढोला और मारवणी की प्रेम गा
इसमें निबद्ध है।

शैशवावस्था में ही मारवणी का विवाह ढोला से हो जाता है। जब वह युव
होती है तब ढोला को स्वप्न में देखकर वह विरह हो जाती है। वर्षा ऋतु का उद्दीप
वातावरण विरहिणी की व्यथा को द्विगुणित कर देता है। प्रकृति कभी उस विपरी
और कभी अनुकूल मालूम पड़ती है। विरहिणी का कुंझ के द्वारा ढोला के प्रति संदे
प्रेषण[3] पवन कौआ और मेघ वाचकों के प्रति उसकी उक्ति प्रिय विहीन यौवन
व्यर्थता का बोध प्रिय के प्रति उपालम्भ, गात्र आन की चेतावनी तथा वियोग दशा
वर्णन बहुत कुछ लोक गीतों और काव्य रूढ़ियों से मिल जुल रूप को प्रस्तुत करते

मरुवाहन नाली नायिका की विरह दशा और यौवनावस्था का वर्णन कर
ढोला को मारवणी से मिलने के लिए व्याकुल कर देता है[4] मालवणी ग्रीष्म व
शरद तथा ऋतुओं के उद्दीपक वातावरण का वर्णन करके रोक लेती है किन्तु
ऋतु में रोका जाना कठिन होता है। कवि ने अनेक छन्दों में प्रवत्स्यत्पतिका
आगतपतिका की विरह व्यथा का विस्तृत वर्णन किया है।

वीस चारण मारवणी के सौंदर्य का रूप उपमानों के आधार पर वर्ण
करता है। रूपकातिशयोक्ति के द्वारा मारवणी के सौन्दर्य का वर्णन करता
कहता है मैं मारवणी के घर में वीर भ्रमर कोकिल कमल, चन्द्र सिंह, हा
और कपोत को देखा है। चम्पा की कली में वह वहता वह मन में मृग
का मुख मरमर का हार तथा मत्स्यरिपु की कमर भी है। इसी प्रकार उसके रूप
वर्णन अनेक दोहों में किया गया है।[8]

आगतपतिका मारवणी के हर्षोल्लास समागमकालिक चेष्टाओं—आलिंगनादि
क्रीड़ाओं प्रकृतिकादि का वर्णन शास्त्रीय परम्परा के अनुसार किया गया है।[9] सुरत क
अभिधा में न करके व्यंजना में किया गया है[10]

---

१ ढोला मारू रा दूहा छं० १३ २८
२ वही, २६ ४२
३ वही ६१ ६२
४ वही ७८ ७९ १०६ १२२ १३८ १४८ १८१
५ वही, २०१ २०३
६ वही २६१ २४६ २८८ २७६ २८
७ वही ७५ ३०४ ६१
८ वही ४५१ ४५५ ४६६ ८३
९ वही ५ १३
१० वही ५८ ५८४

नव दम्पति के अष्टयाम लोक गीतात्मक की अपेक्षा कला गीतात्मक हैं।[1]

हिंदी

हिंदी खण्डकाव्य के अन्तर्गत जिन काव्य-ग्रन्थों की यहां चर्चा की जा रही है वे शुद्ध रूप से न तो खण्डकाव्य हैं न मुक्तक ही। उनमें कथा धारा की क्षीण रेखा विद्यमान है। अतः उन्हें निबन्ध काव्य कहा जा सकता है। कवितावली और गीतावली मुक्तक होते हुए भी पूर्ण रूप से मुक्तक नहीं हैं क्योंकि उन्हें काण्ड क्रम से निबद्ध किया गया है। नंददास की रूपमंजरी प्रेमाख्यानक काव्य होते हुए भी महाकाव्य की महनीयता से हीन है अतः उसे खण्डकाव्य के ही अन्तर्गत रख लिया गया है।

बरवै रामायण प्रस्तुत ग्रंथ की रचना गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मित्र अब्दुलरहीम खानखाना के अनुरोध पर उनके बरवै नायिका भेद से प्रेरित होकर की है। प्रत्येक बरवै अपने में पूर्ण तथा स्वतन्त्र है किन्तु उन्हें रामायण के काण्डक्रम से लगा कर सम्पादित किया गया है। कई बरवों में कवि ने सीता और राम के रूप सौन्दर्य का वर्णन अलङ्कृत शैली में किया है।[2] विरही राम की व्यथा का भी वर्णन परंपरित शैली में किया गया है।[3] सीता की विरह दुर्बलता हनुमान का राम से सीता विरह निवेदन भी परंपरित है।[4] प्रस्तुत ग्रन्थ के अनेक बरवों का साम्य रीतिकालीन कवियों के दोहों से मिलाया जा सकता है।

जानकीमंगल—इसमें राम को जयमाल पहनाती हुई सीता का अलङ्कृत शैली में वर्णन करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि मानो कमलचन्द्रिका को काम पाश में बाँध रहा है।[5]

कवितावली गोस्वामी तुलसीदास ने वन पथ में जाते हुए राम और सीता तथा लक्ष्मण का सुन्दर वर्णन किया है। इन वर्णनों में सीता की सुकुमारता राम की सुन्दरता एवं दोनों का दाम्पत्य प्रणय उद्घाटित किया गया है।[6]

गीतावली गीतावली तुलसी के सम्पूर्ण काव्यों में भावों की सरलता के लिए प्रसिद्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार गीतावली की रचना गोस्वामीजी ने सूरदासजी के अनुकरण पर की है।[7] सीताराम विवाह के प्रसंग में कवि ने दोनों के रूप का परंपरित उपमानों के प्रयोग द्वारा वर्णन किया है।[8]

---

१ ढोला मारू रा दूहा ४८२ ८६

२ बरवै रामायण छ २ १२ १६ १७ २६ ३२

३ वही ३३

४ वही ३६ ४१

५ जानकीमंगल दो० सं० १२२

६ कवितावली अयोध्याकाण्ड छं० ११।१३ १६

७ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ १२५

८ गीतावली बालकाण्ड १ २ १०६ अयोध्याकाण्ड २०।३ २१।१ २७।२ ३७।२

चित्रकूट का रमणीय प्राकृतिक पृष्ठभूमि म सीता का शृगार करते हुए राम कामशास्त्रीय नागरक या रीतिकालीन रसिक के रूप म चित्रित किए गए हैं। चित्रकूट वसन्त क व्यापक प्रभाव से मानो राजा कामदेव की विहार वाटिका बन गया है और उसम राम और सीता वन विहार करन आए हैं। राम स्वय अपने हाथा से सीता का मडन करत है।[१]

समवत परवर्ती रसिक शाखा के रामभक्ता को तुलसीदास के इन्ही स्थलो से प्रेरणा मिली होगी। वसत ऋतु का उद्दीपक वणन करने के पश्चात् कवि ने वर्षा ऋतु का आलम्बन रूप म वर्णन किया है।

किष्किधाकाड म वियोगी राम की स्मृति-दशा और उनकी शारीरिक और मानसिक स्थितियो का वणन परपरानुसार ही है।[३]

राम से सीता की विरह वेदना का निवेदन करते हुए हनुमान उनकी यथा कथा का वणन करत हैं। इस प्रसग म तुलसी ने ऊहात्मक शैली का आश्रय लिया है।[४]

उत्तरकाड म राम की प्रात कालीन छवि, कृष्ण की रसिक मूर्ति का साकार कर देती है।[५] अष्टछाप और परवर्ती रीतिकालीन कवियो मे ऐसे रूप का अकन प्राप्त होता है।

तुलसीदास न साकेतवासिनी सखियो के साथ वर्षा की उद्दीपक पृष्ठभूमि म राम की दोला क्रीडा और वसत म फाग लीला का वणन किया है।[६] आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने उपयुक्त स्थलो को ही दृष्टिपथ म रखत हुए लिखा है— पर उत्तरकाड म जाकर सूर पद्धति के अतिशय अनुकरण क कारण उनका गभीर व्यक्तित्व तिरोहित सा हो गया ह। जिस रूप म राम को सेवक लिया है उसका भी ध्यान उन्हे नही रह गया है। सूरदास म जिस प्रकार गोपियो क साथ श्रीकृष्ण हिंडोला झूलत हैं होली खेलते हैं, वहा करते राम भी दिखाए गए हैं। इतना अवश्य है कि सीता की सखियो और पुरनारियो का राम की ओर पूज्य भाव ही प्रकट होता है। राम की नख शिख शोभा का अलकृत वणन भी सूर की शैली पर बहुत से पदो म लगातार चला गया है।[७]

श्रीकृष्ण गीतावली प्रस्तुत ग्रथ म तुलसी का सूर की विषय वस्तु पर उन्ही की शैली मे लिखने का अवसर प्राप्त हुआ है। शृगारी प्रसगो म गोपियो की विरह विवृति विशेष उल्लेख्य हैं। कवि न अपने प्रिय अलकार सागरूपक क द्वारा गोपियो की विरहा

१ गीतावली अयोध्याकाड छ ४४, २४
२ वही ४३ ५
३ गीतावली किष्किधाकाड ८ १०
४ गीतावली किष्किधाकाड १६ २०
५ गीतावली उत्तरकाड ४ १७
६ गीतावली उत्तरकाड १८ २२
७ आचाय रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १२५

घटना का वर्णन किया है।[१] [illegible] ने भी इसी प्रकार [illegible] विरह वर्णन किया है। [illegible] विरह [illegible] प्रभाव [illegible]।

रासपंचाध्यायी — [illegible] श्रीमद्भागवत के [illegible] ([illegible]) [illegible]। डा० रामकुमार वर्मा [illegible] पुराण [illegible] और [illegible] प्रवाह गति, मधुरता और [illegible]।

इस अध्याय में [illegible] वर्णन किया है।[३] [illegible] श्रीमद्भागवत के अनुसार [illegible] वर्णन किया है। ब्रजबालाओं का विरह [illegible] कृष्ण [illegible] विरह [illegible] वर्णन[४] [illegible] और [illegible] भाव निरूपण [illegible] अनुसार [illegible]। [illegible] है। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि [illegible] रहस्य [illegible] का परिचय [illegible] किया। [illegible] में, [illegible] के साथ प्रयुक्त किया गया है। [illegible] है। [illegible] होता है कि [illegible] रीतिशास्त्र के भी आचार्य थे।[८]

रूपमंजरी — रूपमंजरी की रचना [illegible] प्रमाण [illegible] नहीं [illegible] हुई है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसे [illegible] माना है।[९] संभवत नन्ददास को प्रस्तुत [illegible] प्रेरणा [illegible] दमयन्ती विरह को पढ़कर प्राप्त हुई हो। कुछ [illegible] ने रूपमंजरी को अकबर की सविता और नन्ददास की गुप्त प्रेमिका माना है।

इसमें निर्भयपुर के राजा धर्मधीर की पुत्री रूपमंजरी की वय संधि, नखशिख,

---

१ [illegible] गीतावली [illegible] २६ ६७ ४६

२ डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६१८

३ रासपंचाध्यायी १।१ १५

४ वही १।४६।४६

५ वही १ ६६ ६६

६ वही २।४ ३७

७ वही ५।४ २६

८ डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ६७४

९ आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० २१८

स्नान, शोभा, सहज शृंगार,[1] पूर्वानुराग,[2] विरह-दशा,[3] पावस, शरद, शीत, होली, वसंत और ग्रीष्म का उद्दीपन वर्णन किया गया है।[4]

विरह-मंजरी — यह मेघदूत के आधार पर निर्मित विरह काव्य है जिसमें चंद्रमा को दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजा जाता है। चैत्र से फाल्गुन तक बारह महीनों में विभिन्न प्राकृतिक परिवर्तनों का विरहिणी के मन पर पड़ने वाले प्रभाव और उसकी विरहावस्था का इसमें काव्य परंपरा के अनुसार वर्णन किया गया है।[5]

मुक्तक

हिंदी मुक्तकों के उद्भव और विकास में प्राचीन साहित्य के मुक्तकों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। अनेक मनोरम भावों का मुक्तकों में प्रकाशन प्राचीनकाल से होता आ रहा है। मुक्तकों की परंपरा के अवलोकन से प्रायः चार प्रकार के — शृंगार, भक्ति, नीति और प्रशस्तिपरक — मुक्तक प्रभूत परिमाण में मिलते।

रीतिकालीन मुक्तक काव्य की परंपरा का किंचित् परिचय पहले दिया जा चुका है। सम्प्रति उसकी विस्तृत विवेचना अपेक्षित है।

मुक्तक : परिभाषा और भेद

ध्वन्यालोकलोचनकार का कथन है[6] — मुक्तक एक दूसरे से असंबद्ध, अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र रूप में परिसमाप्ति की आकांक्षा न करते हुए भी प्रबंध के मध्य में स्थित होते हैं। अर्थात् प्रबंध में भी कुछ ऐसे मुक्तक होते हैं जो प्रबंध से प्राप्त प्रसंग से बाद मनोभाव नहीं रखते। इन मुक्तकों में स्फुट प्रसंगों का निबंधन होता है। विशिष्ट अर्थ में मुक्तक से तात्पर्य उन रचनाओं से है जो अपने पूर्ण पद्यों में हैं जो रस-परिपाक के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रखते।[7]

इन मुक्तकों को विषय वस्तु की दृष्टि से प्रायः चार विभागों में बाँटा जा सकता है—

---

१ नन्ददास रूपमंजरी पृ ३८ १८

२ वही १७६ २४५

३ वही २६६ ३ २८ ३७ ४१८ २३

४ वही ३ ४ ३२५ ४ ७ २७१ २६ ८८ ६३

५ वही ८० २४ १ २

६ मुक्तकम् अन्येन नालिङ्गितम्। स्वतन्त्रतया परिसमाप्तिनिराकाङ्क्षार्थमपि प्रबन्धमध्यवर्ति मुक्तकमित्युच्यते। — ध्वन्यालोकलोचन

७ पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।

—ध्वन्यालोक पृ २५

(१) शृंगारपरक मुक्तक,
(२) प्रशस्तिपरक मुक्तक,
(३) स्तोत्र एवं भक्तिपरक मुक्तक और
(४) नीतिपरक मुक्तक।

शृंगारपरक मुक्तक (संस्कृत)

वेदों में ऋषियों ने जिस देवी शक्ति की अभिव्यक्ति की है वह एक अलौकिक रहस्यपूर्ण चिरंतन सत्ता के प्रति है। इन उक्तियों में सौंदर्य के प्रति ऋषियों का सहज आकर्षण द्योतित होता है। ऋग्वेद में ऐसी भाव प्रवण उक्तियों की अधिकता है। उषा का सुंदर मानवी के रूप में चित्रण करते हुए ऋषि की इस दृष्टि का द्योतक है। वह कहता है— हे प्रकाशवती उषा तुम कमनीय कन्या की भांति अत्यंत आकर्षणमयी बनकर अभिमत फलदाता सूर्य के निकट जाती हो तथा उसके सम्मुख स्मितवदना युवती की भांति अपने वक्ष को आवरणरहित करती हो।[1]

ऋग्वेदादि में उल्लिखित ऐसे अनेक मुक्तक मिलेंगे जिनसे परवर्ती शृंगारी मुक्तकों का संबंध सूत्र जोड़ा जा सकता है।

शृंगारी मुक्तकों की लोक गीतों वाली धारा अनन्तकाल से निरंतर प्रवाहित होती चली आ रही है। वेदों में जितना कुछ संगृहीत हो सका, वह उसका एक अंश भी नहीं है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन का विचार है— विश्वामित्र, भरद्वाज या वशिष्ठ में सरस कविता करने की क्षमता नहीं थी, यह नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद काल में क्या प्रत्येक काल में कविता होती रही है। लेकिन दूसरी तरह की कविताओं के संग्रह करने के लिए ऋग्वेद के संग्राहक तैयार नहीं हुए। पुरूरवा उर्वशी और यम-यमी जैसे प्रेम काव्य बतलाते हैं कि उस काल में प्रेम की कविताओं की कमी नहीं थी। लेकिन इस तरह के काव्य लोक काव्य ही रह गए, जिन्हें अपने भीतर जीवित होने के लिए छोड़ दिया गया।[2] लोक-काव्य में ऐहिकतापरक या शृंगारी मुक्तकों की परम्परा हाल के समय से मिलती है।

पहले संस्कृत साहित्य के शृंगारपरक मुक्तकों का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा।

संस्कृत का मुक्तक काव्य भाण्डार अत्यंत समृद्ध है। इसकी परम्परा वैदिक मुक्तकों से प्रारम्भ होती है, जिसका किंचित निर्देश ऊपर किया जा चुका है। लौकिक संस्कृत साहित्य में शृंगारपरक मुक्तकों में ऋतुसंहार का नाम लिया जाता है। प्रस्तुत प्रबंध में उसकी चर्चा खण्डकाव्यों में की गई है। सम्प्रति अमरुशतक आदि कतिपय

---

१ ऋग्वेद १।१२४।७
२ राहुल सांकृत्यायन : संस्कृत काव्यधारा, पृ. २१

मुक्तकों का परिचय दिया जायगा। विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि इन शतक, सप्तशती, पंचशती और पचासिका जैसे संख्यापरक काव्य ग्रन्थों की संख्या संस्कृत साहित्य में पर्याप्त है।

अमरुशतक—भर्तृहरि ने प्रेम को जितना व्यापक रूप दिया है उतना अमरुक ने नहीं। अमरुक ने प्रेम के उन विशिष्ट व्यापारों का ही मुख्य निरूपण परम्परावद्ध दृष्टि से किया है जिन्हें नायिका भेद के चौखटे में आबद्ध किया जा सकता है। हाल की नायिकाएँ व्यापक परिवेश से नहीं बद्ध हैं और उनका प्रणय व्यापार भी प्रकृति की विस्तृत रंगस्थली में पल्लवित हुआ। परन्तु अमरुक की नागरिकाएं रीतिकालीन नायिकाओं की तरह अन्तःपुर से बाहर नहीं जातीं। अमरुशतक में रमणी के विविध कलाविलास रूपों और उनकी हाव भावयुक्त सम्मोहक चेष्टाओं का सफल अंकन हुआ है। इसके अनेक श्लोकों का भाव साम्य प्राकृत की गाथासप्तशती में देखा जा सकता है।[1] एक ही प्रसंग के गाथा काव्य ग्रन्थ के श्लोकों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हाल की गाथाओं में स्वाभाविक सौन्दर्य है तो अमरुक के श्लोकों में कृत्रिम अलंकृत शैली का प्राधान्य। प्रस्तुत ग्रन्थ में शृंगार का सर्वांगीण और सूक्ष्म चित्रण करके परवर्ती कवियों के लिए अमरुक कवि ने मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

नायिका के साथ हास परिहास रत नायक, खण्डिता प्रौढ़ा की व्यंग्य वाणी एवं ताड़न तर्जन सहते धृष्ट नायक, विदेशगमनोन्मुख प्रिय को रोकनेवाली असहाय प्रवत्स्यत्पतिका, नूपुर और मुखर प्रभा से घोर अंधकार में भी अभिसरण की सूचना देती कृष्णाभिसारिका और गुरुमान के अपनयन हेतु पाद लुंठित नायक के अनेकानेक चित्र अमरुक की अपनी विशेषता है।

शृंगारशतक—भर्तृहरि कृत शृंगारशतक की लोकप्रियता का मुख्य कारण भावों की सरल अभिव्यक्ति है। इसमें तरुणियों की विलास चेष्टा, उनके सौन्दर्य की वरांगना अंगों की मधुमादकता, चेष्टाओं की प्रभावमयता आदि का वर्णन मनोरम शैली में किया गया है।[2] शृंगार में भर्तृहरि की दृष्टि वैराग्यपरक भी रही है। अतः कहीं-कहीं नारी स्वभाव पर व्यंग्य भी किया है।[3] कवि ने जीवन की उपादेयता या तो विलास या वैराग्य में ही मानी है।[4] नारी के आकर्षक रूप का वर्णन अप्रस्तुत योजनाओं द्वारा भी

---

१ प्रासाद गा (शि निशि च गा पल्लव गा पुष्प मा
पय व गा पथि पथि च गा नक्षियाणानुसूय।
हा चन प्रकृतिरपगम नास्ति म नारि गा मा
मा गा मा मा जगति गतने पाथमन् भवान् ॥ अमरु १ २
तुलनाय—गाथासप्तशती ६। अमरु ६ गाथा ६।८, पद्माकर पद्माभरण १६४
२ शृंगारशतक श्लोक ७ ६ २२ २६ ६२ ६८
३ वही २० २३ २९
४ वही १४ १६ ६०

कवि ने किया है जसे हे मन पथिक! कामिनी के कुच-पर्वतों से युक्त शरीर रूपी दुर्गम वन में तू विचरण मत कर वहां काम तस्कर रहता है।[1] कोमलता के कारण शशि किरणों को असह्य माननेवाली कोमलांगी के वर्णन[2] पद्माकर बिहारी आदि रीतिकालीन कवियों की नायिकाएँ याद आ जाती हैं। कवि ने नारी को रत्नमय और ग्रहमय वर्णित करके रीतिकालीन कवियों की चमत्कारिक वृत्तिको नई प्रेरणा प्रदान की है।[3] नायिका के कटाक्षपात के व्यापक प्रभाव का भी वर्णन किया गया है।[4]

भर्तृहरि को नारी रूप चित्रण में जितनी सफलता मिली है उतनी ही सफलता प्रकृति के उद्दीपक रूप वर्णन में भी मिली है। वसंत की रमणीयता तथा चन्द्र रात्रि का सुखकारकत्व ग्रीष्म की सुखसज्जा वर्षा का उद्दीपकत्व शरद् ऋतु के सुख शिशिर पवन का विरह चरित्र आदि के वर्णन रीतिकाव्य के अन्यय प्रेरणास्रोत माने जा सकते हैं।[5]

चौरपंचाशिका—चौरपंचाशिका नामक पचास श्लोकों की एक रचना चोर कवि कृत प्राप्त होती है। राहुल सांकृत्यायन इसे बिल्हण चरित्र का ही अंश मानते हैं। प्रस्तुत पंचाशिका अपनी भाव प्रबलता के कारण सहृदयों का कण्ठहार बनी हुई है। चौर रति का भय शंका से मुक्त उद्दीप्त भावदशा से युक्त वर्णन किया गया है। प्रिय की एक एक विलास चेष्टा का एक एक श्लोक में मार्मिक भाव चित्र अंकित किया गया है।

रात्रि केलि के कारण अलसित दीर्घ नेत्रवाली शृंगार सार सरोवर की राजहंसी के प्रातःकालीन लज्जावनत मुख का चित्र सुरतांत में श्रम श्लथ नायिका के अस्त व्यस्त वस्त्राभरणों[6] सुरति[7] विपरीत रति[8] रूप सौंदर्य[9] दंतक्षत,[10] नखक्षत[11] और प्रणय तथा ईर्ष्यामान के सुन्दर वर्णन प्रस्तुत ग्रंथ में प्राप्त होते हैं।

आर्यासप्तशती

बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के सभा कवि गोवर्द्धनाचार्य के प्रस्तुत ग्रंथ में ७०२ आर्याएँ हैं। यद्यपि कवि को हाल की गाथासप्तशती के अनुसरण पर शृंगार-वर्णन में

१ शृंगारशतक श्लोक ४६ तुलनीय-बिहारी १६८
२ वही ७०
३ वही ८ ८१
४ वही ८२ तुलनीय बिहारी १३४
५ वही २६ १ ३४ ३५
६ बिल्हण चौरपंचाशिका श्लोक ५ ८ १ १० २२
७ वही १२ १०
८ वही १३ १६ २३ २८ ३१ ७
९ वही १३ ४१ ४८
१० वही १५, ३४ ४१ ४६
११ वही ११ ३५

पर्याप्त सफलता मिली तथापि उन गाथाओं जसी गतिमयता, सहृदयता, शब्दचित्रात्मकता तथा ग्राम्य जीवन के प्रति अतिशय अनुरक्ति का इन आर्याओं म अभाव है।

इनसे भी बिहारी को काव्य सामग्री और प्रेरणा मिली इसमें सन्देह नहीं बल्कि संस्कृत के भी परवर्ती कवियों पर इनका प्रभाव देखा जा सकता है। अल्मोड़ा के कवि विश्वेश्वर ने भी इनके अनुकरण पर एक आर्यासप्तशती की रचना की पर उसमें न तो विशेष भाव-सम्पदा है और न शब्द चमत्कार ही।

प्रस्तुत आर्यासप्तशती में कहीं विष्णु और लक्ष्मी तो कहीं शंकर और पार्वती और कहीं सामान्य नायक-नायिका की विपरीत रति के वर्णन मिलते हैं।[1] सुरतान्त,[2] सपत्नियों के हृदय शाल[3] प्रिय की दर्शनेच्छा के कारण परकीया का माघ-स्नान का दिन निकलने तक न समाप्त होना[4] प्रिय की तुलना निद्रा से करते हुए नायिका का प्रातःकाल होने पर भी शय्या-त्याग की असमर्थता[5] आदि का चित्रण कवि ने जमकर किया है। सद्यःस्नाता[6] स्पर्श सुख,[7] रतिदान दान के लिए नायक की चाटुकारिता[8] नायिका की दृष्टि[9] उसके भ्रू की सरस भंगिमा[10] नखक्षत को व्याधि माननेवाले मूढ़ नायक,[11] ईख की गाँस से मान ग्रंथि की तुलना[12] वियोग की अवधि गणना रेखा से खचित भवन भित्ति[13] आदि का वर्णन कवि के उस रूढ़ि अनुसरण का द्योतक है जिसकी छाप रीतिकालीन कवियों पर स्पष्ट देखी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त संयोग[14] और वियोग[15] की नाना दशाओं का चित्रण भी कवि ने बड़ी कुशलता से किया है। इन रचनाओं का रीतिकाव्य पर पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है।

शृंगारिक प्रसंगों के ही वर्णन में नहीं अपितु नीति और भक्ति के भी मुक्तक,

---

१ गोवर्धनाचार्य आर्यासप्तशती श्लोक १२ १६ ८५ १२१
२ वही २५ ६३
३ वही १८ ६४७ तुलनीय बिहारी १४२
४ वही २६ तुलनीय बिहारी १७६
५ वही ५४
६ वही ५५ १७२
७ वही ६२
८ वही ८६
९ वही ९५
१० वही ११०
११ वही १५०
१२ वही १६१ १६८ तुलनीय बिहारी १०
१३ वही २६०
१४ वही ४२५ ५४० ६ २ ६२६ ६२८
१५ वही ५७१ ५७६ ६६१

हाल की तरह गारुडसातार्ई न भी तीन रीत म निरुद्ध किए हैं जैस कि गाथासप्त सतसया नायरा प्रादि म रग ना ।³।

शतवगशास्त्र मनाई इम नानग्रन्थ ग ग ग ग नाम और इन नारि हश म नगर धम और स ग था नग रग गुनागनारि नर तमगातरग म राम रार्शा पादन करत हुए लिखा है रामरनाथ गामा ग्रा मगनवर न ग ल गनतगामा र रगनवर ना तमा तधारण रर ना ना तिना र मग म नारि ग और गर्गभ सुह भमरा र नगा ग लाया म मातन है।² इसि गनर नारा म नायिका म रम गो म और विनाग रमणा का वस्त्रानि वणन किया है। इसम पतिव्रता कलहान्तरिता की स्वाभा साधरणतया र रूप और गाय ग्रमणा दूत र प्रति प्रम सभावपूर्ण लिना का यवहारिक श्वय दूत का नायिका प्रति गुहाणि रमन का उद्दीपनत्व न्याया की प्रापि लगर प्रमा गुरगरनार गर्गन नरा प्रधर न प्रादि का वणन स गागी ता म किया गया है।³

कोटि विरह—रचनाय कवि नारायण भट्ट (१५६० ई०) न प्रस्तत गनाम शृंगार नीना और नौन्दय र प्रणय प्राग्नान का वणन किया है। इसम नायिका की शृगार लाला व पूर्वानुराग मानित मान विनाग करणा रूप गा रूप यौवनागम अभिसार सयाग मान व हानरिना व प्रादि का वणन किया गया है।⁴

शृंगार वराग्य तरंगिणी शृगार वराग्य तरंगिणी म कवि सामप्रभाचाय न ४६ श्लाका म पूवाद्ध म शृगार और उत्तराद्ध म वराग्य का निरूपण किया है।⁵

रसिकरंजन रसिक रजन म रामचन्द्र कवि न वराग्य और शृगारपरक पद्यो स युक्त वणन किया है। उस र र र रतार श्लोक का प्रथ नाना विषया की दृष्टि म किया जा सकता है।⁶

काव्यभूषण शतक—म ग्रारणन र प्रणीत काव्यभूषण शतक म नायिका की सुन्दरता एव उसकी विनाग रचना वर्णित है।

रोमावली शतक—वि श्वनाथ पा र रोमावली शतक म नायिका की रोमावली का उत्प्रेक्षापूर्ण वणन है।⁸

---

१ समय मातृका सग्र (काव्यमाला पचम गुच्छक) ३।१
२ वही १।६ ७
३ वही ३१।१७ २४
४ नारायण भट्ट कोटि विरह (का यमाला पचम गुच्छक पृ १४२ १४७)
श्ला ३ ८ १।१६ १६ । ३७ ।३
५ शृगार वराग्य तरगिणी (काव्यमाला पचम गु छक सोमप्रभ वढ³)
६ रसिक रजन (काव्यमाला चतुथ गुच्छक) पृ १ ८६
७ काव्यभूषण (काव्यमाला सप्तम गुच्छक) पृ ३१ ८६
८ काव्यमाला गुच्छक सप्तम पृ ११३ १२१

इसी प्रकार अनेक शतक सप्तशतियां आदि हैं जिनमें शृंगारिक प्रसंगों का मनोरम वर्णन पाया जाता है।

रीतिकालीन मुक्तकों को प्रेरणा प्रदान करनेवाले ग्रंथों में उक्त अनेक ज्ञात अज्ञात ग्रंथ सफल सिद्ध हुए होंगे ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

उपरिलिखित कतिपय शृंगार प्रधान स्फुट काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत के संग्रह ग्रंथों में संगृहीत शृंगार रस के उत्तम छंदों को रीतिकाव्य के प्रेरणा स्रोत के रूप में लिया जा सकता है।

सुभाषित काव्यग्रंथ

रीतिकाव्य के प्रेरणा-स्रोतों का निरूपण करते हुए सम्प्रदायपरक ग्रंथों के अतिरिक्त सुभाषित संग्रहों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है अतः उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन संग्रहों का उपयोग शास्त्रीय निरूपक आचार्यों ने भी किया है जो इनकी लोकप्रियता के उदाहरण हैं।

संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम सुभाषित संग्रह 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' है। इस संग्रह में राजशेखर (९०० ई०) के पूर्ववर्ती और समसामयिक कवियों की सूक्तियां संगृहीत हैं। मालवराज मुंज (११वीं शती) के समसामयिक दिगंबर अमितगति ने एक ३२ प्रकरणों एवं ९२२ पद्यों का वृहद् ग्रंथ 'सुभाषित संदोह' नाम से प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर (११३१ ई०) का 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' श्रीधर का 'सदुक्तिकर्णामृत' जल्हण की 'सूक्तिमुक्तावली' (र० का० १२५७ ई०) सायणाचार्य (१४वीं शती) की 'सुभाषित सुधानिधि' शार्ङ्गधर की 'शार्ङ्गधर पद्धति' (र० का० १३६३ ई०) सकलकीर्ति (१५वीं शती) की 'सुभाषितावली' पातयाय की 'प्रसंग रत्नावली' (र० का० १४५६ ई०), श्रीवर की 'सुभाषितावली' वल्लभदेव (१५वीं शती) की 'सुभाषितावली' रूपगोस्वामी की 'पद्यावली' दक्षिणात्य पेड्डिभट्ट की 'सूक्तिवारिधि' आदि से अनेक शृंगारपरक छंदों को रीतिकाव्य की शृंगारधारा के स्रोत रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

संप्रति केवल एक सुभाषित संग्रह 'शार्ङ्गधर पद्धति' से कुछ एक अंशों का परिचय दिया जाएगा जिनसे रीतिकालीन शृंगारकाव्य की प्राचीन शृंखला का नियोजन हो सके।

शार्ङ्गधर पद्धति—संग्रहकार ने प्रस्तुत ग्रंथ में केश प्रसाधन शृंगार रस भेद निरूपण स्त्री प्रशंसा कामशास्त्रीय नायिका भेद स्त्री सेवा प्रकार सौंदर्य प्रसाधन के साधनों वय संधि और नायिका के रूप सौन्दर्य संबंधी वररुचि पुष्प कालिदास, भास, बिल्हण बाण भोज्य चन्द्रक त्रिविक्रम कपोत कवि विज्जिका श्रीधनद देव, मुरारि शशांक मातृगुप्त कुमारदास रत्नाकर कश्मीरक राघवस्थ राघव राजशेखर दण्डी, भीमसिंह पंडित और स्वयं संग्रहकार शार्ङ्गधर आदि ज्ञात अज्ञात कवियों के श्लोकों का संग्रह किया है। नारी रूप-वर्णन में उपयुक्त कवियों ने जो अप्रस्तुत विधान

किया है उसका उल्लेख प्रस्तुत प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में 'नखशिख' के निरूपण में किया जाएगा।

इसमें प्रवत्स्यत्प्रेयसी की चिंतातुर अवस्था तथा नायक के सांत्वनायुक्त वचनों का वर्णन करने वाले श्लोकों[1] के साथ भल्लट का एक श्लोक भी संगृहीत है जिसमें वियोगिनी की मृत्यु का उत्सववत् मानने का उल्लेख बिहारी की सखी की उक्ति से मिलता जुलता है।[2] संग्रहकार ने ऐसे श्लोकों का संग्रह किया है जिनमें विरहिणी की कामदशाओं का सुन्दर वर्णन किया गया है।[3]

विरहिणी के निशानाथ विरोध मधुर स्वप्न मनु प्राधिक्य पत्र लेखन दूती प्रेषण नायक का सन्देश प्रेषण दूती के प्रति नायिका का संदेश उक्ति आदि का वर्णन अनेक श्लोकों में हुआ है।[4] वियोग वर्णन के उपरान्त संभोग वर्णनपरक श्लोकों का भी संग्रह किया गया है। इसी प्रसंग में नायिका के रूप यौवन की प्रशंसा करनेवाले श्लोकों का भी संचयन है।[5]

अपने प्रसंग से ही स्वागत भवन विधान करनेवाली आगतपतिका के रूप और मानिनी और कलहान्तरिता के मान मनुहार वाले प्रसंगों का भी परवर्ती वर्णन अनेक श्लोकों में प्राप्त होता है।[6]

कवि शार्ङ्गधर ने नायकानुनय के बाद परस्पर प्रसादन का भी वर्णन करनेवाले श्लोकों का संग्रह किया है।

अभिसारिका के प्रसंग में मार्ग की भयानकता और उसके साहस आदि के भी वर्णन प्राप्त होते हैं।[8]

संभोग शृंगारपरक उक्तियों में चन्द्रमा का उद्दीपकत्व मदपान द्यूतक्रीड़ा आलिंगन चुम्बन रति के प्रतिरंजन नखाग्रों की सलज्ज चेष्टाएँ प्रौढ़ा की विपरीत रति क्रीड़ा मुग्धाओं का निपुणाचितयाँ रागादि की ध्वनि का उद्दीपकत्व[9] तथा पुरुषायितावस्था में नूपुरों का मौन और मेखला की मुखरता आदि का वर्णन कवि

१ शार्ङ्गधर पद्धति श्लो० ३ ८१ ८२ ३ ८५ ३६१ ८ ४
२ प्रयाणे त्वं मानी [illegible] तव [illegible] [illegible] मनसि च।
[illegible] [illegible] ॥
—शार्ङ्ग० ३४ ४ [illegible] हरि आनन न देख।
[illegible] ॥ बिहारी ८३
३ शार्ङ्गधर पद्धति श्लो० ३४ ६ ३४ ८ ३४११ १४ ३४१८ ३४२३ ३४३१ ३६ ४८ ४१
४ वही श्लो० ४३४ ८८ ४४ ४ १ ४ ४ ३४१
५ वही श्लो० ५२१
६ वही श्लो० ३५४६ ४२ ६५
७ वही श्लो० ३५८२
८ वही श्लो० ३६१०
९ वही श्लो० ३५२१ ३६५३ ३६७५ ७८, ८६

परिपाटी के अनुसार हुआ है।[1]

प्राकृत अपभ्रंश

गाथा सप्तशती—प्रस्तुत ग्रंथ की गाथाओं में हृदय की रागात्मिका वृत्ति को जिस स्वाभाविक परिवेश में व्यक्त किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इन गाथाओं का देखने से पता चलता है कि प्राकृत साहित्य शृंगारी मुक्तकों की दृष्टि से काफी समृद्ध था। कुछ विद्वानों का मत है कि किसी 'गाथाकोष' नामक वृहद् संग्रह ग्रंथ से ही सातवाहन 'हाल' ने इसी की प्रथम शताब्दी की लगभग सात सौ गाथाओं का चुनकर प्रस्तुत ग्रंथ के रूप में संगृहीत किया था। गाथाओं की मधुरता का प्रतिपादन प्रस्तुत ग्रंथ की ही एक गाथा से हो जाता है जो अमृतोपम प्राकृत कविता का पढ़ना या सुनना नहीं जानते वे काम की तत्त्व चिंता करते हुए लज्जित क्या नहीं होते।

गाथा सप्तशती की इन गाथाओं में प्रेम के विविध पक्षों का सुंदर वर्णन किया गया है। पानी भरती हुई सुंदरियाँ, चक्की पीसती हुई युवतियाँ और धान कूटती हुई कृषक बालाओं के रूप, नाच, तीज-त्यौहार, हास-परिहास[2] के मनोरम चित्र इन गाथाओं की अपनी विशेषता है। इसके साथ ही संकेत स्थल की ओर जाती हुई परकीया, गुप्त संकेत करती हुई स्वयं दूती[3], प्रिय का स्वागत करती हुई आगतपतिका[4], उपनायक के साथ रति-व्यापार में रत नायिका का सावधान करती हुई सखी या दूती के चित्र रीतिकालीन शृंगारी कवियों के प्रेरणास्रोत माने जा सकते हैं।

रीतिकाव्य पर अश्लीलता का आरोप करने वाले यदि गाथा सप्तशती के देवर के प्रति भाभी के वासनामय प्रेम[5], देव दर्शन के व्याज से प्रणयी-युग्म का मिलन[6], पुष्पवती होने पर भी पति के पास शयन और सहवास[7], छोटी बालिका को पैरों पर बिठाकर झुलाने में पुरुषायित की कल्पना[8] आदि पर दृष्टिपात करें तो संभवतः रीति

---

१ प्रशान्त नूपुराराव श्रूयते मन्वतावत्नि । कान्तं नूनं रमयति कामिनी पुरुषायितम् ॥
शार्ङ्ग० ३६६ तुलनीय —बिहारी—परयौ जोर बिपरीत रति रुपी सुरत रनधीर।
करति कुलाहलु किंकिनी गह्यौ मौन मंजीर॥३६ ॥

२ हाल गाथासप्तशती १।२

३ हाल गाथासप्तशती १।११, १३ तुलनीय–बिहारी दो० ४१० गाथा० १।१८

४ वही १।६८ तुलनीय–बिहारी ४८१ गाथा ६। ५ तुलनीय–पद्माकर २५२
जगद्विनोद ३११ गाथा ६।८६, ७।६७ तुलनीय–भिखारीदास का० नि० २।६५ शार्ङ्ग० ७७३

५ गाथा २।४० तुलनीय शार्ङ्ग० ३५ प्रमद० ६८ वि० प० २२।१२।१७

६ गाथा १।२८, १।५६ तुलनीय बिहारी ८५ गाथा ५।६०, ७।७८

७ गाथा ४। २

८ गाथा० ५।८० तुलनीय–आर्या ४२८ गाथा० ५।८१, ६।१६, ६।२८, २६

९ वही २।६९

काव्य के अश्लीलतम स्थलों को भी मर्यादा की सीमा में ही पाएँगे।

सोने का बहाना करके लेटे हुए प्रिय को चूमती हुई प्रियतमा,[१] रात्रि में क्रीड़ा-कला में प्रवीणता सिद्ध करने वाली नायिका का प्रातः लज्जावनत मुख,[२] प्रणयमान में नायक और नायिका की प्रति द्वंद्विता,[३] एक ही ग्राम में रहने वाले प्रणयीयुग्म की विरह विकलता[४] आदि के साथ विपरीत रति,[५] नवोढा सुरति,[६] प्रमगर्विता,[७] मुग्धा मान,[८] नख क्षत दन्त क्षत,[९] आगतपतिका के शुभसूचक शकुन,[१०] प्रिय के आगमन की अवधि गणना,[११] दर्शनोत्कण्ठिता नायिका,[१२] प्रवत्स्यत्पतिका,[१३] सात्विक भावोदय के कारण फाग क्रीड़ा में असमर्थता,[१४] मुग्धा का भ्रम,[१५] सद्यःस्नाता आदि[१६] न जाने कितने मार्मिक प्रसंगों का वर्णन इन गाथाओं में हुआ है।

वज्जालग्ग—श्वेताम्बर मुनि जयवल्लभ ने प्रस्तुत वज्जालग्गम में कुल ७९८ छन्दों को ४८ परिच्छेदों में इसे संगृहीत किया है। इसमें संगृहीत छन्दों के रचयिताओं के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। कुछ छन्द हाल की सप्तशती, अब्दुर्रहमान के सन्देश रासक और हेमचन्द्र के ग्रंथों से संगृहीत हैं।

कवि ने काम की तत्त्वज्ञता के लिए प्राकृत-काव्य का ज्ञान आवश्यक बतलाते हुए लिखा है अर्द्धाक्षरवाली वाणी विलासयुक्त मुग्धा का हास और दृष्टिपात का रहस्य बिना प्राकृत काव्य के ज्ञान के नहीं जाना जा सकता।[१७]

---

१ वही १।२ तुलनीय अमरु० ८२ बिहारी ५१९ ५१
२ वही १।२३ तुलनीय आर्या ५१
३ वही १।२७ ७।६६ तुलनीय अमरु २३
४ गाथा १।८३ तुलनीय बिहारी १७५
५ वही १।५२ तुलनीय आर्या ५९९ गाथा ३।१८ पद्माकर ज० वि० १९
६ वही १।५६ तुलनीय बिहारी ५५८ कामकलाम र त्रि । ८
७ गाथा १।७६ २।७३ ४।६४ तुलनीय बिहारी ७८ ७ ६९५
आर्या ४६ गाथा ४।६७ का अ ४।६१
८ वही १।८७ तुलनीय बिहारी ५६७ गाथा ४।६५ तुलनीय बिहारी ५४४
गाथा० ४।८३ तुलनीय बिहारी ३५२
९ गाथा १।६६ १ २।५ । ३ ७।५
१० वही २। ७ तुलनीय बिहारी ४५३ आर्या ३८७
११ वही । तुलनीय आर्या ६२ गाथा ४।७ वि व १ ४।८ २ ४।८
१२ वही । तुलनीय आर्या ६७ ३४४ तुलनीय नीतिगर्भनाम[*] २ ८
१३ गाथा० ।७ तुलनीय बिहारी ६
१४ गाथा ४।१२ तुलनीय बिहारी १४८
१५ गाथा ५।३ ७।७८ तुलनीय-भावविलास ५
१६ गाथा ६।५५ तुलनीय आर्या ४ ४
१७ वज्जालग्ग ८० २ । १७ तुलनीय-बिहारी २६३

इसमें नारी के नेत्र, स्तन स्वेद विपरीत रति, न्तक्षत, नखक्षत, सुरतसुख, प्रचण्ड सुरत, सुरतान्त मान प्रवत्स्यत्प्रेयसी विरहावधि गणना विरहतान की दीघता, विरह-ताप[1] विरह दशायें[2] अयमभोगदु खिता दूती के प्रति व्यग्य[3] विरह निवेदन, अनुनयना एव ऋतुदन्तु सबधी छन्दों का सचयन किया गया है।[4]

कोई नायिका को समझाती हुई कहती है कि पुत्रि भूषण प्रसाधना से अपने को न सजाओ जिससे (प्रिय) जन का रजन होता है व अलकार दूसरे ही होते हैं।[5] रसखदास आदि परवर्ती कवियों की तरह वज्जालग्ग के कवियों ने भी वसत का उद्दीपन वर्णन करते हुए पलाश पर श्लेष तथा भीम (पाण्डव) फाल्गुन (अर्जुन) माधव (कृष्ण) आदि शब्दों का द्वयर्थक सदर्भ में प्रयुक्त किया है। कहीं विरहिणी मध को उल्का पिशाच की तरह देखती है तो कहीं समवेदना में आसू गिराते हुए सहृदय की तरह।[6]

शृगार या प्रेम भावना का विकास एक ओर तो स्वच्छ द रूप से लोक भाषाओं में होता रहा दूसरी ओर साहित्यिक भाषाओं में कवि-परम्परा के अनुसार रूढिग्रस्त शैली में भी होता रहा। पहले कहा जा चुका है वैदिक ऋषियों ने पारलौकिक दृष्टि से सूक्तों का सग्रह किया अत यथा शृगार की लौकिक धारा का समुचित रूप परवर्तीकालीन आर्यभाषा में भी मिलता। इसी प्रकार प्राकृत साहित्य में रूढिग्रस्त रूप में जितना साहित्य मिलता है उतना शुद्ध लोक भाषा में नहीं। हाल की सतसई में प्रेम शृगार का जो उद्दाम रूप मिलता है वह लोक भाषा की आत्मा के अधिक निकट है। बाद में प्राकृत भी साहित्यिक भाषा होकर संस्कृत के अनुकरण पर विकसित होने लगी। उस समय की लोक भाषा अपभ्रंश में शृगारी मुक्तकों की प्रभूत रचना हुई।

अद्यावधि प्राप्त अपभ्रंश साहित्य अपनी शृगारपरक काव्य धारा के लिए प्रसिद्ध है। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में विकसित होने वाली प्रेम शृगार वीर प्रशस्ति और नीति भक्ति की प्रवृत्तियों के विकास में अपभ्रंश साहित्य का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

डा० शिवप्रसादसिंह ने इस ओर सकेत करते हुए लिखा है बहुत दिनों से हिन्दी के आलोचक भक्ति, रीति तथा ऐतिहासिक स्तुतिपरक काव्यों की प्रेरक चेतना की तलाश करते आ रहे हैं और हिन्दी के भक्ति रीति साहित्य की प्रवृत्तियों के विकास की सारी प्रेरणा संस्कृत साहित्य से ही प्राप्त हुई ऐसा समझते रहे हैं। भागवत तथा गीतगोविंद भक्ति के विकास के लिए उपजीव्य ग्रथ माने जाते हैं उसी प्रकार रीतिकालीन अलकृत

---

१ वज्जा दखिए क्रमश छ —२६६ ६७ ३ ३ ३ ४ ३ ६ ५ ८ ३१८ ५२१ ७३ २८ ५५३ तुलनीय-ज वि० ६४ वज्जा ३५५ ८८ ३६२ ५६५ ३७ ३६६ ७६ ३८४ ३८६ ४४१

२ वही ३८१ तुलनीय-बिहारी १६५ वज्जा ३८७ ८८ ६ २ ४७८ ५५ ४५३ ५७

३ वही ४१६ १७

४ वज्जा देखिए क्रमश छं०—६२२ २३ ६७५ ७६ ६३ ६५८

५ वही ५५४ तुलनीय-बिहारी ११

६ वही देखिए क्रमश छ —६३ ३३ ६५७ ३८ ६४७ ४६

श्रृंगार मुक्तकों के लिए प्राचीन श्रृंगार शतकों की शरण लेनी पड़ती रही है, दसवीं शताब्दी तक के संस्कृत साहित्य का सोलहवीं शताब्दी में उद्भूत हिन्दी साहित्य से [illegible] समय बीच के काल व्यवधान को नजरअन्दाज कर जाने में उन्हें कभी चिन्ता नहीं होती।[1] यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि हिन्दी रीतिकाव्य की प्रेरणा देने में प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य का महत्त्व कम नहीं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक आर्यभाषाओं की साहित्यिक प्रवृत्तियों का [illegible] अपभ्रंश से जोड़ते हुए लिखा है : यदि साहित्यिक परम्परा की दृष्टि से विचार किया जाए तो अपभ्रंश के लगभग सभी काव्य रूपों की परम्परा प्राय: हिन्दी में ही सुरक्षित है।[2] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपभ्रंश के प्रमुख छन्दों—दोहा, पद्धडिया और गद्य पद्य का विकास दिखाते हुए श्रृंगारी दोहों के विषय में लिखा है : प्राकृत की गाथाओं की भाँति ये फुटकर द्विपदियाँ [illegible] अपभ्रंश में बहुत अधिक प्रचलित थे। अपभ्रंश में इनमें [illegible] वर्णन, विरह की उक्तियाँ, मिलन के उल्लास और हाव भाव लीला आदि के बहुत सुन्दर वर्णन हुआ करते थे। हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में तथा प्रबन्धचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में ऐसे दोहे पर्याप्त मात्रा में संगृहीत हुए हैं। इन दोहों की साखी परम्परा वाला मार्ग [illegible] और बिहारी, मतिराम की सतसइयों में तथा [illegible] आदि में सुरक्षित है।[3] आधुनिक शोधों के परिणामस्वरूप हिन्दी और प्राकृत अपभ्रंश के सम्बन्धों की घनिष्ठता और भी स्पष्ट हुई है। डा० [illegible] ने अपने अनुसंधान से यह सिद्ध कर दिया है कि अपभ्रंश के ([illegible]) [illegible] की धारा आगे चलकर अनेक रूपों के साथ हिन्दी में भी प्रवाहित होती रही। मुक्तकों का यह धारा इस प्रकार क्रमबद्ध रूप से लगभग एक [illegible] उनकी [illegible] में बहती रही। हिन्दी आदि के रीतिकाल में आकर इस प्रकार धारा का आध्यात्मिक स्वर मन्द हो गया किन्तु [illegible] श्रृंगारिक रूप और भी पुष्ट होकर प्रवाहित हुआ।

अपभ्रंश के श्रृंगारी मुक्तकों का पहला प्राप्त उदाहरण विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा की विरहोक्तियों में देखा जाता है।[4] हेमचन्द्र के प्राकृत-व्याकरण में उद्धृत अपभ्रंश के दोहों का वातावरण पुरुरवा के मुक्तकों से भिन्न है। [illegible] वातावरण में संयोग-वियोग [illegible] प्रेमियों और वियोग दुःख से पीड़ित प्रणयी युग्मों के [illegible] हैं जो गुजरात राजस्थान [illegible] मात्रा में [illegible] हैं।[5] इनमें [illegible] और सहज स्वाभाविक उक्तियों का [illegible] है।

प्राकृत व्याकरण प्रसिद्ध जैनाचार्य ([illegible]) के व्याकरण सिद्ध-हेम [illegible] शब्दानुशासन में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के [illegible] व्याकरण

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें संस्कृत प्राकृत के दोहों का ही उद्धरण दिया गया है, किन्तु अपभ्रंश के पूरे पूरे दोहे उद्धृत किए गए हैं। इन दोहों या पद्यों को देखकर अपभ्रंश मुक्तक-काव्य की समृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है।

इनमें शृंगारपरक मुक्तकों में प्रायः वे सारी प्रवृत्तियाँ सुरक्षित हैं जिनका विकास हिन्दी रीतिकाव्य में हुआ। शृंगार के विविध पक्षों का इन दोहों में रमणीय निरूपण मिलता है।

नायिका के रूप-सौंदर्य[1] उसके विविध अंगों[2] संयोगकालीन चेष्टाओं[3] रति,[4] विपरीत रति दर्शन नखक्षत मान[5] वियोग[6] वियोग की दशाओं[7] संदेश प्रेषण, प्रकृति के उद्दीपक रूप[8] आदि के वर्णन अनेक छन्दों में प्राप्त होते हैं।

हिन्दी

हिन्दी साहित्य में शृंगारी मुक्तकों का विकास एक विशिष्ट दिशा में हुआ। डा० रामसागर त्रिपाठी ने इस विशिष्ट विकास दिशा की ओर निर्देश करते हुए लिखा है कि विक्रम की १२वीं शती के अंतिम चरण में मुक्तक-काव्य जगत् में हमें नई गतिविधि नई शैली और नई विचार धारा के दर्शन होते हैं। यह नवीनता है अनिर्दिष्ट नायक नायिका के स्थान पर विशिष्ट व्यक्ति की स्थापना।[9] यह विशिष्ट व्यक्तित्व राधा कृष्ण या गोपी कृष्ण का है जिसका पूर्वरूप पुराणों हाल की गाथाओं और प्रौकिक गद्यपद्यों में मिलता है। हाल की सप्तशती में राधा-कृष्ण के शृंगारी रूप का वर्णन बहुत कम गाथाओं में किया गया है। प्रौकिक गद्य पद्यों में अवश्य इस वर्णन प्रभूत परिमाण में प्राप्त होते हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस पद्यों की प्राचीनता का अनुमान करते हुए लिखा है जो ही लीला के पद बहुत पहले से ही लिखे जाने लगे थे। कब से लिखे जाने लगे यह कह सकना तो कठिन है किन्तु दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में मार्मिक छन्दों के गद्य पद्यों में कृष्ण लीला गान वर्णन की प्रथा अवश्य चल पड़ी थी।[1] डा० द्विवेदी ने जयदेव के गीतगोविन्द को इस परम्परा के गेय-पद्यों के उस प्रभूत लोक साहित्य का प्रतिनिधि माना है जो उन दिनों उत्तर में प्रचलित हो रही थी।

---

१ प्राकृत व्याकरण ४।३६६।५ ४।३४६।१ तुलनीय–बिहारी ८९०
२ वही ३।३६।१४ ४।३३ १६ ४।२४४।१ ४।२६०।४ ४।३६८।१ ४।४०१।२ ४।४१४।१
३ वही ४।३५२।२ ४।३३०।१
४ वही ४।४०१।३
५ वही ४।३३ १४
६ वही ४।२७६।३
७ वही ४।३३३।३ ४। ६५।२ ४।४१६।७ ४।४२१।१ ४।४४४।२ ४।४३६।७
८ वही ४।४ १।४ ४।४१८।५
९ डा० रामसागर त्रिपाठी मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी ■ ८६
१ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृ० १६७

चण्डीदास के पदों में राधा का व्यक्तित्व अधिक कोमल और लोक भावना के निकट है। विद्यापति ने दरबारी काव्य परम्परा से प्रभावित अलंकारपूर्ण और रूढ़िग्रस्त शैली में राधा का रूप वर्णित किया है।

ग्यारहवीं शती के काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र के दशावतारचरितम् में एक पद उद्धृत करते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सिद्ध किया है कि जिस प्रकार के राधा कृष्ण विषयक गेय पदों का विकास उड़ीसा और बंगाल आदि पूर्वी प्रदेशों में हुआ उसी प्रकार सुदूर पश्चिम में भी होता रहा। अर्थात् सम्पूर्ण उत्तर भारत में बंगाल से काश्मीर तक ऐसे पदों का प्रचार था।[1]

विद्यापति पदावली एवं मैथिल साहित्य

विद्यापति हिन्दी के प्रथम कवि माने जाते हैं। ये संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने संस्कृत में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इनका उज्ज्वल शृंगारपरक पदावलियों के कारण विशेष स्थान होता है। प्रायः इनकी पदावलियों का सम्बन्ध गीतगोविन्द से जोड़ा जाता है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने जयदेव और विद्यापति के गीतों का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है[2] "विद्यापति तो जनसाधारण के प्राकृत प्रवाह में ही गीतों को मिलाए चल रहे थे अर्थात् जयदेव में गीतों की प्रवृत्ति आरोपित है, विद्यापति में यह प्रकृत या सहज है।" यहां का तात्पर्य यह कि जयदेव ने लोक गीतों को विशद वर्णनपूर्ण अलंकृत शैली में उपस्थित किया जबकि विद्यापति ने उन्हें अपने स्वाभाविक रूप में ही रखा। विद्यापति के ऐहिकतापरक गीतों में मानवीय भावनाओं की जैसी धारा प्रवाहित होती है वैसी ही रीतिकाव्य में भी। विद्यापति के हिन्दी में जनभाषा में शृंगाररस के क्षेत्र के लिए मर्यादा बांधकर चाहे कृष्ण भक्त कवियों का उपकार न किया हो पर वे शृंगार काल के कवियों का बहुत बड़ा उपकार कर गए।[3] उन्होंने शृंगारी कवियों के काव्य विषय का पूर्ण विन्यास अपनी पदावलियों में किया है। कृष्ण-लीला के स्थल यमुना कूल, कदम्ब और वृन्दावन के कुंजों का वैसा विस्तार यहां नहीं है जैसा भक्ति साहित्य में मिलता है। इनके पदों में नायिका की वयःसंधि[4] नखशिख, सद्यःस्नाता, प्रेम प्रसंग, दूती, सखी, मान, अभिसार एवं संयोग वियोग की नाना भाव दशाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।[5] उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आने वाली सखी या दूती के अतिरिक्त प्रकृति, चन्द्र, चांदनी आदि का भी सम्यक् संयोजन इन पदों में किया गया है। इस प्रकार निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि विद्यापति का शृंगार

---

१ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य, पृ० १६६
२ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग १, पृ० ११२
३ वही, पृ० ११२
४ विद्यापति पदावली (रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सम्पादित) पद सं० ४, १२६
५ वही १०, २०, २२८

निरूपण सर्वांगपूर्ण है।

डा० रामकुमार वर्मा ने विद्यापति के राधा कृष्ण का भक्ति धारा के राधा कृष्ण से पार्थक्य निर्देश करते हुए लिखा है 'राधा का स्नान, मान, विलास, उसकी वय:संधि, दूती की शिक्षा, कृष्ण से मिलन, मान, विरह आदि उसी प्रकार लिखे गए हैं जिस प्रकार किसी साधारण स्त्री का भौतिक प्रेम विवरण।[१] रीतिकालीन कवियों ने भी विद्यापति के ही राधा कृष्ण को अपने युग के अनुरूप पाया, सूरदास के कृष्ण को नहीं। सूरदास के कृष्ण गोपीजनवल्लभ के साथ-साथ लोकोपकारक भी हैं।

विद्यापति की दूसरी विशेषता है सद्यःस्नाता अथवा वय:संधि के चंचल और कामोद्दीपक चित्र उपस्थित करके लखिमादेई और शिवसिंह का मनोरंजन करना। रीतिकालीन कवियों में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। डा० वर्मा ने विद्यापति को मूलतः बहिर्जगत का कवि माना है।[२] उनका तात्पर्य है कि यौवन और सौंदर्य के बाह्य रूप को ही कवि ने ग्रहण किया है, अन्तः उसमें भावों की गहराई और अंतर्जगत की सूक्ष्म वृत्तियों का उद्घाटन नहीं हुआ है। किन्तु उनके ये विचार विद्यापति के संयोग वर्णन में ही लागू होते हैं। उनके वियोग वर्णन में भावों की बड़ी स्वाभाविक और सरल व्यंजना पायी जाती है। विरह वर्णन में लोकगीतों की अनुगूंज भी बड़ी व्यंजक है। जहां कृष्ण प्रिया राधा भारतीय गृहिणी की तरह विरह वारिधि में आशा की डोर के सहारे डूब उतरा रही है। वहां वह बारहमासे और चौमासे के गीत गाती है। अपनी सखी से विरह वेदना का निवेदन करती है। इस प्रसंग में विद्यापति ने लोक और शास्त्र दोनों का आधार ग्रहण किया है। बारहमासे में लोकगीत के स्पन्दन हैं[३] तो षड्ऋतु वर्णन में शास्त्रीय व्यवस्था।

विद्यापति ने नए परिवेश में अपने पूर्ववर्ती संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य को उपस्थित-व्यवस्थित किया। इनके पदों पर उक्त प्रभाव की चर्चा करते हुए महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है 'संस्कृत अलंकारेर यत किछु कवि प्रौढ़ोक्ति आछे यत चलित उपमा आछे विद्यापति ठाकुर ताहार गानगुलित सगुलिर प्रचुर व्यवहार करियाछेन। हालसप्तशती आर्यासप्तशती अमरुशतक शृंगारतिलक प्रभृति संस्कृत एवं प्राकृत आदिरसेर कवितागुच्छ हइते विद्यापति आपनार गानेर यथेष्ट भाव संग्रह करियाछेन।'[४] शास्त्रीजी के उक्त कथन की पुष्टि में जयकान्त मिश्र ने शिवनन्दन ठाकुर की कीर्तिलता की भूमिका के अंशों को उद्धृत किया है। श्री मिश्र ने यह भी संकेत किया है कि इन उद्धरणों को देखने से स्पष्ट हो जाएगा कि विद्यापति ने अपने पूर्ववर्ती

---

१ डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ५६८

२ वही पृ० ५६५

३ विद्यापति प्रस्तावना २ द

४ जयकांत मिश्र मैथिली लिटरेचर पृ० १६२ ६३ से उद्धृत

कवियों ने मात्रा को कहीं तक ग्रहण किया है और कहाँ तक व उससे आगे बढ़ गए हैं।[1]

जहाँ तक रीतिकालीन कविता में नायिका वर्णन आदि शृंगार के विविध पक्षों पर विद्यापति के प्रभाव और भाव साम्य का प्रश्न है प्रस्तुत प्रबन्ध के शोध अध्याय में उस पर विचार किया जाएगा।

विद्यापति के राधा कृष्ण रीतिकालीन कवियों की तरह भक्ति के देवता नहीं अपितु शृंगार के लौकिक आलम्बन हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इस स्पष्ट कर दिया है विद्यापति ने इस बाह्य संसार में भगवान को नहीं देख पाया। न ईश्वर की भक्ति कहीं मन लगाना न ईश्वर में जाना कहाँ और अभिसार न भक्ति का सार कहाँ ?[2] विद्यापति सच्चे अर्थों में जीवन और सौन्दर्य के कवि हैं। उनकी भी रीतिकालीन के कवियों की भी मजबूरी है कि वे व्यापक जीवन की पग पग जीवन लक्ष्य न ही चित्रकार है। यौवन और सौन्दर्य के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। रीतिकालीन कवियों की तरह विद्यापति भी शिवसिंह, लखिमादेवी, विश्वासदेवी, नरसिंहदेवी तथा मिथिला अन्य आश्रयदाताओं के आश्रय में रहे थे[3] जहाँ सामन्ती वातावरण में राग रंग की ही प्रबलता थी। उस राग रंग में विविध विषयों में रंग भरने की प्रवृत्ति थी इसीलिए विद्यापति ने राधा के प्रेम प्रवाह में सामाजिक मर्यादा को उपेक्षित कर दिया है।

विद्यापति की ही तरह बंगाल के प्रसिद्ध कवि चण्डीदास ने भी राधा माधव की भक्ति लीला का गान किया है। यद्यपि विद्यापति की अपेक्षा उनमें भाव-तन्मयता अधिक है किन्तु दोनों कवियों में अनेक स्थलों पर अद्भुत साम्य पाया जाता है। डा० शशि भूषणदास गुप्त ने भी विद्यापति चण्डीदास गोविन्ददास आदि के साथ साथ रूपगोस्वामी सुभाषित संग्रहों के अज्ञातनामा कवियों और प्राकृत ग्रंथों के मुक्तकों का साम्य प्रदर्शित करके यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश की काव्य धारा को विद्यापति ने आगे बढ़ाया[4] और विद्यापति की परम्परा कृष्ण भक्ति धारा से सिंचित-पोषित होकर रीतिकाव्य में आई। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने मतिराम के रसराज पर टीका

१ Introduction to Kirttilata Shivanandan Thakur (Mahakavi Vidyapati with Jayadeva pp 110 114 with Amaru pp 114 123 with Govardhan pp 124 129 and Nagendra Nath Das (Vidyapati Kavyaloka pp 15 to 60) have worked out how his *numerous poems echoe Sanskrit writers and how in many* cases he had gone beyond them

Jayakant Misra Maithili Literature pp 162 63

२ डॉ रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २६५

३ दे डा शिवप्रसाद सिंह विद्यापति (प्र स) पृ० ६

४ दे डा शशिभूषणदास गुप्त श्रीराधा का क्रम विकास (१९५६) प १३६ ७८

करते हुए उनके छन्दों से विद्यापति के छन्दों का अनेक स्थलों पर भाव साम्य दिखलाया है।[1]

मैथिली साहित्य का प्रभाव रीतिकाव्य पर कई दृष्टियों से पड़ा। हिन्दी में लोक गीतों का प्रभाव बहुत-कुछ मैथिली साहित्य के माध्यम से आया। जयकान्त मिश्र ने इस प्रकार के गीतों को तिरहुति नाम दिया है। इनमें प्रेम का उन्मुक्त गान मिलता है। तिरहुति गीत मैथिली गीतों में सबसे समृद्ध है। इनके प्रणय गीतों में संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं का सुन्दर वर्णन मिलता है। तिरहुति गीतों में बटगमनी (अभिसार), गोआलरी (जिसमें कृष्ण और गोपियों की प्रणय क्रीड़ा का वर्णन है), रास, मान और मनुहार आदि का रमणीय वर्णन किया गया है। विद्यापति की तरह उमापति के गीत भी अपनी भाव-व्यंजना के लिए प्रसिद्ध हैं। तिरहुति के ऋतु सम्बन्धी गीतों में चता मलार (१ पावस मलार और २ धुरिया मलार) बारहमासा और चौमासा (केवल वर्षा ऋतु में वियोग-व्यथा का वर्णन) आदि में सरल स्वाभाविक भावों का अंकन मिलता है।[2]

अब नि हिन्दी के पूर्वमध्यकालीन काव्य ग्रन्थों और एसे कवियों की कृतियों का परिचय दिया जाएगा जिनका शृंगारी काव्य धारा को आगे बढ़ाने और रीतिकाव्य को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सन्दर्भ में लेखक ने उन कवियों का नाम शीर्षक में दे दिया है जिनकी रचनाएँ किसी एक संग्रह-ग्रन्थ में न होकर स्फुट रूप में अन्य काव्य ग्रन्थों में पाई जाती हैं।

गंग कवित्त—गंग अकबर-दरबार के श्रेष्ठ कवियों में थे। अकबर का शासन काल साहित्य कला की अभ्युन्नति का काल था। उस समय अकबर की राजसभा में राज भाषा फारसी के साथ हिन्दी संस्कृत और अन्य भाषाओं के कवियों को भी समादर मिलता था। यद्यपि शाही दरबार में भक्ति नीति और वैराग्यपरक कविताएँ होती थी किन्तु उनमें सरस अधिक रचनाएँ शृंगार की ही कही-सुनी जाती थीं। श्री बटेकृष्ण ने गंग कवित्त की भूमिका में लिखा है अकबरी दरबार का रंग-ढंग कुछ निराला था। वहाँ एक ओर तो शृंगार की धारा बह रही थी —संयोग और वियोग के चित्रण में नायक नायिकाओं के प्रेम निरूपण में नव नव परिस्थितियों एवम् चेष्टाओं की उद्भावनाएँ हो रही थी दूसरी ओर अकबर स्वयम् पैगम्बर बनना चाहता था। अतः शाही दरबार की काव्य-सरिता में दोनों रंगों की मिलावट अवश्यम्भावी थी। उस दरबार

---

१ दे मतिराम कृत रसराज की टीका (चौखम्बा प्रकाशन) की पादटिप्पणियाँ।

२ The Tirahuti is the richest of all classes of Maithili songs—songs of separation as well as union There are beautiful descriptions of the nayika her dalliance, her union with the lover and her separation from the lover, in general, every aspect of her heart is unfolded

—Jayakant Misra, Maithili Literature, Vol I pp 77 78

के जितने कवि मिलते हैं सबने शृंगार की कविता की है और शान्तरस की भी।"[1]

गंग की शृंगारी रचनाएँ भी उसी प्रकार रीतिबद्ध हैं जैसे रीतिकालीन कवियों की। यही नहीं रीति-कवि की प्रायः प्रत्येक प्रवृत्ति गंग में मिलती है। उन्होंने दरबारी प्रवृत्ति के अनुसार आश्रयदाताओं का यशगान भी किया और शृंगार के विविध पक्षों पर मार्मिक रचनाएँ भी कीं। गंग ने शृंगारी प्रसंगों में इतनी अधिक नवीन उद्भावनाएँ की हैं कि सहसा उन्हें तीसरी पीढ़ी वाले कवियों की श्रेणी में नहीं बैठाया जा सकता। अलंकरण प्रवृत्ति की बढ़ती धारा के साथ वे जरूर बहे और अतिशयोक्ति के सहारे चमत्कार भी पर्याप्त उत्पन्न किया किन्तु उनमें मौलिकता की कमी न थी।

नायिका के नखशिख वर्णन प्रसंग में कवि के सौन्दर्य बोध और भाव चित्रण का अच्छा उदाहरण मिलता है। नख वर्णन में कवि ने 'बिहारी'[2] को सबसे अधिक प्रभावित किया है ऐसा लगता है। नायिका की अंग दीप्ति ही नहीं उसकी हर विलास चेष्टा का कवि ने ऐसा वर्णन किया है कि परवर्ती कवियों के वे आदर्श बन गए।[3] नायिका की विलास चेष्टाओं के प्रभाव में नागर रीतिकाव्य में ही मन से हाथ नहीं धोते थे ऐसे वर्णन तो संस्कृत प्राकृत आदि साहित्यों में प्राप्त होते ही हैं कवि गंग ने एक छन्द में ऐसा वर्णन किया है जिसकी छाया हिन्दी के परवर्ती काव्यों में पाई जाती है।[4]

खण्डिताओं के वर्णन में गंग सूर मतिराम बिहारी और पद्माकर में अद्भुत साम्य है।[5] रीतिकालीन काव्यों की वर्ण्यवस्तु का जैसा उपयोग गंग ने किया है उसे देखते हुए लगता है कि रीतिकाल की काव्य परम्परा अकबर के शासनकाल में ही काफी विकसित हो चुकी थी। कवि ने अनेक फुटकल छन्दों में सद्यःस्नाता रति पीड़ा आलिंगन, चुम्बन सुरति विपरीत रति सुरतान्त मध्यनायिका, सखी-दूती और उनके कर्म षड्ऋतु और वियोग पूर्वानुराग मान आदि का परम्परित वर्णन किया है।[6]

रहीम रत्नावली एवं बरवै नायिका भेद—रहीम के 'बरवै नायिका भेद' से रीतिकालीन कवियों ने प्रमुख प्रभाव ग्रहण किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा

---

१ डा [illegible] गंग कवित्त भूमिका पृ ३६
२ गंग कवित्त २७ तुलनीय बिहारी ८ ६१ [illegible] जगन्नाथ बिहारी १६१ १६५
३ [illegible]
[illegible] गंग कवित्त ७७
[illegible]
[illegible] ॥ बिहारी ३२७
४ गंग कवित्त पृ ८४ तुलनीय मतिराम २६७ [illegible] ६३
५ गंग कवित्त पृ १०६ तुलनीय सूर १ १२५ २ बिहारी ६ २ ६४ मतिराम ग्रन्थावली १२२
पद्माकर [illegible] ६३ ६० [illegible]
६ गंग कवित्त [illegible] १३४ १८ १८ १४३ २१ १६ ६६

है, इनकी उक्तियां ऐसी लुभावनी हुई कि बिहारी आदि परवर्ती कवि भी बहुतों का अपहरण करने का लाभ न रोक सके।[१] रहीम के बरवै अपने स्वाभाविक रसपूर्ण और सच्चे चित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। हाल की गाथाओं की सी स्वाभाविकता रहीम के बरवों में भी मिलती है।[२] इसीलिए शुक्लजी ने इनमें भारतीय प्रेम-जीवन की सच्ची झलक देखी है।

भागवत की गोपियों की भांति रहीम की भी नायिका कुल देवता से अभीष्ट वर प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती है।[३] लक्षिता नायिका के चित्र रहीम और बिहारी दोनों के एक ही तरह के हैं।[४] इस प्रकार रीतिकाल के अनेक कवियों में रहीम की कविता के भाव और प्रवृत्ति पाई जाती है।[५]

रहीम ने 'नगर शोभा' के अन्तर्गत अनेक नारियों का शृंगारिक वर्णन किया है।[६] डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल का अनुमान है कि शायद अकबर द्वारा आयोजित मीना बाजार में एकत्र सभी वर्ग और विविध पेशों की स्त्रियों को देखकर रहीम को इस रचना की प्रेरणा मिली हो।[७] रीति कवि देव ने अपने 'जाति विलास' में भी इसी प्रकार अनेक जातियों की रमणियों का वर्णन किया है। सम्भवतः उनके 'जाति विलास' का स्रोत उक्त ग्रंथ ही रहा हो। इनके फुटकल बरवों में कुछ में उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत वर्षा,[८] वसंत, होली[९] तथा कुछ में रूप वर्णन,[१०] विरह-दशाओं,[११] संयोग की चेष्टाओं और कुछ में खंडिता और उपालम्भ का अच्छा वर्णन किया गया है।[१२]

यदि उक्त बरवों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो इनकी प्रतिध्वनि रीतिकाव्य के अनेक छन्दों में सुन पड़ेगी।

---

१ प० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २ १

२ वही पृ० २ १

मोहि वर नाम कन्हैया नाणउ पाय।
पुहु कुन पूज देवनका हाथ मथाय॥ ब० ना० छ० ११ तुलनीय—
श्रीमद्भागवत १ । २२ । ४ मतिराम रसराज ६३

४ भाज नयन के कजरा और भांति।
नागर नेह नवनिया सन्नि जाति॥ ब० ना० १७ तुलनीय-बिहारी २८

५ दे० श्री मायाशंकर याज्ञिक द्वारा लिखित रहीम रत्नावली की भूमिका।

६ रहीम रत्नावली रगरेजिन दो० १६ २ सुनरी ३ २६ काछिनी ३२ मिठनीगरानी ५२ ५४, डोमनी ६७ ६८ चेरी ६६ कचना ७६ सजनीगरानी ६१ ६२

७ डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० १७२

८ रहीम रत्नावली बरवै ७ ८ १ १३ १७ १६ २२ २४ २६ २७ २६ ३ ४०

९ वही ४८ ६५ ६४ ६७

१ वही ५२ ५३ ६३

११ रहीम रत्नावली बरवै ८७ ५७ ५८ ६२ ६६ ६८ ७२ ७

१२ वही देखिए क्रमशः ३ – ७४ ४५ ५५, ८८

बीरबल 'ब्रह्म'—अकबरी दरबार के हिंदी कवियों में ही बीरबल का नाम महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु रीतिकाल के उन पूर्ववर्ती कवियों में भी महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने रीतिकाव्य को प्रेरणा प्रदान की है। रूप चित्रण में इन्होंने भी परवर्ती रीति-कवियों की भांति अप्रस्तुतों के द्वारा चमत्कार प्रदर्शित किया है।[1] डॉ० सरजूप्रसाद अग्रवाल ने इस संदर्भ में कहा है "नायिका की भृकुटि नयन अधर कुच जघ आदि अवयवों के उचित उपमानों को जुटाकर कवि मुख की कान्ति की कल्पना पूर्णिमा के चन्द्र से करता है किंतु नायिका के उज्ज्वल मुखभाग को उसकी काली वेणी के आश्रित देख आश्चर्यान्वित हो वह उठता है—'पन्नग के माथ ज्यों पूरन पूर्यो को ससि।' वेणी और मुख की संश्लिष्टावस्था की यह सुन्दर कल्पना सराहनीय है।[2] इसी प्रकार की वेणी और मुख तथा नायिका के प्रत्येक अंग को लेकर रीतिकाव्य में भी उत्प्रेक्षाएं की गई हैं। कवि ने नायिका के अंगड़ाई लेकर जम्हाने की चेष्टा का वर्णन करते हुए उत्प्रेक्षा की है कि मानो त्रिलोक को जीतने के लिए कामदेव ने ताने की कमान चढ़ाई है।[3] कवि ने नायिका की बिंदी, सद्यस्नाता रूप प्रेम क्रीडा विपरीत रति और नायिका भेद का वर्णन किया है।[4]

तानसेन—तानसेन की प्रसिद्धि का कारण इनका संगीत है। इन्होंने अनेक राजदरबारों की शोभा-वृद्धि की। अंत में वल्लभ संप्रदाय से प्रभावित होकर कृष्ण लीला गान किया। कृष्ण की रूप माधुरी मान मनुहार राधा प्रेम विषयक अनेक सरस गीतों की इन्होंने रचना की। शृंगारी रचनाओं में नायिका भेद और नखशिख विषयक अनेक पदों को मधुर रागों में निबद्ध किया।

इनकी खंडिता नायिका के चित्र परंपरानुसार ही है—

ए मेरे भाग जागे प्रिय भोर ही सुधि लई।
मैं इतनों भलो मनावत ■ बतमा हो तुम पर बल गई॥
अधरन ■ अंजन महावर भाल भति गति औरै भई।
तानसेन के प्रभु ठाढ़ कहो मलया लहौं वह गई तिय नई॥[5]

कवि ने होली के पदों की प्रभूत परिमाण में रचना की।[6] इस वर्णन रीतिकालीन कवियों ने भी बड़े मनोयोगपूर्वक किए हैं।

छीतस्वामी और अष्टछाप के अन्य कवि—अष्टछापी कवियों में छीतस्वामी के पदों में वसंत, फाग हिंडोरा मान वासकसज्जा सुरति सुरतांत, खंडिता आदि के

१ डॉ सरजूप्रसाद अग्रवाल अकबरी दरबार के हिंदी कवि का परिशिष्ट पृ० ३४८ छं २६ २६
२ वही परि प १७७
३ वही परि पृ० ३४६ छ २६
४ वही परि प० ५ ५१ छ ३४४३
५ वही प ४ ७ छं० ११५
६ वही छ १५१

पद विशेष रूप से रीतिकाव्य के प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुए।

इस प्रकार के पद कुंभनदास सूरदास परमानंददास कृष्णदास चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी आदि की रचनाओं में पर्याप्त परिमाण में मिलते हैं।

डा० दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप की मधुर भक्ति के वर्णन में शृंगारभाव के भिन्न भिन्न रूप और अवस्थाओं का सम्यक् विवेचन करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि गोपियों को यौवन की उन्मत्त अवस्था में कृष्ण में साक्षात् कामदेव दिखाई देता था और व्रज पर आने वाली अनेक आपत्तियों से घबराई अवस्था में वे उसे एक अतुल शक्तिशाली रक्षक के रूप में देखती थीं। गोपियाँ कृष्ण के रूप और गुण दोनों पर मुग्ध थीं। सौंदर्य और शक्ति इन दो गुणों में से अष्टछाप भक्तों ने कृष्ण के सौंदर्य के आकर्षण को अधिक चित्रित किया है।[2]

डा० गुप्त ने परमानंददास के काव्य का विवेचन करते हुए उनके शृंगार प्रेम, पूर्वराग प्रेमानुभूति सखी मिलन संयोग वियोग प्रकृति चित्रण आदि का पूर्ण वर्णन विवेचन किया है।[3] विस्तार भय से यहाँ प्रत्येक अष्टछापी कवि के शृंगारी-वर्णनों का विवेचन नहीं प्रस्तुत किया जा रहा है। संक्षेप रूप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इन कवियों ने शृंगार वर्णन को भक्ति का एक साधन बनाया किन्तु उसका उद्दीपक मांसल रूप नितांत लौकिक है। पीछे कहा जा चुका है कि रीतिकाव्य पूर्वमध्यकालीन भक्ति-काव्य का स्वाभाविक परिणाम है। डा० सावित्री सिन्हा ने राधावल्लभ-सम्प्रदाय की मधुर उपासना में स्थूल भाव चित्रण की ओर संकेत करते हुए लिखा है अष्टछाप के कवियों की अपेक्षा पूर्वमध्यकालीन राधावल्लभ संप्रदाय के कवियों की रचनाओं में मांसल स्थूलता और लौकिकता अधिक है।[4]

कवित्त रत्नाकर—सेनापति भक्तिकाल के अन्तिम खेवे के प्रसिद्ध कवि हैं। इनके अनुपलब्ध ग्रंथ काव्यकल्पद्रुम में काव्यशास्त्रीय निरूपण का अनुमान किया जाता है। दूसरा ग्रंथ कवित्त रत्नाकर कवि द्वारा सं० १७०६ में किया गया स्वरचित मुक्तक छंदों का संग्रह है। इसमें भक्ति विशेषतः रामभक्ति और प्रशस्ति नीति आदि के साथ अलंकृत शैली में शृंगारपरक छंदों की कविता का रूप दृष्टिगत होता है। शृंगारी वर्णनों में कवि ने बहुत कुछ रूढ़ परंपराओं का आश्रय लिया है। अलंकार-चमत्कार और विलासिक भावांकन में कवि रीतिकालीन कवियों की वृत्ति का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। लगता है, रीतिकाल के पूर्व ऐसे फुटकल शृंगारपरक छंदों की

---

१ छीतस्वामी (विद्याविभाग कांकरौली) संख्या क्रमशः पद ५३ ५४ ५६ ५७ ६२ ६४ १३५ १४७ १४९ १५१ १६ २ १७

२ डॉ दीनदयाल गुप्त अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय पृ ७ ७

३ वही पृ० ७ ७७३८

४ डॉ० सावित्री सिन्हा व्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प पृ २३६

पर्याप्त रचना हुई होगी जिसका सुस्पष्ट रूप कवि सेनापति व कवित्त रत्नाकर के छंदों में दिखाई पड़ता है।

इसमें सखी का नायक से नायिका विरह निवेदन करते हुए उसे अभिसार के लिए प्रेरित करना,[1] नायिका की रूप शोभा के साथ साथ हृदय पर पड़ने वाले प्रभावों का अंकन,[2] वय संधि,[3] वियोग दशा,[4] खंडिता वचन[5] आदि के वर्णन तो मिलते ही हैं साथ ही परकीया की उक्ति—

कहा ऐसी चतुराई, पढ़ी आप जदुराई।
आपुरी पकरि पहुँचा को पकरत हो।[6]

का रीतिकालीन कवि बिहारी की नायिका की उक्ति से साम्य देखा जा सकता है। इसी प्रकार प्रिय का पत्र प्राप्त कर नायिका की प्रमालिंगनमूलक चेष्टाओं[7] और क्रिया विदग्धा नायिका की चतुराई[8] आदि के वर्णन भी रीतिकाव्य के तद्विषयक छंदों से मिलते जुलते हैं।

सेनापति के ऋतु-वर्णन में प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों प्रकार के रूपों का वर्णन हुआ है। इन ऋतुओं में सुखद और दुखद नाना प्रकार की सामग्रियों की चर्चा प्रायः परंपरा मुक्त ढंग से पाई जाती है। ग्रीष्म-वर्णन में कवि की दृष्टि सामन्ती भोग वृत्ति के उद्घाटन की ओर अधिक रही है।[9] उसमें ग्रीष्म ऋतु में सामन्तों की दिनचर्या का अच्छा वर्णन मिलता है रीतिकाव्य में भी ऐसे ही चित्र प्राप्त होते हैं।

प्रशस्तिपरक (संस्कृत)

प्रशस्ति काव्य मूलतः वह काव्य है जो अपने आश्रयदाता की तुष्टि के लिए उसके गुणों की प्रशंसा में रचित हो। सामान्यतः विद्वान लोग राज प्रशस्तिपरक मुक्तकों का आदि स्रोत वेदों के नराशंसी सूक्तियों और दानस्तुतियों को मानते हैं। वेदों में राजा आदि स्वयं कुशल योद्धा और गुणवान की प्रशंसाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें उक्त राजाओं की दानशीलता का अतिरंजित वर्णन पाया जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ऋषियों ने इन स्तुतियों की रचना किसी दानी राजा या यजमान की

---

१ सेनापति कवित्त रत्नाकर (प्रयाग सन १९५६ ई०) २।८६
२ वही १।१० ११ २।२४ ३५
३ वही २।२६ ४०
४ वही २।१६ २३ ३८
५ वही २।३१ ३५ ४१
६ वही २।१० स्वकीय विहारी २ २
७ वही २।६ सुन्दरि विहारी ७६
८ वही २।४८ सुन्दरि रत्नाकर ७५
९ वही ३।१० ११ १४ १७-२० ३।६२

प्रशंसा में की है।

लौकिक साहित्य में राज-स्तुतियों के उदाहरण रुद्रदामन और समुद्रगुप्त के शिलालेखों में मिलते हैं। इसकी दीर्घ परम्परा हरिषेण और वत्सभट्टि की प्रशस्तियों में भी मिलती है।

कुछ विद्वानों का मत है कि कालिदास ने इन्दुमती स्वयंवर के समय राजाओं के परिचय देने में इसी प्रशस्ति शैली का प्रयोग किया है। किंतु वास्तविक रूप में उसे प्रशस्तिकाव्य नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रशस्ति का स्पष्ट लक्ष्य होता है कि राजा का प्रशस्ति गान करके उससे पुरस्कार प्राप्त करना।

प्रशस्तिकाव्य का अधिकांश निर्माण ऐतिहासिक काव्य ग्रंथों या चरित काव्यों के माध्यम से हुआ। इस ग्रंथों में बाणभट्ट का हर्षचरित, वाक्पतिराज का गउडवहो, पद्मगुप्त (परिमलगुप्त) का नवसाहसांकचरित, बिल्हण का विक्रमांकदेवचरित, सन्ध्याकरनंदी का रामचरित, कल्हण की राजतरंगिणी, हेमचन्द्र का द्व्याश्रय काव्य तथा कुमारपालचरित, जयानक (जयरथ) का पृथ्वीराजविजय, सोमेश्वर का कीर्तिकौमुदी, अरिसिंह का सुकृतसंकीर्तन, जयसिंह सूरि का हम्मीरमदमर्दन, मेरुतुंग की प्रबंधचिंतामणि, राजशेखर का चतुर्विंशतिप्रबंध, चंद्रप्रभसूरि का प्रभावकचरित, गंगादेवी का कंपराय चरित, जयसिंहसूरि, चारित्रसुन्दरगणि तथा जिनमण्डनगणि के एक ही नाम के तीन ग्रंथ कुमारपालचरित, जिनहर्षगणि का वस्तुपालचरित, जयचन्द्रसूरि का हम्मीर महाकाव्य, आनन्दभट्ट का बल्लालचरित, गंगाधर पंडित का मंडलीक महाकाव्य और राजनाथ का अच्युतरायाभ्युदयकाव्य आदि उल्लेख्य हैं। उपर्युक्त ग्रंथों में से कुछ में तो ऐतिहासिक इतिवृत्ति की प्रधानता है और कुछ में किसी एक राजा का जीवनचरित। इनमें प्रशस्तिकाव्य के तत्त्व पूर्ण परिमाण में प्राप्त होते हैं। उक्त ग्रंथों के रचयिता अधिकांश राजाश्रय में रहने वाले कवि हैं। उन्होंने अपने आश्रयदाता के पूर्व पुरुषों का जीवनवृत्त लिखते हुए उनकी प्रशस्ति की है।

इन प्रशस्तियों में कवि परिपाटी के अनुसार कीर्ति की शुक्लता, शत्रु की अपकीर्ति की कालिमा, प्रताप की रक्तोष्णता और क्रोध या अनुराग की लालिमा का वर्णन किया है।[1] इसी प्रकार स्वामिप्रसादनार्थक काव्यों में शास्त्रीय चरितकाव्यों की परिपाटी का पालन भी किया गया है जैसे राजा, राजवंश, पुरोहित, राजकुमार, अमात्य, सेनाधिप आदि के वर्णन के साथ साथ राजा की कीर्ति, उसका प्रताप, दुष्टों का दमन, विवेकपूर्ण धर्मपरायणता, विजय-यात्रा, युद्ध, शास्त्राभ्यास, न्यायक्षमता, प्रजा प्रेम, शत्रुओं का राज्य में अभाव एवं उनका छिपकर गिरिकन्दराओं में निवास और भय से उनका जागरण करना आदि का वर्णन। राजा की उदारता, धैर्य, गंभीरता, शौर्य, ऐश्वर्य और उद्यम का भी काफी वर्णन किया गया है जो परंपरा-समर्थित है।[2]

१ शुक्लत्वं कीर्तिहासादौ कार्ष्ण्यं चाकीर्तिपापयोः।
प्रतापे रक्ततोष्णत्वे रक्तत्वं क्रोधरागयोः॥ —कविकल्पलता १।२।४७

२ देवेश्वर कविकल्पलता १।३।२४

कविशिक्षा विषयक पुस्तक 'कविकल्पलता' म देवेश्वर ने राजा दशरथ का वर्णन किया है जिसके अनुकरण पर उन्होंने प्रशस्ति-वर्णन का मार्ग दर्शाया है।[1] देवेश्वर ने राजा के आराध्यगुणों की विस्तृत सूची दी है जिसे देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कवि के पूर्व प्रशस्ति वर्णन में राजा के इन गुणों का वर्णन किया जाता रहा होगा। इस सूची मे प्राय वे सभी गुण आ गए है जिनकी कल्पना एक राजा के लिए की जा सकती है।[2]

इसके अनुसार राजप्रशस्तियों म राजा की दानशीलता सुन्दरता और युद्ध वीरता का वर्णन होता है। संस्कृत महाकाव्यों और नाटकों के आदि और कथा-सहा अत मे प्राय श्लोको म राजस्तुति मिलती है। अनर्घराघव म मुरारि कवि ने इसी परिपाटी का पालन किया है।[3]

यद्यपि ये श्लोक प्रबंध के अन्तर्गत आते हैं किन्तु मूल कथावस्तु से उनका कोई संबंध नही होता। श्रीहर्ष ने नैषधचरित मे एक स्थान म काशीश्वर की युद्ध वीरता एव उनके अश्वो की प्रबलता का वर्णन किया है।[4]

प्रशस्तिकाव्य की 'मूल प्रवृत्ति' के परिचय हेतु कुछ ग्रंथो का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

राजेन्द्रकर्णपूर[5]—महाकवि शंभु श्रीहर्षदेव (१०८८ ई०–११०० ई०) के आश्रित थे। इन्होंने इस ग्रंथ म कुल ११ श्लोको म श्रीहर्षदेव की प्रशस्ति और ४२ श्लोको म काश्मीर की शोभा-सपन्नता का वर्णन किया है। प्रस्तुत ग्रंथ के मंगलाचरण से स्पष्ट होता है कि उस समय शृगारी प्रसगो की शृगारेतर काव्यो म भी किस सीमा तक योजना होती थी।[6]

आश्रयदाता की कीर्ति की धवलिमा की व्याप्ति का वर्णन तथा उसके गुणो की उल्लेखालकार के प्रयोग से जसी प्रशसा शभु कवि ने की है परवर्ती कवियो ने भी उसका अनुगमन किया।[7] सवगुणसपन्न राजा की यश कथा सुनने म दत्तचित्त रमणियो और श्रीहर्षदेव के स्मरण मात्र से कामदेव की विजय आदि का वर्णन कवि ने अलकृत शैली म किया है।[8]

---

१ देवेश्वर कविकल्पलता १।१।१९

२ वही २।३।१८ २४

३ मुरारि अनर्घराघव १।३४

४ श्रीहर्ष नैषधचरित ११।१२७

५ काव्यमाला गुच्छक प्रथम पृ २२ ३४ नि सा प्रस बम्बई

६ बद्धस्पर्धं क्षितिधरसुताभ्रू-लताव्रतकाय भ्यादभूल्य तत्र हरगिर शङ्गो रों शीश ।
य निष्पीड्य स्तनमुखनखोल्लेखरेखास देया सशोगाने विनरति सन्नास्य दमर्धेन्दमौलि ।

रा क १

७ रा क श्लोक ४

८ वही श्लोक ७

९ वही १२

राजा के गुणोल्लेख के साथ ही उसके पराक्रम से पराभूत शत्रुओं की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कवि ने प्रशस्ति परिपाटी का सम्यक निर्वाह किया है।

राजा के भूभारवहनकर्ता होने के कारण कवि ने पौराणिक भूभारवाहकों को निश्चित करते हुए लिखा है, 'राजा श्रीहम्मदेव समस्त पृथ्वी का भारवहन करते हैं, अतः पृथ्वी के भार धारण से मुक्त शेषनाग कूर्म एवं दिग्कुंजर सब आनन्द मनाते।'[1]

इस ग्रंथ में प्रशस्ति वर्णन की परंपरा के निर्वाह का परिचय मिलता है।

भोजप्रबंध—भोजप्रबंध में राजा भोज की कीर्ति की धवलिमा का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है।[2] एक श्लोक में कवि ने भोजराज के राज्य में दो ही चीज़ों की कमी बतलाई है—एक शत्रुओं के लिए लोह शृंखला, दूसरे ताम्र के शासनपत्र।[3] राजा भोज की दानशीलता के आतंक से पार्वतीजी अपने पुत्र गजमुख की रक्षा कर रही हैं कि अन्य हाथियों के साथ उन्हें भी दान न कर डालें।[4] जब दानी राजा भोज से भेंट होना कवि ने पूर्वजन्म कृत तप या सौभाग्य का फल माना है उसी प्रकार बिहारी ने भी राजा जयसिंह से भेंट होने को सौभाग्य का फल माना है।[5] भोज प्रबंध में भोज की शत्रु-वधुओं की दुर्दशा का वर्णन तथा उनके सौंदर्य आदि गुणों की प्रशंसा की गई है।[6] लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि धोयी ने पवनदूत में लक्ष्मणसेन के शौर्य, दानशीलता और गुणज्ञता के वर्णन के साथ उनकी शत्रु-रमणियों की दुर्दशा का भी इसी प्रकार निर्देश किया है।[7]

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रशस्तिपरक मुक्तक अधिकांशतः प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत आने वाले वे स्फुट छन्द हैं जिनको प्रबंध के पूर्वापर संबंध की उतनी अपेक्षा नहीं है जितनी कि प्रबंध-काव्य के लिए होनी चाहिए अतः उन्हें एक दृष्टि से मुक्तक कहा जा सकता है। प्राणाभरण और भावविलास मुक्तकों का संग्रह मात्र नहीं है उसमें आश्रयदाता की यश गाथा का निबन्धन होने के कारण एक दूसरे छन्द का संबंध जोड़ा गया है। फिर भी कथा-सूत्र का विशेष बन्धन न होने से उन्हें मुक्तकों के अंतर्गत ही रख लिया गया है। इसी प्रकार विक्रमांकदेवचरित और गउडवहो मूलतः प्रबंध काव्य हैं किन्तु उनके राजप्रशस्तिपरक छंद स्वतन्त्र रूप से अपना अभीष्ट अर्थ वहन करते हैं और परवर्ती हिन्दी मुक्तकों के स्रोत कहे जा सकते हैं इसलिए प्रबंधान्तर्गत होने

---

१ रा० क० १६
२ भोजप्रबंध श्लोक ७६, ८२, ८३ तुलनीय पद्माभरण २१२
३ वही १६२
४ निजानपि गजान्भोज ददानं प्रेक्ष्य पार्वती।
गजेन्द्रवदनं पुत्रं रक्षत्यद्य पुनः पुनः ॥ वही १६७ तुलनीय—पद्माकर ज० वि० ७०
५ भोजप्रबंध १६५ तुलनीय बिहारी १६७
६ भोजप्रबंध १७२, १८२ तथा ३१६
७ धोयी पवनदूत श्लोक ५५, ६५ तथा ५६

पर भी उन रचना की यहा मूलतना से सम्भ म चर्चा की गई है।

विक्रमांकदेवचरित—विल्हण न राजा के आश्रय म रहकर यान कवियो का महत्त्व प्रतिपादित करता हुआ लिखा है जिस राजा के दरबार म अच्छे कवि नहा हैं उसका यश कस फल सकता है? इस पृथ्वी पर कितन ही राजा महाराजा हुए पर उनका नाम तक नहीं जाना जाता।[1] अर्थात् राजा को अपने यश को चिरस्थायी बनाने के लिए कवियो का पालन करना चाहिए। इसीलिए बडे-बडे प्रतापी राजा जलधि रशना को धारण करने वाली पृथ्वी के स्वामी होकर भी जिस कवि की कृपा के बिना स्मरण भी नहीं किए जाते उस कवि के महान कम को नमस्कार किया जाता है।[2] अत कवि केवल राजा का विनोद और उसकी नीति तथा व्यावहारिकता का ज्ञान ही नहीं कराता था अपितु उसके यश को चिरस्थायित्व भी प्रदान करता था। रावण की कीर्ति का सकुचित होना और राम की कीर्ति का दिगन्तव्यापी होना कवि वाल्मीकि की कृपा का फल है। कवि की कृपा को प्राप्त करने के लिए आश्रयदाता का यह पुनीत कर्तव्य था कि यह कवि को प्रसन्न रखे।[3]

प्रस्तुत ग्रंथ म प्रशस्ति वर्णन की रूढियों का सम्यक पालन किया गया है। चरितनायक विक्रमांकदेव की विजय यात्राओ का तो विशद वणन है ही साथ ही चालुक्य वंश की प्रशसा[4] राजवधुओं की दुदशा[5] कीर्ति की व्याप्ति[6] चालुक्यवशीय राजाओं की तलवार की प्रशसा[7] तलप राजा की प्रशसा[8] जयसिंहदेव की प्रशसा[9] आहवमल्ल के पुन विक्रमांकदेव के पराक्रम[10] गुणवत्ता[11] एव दानवीरता[12] और उनके हाथियो और

---

१ पृथ्वीपते सन्ति न यस्य पार्श्वे
कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि।
भूपा कियन्तो न बभूवुरुर्व्या
जानाति नामापि न कोऽपि तेषाम्॥ विक्र० १।२६ तुल० —काव्यालकार १।५

२ भुजवनतरुच्छायां येषां निषेव्य महौजसां
जलधिरशनामेदिन्यासीदसावकुतोभया।
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रह
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नम कविकर्मणे। राजतरंगिणी

३ विक्र० १।२७

४ वही १।५८

५ वही १।५९ १।१ ४६

६ वही १।६०

७ विक्र० १।६१

८ वही १।६८ ६९

९ वही १।८०

१० वही ३।६८

११ वही ३।७१ ५।३१

१२ वही ४।३ ५ ४।१४ १५

घोड़ा की भी प्रशंसा की गई है।

विद्यापति—विद्यापति ने केवल शृंगार वर्णन की परंपरा का ही हिन्दी में श्रीगणेश नहीं किया था, अपितु अपने आश्रयदाता शिवसिंह और उनके छोटे भाई पद्मसिंह की पत्नी विश्वासदेवी और उन्हीं के कुल के राजा नरसिंहदेव उपनाम 'दर्पनारायण' की अनेक प्रशस्तियाँ लिखकर प्रशस्ति की परम्परा का भी निर्वाह किया है। ये प्रशस्तियाँ प्रायः उक्त आश्रयदाताओं की आज्ञा से विरचित ग्रंथों में स्थान स्थान पर उपनिबद्ध किए गए मुक्तक छंदों में हैं।

शिवसिंह के शौर्य की प्रशंसा[1] उनकी शालीनता[2] आदि का वर्णन कवि ने परंपरित शैली में किया है। विश्वासदेवी की प्रशस्तियाँ शैवसर्वस्वसार में और नरसिंहदेव की प्रशस्तियाँ दुर्गाभक्तितरंगिणी और दानवाक्यावली में निबद्ध हैं।[3]

प्राणाभरण[4]—प्रस्तुत ग्रंथ में पण्डितराज जगन्नाथ ने कामरूप देश के शासक प्राणनारायण की प्रशस्ति निबद्ध की है। शैली बड़ी ही मनोहर और अलंकृत है। कवि कहता है "हे क्षीरसागर! माहात्म्य का मैं परावधि हूँ, गंभीरता का घर और रत्नों का पिता भी हूँ, मेरे समान इस भुवन में दूसरा कौन है? ऐसा सोचकर सहसा गर्व के वश अहंकार में न पड़ो। तुम्हारे समान श्री प्राणनारायण भी है।"[5] आश्रयदाता की कीर्ति की विशदता प्रतिपादित करते हुए कवि कहता है "हे राजन्! संसार की विपत्तियों का तुम नाश करते हो और तुम्हारा वैभव अपार है, ऐसा मूर्खों की उक्तियों से तुम गर्व न करो क्योंकि तुम्हारी प्रिया कीर्ति इस छोटे से ब्रह्माण्ड रूपी भाण्ड में अपने उन्नत अंगों को समेटकर बड़े कष्ट से निवास करती है।"[6] वह उनके गुणगणों का वर्णन करता हुआ प्राणनारायण की चित्त-वृत्ति का निरूपण करता है—'दीनों पर दया, शत्रुओं पर निर्दयता, काव्यालाप में मधुरता, शत्रु के उत्तर में कर्कशता, धर्म में लोभ, धन में त्याग और परविपत्ति में कातरता धारण करने वाली तुम्हारी चित्तवृत्ति बड़ी रमणीय है।'[7] इसी प्रकार पण्डितराज ने आसफविलास में नवाब आसफखाँ के शौर्य, दान और युद्धवीरता का वर्णन किया है। काव्यमाला में इसकी कुछ ही पंक्तियाँ प्रकाशित हैं।

जगदाभरण में पण्डितराज ने शाहजहाँ के कलाप्रिय, उदार और दानी पुत्र दाराशिकोह का वर्णन किया है। काव्यमाला में यह ग्रंथ प्रकाशित है।

काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में अलंकारों के उदाहरणस्वरूप अनेक राजप्रशस्तियाँ भी

---

१ दे० डॉ० उमेश मिश्र, विद्यापति ठाकुर, पृ० २०, पर उद्धृत 'शैवसर्वस्वसार' के श्लोक।
२ का वार्ता त्वयि नाते वनत्रयतुलापुरुषो यत्र दत्तः। —वही
३ दे० डॉ० उमेश मिश्र, विद्यापति ठाकुर, पृ० पर उद्धृत उक्त ग्रंथ के श्लोक।
४ काव्यमाला, गुच्छक प्रथम, पृ० ७९-६, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
५ प्राणाभरण, श्लोक ५
६ वही, श्लो० ६
७ वही, श्लो० २३

दी गई हैं। वीररस के उदाहरणों में भी कभी-कभी किसी प्रशस्ति काव्य के छन्द उद्धृत मिलते हैं। इनके अतिरिक्त सुभाषित संग्रहों में राजा और राज परिवार के साथ साथ सेना, कीर्ति दानशीलता आदि के प्रायः छन्द मिलते हैं।

सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन में हेमचन्द्र ने प्रत्येक पाद के अन्त में अपने आश्रयदाता राजा सिद्धराज जयसिंह के प्रशस्तिपरक छन्दों को रखा है। इन प्रशस्तियों को पढ़ने से आश्रयदाता की कीर्तिगायनवृत्ति पर काफी प्रकाश पड़ता है।[1]

भाव विलास

प्रशस्ति काव्यों में इसका उल्लेखनीय स्थान है। इसमें कुल १३६ पद्य हैं। जयपुर के महाराज मानसिंह के दरबारी कवि न्यायवाचस्पति रुद्र ने ग्रंथ के प्रारंभ में राजा मानसिंह (१७वीं शती) के पितामह भगवानदास का एक श्लोक में वर्णन किया है। तदुपरान्त दो पद्यों में उनके पिता मानसिंह की प्रशस्ति है और चौथे पद्य से सत्रहवें पद्य तक मानसिंह की उदारता दानशीलता युद्ध वीरता सौंदर्य आदि गुणों की अत्युक्तिपूर्ण वर्णना है।

प्राकृत अपभ्रंश

गउडवहो — वाक्पतिराज ने प्रस्तुत ग्रंथ में यशोवर्मा की प्रशस्ति तथा उनके युद्धों और विलास क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। रण प्रयाण के समय चारण-कवीन्द्रों के द्वारा यशोवर्मा की प्रशस्ति का जैसा उल्लेख प्रस्तुत ग्रंथ में मिलता है[2] रीतिकाव्य की प्रशस्तिपरक रचनाओं में उसकी अनुगूंज सुनी जा सकती है। रीतिकालीन कवियों ने उन्हीं प्रशस्ति वर्णन की रूढ़ियों का प्रयोग किया है जो प्रशस्तिपरक ऐतिहासिक काव्यों में पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रयुक्त किए गए हैं। गउडवहो में निबद्ध प्रशस्ति उस युग की काव्य प्रवृत्ति के द्योतक है जिसका आश्रय परवर्ती कवि चंद ने अपने ग्रंथ में पृथ्वीराज की प्रशस्तियों में लिया है। प्रस्तुत ग्रंथ में बीच-बीच में ऐसे स्थल प्रवृत्ति और परम्परा की तुलना के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें राजा के प्रताप सौभाग्य और गुणों का अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में वर्णन मिलता है।[3]

प्राकृत पैंगलम् — प्राकृतपैंगलम् में चण्डेश्वर काशिराज, राजा कर्ण और

---

१ यद्दोर्मण्डलकुण्डलीकृतधनुर्दण्डेन सिद्धाधिप-
क्रीतं वैरिकुलात् त्वया किल दलत्कुन्दावदातं यशः।
भ्रान्त्वा त्रीणि जगन्ति खेदविवशं तन्मालवीनां व्यधा-
दापाण्डौ स्तनमण्डले च धवले गण्डस्थले च स्थितिम्॥
—सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासनम् पा० ४ श्लोक १ तथा पा० १७३ श्लो० १४

२ गउडवहो श्लो० सं० २१२-१४

३ वही ६६५ ७३७ १०४ ४३ १ ६६-७२

हम्मीर आदि के प्रशस्तिपरक छंदों का संकलन मिलता है। उक्त राजाओं-सामन्तों की यश धवलिमा, शत्रुओं का भयभीत होना, सेना प्रस्थान और युद्ध वीरता का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने रीतिकालीन कवियों—भूषण, सूदन, सोमनाथ और लाल के प्रशस्तिकाव्य की प्रेरणा का निर्देश करते हुए लिखा है कि 'प्राकृत पैंगलम की वीरप्रशस्तियों में वे सभी रूढ़ियाँ दिखाई पड़ने लगती हैं जिनका परवर्ती विकास रासो काव्यों में तथा आगे चलकर भूषण, सूदन, लाल आदि कवियों की ब्रजभाषा रचनाओं में दिखाई पड़ता है।'[2]

हिन्दी प्रशस्तिपरक मुक्तकों का क्रमविकास

हिन्दी में प्रशस्तियाँ अधिकांशतः रासो ग्रंथों में हैं। इनमें उस प्रकार की चाटुकारिता और शरणकामना की वृत्ति नहीं दिखाई पड़ती जैसी रीतिकाव्य में मिलती है। आदिकालीन रासो ग्रंथों के नायक वास्तव में वीर योद्धा होते थे, साथ ही विलास वृत्ति भी उनमें पर्याप्त होती थी। वे अधिकांश युद्ध किसी रूपवती रमणी को हस्तगत करने के ही लिए करते थे। इसलिए इन ग्रंथों में शौर्य शृंगार का अद्भुत सम्मिलन दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य शुक्ल ने हिन्दी के आदिकाल के कवियों के विषय में लिखते हुए कहा है 'राजा भोज की सभा में खड़े होकर राजा की दानशीलता का लम्बा चौड़ा वर्णन करके लाखों रुपये पाने वाले कवियों का समय बीत चुका था। राजदरबारों में शास्त्रार्थों की वह धूम नहीं रह गई थी। पांडित्य के चमत्कार पर पुरस्कार का विधान भी ढीला पड़ गया था। उस समय तो जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु-कन्या-हरण आदि का अत्युक्तिपूर्ण आलाप करता था या रणक्षेत्र में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भरा करता था, वह सम्मान पाता था।'[3] यद्यपि शुक्लजी का कथन काफी हद तक सही है किन्तु पृथ्वीराज रासो के अद्भुतानन्द समय में निबद्ध दुर्गा केदार और चन्दवरदाई में काव्यप्रतिद्वंद्विता की घटना इस बात का प्रमाण है कि उस समय भी राजदरबारों में कवियों और भाटों में अवसर होड़ हुआ करती थी और उनका काव्य विषय शृंगार प्रधान ही होता था।

आदिकाल में प्रशस्तियों की परम्परा अधिकतर प्रबंध काव्यों या प्रबन्धात्मक मुक्तककाव्यों में पाई जाती है। ये प्रबंध-काव्य जैसा कि पहले कहा जा चुका है अधिकांशतः राजाश्रय में निर्मित हुए हैं। हिन्दी में भी संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश की काव्य

---

१ प्राकृत पैंगलम १।१२३, १।१०८ १।७७ १।८७ १।१९२ १।१९६ १।१४५ १।१४७ १।१५१ १।१८० २।१८३

२ डॉ शिवप्रसाद सिंह सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य पृ० ३७६

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३०

परम्परा के अनुसार राजाओं की कीर्ति को अमर बनाने के उद्देश्य से ही प्रशस्ति-काव्यों का निर्माण हुआ। प्रशस्तिपरक मुक्तकों की रचना अधिकांश चारण भाटों द्वारा हुई जो साहित्य की स्थायी निधि तो न बन सकी किन्तु उसने प्रशस्ति की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित अवश्य किया। आठवीं नवीं शताब्दी से ही राजदरबारों में चारण भाटों की स्थिति का पता चलता है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने कवि मुरारि के पद्य को उद्धृत करते हुए इस अनुमान की पुष्टि की है और लिखा है कि यदि मुरारि का स्थिति काल आठवीं नवीं शती मान लिया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि उस समय से लोक भाषा में प्रशस्तिगान करने वाले चारण भाटों को दरबारों में सम्मान मिलने लगा था। वस्तुतः चारणों की प्रशस्तियाँ संस्कृत प्राकृत में प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक चरित काव्यों का ही विकसित रूप हैं। इस प्रकार हिंदी में चारण भाटों की वृद्धि देखकर यह उक्ति सही लगती है कि ब्राह्मण के मुख की कविता कछु भाट लई कछु चारण लीन्हो।

इन भाटों और चारणों की परम्परा में पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंद वरदाई भी आते हैं। पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज की वीरता, दानशीलता युद्ध-कौशल, रण प्रस्थान नीति कुशलता आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस श्रेणी में चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध में रचित श्रीधर कवि कृत रणमल्ल छंद नल्लसिंह कृत विजयपाल रासो बीसलदेव रासो आल्हखंड आदि ग्रंथ उल्लेख्य हैं।

करणीदान के दोजन के तीन प्रसिद्ध ग्रंथ वरणाभरण श्रुतिभूषण और भूपभूषण में मूलतः प्रशस्तिपरक मुक्तकों से आपूर्ण अलंकारों के उदाहरण दिए गए हैं। हरिवंश राय के आश्रित हालराय ब्रह्मभट्ट के फुटकल पद अकबर के दरबारियों में व्यास कवि, राजा पृथ्वीराज गंग खानखाना आदि की रचनाएँ हिंदी प्रशस्ति धारा को समृद्ध करती हैं।

गंग कवि ने अकबर के अतिरिक्त जहाँगीर रहीम राजा मानसिंह बीरबल, दानियाल राजा रामदास राजा जगनाथ अमरराय दरायखाँ तुरानखाँ आदि की प्रशस्तियाँ निबद्ध की हैं। रीतिकालीन कवियों के अग्रज आचार्य केशवदास ने वीरसिंह और जहाँगीर की प्रशस्तियाँ की रचना बीरचरित और जहाँगीर जसचंद्रिका में की है। सम्भवतः उन ग्रंथों की प्रेरणा से पद्माकर ने हिम्मतबहादुर विरुदावली और प्रतापसिंह विरुदावली की रचना की।

भक्तिपरक मुक्तकों का नवविकास

रीतिकाल में शृंगार के बाद सबसे अधिक प्रशस्त और भक्ति सम्बन्धी मुक्तक मिलते हैं। प्रशस्ति मुक्तकों का विकास जिस प्रकार वैदिक नाराशंसी सूक्तों और दानस्तुतियों में होकर ऐतिहासिक अर्द्ध-ऐतिहासिक काव्य तथा भाट-चारणों के मौखिक और लिखित मुक्तकों में होता हुआ रीतिकाल में आया उसी प्रकार स्तव या भक्तिपरक मुक्तकों का भी विकास सूत्र वैदिक देवों की स्तुतियों में जोड़ा जाता है।

वैष्णव काव्याभिव्यक्ति की शृंगारी परिणति की चर्चा करते हुए दूसरे अध्याय मे दिखलाया जा चुका है कि किस प्रकार भक्ति की मूल भावना शक्ति और ऐश्वय के प्रति भय और त्राण की कामना स श्रद्धा के रूप म परिवर्तित होकर विकसित हुई। कमकाण्ड प्रधान धार्मिक कृत्यों के जंगल मे विचरती हुई भक्तिधारा हार्दिक और मानसिक आकर्षणों को केन्द्र बनाकर अपने जीवनप्रद प्रवाह से एक ओर मानव मन को आनन्दित करती हुई एव दूसरी ओर शरण कामना की परितृप्ति करती हुई दक्षिण स उत्तर की ओर आई। उसका यह आगमन विदेशी आक्रामकों से त्रस्त निराशाच्छन्न उत्तरी भारत के लिए बिजली की चमक की तरह आकस्मिक नहीं था अपितु वैदिक लौकिक साहित्य साधना का स्वाभाविक विकास था। इस धारा न आलवार, नामदेव, रामानन्द कबीर आदि संतो जयदेव विद्यापति, चण्डीदास, सूरदास तुलसीदास आदि सगुणोपासक भक्तो और कवियो को रससिक्त किया।

रीतिकाव्य म भक्तिपरक मुक्तक दो प्रकार के प्राप्त होते हैं एक म संतो की सी सुधारात्मक पाखण्ड विरोधी वाणी की अनुगूंज मिलती है और दूसरे मे आराध्य देवी-देवताओ की ऐश्वर्य-सम्पन्नता भक्तवत्सलता और अद्भुत शक्ति का निर्देश करते हुए अपने को दीन और अनाथ के रूप म चित्रित किया गया है।

आराध्य की विलास चेष्टाओ नखशिख और रूप माधुरी का वर्णन स्तोत्र साहित्य म पर्याप्त मात्रा म पाया जाता है। इन स्तोत्र मुक्तको का प्रारम्भ ऋग्वेद की उन स्तुतिपरक ऋचाओ स माना जा सकता है जिनम देवताओ की लोकोत्तर महत्ता और उनस लौकिक एव पारलौकिक सुख भोग की याचना प्रकट होती है। इन स्तोत्रो म आराध्यदेव के रूप मे ब्रह्मा विष्णु और महेश का स्तवन ब्रह्म के रूप म किया गया है। इनके साथ ही प्रकृति या माया का संयोग एक महत्त्वपूर्ण घटना है इसी आधार पर परवर्ती स्तोत्रो मे शिव के साथ शक्ति की भी उपासना होने लगी और बाद म इनका स्वतन्त्र विकास परामानशक्ति के रूप में हुआ।

इन स्तोत्रो का विकास प्रबन्ध और मुक्तक दोनो रूपो में हुआ। पौराणिक स्तोत्रो में शिव, विष्णु शक्ति आदि की उपासना विकसित हुई। सांसारिक यन्त्रणाओ स त्राण और अपवर्ग की सिद्धि के लिए अनेक भक्ति-भावित रचनाएँ हुइ जिनमें बाणभट्ट का चण्डीशतक मानतुंग का भक्तामर स्तोत्र मयूर का सूर्यशतक आदि उल्लेखनीय हैं।

इन स्तोत्रों में अनेक स्थानो पर काव्यात्मक उक्तियां, अलंकार और उक्तिवक्रता भी पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है।

जगद्गुरु शंकराचाय के नाम से भी अनेक स्तोत्र प्राप्त होते हैं जिनमें अलंकृत शैली में देवताओ की स्तुतियाँ निबद्ध हैं। लगता है विभिन्न शंकराचार्यो ने समय-समय पर इन स्तोत्रो की रचना की होगी। विष्णु पादादिकेशान्त वर्णन स्तोत्र में एक ओर भक्ति भाव और दूसरी ओर नखशिख के वर्णन की परम्परा मिलती है। सम्भवत इस स्तोत्र की रचना ईसा की ७-८वीं शती में हुई होगी।

शंकराचार्य विरचित भवान्याष्टक और आनन्द लहरी नामक स्तोत्र काव्योत्कर्ष

और सरस अलकृत शैली के लिए प्रसिद्ध हैं।

कुछ स्तोत्र ऐसे भी हैं जिन पर तान्त्रिक प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। दुर्वासा ऋषि प्रणीत 'ललितास्तवरत्न' और त्रिपुर महिम्नस्तोत्र इसी श्रेणी म आते हैं। इनम त्रिपुरसुन्दरी के रूप सौन्दय और वस्त्राभरण का अलकृत वणन किया गया है। देवी क ध्यान विषयक पद्यो म परवर्ती साहित्यिक नखशिख वणन की परम्परा के स्रोत ढूढे जा सकते हैं। लकेश्वर रावण के नाम पर प्रसिद्ध शिव ताण्डव स्तोत्र म आराध्य क सर्वांग सौन्दय का वणन है। प्रसाद गुणयुक्त पद्यो म शिव पावती की विलास-लीलाओ की भी इसम चर्चा मिलती है।

जनो द्वारा रचित तीर्थकरो की स्तुतिया छठी शता स चौदहवी शती तक पर्याप्त परिमाण मे मिलती है। इनम शब्द चमत्कार और उक्ति वक्रता की प्रवत्ति लक्षित होती है। यमक अनुप्रास और श्लेष का सुन्दर सयोजन अलकृत शैली की व्यापकता को घोषित करते हैं।

बौद्ध स्तोत्रो की रचना कनिष्क के राज्यकाल म प्रभूत परिमाण म हुई। मातचेता (मातचेट ?) और अश्वघोष के स्तोत्र इसी समय विनिर्मित हुए। काश्मीरी कवि सवज्ञमित्र ने बौद्ध देवी तारा की वदना म स्रग्धरा स्तोत्र की रचना की। काव्यात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि स उक्त ग्रथ का स्थान अप्रतिम है। इन स्तोत्रो म एक ओर अलकृत शैली का विकास और दूसरी ओर आराध्य क नखशिख चित्रण की वत्ति का आधिक्य लक्षित होता है।

पूववर्ती स्तोत्र साहित्य की प्रेरणा स हिन्दी म शिव विष्णु पावती, लक्ष्मी, चण्डी दुर्गा गगा यमुना कृष्ण राधा आदि अनक देवी देवताओ की स्तुतिया का मुक्तक पद्यो म निब धन किया गया है। प्राकृत पद्यो म भी अनक छद ऐस मिल हैं जिनम शिव[1] कृष्ण[2] उमा[3] चडी[4] और राम[5] की भक्ति प्रतिपादित है।

यहा भी यह ध्यान देन की बात है कि रीतिकाव्य म देवताओ क शृगारी रूप चित्रण म हाल की सतसई की उन गाथाओ का पर्याप्त प्रभाव माना जा सकता है जिनम पावती शकर,[6] गोपी कृष्ण[7] राधा कृष्ण[8] और लक्ष्मी-नारायण[9] की विलास-लीलाए

१ प्रा प १।१६५ २।६ २।१ २।२४ २।१४८ २।१५५ ४।२ १
२ वही १।२ ७ २।४६
३ वही २।८
४ वही २।२४ ६६ ७७
५ वही २।२११
६ हाल गाथासप्तशती १।१ ६६ ५।४८ ५५ ७।१०
७ वही २।१२ १४ २८
८ वही १।८६
९ वही २।५१

निबद्ध हैं। इसके साथ ही संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के उन ग्रंथों का भी स्मरण करना आवश्यक है जिनमें मंगलाचरण के श्लोकों में देवताओं के शृंगारी रूप को निबद्ध किया गया है। भक्तिपरक मुक्तकों को गीता के उपदेशों से पर्याप्त प्रेरणा मिली है। उसकी प्रसिद्धि प्राचीन काल में पाई जाती है। श्रीकृष्ण के दीन वत्सल, अशरण शरण और लोक रक्षक रूप की प्रतिष्ठा श्रीमदभगवत गीता में हुई। उसके आधार पर कवि अपनी दीन अवस्था का वर्णन करता हुआ अपने को पापियों में अग्रगण्य घोषित करता है और भगवान से शरण की याचना करता है। वह उन्हें अपने विरद की लाज रखने को विवश करता हुआ चुनौती देता है। इस धारा में भगवान के लोक मंगलकारी रूप की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है।

भक्तिपरक मुक्तकों में भगवन्नाम महिमा[1] अनन्य भक्ति हरिविमुख निंदा[2] और सत्संग महिमा[3] के साथ ज्ञान वैराग्य[4] का भी प्रतिपादन किया गया है।

यदि ध्यान से देखा जाय तो रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध दोनों प्रकार के कवियों ने भक्तिपरक रचनाएं पर्याप्त मात्रा में की हैं।[5]

नीतिपरक मुक्तकों का क्रमविकास

संस्कृत में नीति मुक्तकों का विशाल भांडार उपलब्ध होता है। इस प्रकार के मुक्तकों को सुविधा के लिए तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। पहली श्रेणी में अन्योक्ति मुक्तक आते हैं जिनमें भ्रमर, कोकिल काग वृक्ष आदि के व्याज से उपदेश दिए गए हैं। दूसरी श्रेणी में वे मुक्तक आते हैं जिनमें नीति या उपदेश की बातें सरल सीधी भाषा में कही गई हैं और तीसरी श्रेणी ऐसे मुक्तकों की है जिनमें संसार को माया मिथ्या सिद्ध करके सांसारिक भोगों की निंदा की गई है तथा त्याग-वैराग्य का उपदेश दिया गया है।

संस्कृत में भल्लट की अन्योक्तियां प्रसिद्ध हैं जिनमें प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक के रूप में चित्रित करके मानव जीवन के अनुभूत सत्यों को प्रकट किया गया है। ऐसी ही मार्मिक अन्योक्तियों का संग्रह ग्रंथ वीरेश्वर भट्ट कृत 'अन्योक्तिशतक'[6] है। इनमें कमल भ्रमर जुगनू चंदन, हाथी समुद्र चन्द्र कमलिनी, पवन, मेढक नदी कीर और काक आदि पर अन्योक्तियां निबद्ध हैं।[7] एक श्लोक में कवि लवंगलतिका से कहता है,

---

१ सूरसागर २।५ ८

२ वही २।६ १२

३ वही २।१ १६ सुनीय–राधामोहन नाव को जाहि न भावत नेह।
परियौ मुग हजार दस ताको आंखिन मेह॥ म म० ८

४ वही २।१७

५ बिहारी दो० म ४७५ ५३४ ५५२

६ अन्योक्तिशतक काव्यमाला पंचमगुच्छ नि० सा प्रेस बम्बई।

७ वही श्लो० २३ ३६ कमल २ ११ १७, २२ २४ ३७ भ्रमर ९ १० जुगनू १८ २० चंदन,

'हे लवगलतिके तुम मन में सताप न करो, लोकरीति बडी कठिन है। सारी रसज्ञता समाप्त हो गई कलाम्रों का भी अत हो गया। उस मृगाक्षी मालिन को छोडकर दूसरी कौन तुम्हारे गुणो को जानने वाली है।'[1] इस नली में नीति उपदेशपरक मुक्तकों की पर्याप्त रचना हुई। सामप्रभ की अन्योक्तियाँ भी भल्लट की तरह प्रसिद्ध हैं।

बौद्ध और जैन साहित्य में महापुरुषो म उत्पन्न और नीतिपरक उक्तियाँ पाई जाती है। इन अनुभवपूर्ण मुक्तको में स्वाभिमान त्याग, सहनशीलता, उदारता आदि सद्वृत्तियों और सज्जनो की प्रशसा के साथ असदवृत्तियो का त्याग और दुर्जनों की निन्दा के वर्णन मिलते है।

प्राकृतपगलम के स्फुट छदो म नीतिविषयक छद भी निबद्ध हैं। इनमे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि भारतीय ग्रन्थो म भी भक्ति प्रशस्ति और शृगार की तरह ज्ञान वैराग्य और नीतिपरक उक्तियो को स्थान स्थान पर निबद्ध की जाती थी।[2]

हिन्दी म भी नीति विषयक मुक्तको की परम्परा अक्षुण्ण रही है। आदिकाल और पूर्वमध्यकाल मे अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने अपने काव्यो म नीतिपरक छन्दो का निबन्धन किया है। इनमें कबीर तुलसीदास मलूकदास वृन्द आदि प्रसिद्धि प्राप्त कवि और सतो की गणना की जा सकती है। इनकी परम्परा अपभ्रश कवियो--जोइन्दु रामसिंह आदि से जोडी जा सकती है। रहीम के दोहो म जीवन का व्यापक और गहरी दृष्टि से देखने समझने का सकेत मिलता है। राजा टोडरमल नरहरि ब्रह्मभट्ट बीरबल गग आदि इसी श्रेणी में सिद्धहस्त कवि हैं।

रीतिकाल म बिहारी जैसे रीतिसिद्ध कवि और मतिराम, भिखारीदास एव पद्माकर जैसे रीतिबद्ध कवियो की रचनाम्रो मे नीतिपरक छद स्थान स्थान पर आए हैं।[3]

---

२५ हाथी २६ २८ समन्द २६ ३२ ३३ ६८ चन्द ३० कमलिनी ३४ पवन ३५ मडक ३८ नदी ५६ कीर ४ काक।

१ वही २१

२ प्रा प १।२ ■ स्वभाव की दुर्वारता २।२८ ५१ ५३ स्वाभाविक की स्वार्थपरता २।८३ असतीचरित २।८५ १४३ कीर्ति की स्थिरता २।१ १ विधि की प्रबलता २।१ ३ पाप से निवृत्ति २।१४६ परोपकार प्रशसा २।१६६ द्रव्य महिमा १।१६६ १।१७१ खल निन्दा।

३ बिहारी ४७६ ४८६ ५ २ ५१८ ५३२ ६३१ ६३३ ६३५ ६५४ ६५८ ६६६ ६८६ मतिराम मतिराम सतसई ६३ ६४ १६२ १८५ भिखारीदास का० नि ३।५२ ५३ ७।६ ८।४८ ५० ८।५२ ८।६२ ६८ ८।७ ८।७४ ८।७६ ८।८४ ८।८६ ८।९६ ६।२७ १२।११ १४ १२।२६ १२।३१ १३।८ १३।२६ १३।३१ १३।४६ १४।११ १४।१३ १४ १४।२६ २७ १५।६ १५।२८ २६ १५।३५ ३७ १५।४ ५१ १५।५३ ५४ १७।४३ ४४ १८।६ १ २१।३१ ३४ २३।६७ २ ७४ २ ७६ २४।६ २४।६ पद्माकर पद्माभरण २४, ८६ ६ ६२ ६ ४ १११ ११२ ११५ ११७ १५५ १६० १६६ १७१ १७३ १७४ १८१, २ ५ २०८ २१० २१७ २२८ २३० २३३ २५७ २६३

नाटक

संस्कृत के नाटकों में शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अच्छा चित्रण मिलता है। संस्कृत नाटकों की इसी रमणीयता को दृष्टि में रखकर शायद कहा जाता है कि काव्येषु नाटकं रम्यम् अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय होता है। इन नाटकों में प्रायः नायक नायिका के रूप लावण्य, नखशिख, हास-परिहास क्रीडा विनोद, मान मनुहार और प्रकृति की उद्दीपक पृष्ठभूमि में उनके संयोग सुख और विरह-वेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है। इन नाटकों की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में लक्षणों के उदाहरणस्वरूप नाटकों के भी श्लोकों को पर्याप्त मात्रा में उद्धृत किया जाने लगा। संस्कृत के महाकाव्यों की तरह नाटकों में भी वीर शृंगार और कहीं कहीं शांत रस का परिपाक दृष्टिगत होता है। परिमाण और गुण की दृष्टि से शृंगार प्रधान नाटक ही अधिक रचे गए।

रीतिकाव्य की वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से यदि इन नाटकों की विवेचना की जाय तो प्रायः साम्य दिखलाई देगा। उदाहरण के लिए कतिपय प्रसिद्ध नाटकों की चर्चा प्रासंगिक होगी।

स्वप्नवासवदत्ता—प्रस्तुत नाटक में भास कवि ने उदयन-कथा को बड़ी कुशलता से निबद्ध किया है। उदयन की प्रेयसी वासवदत्ता विरहावस्था में अपने को धिक्कारती हुई कहती है 'वह ही धन्य है जो प्रिय से वियुक्त होकर नहीं जीती। मैं प्राण त्याग नहीं कर पाती। आर्यपुत्र के दर्शन की लालसा से मैं जी रही हूँ।'[1] वियोग में पुनर्मिलन की आशा का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। रीतिकाव्य में तो इस आशा के सहारे नायिकाओं की विरह व्यथा का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए भी उसे जीवित रखा गया है।

कामदेव के पाँच बाणों की संख्या को लेकर रीति कवियों ने भी इसी भाव के वर्णन किए हैं जैसा भास ने उदयन के मुख से कहलाया है।[2] प्रसिद्ध पंचबाणों के अतिरिक्त छठे बाण की कल्पना बड़ी व्यंजक है। प्रस्तुत नाटक में वियोगी उदयन की स्मरणदशा,[3] स्वप्नदर्शन[4] आदि का परंपरित वर्णन प्राप्त होता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्—महाकवि कालिदास की प्रौढ़ प्रतिभा का जैसा निदर्शन प्रस्तुत नाटक में शृंगारी प्रसंगों के निरूपण में हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं। इसमें शकुन्तला की रूपशोभा[5], विलास चेष्टा[6] आदि के अंकन और उनके व्यापक प्रभाव के निरूपण में

1 स्वप्न (त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज १५ १९१५ ई) पृ २६
2 वही ४।१
3 वही ४।६ ५।५ ६ ६।१
4 वही ५।१०
5 अ० शा० (गुरुप्रसाद शास्त्री सम्पादित सं० १९९० वि०) १।१८ २२ ६।१५ १७
6 वही १।२४ २६ २।२ ३ ३।१८

कवि को पूर्ण सफलता मिली है। नायिका के सौन्दर्यातिशय का निदर्शन करने की रूढ़ परिपाटी का प्राथयण दृष्टिगोचर होता है।[1] वहुत सन्दर्भों की चर्चा करते हुए भी ऐसी उद्भावनाओं की ओर संकेत किया गया है।

श्रृंगारार राजा दुष्यन्त की मानसिक स्थिति[2] उसके पूर्वराग[3] शकुन्तला के रागाविष्ट चित्त की वृत्तियों का उद्घाटन मुग्धा की लज्जा विविविध विलास चेष्टाओं का चित्रण[4] राजा की विरहावस्था,[5] शकुन्तला की विरह दशा[6] उत्कण्ठापूर्ण उसका प्रेम पत्र लेखन[7] संयोग में लज्जा भययुक्त उसकी चेष्टाएँ[8] प्रिया स्पर्श-स्पन्द, पुनर्मिलन जन्य आनन्द[9] और वियोगी राजा का प्रिया की चित्र रचना द्वारा मनो विनोद[10] आदि परवर्ती श्रृंगार काव्यों के प्रेरणा-स्रोत बने इसमें सन्देह नहीं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्य साहित्य को कालिदास की रचनाओं ने पर्याप्त प्रभावित किया और कालान्तर में उनकी अमिट छाप हिन्दी की रीति कविता के मुक्तक छन्दों पर भी पड़ी। इसकी पुष्टि साहित्यिक परम्परा के अध्ययन से सहज ही हो जाती है। कालिदासीय उपमा की प्रसिद्धि से रीतिकालीन कवि भी अपरिचित न रहे होंगे परिणामत उनके अप्रस्तुत विधान में भी कालिदास के साहित्य की प्रेरणा कम महत्व पूर्ण नहीं मानी जा सकती।

विक्रमोर्वशीय—प्रस्तुत नाटक में महाकवि कालिदास ने पुरूरवा और उर्वशी के प्रणय का वर्णन किया है। इसमें स्पर्शजन्य सात्विक भाव रोमांच, अभिलाष, रूपासक्ति सर्वातिशायी रूप शोभा, दक्षिण-पवन की नर्म क्रीड़ा प्रमदवन की उद्दीपक शोभा वसन्तश्री की वय सन्धि आदि के वर्णन में श्रृंगार और उसके विविध अंगों का सम्यक निरूपण किया गया है।[11] राजा पुरूरवा की रागावस्था के निरूपण के साथ

---

१ चित्ते निवेश्य परिकल्पित सत्त्वयोगान्
रूपोच्चयेन विधिना विहिता कृशांगी।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥ अ शा २।९

२ वही १।१६ २।१८ ,।२
३ वही २।१ ३
४ वही २।१ ३
५ वही ।। ६ ।१५ ३।२२ ६।५ ६
६ वही ३।१ १८ ४ १२५ १३८
७ वही ३।१६
८ वही ४० १४६ ५२
९ वही ३।३३
१ वही ६।१५ १९ २४
११ कालिदास विक्रमोर्वशीय (चौ स० सिरीज १९५३ ई०) १।११ १।१८ ३।२७, २।१ ,
४।१६ १७ २२ ३० ३४

उद्यान म छिपकर उसकी दशा का निरीक्षण करने वाली उवशी क भी समानुराग का वणन किया गया है। उवशी के प्रणय पत्र लेखन और पुरुरवा के उस पत्र की प्राप्ति के कारण उद्दीप्त भाव का भी वणन परपरित शली म किया गया है।[1] परवर्ती नाटका, मुख्यरूप से नाटिकाग्रा म एसे प्रसग कई बार वर्णित हुए हैं।

राजा पुरुरवा की महिषी औशीनरी का उवशी के प्रणय-पत्र को प्राप्त करना, राजा पर कुपित होना और राजा का उसके चरणा पर गिरकर क्षमा माँगना उस प्रसन्न करना[2] आदि का अय नाटिकाग्रा क धीर ललित नायका और उनकी प्रमुख रानिया के वणना म रूढिवत् प्रयोग किया गया है।

राजा की विरह अवस्था[3] उवशी का अभिसार[4] मान[5] एव पुरुरवा का अपने वि.पक के साथ वार्तालाप का वणन[6] कवि कालिदास की शृगारी प्रसगा के निरूपण की प्रतिभा का द्योतक है।

जसा कि पहले वाल्मीकि रामायण मे विरही राम को लतागुल्म से सीता के विषय म पूछते हुए चित्रित किया गया है उसी प्रकार विरही पुरुरवा भी मयूर नीलकण्ठ कोयल, हस भ्रमर गजराज पवतराज एव हरिणा से अपनी प्रेयसी का पता पूछता है। इसक साथ ही वह उवशी क अपूव सौदय का भी सकेत करता चलता है। राजा क नदी का प्रणय कुपिता उवशी मानकर उसके मनुहार और लता का कलहा तरिता उवशी मानकर उसक वणन पर कवि ने जमे चित्र अ कित किए है[7] वे रीति का य क कवियो के प्रेरणा स्रोत माने जा सकते हैं। वियोग के पश्चात् सयोग सुख की तीव्रता का भी वणन किया गया है।[8]

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक म कालिदास ने शृगार के दोना सयोग और वियोग पक्षा का सफल अ कन किया है। यद्यपि कवि न उवशी की रूप शोभा के वणन मे अनेक नवीन उदभावनाएँ की है फिर भी अधिकाश उपमान परम्परित और रूढ हैं।[1]

मालविकाग्निमित्र—मालविका और अग्निमित्र की प्रणय कथा बहुत कुछ भास की वासवदत्ता और उदयन की कथा स मिलती-जुलती है। विदिशा नरेश अग्निमित्र मालविका के नृत्य को देखकर उसकी प्रशसा करता है। वह उसकी विलास

१ कलिदास विक्रमावशीस० मिराज १९५८ ई०) २।१२ १४
२ वही पृ ८४ ८६ २।२१
३ वही ३।४ पृ १४३
४ वही प १ ७
५ वही पृ १३६
६ वहा ३।१ ११
७ वही ४।२० २१ २४ २५ ३१ ३३ ३६ ४७ ४।४२ ४८ ४६ ४६ ५१ ५८ ६०
८ वही ४।४२ ५५ ४।६६
९ वही ४।६६
१ वही ४।२२ ३० २ ४

चेष्टाओं से आकृष्ट हो जाता है।[1] इस प्रसंग में कवि ने राजा और मालविका के पूर्वानुराग,[2] और मन्मथ नेत्रों और कामदेव के प्रति विरही के उपालंभ[3] और मलयानिल वसंत का उद्दीपक रूप,[4] रानी इरावती का ईर्ष्या मान[5] मालविका का चित्र विनोद उसकी लज्जाशीलता,[6] मान मनुहार,[7] रतिभय[8] और राजा अग्निमित्र का मानवती रानी इरावती को प्रसन्न करने का प्रयत्न[9] वर्णित है।

कालिदास के प्रस्तुत नाटक का प्रभाव परवर्ती नाटक नाटिकाओं पर पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

रत्नावली— प्रस्तुत नाटिका में भी हर्षदेव ने सामंती वातावरण में अंतःपुर के प्रणय-व्यापार का सफलतापूर्वक अंकन किया है। यद्यपि रत्नावली भी स्वप्नवासवदत्ता की तरह उदयन कथा पर आधृत है किन्तु इसमें शृंगारात्मक स्थलों की पूर्ण विवृति प्राप्त होती है।

इसमें वसंत का उद्दीपक प्रभाव,[10] वासवदत्ता की सुन्दरता,[11] सागरिका का पूर्वानुराग,[12] सागरिका सौन्दर्य,[13] प्रणय मान,[14] खंडिता वासवदत्ता का प्रसादन,[15] उदयन की विरहावस्था,[16] प्रथम समागम, प्रिया की प्रतीक्षा, चन्द्र का उद्दीपकत्व, विप्रलब्धा सागरिका का अनुताप, वासवदत्ता का गुरुमान,[17] आदि के वर्णन में संयोग वियोग के वर्णन की रूढ़ियों का पूर्ण पालन किया गया है।

प्रियदर्शिका—इस नाटिका की भी वही कथावस्तु है जो रत्नावली की है। अंतर केवल नायिकाओं के नाम में है। वहां सागरिका है तो यहां आरण्यका (प्रिय

---

१ कालिदास मालविकाग्निमित्र (चौ. सं. सिरीज १९५१ ई०) २।२४ २।६ ४।१
२ वही २।११ पृ० ८४
३ वही ३।१ २ एवं पृ. १०१ १०३
४ वही ३।४ ३।८-६
५ वही ४ १२६ १३१ ३४
६ वही पृ० १६३ एवं ४।८
७ वही ४।६ १०
८ वही ४।१३ १४
६ वही पृ० १८४ ८६
१० श्रीहर्ष रत्नावली (नि. सा. प्रेस बम्बई) १।१ १८
११ वही १।१६
१२ वही पृ. ३१ ३४ एवं २।१
१३ वही २।८ १४ २।१७
१४ वही २।१६
१५ वही २।१६
१६ वही ३।३ ४।३
१७ वही ३।४७ ३।६ १४ ४।१

दर्शिका) । इनमे आरण्यका और उदयन का प्रथम मिलन एक उद्यान मे होता है। कालिदास के दुष्यन्त की तरह यहा राजा उदयन लतान्तराल से नायिका को देखकर उसके सौन्दर्य की प्रशसा करता है। शकुन्तला की भाति प्रियदर्शिका को भी भ्रमर समूह उद्विग्न करते हैं।[1] इसमे भी रत्नावली नाटिका की तरह, नायक और नायिका के पूर्वानुराग,[2] गुप्त मिलन वासवदत्ता के ईर्ष्या मान[3] मनुहार[4] और अन्त मे रत्नावली की ही भाति वासवदत्ता का प्रसन्न होकर प्रियदर्शिका का हाथ राजा को सौंपने का वर्णन किया गया है।

नागानन्द—त्यागवीर जीमूतवाहन की कथा यद्यपि शान्त पर्यवसायी है फिर भी श्री हर्षदेव ने प्रस्तुत नाटक के प्रथम तीन अको मे जीमूतवाहन और मलयवती की प्रणय कथा का वर्णन किया है।

प्रस्तुत नाटक मे जीमूतवाहन के प्रति आकृष्ट मलयवती का गौरीपूजन और वर प्राप्ति[5] पूर्वानुराग[6] जीमूतवाहन की विरह-व्यथा[7] मलयवती के कोमल अगो की प्रशसा[8] मलयवती का मुखालय सन्ताप-शमन उपचार और उसकी मुख शोभा[9] के साथ प्रकृति का उद्दीपक वर्णन भी परम्परित शैली मे किया गया है।[11]

श्री हर्षदेव की रचनाओ के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वे कोमल प्रणय के कुशल शिल्पी है। कही कही राजमहलो के आतरिक गुप्त प्रणय लीलाओ के चित्रण मे रीतियुगीन सामन्तो के अन्त पुर का सा चित्र उपस्थित कर दिया है। इनका उद्यन नागरक वृत्ति का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि इन नाटको मे प्रेमाख्यानक काव्य के बीज सुरक्षित हैं पर इनमे उन साहसिक रोमाचक घटनाओ का अभाव लक्षित होता है जिनका परवर्ती हिन्दी प्रेमाख्यानको मे विकास हुआ है।

मालतीमाधव—भवभूति का यह प्रकरण मालती और माधव की प्रणय कथा पर आधृत है। इसमे शृगार प्रधान क्रिया कलापो और हाव भावो का सुन्दर वर्णन मिलता है।

---

१ श्रीहर्षदेव प्रियदर्शिका (नि० सा प्रेस बम्बई) २।७ ८
२ वही प १६ २३
३ वही ३।१ १४ ४।३
४ वही ४।१
५ श्रीहर्षदेव नागानन्द १।१४
६ वही पृ ६ २८ ४४
७ वही २।२ पृ० ४६ २।६ पृ० ५२
८ वही २।४ तुलनीय कु स २ मालवि ५।१२ अमरु ४१
९ वही ३।६
१० वही ३।१० ११ १३
११ वही ४।८

माधव के पूर्वानुराग[1] मालती के सौंदर्य[2] प्रथम दर्शनजन्य प्रभाव[3] विरह विह्वलता,[4] उद्दीपक उद्यान-वायु[5] मकरंद[6] और मन्मथ-लीला की विरहावस्था[7] समागम कालिक नायक नायिका की चेष्टाओं[8] विवाह के मंगल-गान[9] शृंगार वर्णन आदि का परम्परित वर्णन प्रस्तुत नाटक में भी प्राप्त होता है।

हनुमन्नाटक— रीतिकाव्य में शृंगार प्रधान प्रवृत्ति को प्रभावित करने में संस्कृत के जिन प्रमुख नाटकों की चर्चा की जाती है उनमें हनुमन्नाटक या महानाटक का स्थान प्रमुखतम है। यद्यपि प्रस्तुत नाटक में वीररस मुख्य है परन्तु कवि को जहाँ कहीं भी शृंगारिक प्रसंगों के वर्णन का अवसर मिला है उसने पूरी तन्मयता दिखलाई है।

हनुमन्नाटक का द्वितीय अंक दाम्पत्य जीवन के शृंगारी चित्रों से परिपूर्ण है। चन्द्रोदय होने पर मानिनियों के मान भंग का वर्णन काव्य रूढ़ि है। कवि ने मनोरम शैली में इसका वर्णन करते हुए लिखा है आज भी उत्तुंग स्तन शिखरों से युक्त हृदय वाली रमणियों में मान रहना चाहता है धिक्कार है। वह (चन्द्र) अपनी दूर तक फैलने वाली किरणों से प्रफुल्ल कुमुद समूह में बन्द रहने वाले भ्रमरों को निकाल रहा है जैसे सफेद कोष से मानो तलवार निकाल रहा हो।[10] कहीं-कहीं प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण देखकर महाकवि कालिदास की वर्णन शैली याद हो आती है।[11]

इसी प्रसंग में राम और सीता के सम्भोग शृंगार के अन्तर्गत सात्विक और संचारी भावों प्रणय मान आलिंगन चुम्बन अधरपान आदि का वर्णन कामशास्त्रीय मर्यादा के अनुसार किया गया है।[12] राम और सीता के उद्दाम सम्भोग क्रीडा का कवि

१ मालतीमाधव (चौ स० सिरीज १६५४ ई) १।१८ २०
२ वही १।२५ १।३
३ वही १।२७ २६ ३।१६ ४।२
४ वही १।२१ ३५ प ६२ ६७ १।२७ १।४१ प ६३ ६४ २।१४ ३।१३ ५ ३।६ १ प १४५ ८७ ६।१७ २३ ६।४६ ४८
५ वही प १३ ।१२
६ वही ८।८ ५।८ १ प ३२४ ३
७ वही ७।२ ८।१ ३
८ वही
९ वही ६।२७ २६ ३ ८४
१० अद्यापि स्तनतु मशैलशिखरे सीमन्तिनीनां हृदि
स्थातु वाञ्छति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहित ।
उद्यद्दूरतरप्रसारितकर कर्षत्यसौ तत्क्षणा
त्फुल्लत्कैरवकोशनिःसरदलिश्रेणी कृपाण शशी ॥ हनु २।५
११ हनु २।६
१२ वही २।१० १८ द्रष्टव्य कामसूत्र २।३।६ ७

ने वैविध्यपूर्ण वर्णन किया है।[1]

परिपुष्ट प्रेम की भूमिका प्रस्तुत करने के अनन्तर प्रस्तुत नाटक के पंचम अंक में अपहृता सीता के वियोग में राम की मार्मिक व्यथा का सफल अंकन प्राप्त होता है।[2] सीता का संदेश लेकर लौटे हुए हनुमान जिस प्रकार सीता की वियोग व्यथा का वर्णन करते हैं इस प्रकार के वर्णन रीतिकाव्य की दूतियाँ भी करती हुई पाई जाती हैं।[3]

कर्पूरमंजरी—प्राकृत के इस सुप्रसिद्ध सट्टक में शृंगार का क्रमश: परिपाक दृष्टिगत होता है।

प्राकृत भाषा में निबद्ध प्राप्त अप्राप्त अन्य सट्टक विलासवती चंद्रलेहा आनन्दसुंदरी और शृंगारमंजरी में भी लगभग कर्पूरमंजरी की ही शैली और काव्य वस्तु का आश्रयण किया गया होगा ऐसा अनुमान है।

सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर ने प्रस्तुत सट्टक में १४४ गाथाओं में वसंत चन्द्रोदय कर्पूरमंजरी की रूप शोभा यौवन विलास चेष्टाओं और विरह-ताप का वर्णन किया है।

वसंत ऋतु में मानिनी को शिक्षा देती हुई सखी की उक्ति—'मान छोड़ो प्रियजनों को प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखो पीनस्तना से युक्त यह यौवन केवल पांच दस दिन तक ही रहने वाला है। कोकिल की मधुर कूक के द्वारा चैत्र महोत्सव कामदेव की सर्वव्यापी आज्ञा को घोषित कर रहा है।'[4]—रीतिकाव्य की सखी की उक्तियों से बहुत अंशों में मिलती जुलती है। इसी प्रकार प्रकृति के अनेक उद्दीपक चित्र इसमें प्राप्त होते हैं।[5]

सद्य स्नाता[6] रूप लावण्य[7] कटि की क्षीणता, जघाओं और नेत्रों की विशालता एवं उनके व्यापक प्रभाव[8] पूर्वराग[9] वियोग की स्थिति[10] दोलाक्रीड़ा[11] उद्दीपक प्रकृति[12] आदि का वर्णन परंपरित शैली में किया गया है।

चंद्रलेहा—इसमें कवि रुद्रदास (१६६० ई०) ने मानवेद और चन्द्रलेखा के प्रणय-व्यापार का अलंकृत शैली में वर्णन किया है। इसी शैली में १८वीं शताब्दी के

---

१ हनु० २।२० २८
२ वही ५।५ १२ १८ २० २२ २६
३ वही ५।४
४ राजशेखर कर्पूरमंजरी १।२८
५ वही १।२० २।२
६ वही १।२६ १।२८ २।२४
७ वही १।२६ ३१ ३५ ३६ २३ २६ २७ ४१ ३।१५ १६
८ वही १।३२ ४ ३।१६
९ वही २।२०
१० वही २।४५ ६।११ २६
११ वही २।५० ३७
१२ वही ३।२५ ३२ ४।१६

कवि विश्वेश्वर ने 'शृंगारमंजरी' की रचना की। इस सन्दर्भ में १४वीं शताब्दी के कवि प्रसन्नचन्द्र की 'रम्भामंजरी' का भी उल्लेख आवश्यक है।

प्राकृत के इन सट्टकों में शृंगार रस की प्रधानता यह द्योतित करती है कि नाटकों में भी इस रस के विविध पक्षों का गम्भीर विनियोग किया जाता रहा है। रीतिकाव्य की प्रेरणा देने में इन सट्टकों का भी महत्त्व संस्कृत नाटकों, नाटिकाओं की भांति अक्षुण्ण है।

काव्य की एक और विधा चम्पू में भी शृंगार निरूपण पूरी विशिष्टता के साथ प्राप्त होता है। महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक एवं नाटक की भांति चम्पुओं ने भी शृंगार परंपरा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

चम्पू काव्य

संस्कृत का चम्पू काव्य अत्यन्त समृद्ध है। इसमें अनेक रसों का सुंदर संयोजन किया गया है। इन चम्पुओं में गद्य और पद्य की अलंकृत और प्रवाहमयी शैली के द्वारा वर्ण्य वस्तु को बड़े कौशल से उपस्थित किया गया है। चम्पू काव्यों का निर्माण ईसा की प्रथम शताब्दी से ही होने लगा था। बौद्ध जातकों में इस शैली का प्रचुर प्रयोग दृष्टिगत होता है। जातक माला तथा हरिषेण की प्रशस्ति में गद्य-पद्य मय शैली का प्रयोग मिलता है। गुप्तकाल के शिलालेखों में चम्पू काव्य की रचना का उल्लेख लगभग चतुर्थ शताब्दी से होना लिखा हुआ है। किंतु काव्यशास्त्र में वर्णित चम्पू काव्य के संपूर्ण लक्षणों से युक्त ग्रंथों का निर्माण लगभग दसवीं शताब्दी से उपलब्ध होता है।[1] इनमें जैनाचार्य हरिश्चन्द्र का जीवन्धर चम्पू, सोमदेव का 'यशस्तिलक चम्पू', भोजराज (११वीं शती) का रामायणचम्पू, अनन्तभट्ट का भारतचम्पू (१५वीं शती) और जीवगोस्वामी (१६वीं शती) का 'गोपालचम्पू' मुख्य हैं।

यहां प्रत्येक चम्पू काव्य के शृंगार प्रधान अंशों का विवेचन संभव नहीं। प्रायः सभी चम्पू काव्यों में अलंकृत शैली का प्रयोग किया गया है। महाकाव्यों की भांति इनमें भी शृंगार प्रमुख रस के रूप में गृहीत हुआ है। यहां उदाहरण के लिए कतिपय चम्पू काव्यों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

नल चम्पू—प्रस्तुत चम्पू को १०वीं शती के त्रिविक्रम भट्ट ने नल दमयन्ती की प्रणय-कथा के आधार पर विनिर्मित किया। इस काव्य में नल और दमयन्ती के रूप आदि का वर्णन परंपरा युक्त शैली में किया गया है।

नख शिख और सौन्दर्य वर्णन में कवि ने बाण और दण्डी की अलंकृत शैली को अपनाया है। उपमान प्रायः परंपरित ही हैं।[2] प्रकृति वर्णन में वस्त्यनुप्रास एवं विरोधाभास का जैसा संयोजन त्रिविक्रम भट्ट ने किया है उससे बाण की परंपरा को आगे बढ़ाने

---

१ वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६१ ११

२ नलचम्पू (नि० सा० प्रेस, बम्बई १९ ३ ई०) उच्छ्वास १ पृ० ३४ च १।२६ २८

का श्लाघ्य प्रयत्न माना जा सकता है। रीतिकाव्य के प्रथम आचार्य केशवदास के काव्य वर्णना में ऐसे अलंकृत प्रयोग देखे जा सकते है।[1]

इसमें नल का पूर्वानुराग,[2] दमयन्ती के रूप यौवन,[3] वय सन्धि[4] आदि के वर्णन परंपरित और चमत्कारपूर्ण है। प्रथम दर्शन में भावाकुल प्रणयी युग्म के आश्चर्य, हर्ष, लज्जा, औत्सुक्यादि कई भावों का कुशल चित्रण कवि के अनुभाव विधान के नैपुण्य का द्योतित करते हैं।[5] ऐसे अनुभावों का अंकन रीतिकालीन कवि बिहारी की विशेषता मानी जाती है। कविवर त्रिविक्रम भट्ट ने मुद्रा अलंकार का अनेक स्थलों पर सफल प्रयोग किया है। ऐसे स्थल उनकी अलंकृत शैली के अच्छे उदाहरण हैं।

दमयन्ती की हृदय स्थित नल के प्रति वही स्वाभाविक और सहज उक्तियां स्वच्छन्द धारा के रीतिकालीन कवि घनानन्द की ऐसी ही अनेक उक्तियों की याद दिलाती हैं।[6] दमयन्ती प्रिय मिलन के उपाय की चिंता करती हुई अपनी अभिलाषा प्रकट करती है कि यदि ब्रह्मा ने उसे भी पक्षी बनाया होता तो उड़कर प्रिय मुख देख लेती। ऐसे अभिलाष प्रकाशन लोक गीतों और कलागीतों में बहुतायत में पाए जाते हैं। दमयन्ती की विरह अवस्था उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति का वर्णन अलंकृत शैली में किया गया है। कवि ने इस सन्दर्भ में भी परंपरा का पूरा निर्वाह किया है।[8]

त्रिविक्रम ने किरात कामिनियों के सौन्दर्य जल क्रीड़ा एवं विलास चेष्टाओं का भी वर्णन किया है।[9] कामदेव की शक्तिमत्ता का वर्णन करते हुए नल की उक्ति 'तरुणियों के मध्यभाग में त्रिवलियों के तीन पथ में और विशाल कुचरूपी चौराहे पर तनिक भी स्खलित होने वाले मनुष्य को मदन पिशाच छल लेता है।' बिहारी की उक्त से काफी साम्य रखती है।[10] दमयन्ती के प्रणय पत्र को प्राप्त करने वाले नल की चेष्टाओं का जैसा वर्णन कवि ने किया है रीतिकाव्य में प्रिय का पत्र या उसका कोई चिह्न प्राप्त करने वाली नायिका की चेष्टाओं का भी ऐसा ही वर्णन पाया जाता है।[11]

इन स्थलों के अतिरिक्त किन्नर मिथुन का नल से दमयन्ती की विरहदशा का

---

१ नलचम्पू उच्छ्वास १ पृ ५२ तुलनीय–केशवदास, कविप्रिया ७।३२ एवं नलचम्पू पृ ४२ ख घ
२ वही १।६३ ६४
३ वही उच्छ्वास २ पृ० ५८ ग ३।२६ उच्छ्वास ३ पृ ८६ क
४ वही ३।२६ ३२
५ वही उच्छ्वास ४ पृ० ६ ग पृ० ९३ ग
६ वही उच्छ्वास ५ पृ० १२२ २३ क
७ वही उच्छ्वास ५ श्लो० २४
८ वही उ० ५ पृ० १२८ क १ १३१ क-ख ५।१६ २१ पृ० १३८ क घ पृ १८३ क ग
९ वही उ ८ पृ० १८१ ८२ ८।५७ ५।८० ६२
१० वही ५।६७ तुलनीय बिहारी दो १६८
११ वही उ ६ पृ १७१ क तुलनीय बिहारी दो० ७६

निवेदन[1] ग्राम्य वधुओं का सहज सौन्दर्य और उनकी विलास चेष्टाएँ[2] कुण्डिनपुर में राजा नल के अंतःपुर का वर्णन[3] प्रथम समागम के समय दमयन्ती की लज्जामिश्रित चेष्टाएँ[4] आदि बड़ी कुशलता से वर्णित हैं। इनके साक्ष्य पर यह कहा जा सकता है कि रीतिकाव्य को प्रेरणा प्रदान करने में तथा शृंगारपरक वर्णन की परंपरा को विकसित करने में नलचम्पू का योग महत्वपूर्ण है।

जीवंधर चम्पू—कवि हरिश्चन्द्र का जीवंधर चम्पू जैन-साहित्य की अनुपम कृति है। यद्यपि यह काव्य शान्त पर्यवसायी है जैसा कि जैनियों के काव्य पाये जाते हैं, किन्तु इसका अधिकांश कलेवर शृंगारी वर्णनों से आपूर्ण है। सुललित पदावली की तुलना बाणभट्ट एवं दण्डी की पदावलियों से की जा सकती है।

प्रस्तुत चम्पू में जीवंधर के अनेक विवाहों का वर्णन है। प्रत्येक विवाह का कारण नायिका का रूप लावण्य है जिस पर नायक न्योछावर हो जाता है किंतु थोड़े समय के सहवास और क्रीड़ा विलास के उपरान्त वह एक रमणी को छोड़ देशान्तर भ्रमण करने को निकल पड़ता है। अन्यत्र जाकर फिर दूसरी रमणी से विवाह करता है। इसमें पुरुष की रूप-लोभी वृत्ति का अच्छा परिचय मिलता है साथ ही रासोकार चन्दवरदायी की तरह हरिश्चन्द्र को भी अनेक रमणियों के रूप चित्रण और विलास क्रीड़ाओं के वर्णन का अवसर मिल जाता है।

इसमें गोविंदा, गन्धर्वदत्ता, वसंतश्री, गुणमाला, पद्मा, क्षेमश्री, कनकलतिका और सुरमंजरी आदि की रूप शोभा एवं विलास चेष्टाओं का वर्णन परंपरायुक्त शैली में किया गया है।[5] कवि की उत्प्रेक्षाएँ तो कुछ अंशों में परंपरायुक्त भी हैं किंतु उपमान अधिकांश रूढ़ हैं। समग्र रूप से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि कवि ने रूप वर्णन को विशेष विस्तार दिया है।

संयोग और वियोग दोनों का वर्णन साथ-साथ होता चला है। एक रमणी से संयोग तो दूसरी से वियोग। संयोग के अंतर्गत वसंतोत्सव, सुरभि, उद्यान क्रीड़ा, जलक्रीड़ा आदि का परंपरित वर्णन पाया जाता है।[6]

वियोग के अंतर्गत कामदेव, प्राण और प्रिय के प्रति विरहिणी के उपालंभ, संदेश प्रेषण, विकलता आदि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।[7]

---

१ नलचम्पू ६।२२ २३

२ वही ७।६७ ७

३ वही उ ७ प २१० ११ व ७।२० २२ पृ २१८ क

४ वही ७। ७-४४

५ हरिश्चन्द्र जीवंधर चम्पू (भारतीय ज्ञानपीठ काशी सन १८३६) लम्भ २ ■ २४ ३५ ३।२० ३० ४२ ७ ४।२ ३ ४।२६ ५।३५ ४६ ६।० ३२ ७।२४, ८।३१ १०।३

६ वही लम्भ ।७० ४।७ = ५।१७ २३

७ वही, ४।३१ ३२ ३५ ७।१ १ ।३

इस वर्णन में अलंकृत शब्दों का प्रयोग निरंतर बढ़ने वाली चमत्कार प्रधान काव्य-परंपरा की ओर संकेत करता है।

संस्कृत गद्य

रीतिकाव्य की अलंकृत शृंगारी अभिव्यक्तियों के प्रांकुर संस्कृत की उन गद्य कृतियों में ढूंढे जा सकते हैं जिनमें पद पद पर श्लेष और नाद सौन्दर्य का सयोजन प्राप्त होता है। संस्कृत भाषा की कथा आख्यायिकाओं में अधिकांश नायक नायिका के वश जन्म, यौवनावस्था और विवाह के पूर्व या पश्चात् सयोग वियोग आदि का वर्णन परंपरित शैली में पाया जाता है। शृंगारी प्रसंगों की सम्यक् सयोजना प्राय सभी प्रेमाख्यानको में पाई जाती है।

भारतीय प्रेमाख्यानक की मूल धारा की चर्चा करते हुए प० कृष्णापति त्रिपाठी ने ऋग्वेद के पुरुरवा उर्वशी के सवाद-सूक्तों की ओर सकेत किया है। उक्त सवादसूक्त में जिसकी प्रेमसी दिव्य अप्सरा और नायक मानव है—इतनी ही प्रेमकथा का सूक्ष्म सकेत मिलता है। परन्तु शतपथब्राह्मण में भारत की इस अतिप्राचीन प्रेमगाथा का वर्णन पुन मिल जाता है। ऋग्वेदोत्तर साहित्य में यह आख्यानक कुछ विस्तार के साथ मिलता है।[1] त्रिपाठीजी ने लौकिक साहित्य से उसकी कड़ी जोड़ते हुए लिखा है, यह कथा कदाचित् अत्यन्त प्रसिद्ध लोकाख्यानक होने से ही ऋग्वेद में और तदुत्तरवर्ती वाङ्मय में बार बार सूचित होती रही। ...सबसे विशिष्ट और कलात्मक रूप इसका महाकवि कालिदास के विश्वविख्यात नाटक विक्रमोर्वशीय में मिलता है जहाँ यद्यपि मूल प्रेरणा ऋग्वेद और शतपथब्राह्मण से ही प्राप्त जान पड़ती है तथापि उसका मुख्य आधार महाभारत है।'[2] उक्त सदर्भ से यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि प्राचीनकाल से अनेक प्रेमाख्यानक काव्य-लोक में प्रचलित रहे होंगे जिनके प्रभाव से परवर्ती काव्य-साहित्य निर्मित और समृद्ध हुआ। त्रिपाठीजी ने नल दमयन्ती और उदयन की कथा के भी लोकाश्रित होने की ओर सकेत करते हुए लिखा है 'यह भी जान पड़ता है कि महाभारत के नलोपाख्यान से गृहीत यह कथानक सभवत, उसी प्रकार ग्राम कथा या जन कथा हो गया था जिस प्रकार उदयन की नायिकाश्रित गाथा ग्राम कथा हो चुकी थी और जिसके लिए कालिदास को उदयनकथाकोविद ग्रामवृद्धों की चर्चा करनी पड़ी थी।'[3]

प्रस्तुत अध्याय में नल-दमयन्ती की प्रणय-गाथा पर आधृत श्रीहर्ष के नैषध महाकाव्य और त्रिविक्रम के नलचम्पू की चर्चा पहले की जा चुकी है साथ ही उदयन कथा पर आधृत भास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता, श्रीहर्षदेव की प्रसिद्ध नाटिका रत्नावली, और प्रियदर्शिका का शृंगार और उसके विविध पक्षों की वर्णन परंपरा के विकास

---

१ प० कृष्णापति त्रिपाठी रसरतन (ना० प्र० सभा, काशी) का विभागीय प्राक्कथन, पृ० २
२ वही पृ० ६
३ वही पृ० ८

में संकेत भी निर्दिष्ट किया जा चुका है।

यद्यपि इन स्रोत रचनाओं पर आधारित काव्यों के अभाव में रीतिकाव्य के उपवन में नहीं आया। रीतिकाल में नायक और नायिका श्रीकृष्ण और राधा ही सर्वमान्य हुए किन्तु उनके प्रणय-व्यापार विलास चेष्टा संयोगिनी संयोग वियोग और और मनोविनोद योजना का बहुत उत्स इन प्रेमाख्यानों की परम्परा में पूर्ण प्रभावित है।

संस्कृत साहित्य के प्रमुख प्रेमाख्यानों में उल्लेखनीय प्राकृत सुबन्धु की वासवदत्ता का नाम उल्लेख्य है यद्यपि इसमें उत्पादक के ख्यात पर कल्पना गुम्फित किसी ऐतिहासिक पात्र की अवतारणा की गई है। महाभाष्यकार पतंजलि ने भी वासवदत्ता प्रियदर्शिका यवक्रीत प्रभृति आख्यानों का निर्देश किया है तथा वासवदत्ता सुमनोत्तरा भैमरथी आदि आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। अन्यत्र के सुभाषित में वररुचि का चारुमति और अन्य कथाओं का भी उल्लेख पाया जाता है।

यहाँ कवि सुबन्धु विरचित वासवदत्ता का संक्षिप्त परिचय देते हुए शृंगार परक रचनाओं को प्रेरणा देने में उसके योगदान का निर्देश करना अभीष्ट है।

वासवदत्ता—प्रस्तुत प्रेमाख्यानक के लेखक सुबन्धु को म० म० पी० वी० काणे की कादम्बरी की भूमिका और वाक्पतिराज के गउडवहो के साक्ष्य पर बाणभट्ट का पूर्ववर्ती माना जा सकता है।

इसमें वासवदत्ता के रूप सौन्दर्य का वर्णन परम्पराभुक्त उपमानों के माध्यम से किया गया है।[1] वासवदत्ता के नवांग सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि श्लेष और शब्द साम्य के व्यामोह में ऐसा पड़ जाता है कि उसकी नायिका सुग्रीव और अंगद से युक्त वानर सेना की तरह तो कभी अभिनव यौवनत्व के कारण कन्या और तुला राशि का अतिक्रमण कर वृश्चिक राशि पर स्थित सूर्य की तरह लगती है।[2] अतिप्रयत्नसाध्य वर्णन के उदाहरणस्वरूप कवि की वे पंक्तियाँ ली जा सकती हैं जिनमें उसने वासवदत्ता को शब्दमयी चित्रित किया है।[3] कन्दर्पकेतु की विरहावस्था का वर्णन अलंकृत शैली में काव्य रूढ़ियों के आधार पर किया गया है।[4] शुक सारिका का संवाद खण्डिता और धृष्ट नायक के संवाद से मिलता जुलता है।[5] शुक राजा के उद्यान वर्णन में वसन्त ऋतु के सौन्दर्य और उसके उद्दीपक प्रभाव का वर्णन करता है।[6] वह कन्दर्पकेतु के स्वप्न दर्शन से उत्पन्न वासवदत्ता के पूर्वानुराग का वर्णन करते हुए शीतोपचार विरहोन्माद मूर्छा आदि का

१ वासवदत्ता (सं० जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता १९०७) पृ० २५ ३० १ ५ १०९
२ वही पृ० २५ ३ १ ९ १ ६
३ वही पृ० ३ ३१
४ वही पृ० ३२ ३ एवं ८
५ वही पृ० ५
६ वही पृ० ५९ ६२

विस्तृत वणन रीतिबद्ध शैली म करता है।[1]

रात्रि म चद्रोदय का वणन करत हुए कवि ने अभिसारिका, दूती क उपालम और नायिका क प्रणय निवन्न आदि का उल्लख किया है।[2] इस प्रसग म दूतिया का जसा परिचय यहाँ मिलता है वह बहुत कुछ परवर्ती रीतिकाव्य के अनकूल ही है।

वासवदत्ता मदन क अत पुर का चित्र सामती वलासित जीवन का सच्चा प्रति निधित्व करता है।[3] रीतिकाल क कवियो क भी तदयुगीन आभिजात्य दग क चित्र एस ही लगत हैं।

कादम्बरी—प्रस्तुत कथा-कृति बाणभट्ट का अक्षय कीर्ति का आधार है। पर वर्ती कवियो ने अपन ग्रथारम्भ म जहा कही पूववर्ती प्रमुख कवियो का नाम स्मरण किया है वहा बाणभट्ट का नाम अवश्य लिया गया है। समव है इन्हे प्रस्तुत ग्रथ स पर्याप्त प्रेरणा भी ग्रहण की हो।

अलकृत शली क सफल कवियो म बाणभट्ट का नाम अग्रगण्य है। रीतिकाव्य म जिस अलकरण-वत्ति की प्रधानता लक्षित होती है उसके विकास की पूवशृखला उक्त ग्रथ से जोडी जाती है। कवि ने अप्रस्तुत विधान म अपनी अपूव प्रतिभा का परिचय दिया है। नायिका क रूप सौदय विलास चेष्टा, वियोगदशा क ही वणन म नहीं अपितु नगर, वन उपवन अत पुर राजसभा सध्या चद्रोदय रात्रि और प्रात काल क भी वणना म उपमा और उत्प्रेक्षाओ की लम्बी शृ खला उपस्थित की गई है। यद्यपि इन अप्रस्तुता मे बहुत कुछ अछूत और मौलिक हैं परन्तु चाण्डालकन्या, महाश्वता और कादम्बरी के रूप वणन म प्राय परम्परायुक्त उपमाना का प्रयाग मिलता है।

हि दी क सवप्रसिद्ध आलकारिक आचाय केशवदास पर बाणभट्ट की शली का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है।[4]

शुकनास का उपदेश नीतिकाव्य का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।[5]

शृ गारिक प्रसगा क वणन म अनक स्थाना पर कवि न अप्रस्तुता क सयाजन म अतिशयोक्ति का प्रयाग किया है। नवयौवन की उपमा वसतागम स देन की कवि परपरा-सी है। बाणभट्ट न भी इसका निर्वाह किया है परन्तु इनकी शली बडी रोचक है। महाश्वता कहती है वसत म जस मधुमास मधमास म जसे नवपल्लव नवपल्लव म जस पुष्प पुष्प म जस भ्रमर और भ्रमर म जस मद आविभत हाता है उसी प्रकार मरे

---

१ वासवदत्ता प० ६७ ७१ ७२
२ वही प ७४ ६६
३ वही प ६७ १ ३
४ परिचितशास्त्रामलकराङ्गुष्टयष्टि निष्काश्यमान प्रजश्यमान जरन्घनापमम। कादम्बरी (चौ० स० सिरीज) प १२० तुलनीय केशवदास कविप्रिया ७।११
५ कादम्बरी, प० ३१३ ३५

शरीर में नवयौवन का आविर्भाव हुआ।'[1] उस नवयौवना का पुण्डरीक को देखकर आसक्त होना, बारबार उसे देखने और उससे मिलने की बढ़ती हुई कामना के कारण पूर्वानुराग की स्थिति में विकलता का अनुभव करना[2] पुण्डरीक की भी इसी अवस्था में महाश्वेता को प्रणयपत्र देना[3] उसकी वियोग व्यथा,[4] कपिंजल का दौत्यकर्म और मित्र की विरह वेदना का महाश्वेता से निवेदन करना[5] शीतोपचार,[6] महाश्वेता का वियोग[7] अभिसार[8] पुण्डरीक की मृत्यु पर महाश्वेता का विलाप[9] आदि के वर्णन में कवि ने जिस शैली में वस्तु-व्यंजना और भाव व्यंजना की है उसकी अनुकृति न सही, छाया तो अवश्य ही रीतिकाव्य में यत्र-तत्र मिलती है।

चन्द्रोदय का उद्दीपकत्व[10] कादम्बरी के कन्यान्तःपुर की कुमारियों की रूप शोभा[11] उनकी विभिन्न विलासिक चेष्टाओं,[12] और अंग मार्दव आदि[13] के वर्णन में कवि ने अतिशयोक्ति का ऐसा प्रयोग किया है कि फारसी शायरों के मुबालगे भी फीके पड़ जाएं।

कादम्बरी की रूप शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने चरणतल की अरुणिमा पर उत्प्रेक्षा की है कि अत्यधिक कोमल होने के कारण नखरन्ध्र मानो रुधिरधारा का वमन कर रहे हों।[14] इसी प्रकार उसके अंग प्रत्यंग पर अनूठी उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं।[15] चन्द्रापीड के सौंदर्य का वर्णन सुनकर कादम्बरी में सात्विक भावोद्गम का वर्णन शास्त्रीय परिपाटी के आधार पर किया गया है।[16] रीतिकाव्य में लक्षिता और कहीं कहीं गुप्ता नायिकाओं के वर्णन इसी प्रकार के मिलते हैं जिनमें नायिका के सात्विक भाव उसके गुप्त अनुराग को सूचित करने लगते हैं और वह उन्हें छिपाने के लिए अन्य चेष्टाएं करने लगती है। इसी प्रकार कादम्बरी की चित्तासक्ति पूर्वानुराग छिप छिपकर

---

१ कादम्बरी पृ० ४१२
२ वही पृ० ४३७ ३६
३ वही पृ० ४४१
४ वही पृ० ४४४ ४८
५ वही पृ० ४४४ ६३
६ वही पृ० ४६४
७ वही पृ० ४६७ ६६ ४७३ ७४
८ वही पृ० ४७४ ७६
९ वही पृ० ४८७-९२
१० वही पृ० ५१६
११ वही पृ० ५२४ २७
१२ वही पृ० ५२७ ३३
१३ वही पृ० ५२८ २९
१४ वही पृ० ५३७ तुलनीय–बिहारी दो० २०
१५ वही पृ० ५३९ ४२
१६ वही पृ० ५४८ ४९

परस्परावलोकन, अभिसार की सज्जा, विलासचेष्टाओं के व्याज से नायक पर सविस्तर अपना प्रेम प्रकाशन आदि का वर्णन करते हुए बाणभट्ट ने अपना शृंगार रस वर्णन की निपुणता सिद्ध की है।[1]

कादम्बरी का विरह निवेदन करते हुए केयूरक की उक्तियाँ रीतिकालीन दूतियों की उक्तियों में पढ़ी सुनी जा सकती हैं। इसी प्रकार कादम्बरी के विरह एवं शीतलोपचार[2] और चन्द्रापीड के आगमन से उसके हर्षोल्लास का जैसा वर्णन[3] बाणभट्ट ने किया है रीतिकाव्य की प्रोषितपतिकाओं की अवस्था एवं उनके शीतलोपचार और आगतपतिकाओं के वर्णन में इन्हीं वस्तुओं और चेष्टाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

वास्तव में बाणभट्ट और परवर्ती अनेक कवियों ने इन वर्णन रूढ़ियों का पूरा निर्वाह किया है, इसीलिए जहाँ कहीं भी ऐसे वर्णन आए हैं उनमें काफी साम्य दृष्टिगत होता है।

कालिदासोत्तर महाकाव्यों, खण्डकाव्यों और मुक्तकों में जिस प्रकार अलंकृत और शृंगारी वर्णन की परम्परा रूढ़िबद्ध शैली में मिलती है उसका प्रयोग सुबन्धु, बाणभट्ट और दण्डी ने अपनी कथाकृतियों में भी बड़ी सफलता से किया है। इन कवियों की मौलिकता केवल अप्रस्तुत विधानों—उपमाओं, दृष्टान्तों और उदाहरणों के प्रयोग में दृष्टिगत होती है। कादम्बरी में वस्तु वर्णन और भाव निरूपण का जैसा विस्तार मिलता है वह प्रबन्धात्मक है मुक्तकों में उतना अवकाश नहीं रहता। फिर भी रीतिकाव्य में अनेक स्थलों पर उक्त ग्रंथ की शैली का प्रयोग दिखलाई पड़ता है।

प्रस्तुत अध्याय में शृंगार के विविध पक्षों का संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के काव्यों में जैसा वर्णन पाया जाता है उसका किंचित् परिचय दिया गया है। ध्यान देने की बात यह है कि उक्त ग्रंथों में संयोग वियोग नखशिख ऋतु दूती सखी आदि के वर्णन की रूढ़ियाँ स्थापित की गई और उनका सम्यक् निर्वाह किया गया है। हिन्दी के आदिकालीन ग्रंथों में यद्यपि वीर रस की ही प्रधानता रही किन्तु जहाँ शृंगार वर्णन का अवसर आया है, कवियों ने प्राचीन परिपाटी की वर्णन रूढ़ियों का ही सहारा लिया है। ज्ञानमार्गी सन्तों की वाणियों में शृंगार को उतना स्थान नहीं मिला क्योंकि उनका प्रतिपाद्य स्पष्ट रूप से भिन्न था। उन्होंने या तो लोकमंगल की भावना से सदुपदेश, पाखण्ड का खण्डन और अंधविश्वासों को निरस्त करने में अपनी काव्य प्रतिभा का प्रयोग किया या फिर आत्मानन्द में लीन होकर भगवान के ऐश्वर्य और शक्ति का गान करते हुए उनसे अपना रहस्यात्मक सम्बन्ध स्थापित किया। इन रहस्यात्मक संकेतों में कहीं कहीं शृंगार का हल्का पुट मिलता है। ऐसे स्थल वहीं पाए जाते हैं जहाँ जीवरूपी वधू ब्रह्मरूपी वर की प्राप्ति के लिए व्याकुल चित्रित की गई है।

---

१ कादम्बरी पृ० ५५०-७२, ५८२-८८
२ वही पृ० ६०३-१६, ६२३-२६
३ वही पृ० ६२०

प्रेममार्गी भक्तों ने शृंगार के लौकिक पक्ष का सविस्तार वर्णन किया है, किंतु उनकी मूल भावना रीतिकाव्य की मूल भावना से भिन्न थी। रीतिकाव्य का प्रतिपाद्य था लौकिक सुखोपभोग किंतु प्रेममार्गियों का लक्ष्य था लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का निदर्शन। साध्य भिन्न होने पर भी साधन की एकरूपता दृष्टिगत होती है।

सगुणधारा में रामभक्ति का प्रवर्तन मूलतः मर्यादापुष्ट ही रहा। उसमें सेवक सेव्य भाव की प्रधानता के कारण शृंगार को स्थान न मिल सका किंतु परवर्ती राम काव्य कृष्ण की माधुर्योपासना से प्रभावित होकर शृंगारी अभिव्यक्तियों से आपूर्ण हो गया।

कृष्णभक्तिधारा में शृंगार को विशेष महत्त्व मिला। इसका उल्लेख वैष्णव काव्याभिव्यक्ति की शृंगारी परिणति की चर्चा करते हुए किया जा चुका है।

प्रस्तुत अध्याय में रीतिकाव्य के उपजीव्य ग्रंथों में आए शृंगारिक प्रसंगों का संक्षिप्त वर्णन किया गया। आगे के अध्याय में शृंगार के विविध पक्षों की चर्चा करते हुए इन ग्रंथों के शृंगारिक स्थलों की तुलना रीतिकाव्य के तत्सम स्थलों से करते हुए परम्परा और प्रवृत्तियों का निर्देश किया जाएगा।

चौथा अध्याय

शृंगार और उसके प्रमुख पक्ष

शृंगार रस : स्वरूप

पिछले अध्याय में विभिन्न साहित्य में प्रयुक्त शृंगार रस का परिचय दिया जा चुका है। इस अध्याय में उसके शास्त्रीय स्वरूप एवं प्रमुख पक्षों का निरूपण करते हुए रीति काव्य और उसके पूर्ववर्ती साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

सम्प्रति शृंगार रस के स्वरूप का परिचय मात्र देना अभीष्ट है।

रस की व्यवस्थित और सर्वमान्य विवेचना सर्वप्रथम भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होती है। यद्यपि उन्होंने रसों का विवेचन दृश्य-काव्य के परिप्रेक्ष्य में किया है तथापि उनके रस सूत्र का महत्व श्रव्य काव्य के लिए भी कम नहीं है। उन्होंने रस-निष्पत्ति के लिए विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का संयोजन आवश्यक माना है।[1]

विभाव

वाचिक, आंगिक और सात्विक अभिनय के द्वारा चित्त वृत्तियों के विभावन या ज्ञापन कराने वाले हेतु, कारण या निमित्त को भरतमुनि ने 'विभाव' कहा है।[2] इनके द्वारा वासना-रूप में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म रति आदि स्थायी भाव आस्वादनीय बनते हैं।[3] चित्त-वृत्तियों के उद्बोधक ये विभाव दो प्रकार के माने जाते हैं—आलम्बन और उद्दीपन। चित्तवृत्तियों के विषय भूत विभाव को आलम्बन या विषय कहा जाता है। जागृत भाव को उद्दीपित करने वाले निमित्त कारण को उद्दीपन विभाव कहते हैं।[4] जिस व्यक्ति में

---

१ विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।
—नाट्यशास्त्र भाग १ पृ० २७४

२ विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः । विभाव्यतेऽनेन वागंगसत्वाभिनय इति विभावः । यथा विभावितं विज्ञातमित्यर्थान्तरम् ।—नाट्यशास्त्र भाग १ पृ० ३४७

३ वासनात्मतयास्थितसूक्ष्मरूपेणावस्थितान् रत्यादीन् स्थायिनः विभावयन्ति आस्वादयोग्यतां नयन्ति इति विभावाः —का० प्र० टीका पृ० ८६

४ यस्याश्चित्तवृत्तेर्यो विषयः स तस्या आलम्बनम्। निमित्तानि च उद्दीपकानि इति बोध्यम्।
—र० गं० पृ० ३३

स्थायी भाव रति की अवस्थिति होती है वह भाव का आश्रय होने के कारण आश्रय कहलाता है। इस प्रकार आलम्बन के विषय और आश्रय दो भेद माने जाते हैं।

आलम्बन

शृंगार रस के आलम्बन नायक नायिका मधुर सुकुमार तथा रूप-यौवन-सम्पन्न होते हैं।[1] रूप उस आकृति का बोधक है जिसमें सौन्दर्य साकार होता है। सामान्यतः रूप और सौन्दर्य का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है। सौन्दर्य या रूप का अधिष्ठान शरीर है, अतः रूप वर्णन के अन्तर्गत नायक या नायिका के शारीरिक (बाह्य) आकर्षण का ही अंकन करते आए हैं। रूप का चरमोत्कर्ष यौवन में ही होता है। रूप और यौवन अन्योन्याश्रित से माने जाते हैं। आलम्बन के सम्मोहक रूप का चित्रण यौवनावस्था में ही होता है। शृंगार के आलम्बन का स्वस्थ, सुन्दर और यौवन सम्पन्न होना इसीलिए अनिवार्य माना गया है। अस्वस्थ, असुन्दर और यौवनेतर अवस्था को प्राप्त स्त्री या पुरुष शृंगार के आलम्बन कदापि नहीं हो सकते। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चाहे इस रस की व्याप्ति जिसमें मानी जाए किंतु रसशास्त्रीय दृष्टिकोण से उसे ग्राह्य नहीं माना जा सकता। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार यौवनावस्था में नायिका के शारीरिक और मानसिक आकर्षणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अलंकार की भी संज्ञा दी गई है।

उद्दीपन

आलम्बन विभाव की ही तरह उद्दीपन के भी कई भेद मिलते हैं। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से आलम्बन के गुण उसकी चेष्टाएँ वस्त्राभूषण और तटस्थ ये चार भेद गृहीत होते हैं। आलम्बन के गुणों से रूप यौवन उसकी चेष्टाओं में यौवनोद्भूत हाव भावादि, वस्त्राभूषण में नूपुर अंगद हारादि तथा तटस्थ के अंतर्गत चन्द्र मलयानिल आदि आते हैं।[2] इन भेदों को मुख्य रूप से दो में ही समाहित किया जा सकता है—एक वे उपकरण जिनका आलम्बन से सीधा सम्बन्ध है और दूसरी वे वस्तुएँ या क्रियाएँ जो अपना स्वतंत्र स्थान रखती हैं। दूसरी श्रेणी में प्रकृति और आलम्बन के सहायक

---

१ मधुरा सुकुमाराश्च रूपयौवनशालिनः।
शृंगारालम्बना भावास्तन्वय्यस्तरुणाश्च ॥ शारदातनय भावप्रकाशन पृ० ४

२ रत्युत्कारणजातमुद्दीपनविभाव। स चतुर्विधः। यथा चोक्तं शृंगार तिलके—
आलम्बनगुणश्चैव तच्चेष्टा तदलंकृतिः।
तटस्थश्चेति विज्ञेयश्चतुर्धोद्दीपनक्रमः ॥
आलम्बनगुणो रूपयौवनादि रुदाहृतः।
तच्चेष्टा यौवनोद्भूतहावभावादिका मता।
नूपुरांगदहारादि तदलंकरणं मतम्।
मलयानिलश्चन्द्राद्यास्तटस्था परिकीर्तिता ॥—अ०ह यशो०, पृ १५६

सखा-सखी, दूत-दूती और उनके वचनों को भी लिया जा सकता है। सारांशत उद्दीपन के अंतर्गत आलम्बनादि की चेष्टाएं तथा देशकाल की गणना की जाती है।[1]

अनुभाव

भरतमुनि के अनुसार अनुभाव उन वाचिक, सात्विक और आंगिक चेष्टाओं को कहते हैं जो आश्रय के आंतरिक भावों का प्रकाशन करती हैं।[2] इनके द्वारा भाव विशेष का साक्षात्कार होता है, अतः इन्हें कारण भी कहते हैं। भानुदत्त ने इन्हें कायिक मानसिक, आहार्य और सात्विक भेद से चार प्रकार का माना है।[3] यदि इन अनुभावों को स्थायीभाव के उत्पन्न होने के कारण उनके मात्र बाह्य प्रकाशन मानें तो इन्हें कार्यरूप मानना पड़ेगा।[4]

भरत ने रमणियों के बीस सात्विक अलंकारों को तीन भागों में विभाजित किया है—अंगज, अयत्नज और स्वभावज।[5] धनंजय आदि ने भी इन्हें स्वीकार कर लिया है। यौवनोद्भेद के कारण होने वाले नायिकाओं के आंगिक परिवर्तनों को सात्विक अलंकार कहा जाता है। अंगज अलंकार के अंतर्गत हाव, भाव और हेला तथा बिना किसी प्रयत्न के होनेवाले अयत्नज अलंकारों में शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता औदार्य तथा धैर्य की गणना की गई है। स्वभावज अलंकारों में लीला विलासादि दस हावों को ग्रहण किया गया है।[6] ये सब अलंकार यदि विषय के माने जाएं तो उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आएंगे।[7] किन्तु कुछ प्राचीन आचार्यों ने अनुभाव के अन्तर्गत अलंकारों की चर्चा की है और हाव को भी उसी में अंतर्भुक्त माना है। इसकी विशेष चर्चा आगे नायिका के गुणों के प्रसंग में ही की जाएगी।

४९ भावों में से भरतमुनि ने स्तम्भ, रोमांच, स्वेद, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय को सात्विक भाव के अन्तर्गत पृथक रूप से वर्णित किया है।[8] यद्यपि सत्व आंतरिक धर्म से प्रकट होनेवाले भाव होने के कारण सात्विक भाव भी आंतरिक धर्म होते हैं, किन्तु रस प्रकाशन में सहायक होने के कारण इन्हें अनुभाव भी माना जाता है।

---

१ साहित्यदर्पण (पी०वी०काणे) पृ० २४
२ अनभाव्यतेऽनेन वागंगसत्त्वकृतोऽभिनय इति। —नाट्यशास्त्र भाग १ पृ० ४८
३ रसतरंगिणी ३।२
४ सा० द० पृ० २४
५ नाट्यशास्त्र २२।५
६ दशरूपक २।३३
७ र० त० पृ० ४७
८ स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभंगोऽथ वेपथुः
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्विका मताः ॥ —नाट्यशास्त्र ७।१४८।

व्यभिचारीभाव

इन्हें संचारी भाव भी कहा जाता है। चर धातु में वि और अभि उपसर्गों के योग से व्यभिचारी शब्द निष्पन्न होता है और सम् उपसर्ग के योग से संचारी। चर धातु का अर्थ वाक् अंग एवं सत्व आदि के द्वारा रसपोषक भावों के संचरण से लिया गया है।[1] ये स्थायी भाव के पोषण में सहायक और अस्थिर होते हैं। शृंगार के अंतर्गत प्रायः ३३ संचारी भावों का समावेश किया गया है।

इस प्रकार रस की निष्पत्ति के मूल सहायक तत्वों—विभाव अनुभाव और संचारी भावों के परिचय के उपरांत शृंगार रस का परिचयात्मक विवेचन किया जाएगा।

शृंगार रस विवेचन

'शृंग ऋच्छतीति शृंगारः' अर्थात् शृंगार शब्द की व्युत्पत्ति 'शृंग' और 'आर' शब्दों के योग से होती है। शृंग का अर्थ है कामोद्रेक, काम का संवर्द्धन या कामवृद्धि।[2] ऋ धातु से व्यवस्थित 'आर' शब्द गत्यर्थक है जिसका अर्थ है—कामवृद्धि की प्राप्ति। अतएव मानव की आदि वासना काम को संवर्द्धित और पुष्ट करने वाली रचनाएँ शृंगारमूलक मानी जाती हैं। रति स्थायी भाव से सम्पुष्ट शृंगार उज्ज्वल वेषात्मक[3] उत्तम प्रकृति का माना जाता है।[4] इस प्रकार शृंगार को उज्ज्वलवेषात्मक और उत्तमप्रकृति से युक्त मानकर इसे विलास गर्भित कामुकता से बचा लिया गया है। भरत मुनि ने स्पष्ट कहा है कि संसार में जो कुछ पवित्र मेध्य उज्ज्वल या दर्शनीय है वह सब शृंगार के द्वारा उपमित हो सकता है।[5] अर्थात् उसका ग्रहण शृंगार के अंतर्गत किया जा सकता है। भोजराज ने आस्वाद्यता और संप्रेषणीयता के कारण इसे ही एक मात्र रस माना है।[6] भानुदत्त ने युवा और युवती के आमोद प्रमोद (विभावानुभावसंचारी) आदि से सम्पन्न रति भाव को शृंगार माना है।[7]

शृंगार के स्थायीभाव रति की व्याख्या करते हुए भोजदेव ने मन के अनुकूल विषयों में सुख की अनुभूति को रति माना है।[8] भरत ने राजा और उसके अनुचरों का

---

१ नाट्यशास्त्र भाग १ पृ ३४८ ३५० ।
२ शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः ।—सा द ३।१८३
३ तत्र शृंगारो नाम रतिस्थायिभावप्रभव उज्ज्वलवेषात्मकः । नाट्यशास्त्र भाग १ पृ० ३ १
४ उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते ॥ सा द० ३।१८३
५ यत्किंचिल्लोके शुचिर्मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीय वा तच्छृंगारेणोपमीयते ।
—नाट्यशास्त्र भाग १ पृ ३ २
६ शृंगारमेव रसनाद्रसमामनाम ।—शृं० प्र०
७ यूनो परस्पर परिपूर्ण प्रमोद सम्यक् संपूर्णरतिभावो वा शृंगारः ।
—रसतरंगिणी षष्ठ तरंग
८ मनोनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदनं रतिः ।—शृं० प्र०

उदाहरण देते हुए रति को राजा और अन्य भावों को उसका उपकारक अनुचर माना है।[1]

इसके आलंबन अनुरागवती स्वीयादि नायिकाएँ और दक्षिणादि नायक हैं तथा उद्दीपन चंद्रमा, चंदन भ्रमर आदि एवं अनुभाव अनुरागपूर्ण भृकुटिभंग तथा कटाक्ष आदि और संचारीभाव उग्रता मरण आलस्य एवं जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेदादि हैं।[2] यद्यपि आचार्यों ने त्रास आलस्य उग्रता और मरण आदि संचारियों को शृंगाररस विरोधी माना है, फिर भी शृंगाररस प्रधान रचनाओं में इनके प्रयोग मिलते हैं। वियोगावस्था में मरण व्यंग्य रूप में गृहीत हुआ है। स्तंभ, रोमांच और स्वरभंग का हेतु त्रास माना जाता है और आलस्य-जनित जृम्भा का प्रयोग अनेक स्थलों पर आया है। बिब्बोक हाव में उग्रता एवं जुगुप्सा भी अंतर्भुक्त होते हैं। प्रौढ़ा अधीरा नायिकाओं में इन दोनों संचारियों की स्थिति पाई जाती है। इस प्रकार शृंगार के व्यापक परिवेश में तैंतीसों संचारीभाव आ जाते हैं।

शृंगार भेद

नायक-नायिकाओं के संबंधों के आधार पर शृंगार के संभोग या संयोग और विप्रलंभ या वियोग दो भेद किए गए हैं। इसमें संयोग के अंतर्गत ऋतु, माल्य अनुलेपन, अलंकार, इष्टजनानुगमन उपभोग वनगमन विहार श्रवणदर्शन, क्रीडा लीलादि अनुभाव आते हैं।[3] नायक और नायिका के परस्पर अनुकूल होने से दर्शन, स्पर्शन और संलापादि के कारण अनुभूयमान सुख या संभोग से उत्पन्न होनेवाले आनन्द को संयोग कहते हैं। इसमें बहिरिंद्रिय-संबंध की प्रधानता होती है।[4] संयोग शृंगार में बलपूर्वक या अनिच्छा से सम्पन्न होनेवाले संभोग का वर्णन नहीं होता। नायक अथवा नायिका के एकपक्षीय या रति का एकांगी प्रदर्शन रसाभास माना जाता है।[5]

संयोग शृंगार

यहाँ यह ध्यातव्य है कि संयोग और संभोग में तात्त्विक ऐक्य होने पर भी किंचित्

---

१ बहवाश्रयत्वात्स्वामिभूता स्थायिनो भावाः तत्वत्स्थानीयपुरुषगणभूता अन्ये भावास्तान्गुणतयाश्रयन्ते परिजनभूता व्यभिचारिणो भावाः। —नाट्यशास्त्र भाग १ पृ० ३६

२ भरत नाट्यशास्त्र ६।५२ ४६

३ तस्य द्वे अधिष्ठाने सम्भोगो विप्रलम्भश्च तत्र सम्भोगस्तावदृतुमाल्यानुलेपनालंकारेष्टजनविषयवरभवनोपभोगवनगमनानुभवनश्रवणदर्शनक्रीडालीलादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। वही भाग १ पृ ३०४

४ तत्र दर्शनस्पर्शनसंलापादिभिरितरेतरमनुभूयमानं सुखं परस्परसंयोगनात्पाद्यमानं आनन्दो वा संयोगः। संयोगो बहिरिंद्रियसम्बन्धः। —रसतरंगिणी पृ १२८

५ यूनोरेकत्र प्रमोदस्य रतेर्वाधिक्ये ध्वनतायां व्यतिरेके वा परिपूर्तेरभावात् रसाभासत्वमिति।

—रसतरंगिणी पृ० १२८

अन्तर है। डॉ० मनोहरलाल गौड ने लिखा है 'प्रिय और प्रेमी का मिलन दो प्रकार का हो सकता है —संयोग सहित तथा संयोग रहित। पहले का नाम संयोग है, दूसरे का नाम सयोग हो सकता है।[1] उन्होंने अपने मत की पुष्टि में कहा है कि ऐसा विभाजन भावनाओं के आधार पर किया जा सकता है। जो प्रेम वासनामूलक है उसका पर्यवसान भोग में होता है। पर जो विशुद्ध आत्मानुभूति के रूप में है उसका पर्यवसान भी प्रेम ही होता है। ऐसा प्रेम किसी वस्तु का जैसे भोगादि साधन नहीं बनता। इस साध्यभूत प्रेम का मिलन सयोग कहा जाना चाहिए।[2] परपरागत शृ गार निरूपण में आचार्यों ने भोग पक्ष को ही प्रमुखता दी है क्योंकि डॉ० गौड जिस आत्मानुभूति के रूप में होने के कारण सयोग कहते हैं उसमें बहिरिन्द्रिय सयोग का उतना महत्त्व नहीं रहता।

संयोग को रूपासक्ति और शारीरिक आकर्षण का परिणाम मानते हुए इसमें हाव आदि चेष्टाएं सुरत विविध विहार मद्यपान आदि का वर्णन किया जाता है।

संयोगकालिक नायक की चेष्टाएं मधुर होनी चाहिए। उसे कान्ता का मनोरंजन कला, क्रीडादि के द्वारा तथा उसकी चाटुकारिता एव रूप गुण की प्रशंसा करके करना चाहिए। कोई भी ग्राम्य आचरण या सौख्य में बाधक बात नहीं करनी चाहिए।[3] इस प्रसग में जल क्रीडा सर का क्षोभ चक्रवाक और हंसों की उद्विग्नता पद्म की मलिनता जलबिंदुओं से नेत्र की अरुणिमा तथा आभूषणों के पतन आदि का वर्णन होना चाहिए।[4] वात्स्यायन ने कामसूत्र में संयोगकालीन क्रियाकलापों का सांगोपांग निरूपण किया है। कामसूत्र के द्वितीय अधिकरण के द्वितीय अध्याय में सुरति की चौंसठ कलाओं का विवरण देते हुए उन्होंने इसके प्रमुख भेद आठ माने हैं जिनमें प्रत्येक के विकल्प से आठ आठ भेद और होकर चौंसठ हो जाते हैं।[5] वात्स्यायन ने इनमें से आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, दतक्षत और पुरुषायित का वर्णन अलग अलग अध्यायों में किया है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में इन कलाओं का व्यावहारिक रूप स्थल-स्थल पर वर्णित है। रीतिकाल के कवियों ने भी इस कामशास्त्रीय और काव्य साहित्य की परिपाटी का काफी हद तक अनुगमन किया है। रीतिकाव्य में मात्र शारीरिक चेष्टाओं और स्थूल रति क्रीडाओं का ही वर्णन नहीं मिलता अपितु ऐसे भी चित्रणों की कमी नहीं है जिनमें मनोवृत्तियों का सूक्ष्म अंकन और भारतीय रसमर्यादा के अनुरूप नारी के शील लावण्य का उद्घाटन न मिलता हो।

सक्षेप में संयोग शृ गार के अंगों और उनके शास्त्रीय स्वरूप का परिचय दिया जा चुका है। सुविधा के लिए उसके विविध पक्षों का निम्नलिखित रूप में वर्गीकरण किया जा सकता है—

---

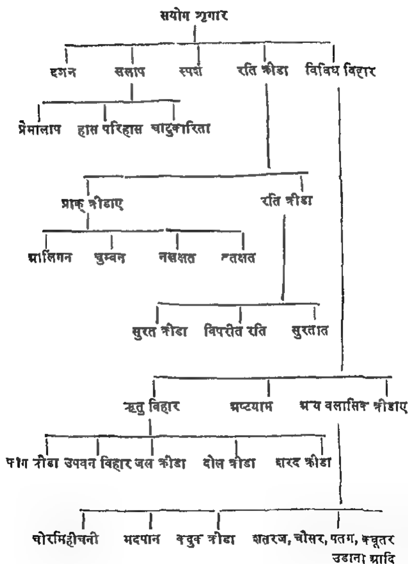
१ डॉ मनोहरलाल गौड घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा पृ ३ १ २

२ वही पृ ३ २

३ धनंजय दशरूपक ४।७१

४ कविकल्पलता, १।३।४१

५ वात्स्यायन कामसूत्र २।२।५


संयोग शृंगार
दर्शन
संलाप
स्पर्श
रति क्रीडा
विविध विहार
प्रेमालाप
हास परिहास
चाटुकारिता
प्राक् क्रीडाएं
रति क्रीडा
आलिंगन
चुम्बन
नखक्षत
दन्तक्षत
सुरत क्रीडा
विपरीत रति
सुरतांत
ऋतु विहार
अष्टयाम
अन्य वलासिक क्रीडाएं
फाग क्रीडा
उपवन विहार
जल क्रीडा
दोल क्रीडा
शरद क्रीडा
चोरमिहीचनी
मदपान
कंदुक क्रीडा
शतरंज, चौसर, पतंग, कबूतर उडाना आदि

दर्शन

नायक और नायिका के परस्परावलोकन का उन पर पडनेवाला व्यापक प्रभाव वर्णित किया गया है। रीतिकाव्य के उपजीव्य ग्रथो मे अनेक काव्य नाटक और आख्यायिकाओ म प्रथम दर्शनजन्य प्रभावो का वर्णन मिलता है। प्रेमी के नयनप्रीति के अनुसार प्रेम की स्थापना सर्वप्रथम दर्शन से ही होती है। आगे प्रथम दर्शन म ही लगती है रुकती हैं या आखें चार होती है और प्रेम का नाट्यारम हो जाता है। दर्शन के क्षणो म प्रेमी पूर्णत प्रिय म तन्मय हो जाता है।[1] नेत्रो को इसीलिए प्रणय व्यापार का सूत्रधार कहा जा सकता है। नवनवोन्मेषशाली रूप की यात्रा म नेत्र पथिको की दुर्गति भी कम नही हुई है चाहे व मतिराम के नेत्र हो या बिहारी के नायक के।[2]

सयोग के अन्तर्गत केवल प्रत्यक्ष दर्शन ही लिया जा सकता है। इसके अन्य भेद स्वप्न चित्र या श्रवण दर्शन पूर्वानुराग की अवस्था मे ही आते है। कही-कही नायक के वेणुवादन का श्रवण या नायिका के नूपुरादि आभूषणो की ध्वनि का श्रवण सयोग शृगार के अन्तर्गत उद्दीपक रूप में वर्णित हुआ है।

सलाप

दर्शन म प्रिय और प्रेमी या विषय और आश्रय की दूरी बनी रह सकती है किंतु सलाप म सयोग-सुख पुष्टतर रूप म आता है। नायक और नायिका के प्रमालाप म प्रणय निवेदन उपालम्भ हास परिहास और एक दूसरे की रूप गुण प्रशसा का वर्णन किया जाता है। नायक अपने अनुराग की तीव्रता का वर्णन करते हुए प्रमिका के वियोग म पूर्वानुभूत विरह दुख का भी विस्तार म वर्णन करता है। कही कही रूप गुण-सम्पन्न नायिका को अपनी प्रिया के रूप म प्राप्त कर वह अपने भाग्य की सराहना करता है। नायिका की पूर्वाचरित निष्ठुरता पर व्यग्य करता हुआ उसे उपालम्भ भी देता है। इसी प्रकार नायिका की चेष्टाओ और आलापो का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रसग म नायिकाओ के परिहास का मनोरम वर्णन किया गया है। परिहास म मध्या या प्रौढा नायिकाए ही पटु होती हैं। उनके परिहास बड ही मार्मिक होते हैं जैसे पद्माकर में अनेक स्थलो पर पद्मावली छपने का पानी प्यार न करने का आदि मिलापी बनाकर उसका खूब मजाक उडाती है।[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रसग म लिखा है नायक-नायिका के बीच कुछ बात चीत और परिहास भी भारतीय प्रम प्रवृत्ति का

---

1 बिहारी १९ २६६
2 मैथिल ७१९ बिहारी दो ४२६
3 भारती स्मारक २।१९५ १५ १७ २।१३

एक मनोहर अग है, अत उसका विधान यहाँ के कवियो की शृ गार-पद्धति म चला आ रहा है। पीछे तो उदू वालो मे भी 'सूवा से छेडछाड की रस्म चल पडी।'[1] सूरदास की गोपियाँ भी परिहास म पीछे नही हैं। वे सीधे कहती हैं 'हे कृष्ण पहले मेरा घट भर दो तब तुम्हे लकुट दूगी।'[2] कृष्ण के प्रसग को लेकर रीतिकालीन कवियो न भी गोपियो की परिहासपूर्ण उक्तियो का निवशन किया है। मतिराम हो या पद्माकर सबकी नायिकाए कृष्ण से पूर्ण परिचित है अत अवसर मिलते ही व कृष्ण के कम्बल और लकुटी की हीनता तथा राधा के हार की बहुमूल्यता का वणन करती हुई कृष्ण को फटकारने लगती हैं। एसी ही प्यारभरी झिडकियो के वर्णन अनेक रीति कवियो के काव्यो मे देखे जा सकते हैं।[3] इन हास परिहासयुक्त वचनो म यद्यपि अति परिचय और अनुराग का सकेत मिलता है किंतु सयोग की प्रगाढता नही। शारीरिक दूरी यहा भी बनी रहती है।

स्पश

दशन म केवल नेत्रो की तप्ति होती है। सलाप म नेत्र वाक और श्रोत्रे न्द्रिय का परितोष होता है और स्पश म नेत्र, कण वाक और त्वक सवेदनाओ का भी सम्मिलित आन द मिलता है। इसीलिए सयोग पक्ष की पुष्टि मे स्पश का महत्व अधिक है। साहित्य म स्पश का वणन कई रूपो म मिलता है। कही तो साकरी अधेरी गली म नायक नायिका की असभावित मुठभेड हो जाती है[4] कही चोर मिहीचनी खलत हुए[5] और कही अग से अग छू जाने म।[6] इन सबके अतिरिक्त बिहारी आदि ने स्पश सुख का बडा ही सूक्ष्म अकन किया है जसे प्रिय क उडाए हुए पतग की छाह का स्पश प्रिय की दृष्टि का स्पश अथवा प्रिय से दी गई किसी वस्तु का स्पश। उन सभी स्पर्शों म प्रेमी के सात्विक भावो का वणन किया गया है।[7] मतिराम ने स्पशजन्य सात्विक भावो का

---

१ प रामचद्र शुक्ल जायसी ग्रथावली भूमिका पृ० ८१
२ घट भरि देहु लकुट तब दहो। -सूर० १०।१४ ६
३ मतिराम र रा छ ३७२। पद्माकर ज० वि ८५५
४ गली अधरी साँकरी भो भटभरा आनि।
पर पिछाने परसपर दोऊ परस पिछानि॥ बिहारी १४१
तुग स्तम्भा मध्यवर्त्य विवर्तितसमवागमेनापि।
अभिलषितेनोदश्वस्तमनल्पशुभमनसा लभ्यम॥ -कुट्टनीमतम छ ८२२
५ दग मिहचत मृगलोचनी भरयो उलटि भज-बाथ।
जानि गई तियनाथ क हाथ-परसही हाथ॥ -बिहारी ३१६
६ एकहि भौन दुरे इक सग ही अग सा अग छुवायो कन्हाई।
कप छुट्यो घनस्वेद बढ्यो तनु राम उठ्यो अखियाँ भरि आई॥ -रसराज १६।
७ बिहारी ४३ ९ ८६७ ३६८ ५३१

जैसा वणन किया है वैसा अन्यत्र भी मिलता है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो रति व प्राक क्रीडाएँ स्पर्श सवेदना पर ही आधारित है। आलिंगन और चुम्बन स्पर्श के ही अग माने जा सकते हैं। इसकी व्याप्ति नखक्षत और दन्तक्षत तक ही नही कामशास्त्रीय दृष्टि से प्रजनन म भी इस प्रकार से स्पर्श सवेदना की ही परिणति निहित रहती है। इसे यो भी कहा जा सकता है कि प्रथमावस्था म स्पर्श परस्पर अगो के छू जाने तक ही सीमित रहता है किन्तु क्रमश प्रेमवृद्धि के साथ ही स्पर्श भी दीघकालिक और प्रगाढ होता जाता है।

रघुवश म महाकवि कालिदास ने इन्दुमती का पाणिग्रहण करते ही अज के रोमाचित हो उठने तथा इन्दुमती की अगुलियो म पसीना छूटने का वणन किया है।

रति-क्रीडा

रति क्रीडा के अन्तगत पहले प्राक क्रीडाएँ आती हैं। दशन सलाप और सामान्य स्पर्श के बाद प्राक क्रीडाओ म प्रगाढतर स्पर्श के ही विभिन्न रूपो का वणन होता है।

प्राक्-क्रीडाएँ

प्रेम के सम्पोषण और काम के सम्वद्धन म प्राक क्रीडाओ का महत्वपूर्ण स्थान है। शृगार-काव्य म चाहे वह जिस भाषा म हो, प्राक क्रीडाओ के विविध रूपो का मनोहर वणन प्राप्त होता है। इसके अन्तगत आलिंगन, चुम्बन नखक्षत और दन्तक्षत का वणन परपरा प्राप्त है।

आलिंगन

स्पर्श सवेदना की सुखात्मक अनुभूति आलिंगन म प्राप्त होती है। वात्स्यायन ने अनेक प्रकार के आलिंगनो का वणन किया है। उन्होने चार कोमल और चार कठोर भेदो की चर्चा करते हुए आलिंगन आठ प्रकार के माने हैं। कोमल आलिंगन का प्रयोग नवोढा या मुग्धा नायिका के साथ करने का विधान है और कठोर आलिंगन विश्रब्ध नवोढा या मध्या और प्रौढा के साथ। एक गाथा म रति अत म अपना वस्त्र न पाने के कारण नायिका के लज्जावश प्रिय आलिंगन का वणन मिलता है।[1] आलिंगन वणन म अधिकाश कवियो ने विभिन्न अगो के स्पर्श तक का ही वणन किया है। साहित्य म सभी प्रकार के आलिंगन नही मिलते केवल कुछ प्रमुख या सामान्य आलिंगनो

---

१ गाथा ५।५६

का ही वर्णन मिलता है। आलिंगन की प्रगाढता के साथ साथ पीडा की मात्रा बढती जाती है। यह पीडा भी आनन्ददायिनी होती है। इसमें प्रिय में प्रेमी डूब जाना चाहता है, उसके अंग में समा जाना चाहता है इसीलिए रोमांच का भी व्यवधान उसे सह्य नहीं होता।[1] आलिंगन में तन्मयता, सात्विक भाव और स्पर्श सुख का वर्णन काव्य साहित्य की परंपरा रही है।[2] रीतिकाव्य में भी इस परंपरा का निर्वाह किया गया है।[3] बिहारी ने नायक-नायिका के आँखमिचौनी खेलते हुए बारबार आलिंगन का वर्णन किया है—

> दोऊ चोर मिहीचनी खेल न खेलि अघात।
> दुरत हियें लपटाय कै छुवत हियें लपटात॥[4]

उक्त दोहे में स्पर्श सुख की प्रतीति की सुन्दर व्यंजना हुई है। इस प्रकार इस क्रीडा में नायक-नायिका के क्षणिक आलिंगन का वर्णन मिलता है।[5] पद्माकर की नायिका कृष्ण से प्रेमपूर्णपरिहास करते हुए उन्हें छूने का मना करने की चेष्टा करके भी आलिंगनबद्ध हो जाने पर कुछ बोल नहीं पाती।[6] इसी प्रकार मतिराम की नायिका के हाथ ही प्रिय को आलिंगन करने से वर्जित नहीं कर पाते।[7] पहले उदाहरण में स्वरभंग और दूसरे में स्तम्भ की स्थिति का वर्णन है। इस प्रकार के सात्विक भावों के अन्य वर्णन भी आलिंगन के प्रसंग में शृंगारी काव्य-परंपरा में प्राप्त होते हैं।

चुम्बन

चुम्बन में स्पर्श और गंध दोनों प्रकार का सुख मिलता है अतः इसमें त्वक् और घ्राणेन्द्रिय की परितृप्ति होती है। सामान्य स्पर्श से चुम्बन प्रिय के और अधिक नैकट्य एवं प्रेम की स्वीकृति का द्योतक है। चुम्बन क्रिया का कोमल रूप स्वल्प घर्षण से गुदगुदी उत्पन्न करता है किन्तु प्रगाढ चुम्बन प्रगाढ आलिंगन की तरह पीडायुक्त होता है। कामशास्त्रीय विधान के अनुसार चुम्बन के मुख्य स्थल मस्तक, नेत्र, कपाल, नख, अधर,

---

१ नषध १८।१०८
२ ऋतुसं० ४।६ ५।१ अमरु ७६ किरात ९।४८ शिशु० १०।५६ नैष० १५।२१ १५।२३ २४ हनु ७।१२ गउडवहो ११५२ ११५७ कु म ५७३ गीत ११४।३ ११४।१ सनो ३ प १८१ सूर १०।६८८ १।१०८१ १।२१३ १
३ मतिराम सतसई ५३४ ६४७
४ बिहारी दो ३३०
५ दुरिबे को गई सिगरी सखियाँ मतिराम कहै इतने छिन मैं।
समकाय कै राधिका कंठ लगाय छिप्यो कहूँ जाय निकुंजन मैं॥ मतिराम रसराज २७०
६ आनि लगायो हिये सों हियो भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना। ज वि० छ ४०८
७ र रा० छ०, ३१७

पान और जिह्वा है।[१] संस्कृत प्राकृतादि प्राचीन साहित्य में अनेक स्थलों में चुम्बन का वर्णन मिलता है।[२] अधर चुम्बन में मुखरस के मादक प्रभाव का वर्णन आर्याकार ने बड़ी विदग्धता से किया है।[३] किन्तु हिन्दी में मुख्यतः कपोल, अधर और नेत्र चुम्बन के ही वर्णन उपलब्ध होते हैं। नेत्र चुम्बन की व्यंजना अधिकांश में दीपक एवं पतंग न से होती है। कहीं स्वकीया प्रातःकाल प्रिय के अधरों पर अपने नेत्रों के कज्जल को देखकर शर्माती है तो कहीं खण्डिता प्रगल्भ में नायक के होठों पर अञ्जनरेखा को देख कुपित होती है।[४] परकीया के चौर्य रति में चुम्बन का वर्णन आर्याकार और बिहारी ने बड़ी ही चित्रात्मक शैली में किए हैं।[५]

नखक्षत

प्रेम की स्वीकृति और प्रगाढ़ता के साथ साथ प्रायः क्रीडाओं में पीड़न की मात्रा बढ़ती जाती है। चुम्बन की अपेक्षा नखक्षत में स्पष्ट ही पीड़ा की वृद्धि लक्षित होती है। साथ ही इस क्रीडा में काम की प्रवर्द्धमान अवस्था का भी द्योतन होता है। काव्य परंपरा के अनुसार तो दर्शन से ही सात्विक भावों के उदय का वर्णन मिलने लगता है। किन्तु आलिंगन और चुम्बन प्रणयीयुग्म की काम भावना की तीव्रता को व्यंजित करते हैं। उससे भी अधिक काम-वृद्धि नखक्षत में होती है। इसीलिए कामसूत्र में पहले रागवृद्धि के लिए सर्वप्रथम नख विलेखन का विधान है।[६] उसमें अनेक प्रकार के नखक्षतों का वर्णन है किन्तु साहित्य में या तो नखक्षत की रेखाओं का स्पष्ट अंकन नहीं है या है भी तो केवल अर्द्धचन्द्र या मण्डल का।[७] सामान्यतः नखक्षत की लाल रेखा का ही वर्णन मिलता है। कामसूत्र में चुम्बन के स्थलों की तरह नखक्षत के भी स्थलों—कक्षा, स्तन, गला, पीठ, जघन और उरु का निर्देश मिलता है।[८] काव्य परम्परा में अधिक वर्णन स्तन के नखपदाङ्क-भूषित होने का ही मिलता है अन्य स्थलों का बहुत कम।[९] रीतिकाल के पूर्व अनेक काव्य

---

१ कामसूत्र २।३।६-७

२ किरात ६।४७ शिशु० १।४२, ४४ गाथा० २।७६ अमरु ३६ नैष० १८।८१ १८।६६, १०१ श्रीक० १५।३७ ब्रह्मवैवर्त पुराण ४।२८।१४३ सप्त० ४।४।११ हनु० २।१३ २।१८

३ अधरं दन्तस्त [illegible]मालितमपि लोलितो मौलि ।
आस्वादितमिव चुम्बनमुखस्पर्शेऽपि तरुणाभ्याम् ॥ —आर्या ६२

४ अयग्र० १८।१२ सूर० १।६८७

५ प्रमदानम्रितभ्रूमिवलम्बन्ती प्रीतिभाति मधरासी ।
प्राचीराग्रनिवेशितचिबुकया न चलिता सुतनु ॥ —आर्या० ३५६
अग रिन उचि भरु भानि दै उझकि चितै चख लोल ।
रुचि सौं हुरहु दुहुन के चूमे चारु कपोल ॥ —बिहारी ४

६ रागवृद्धौ सर्वात्मकं नखविलेखनम् । —कामसूत्र २।४।१

७ बिहारी ५ १ तुलनीय– नखपदशशिमपि ॥ —गाथा ७।१२।३

८ कामसूत्र २।४।५

९ गाथा० ५।६।३ ३।३३ वज्जा ३२३। नैषध० १८।६३ ९६ पद्मावत २७।४१

ग्रंथो में नखक्षत के वर्णन मिलते हैं। कवियों ने नखक्षत के वर्णन में अनेक प्रकार के अप्रस्तुत विधानों द्वारा अपनी चमत्कार प्रदर्शन की वृत्ति का परिचय दिया है, जैसे नवीन नखक्षत से शोभित कुच द्वय मानो शुकी के चञ्चु से खाए गए यौवन वृक्ष के दो फल हैं, मन्मथ गज के गजदन्त से क्षुण्ण कुम्भस्थल या अमृतपूर्ण दो कलश।[1] यदि तुलनात्मक दृष्टि से इन प्राक् क्रीडाओं के वर्णन की परंपरा का अध्ययन किया जाए तो इनमें भी कुछ रूढ़ियां निश्चित की जा सकती हैं जिनका वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है। नखक्षत प्रिय के प्रेम का प्रतीक मानकर बिहारी की नायिका उसे सूखने ही नहीं देती।[2] कवियों ने प्रचण्ड रति वर्णन में नखक्षत का विशेष रूप से उल्लेख किया है। किन्तु कहीं कहीं नायिका के रति चिह्नों की शोभा मात्र का वर्णन करते हुए इसका उल्लेख किया गया है।[3]

दंतक्षत

वात्स्यायन ने नखक्षत विधान के पश्चात् दंतक्षत का विधान निरूपित किया है। दंतक्षत की क्रिया में प्रणयी या नायक-नायिका के अधिक प्रौढ़ अनुराग का द्योतन होता है। नखक्षत की अपेक्षा दंतक्षत में स्पर्श की अधिक प्रगाढ़ता निहित होती है। कामसूत्र के अनुसार उत्तर ओष्ठ, अन्तर्मुख और नयन को छोड़कर शेष चुम्बन स्थलों में दंतक्षत का विधान वर्णित है।[4] साहित्य परंपरा में दंतक्षत का वर्णन मुख्य रूप से अधर पर ही होता है। शेष स्थानों के वर्णन क्वचित् कदाचित् ही प्राप्त होते हैं।[5] यद्यपि दंतक्षत के प्रकारों का भी वर्णन कामसूत्र में प्राप्त होता है किन्तु कवियों ने प्रायः इसका वर्णन नहीं किया है। कामोद्दीपन में दंतक्षत का महत्वपूर्ण स्थान है। कवियों ने इसका वर्णन अधिकतर व्यंग्य रूप में ही किया है। कहीं-कहीं खण्डित अधर पर उत्प्रेक्षाओं के द्वारा दूर

---

१ शुकी चञ्चूत्खात छवि फलयुगं यौवनतरो-
रयं शक्रुक्षुण्णं मन्मथकरिणः कुम्भयुगलम्।
समुद्रं भोगायामृतकलशयुग्ममुकुलितं
कुचद्वन्द्वं तस्या नवनखपदाङ्कं विजयते॥ —शार्ङ्ग० ३३३८।

२ बिहारी २७७ तुलनीय गाथा ११

३ कु० सं० ८।८७ किरात ९।४६, शिशु० १०।८७,९६ श्रीक० १५।१४, १५।३, ३२ पवन० २९ श्री च० ४।७ प्रह्लाद० ४।१५।१८३ ४।२८।६६, ११ कु० म० ४०।२ गीत० २।६।६ ७।१५।३ पद्मावत २७।३०४१ का० नि० १५।५६ १६।२२ १७।६ र० सा० ६७ १२३ २५६ २६६ पद्मा० १४५

४ उत्तरोष्ठमन्तर्मुखं नयनमिति मुक्त्वा चुम्बनवद्दशनरदनस्थानानि॥
—कामसूत्र २।५।१

५ जघन-गाथा ७।५ उरु-गाथा ६।७, कपोल-गाथा १।९६, स्तन-गाथा० २।५०

की कौड़ी लाने का प्रयास भी र्लाक्षत होता है।[१] नखक्षत की तरह दन्तक्षत भी प्रिय के प्रणय का स्मरण दिलाता रहता है।[२] काव्य परंपरा में दन्तक्षत की शोभा के वर्णन प्राय प्राप्त होते हैं।[३]

यद्यपि यहाँ आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत और दन्तक्षत को प्राक् क्रीडा के अन्तर्गत लिया गया है, किन्तु वात्स्यायन के साक्ष्य पर इनका वर्णन रति क्रीडा के पश्चात् भी किया जा सकता है।[४]

रति क्रीडा

मानव की मूल वृत्ति काम के मानसिक संक्षोभ का अन्तिम परिणाम रति क्रीडा है। इसे नायक और नायिका के मानसिक और शारीरिक तादात्म्य का प्रतीक माना जा सकता है। नारी और पुरुष की एक दूसरे के प्रति समर्पित होने की अन्तिम क्रिया रति या संभोग है। भारतीय संस्कृति में इसका धार्मिक महत्त्व भी प्रतिपादित है। सृष्टि क्रम का मूल बीज होने के कारण धर्म अविरुद्ध काम की प्रशंसा की गई। फ्रायड जैसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक प्रत्येक प्राणी के क्रिया-कलाप की अभिवृत्ति काम-वृत्ति से बताते हैं। सामान्या को छोड़कर स्वकीया और परकीया में उभयपक्षीय मानसिक सामीप्य इस क्रीडा में चरमावस्था को प्राप्त होता है।

मानव की विलास भावना ने धीरे धीरे इसके धार्मिक रूप को त्याग कर भोग पक्ष को प्रधानता दी। कालिदास में काम की स्थापना उच्च भावभूमि पर की गई है। वहाँ नारी विलास का साधन नहीं और काम क्रीडा मात्र मनोरंजन नहीं है। कालिदासोत्तर साहित्य में भोग पक्ष की प्रधानता के साथ नारी का रूप विलासिनी मात्र रह गया उसी प्रकार काम क्रीडा भी अभिजात्यवर्गीय मनोरंजन का एक अंग बन गयी। महाकाव्यों में आलिंगन चुम्बनादि प्राक् क्रीडाओं के साथ संभोग का भी खुलकर वर्णन मिलता है।[५]

राधा माधव या गोपी-कृष्ण की अनुरंजक लीलाओं के वर्णन के साथ पुराणों में

---

१ गाथा ५।५८

२ छिनक उघारति छिन छुवति राखति छिनक छिपाय।
भुव दिन पिय खंडित अधर दरपन देखन जाय॥ —बिहारी १६१

३ रघु ६।३२ ऋतु ४।१२ १७ नैषध० १८।८६ शाङ्ग ३७१२ कु म ५७१ काजा ३२३ म स ४ २ बिहारी ३८४

४ चुम्बननखदन्तशन छयाना न पौर्वापर्यमस्ति रागयोगात्। —कामसूत्र २।३।१

५ कु स ८।१७ २ ८।८३ किरात ६।५ शिशु १०।३२ ६०, नैषध० ६।११६ १२ रा० म सुंदर काण्ड ६४ ६१ हनु० २।२८

संभोग और रति क्रीड़ा का वर्णन अनिवार्य रूप से पाया जाने लगा।[1]

इस प्रकार संस्कृत के लौकिक और पौराणिक साहित्य में जिस कामकला की विविधता का अंकन हुआ उसका प्रभाव परवर्ती साहित्य पर पूर्ण रूप से पड़ा। जयदेव की राधा की सखी काम क्रीड़ा के आनन्द की चर्चा करती हुई राधा से कहती है, इस रात्रि में लज्जाग्रस्त दम्पति को किसी रस की प्राप्ति नहीं होती। परस्त्री और परपुरुष भाव से प्राप्त होने वाले नायक और नायिका का आलिंगन चुम्बन फिर नखक्षत तदनन्तर कामोद्रेक फिर सुरतारम्भ सुरत और सुरतान्त में प्रेम तथा सम्भाषण में अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है।[2] जयदेव ने अनेक स्थलों पर सुरतक्रीड़ा का वर्णन किया है। कहीं वाच्य रूप में और कहीं व्यंग्यरूप में।[3] हिंदी के महाकाव्यों और मुक्तकों में शृंगार वर्णन के प्रसंग में रति क्रीड़ा का भी वर्णन सर्वत्र हुआ है।[4] रीतिकाव्य में उपयुक्त साहित्य की परंपरा कुछ तो विलासिक वृत्ति की वृद्धि के कारण और कुछ काव्यशास्त्र के निरूपण के आग्रह के कारण भी मिलती है। बिहारी ने तो रति क्रीड़ा का विवरण देते हुए स्पष्ट ही कहा है—

चमक तमक हाँसी ससक मसक झपट लपटानि।
ये जिहि रति सो रति मुकुति और मुकुति अति हानि॥[5]

इस प्रकार के रति-व्यापार का वर्णन अन्य कवियों में भी द्रष्टव्य है।[6] इसमें प्रेम भावना के उदात्त और साहसिक रूप के स्थान पर बहिरंग रसिकता का ही परिचय मिलता है।

विपरीत रति

वात्स्यायन ने पुरुषायित का विधान उस समय किया है, जब नायक रति क्रिया में थक जाय पर राग की शान्ति न हो। ऐसी अवस्था में नायक के आग्रह से सुरति में उसकी सहायता के लिए अथवा अपने अभिप्राय से अथवा रति की एकरसता को दूर करने के लिए या नायक के कुतूहल के लिए नायिका को पुरुषवद् आचरण करना चाहिए।[7]

---

१ हरिवंश पु० २।२ ।१४ ३५ पद्म पु० पाताल खंड ८३।५६ ५८।
ब्रह्मवैवर्त पु० ४।३।१५ ४।११।१८ ४।२८।७२ ८६ ४।२६।४ १८
२ गीत श्लो० ५ पृ० १ ११
३ गीत ११४।११ २।६।१ १२ श्लो० १ २ पृ० ८६ ६१ श्लो० १ पृ० १७६ श्लो० २
४ ढोला० ५८, ८४ मा० का २।१११ १२ सूर० १ ।१ ६१ ११६१, १२ ०
पद्मावत २७।३३ ३४
५ बिहारी दो १६२
६ म० म० ४६७-६६ ५६१
७ नायकस्य सततात्यासात्परिश्रममुपलभ्य रागस्य चानुपशमम् अनुमता तेन तमधोऽवपात्य पुरुषायितेन साहाय्यं दद्यात् स्वाभिप्रायाद्वा विकल्पयोजनार्थिनी नायककुतूहलाद्वा॥ —का० सू० २।८।१

रति क्रीडाओं के वर्णन प्रसंग में विपरीत रति का वर्णन संस्कृत के महाकाव्यों, पुराणों और मुक्तक रचनाओं में मिलता है। प्राकृत भाषा के ग्रंथों में भी इसके वर्णन मिल जाते हैं। कलाविद् अनुरंजन की प्रधानता के साथ इस वर्णनों की वृद्धि होती गई। रीतिकाव्य की स्थूल शृंगारिकता और विपरीत रति के प्रसंगों को सामने लाकर कुछ आचारवादी या आदर्शवादी आलोचक रीतिकालीन कविता की निंदा करते हैं। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस धारणा का निराकरण करते हुए लिखा है 'रही घोर शृंगारिकता की बात, सो विपरीत रति और सुरतांत के वर्णन संस्कृत और प्राकृत की परम्परा में पहले ही से चले आ रहे थे। फिर भी इन वर्णनों के नाम पर जितनी अधिक इनकी कुत्सा की जाती है उतने अधिक परिमाण में उनके ऐसे वर्णन मिलते नहीं।'[1] रीतिकाल के कुछ कवियों ने विपरीत रति के वर्णन में अलंकारों की झंकार, कुण्डल, चिकुर, हारावलि का हिलना, स्वेद सीकरों से तिलक बिंदी आदि का फैलना और वस्त्राभूषणों का अस्तव्यस्त होना वर्णित किया है। ऐसे वर्णन काव्य परंपरा में नए नहीं हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के साथ रीतिपूर्व हिंदी काव्य से अनेक छंद उद्धृत किए जा सकते हैं।[2] राधा कृष्ण की विपरीत रति का वर्णन भक्तों और रसिकों ने समान रूप से किया है। ऐसे छंद चाहे ब्रह्मवैवर्तपुराण[3] में हों चाहे बिहारी की सतसई में, वर्णन शैली और वस्तु परिगणना में कोई अंतर नहीं पड़ता। बिहारी की नायिका की किंकिनी का कोलाहल और मंजीर का मौन होना[4] हिन्दी के लिए पुरानी बात है। इसके स्रोत हिंदी ही नहीं अन्य प्राचीन साहित्य में भी ढूंढे जा सकते हैं।[5] हिन्दी वालों ने परंपरा पालन मात्र किया।[6]

रति-रण

१ रति क्रीडा का रूपक रण से देना भी एक प्राचीन काव्य परिपाटी थी। कवियों ने नायक और नायिका को विरोधी राजा या सेनापति, कंचुकी को कवच, कटाक्ष को तीर बर्छी या भाला, किंकिनी की ध्वनि को मारू बाजे और सीत्कारादि को

---

१ प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र बिहारी पृ ५७
२ गाथा ५।४६ १।५२ ७।१४ व जा० ३२१ ३२४
३ ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।१५।१५
४ परयो जोरु बिपरीत रति रुपी सुरत रन धीर।
करति कुलाहल किंकिनी गह्यो मौन मंजीर ॥ –बिहारी ३६३
५ शिशु १०।६२ नैषध २।६३ ६४ थीर १५।३५ ६ कु म ८।७४ शाङ्ग० ३१ ५ ३४६७ ३६६६ गीत गो ३ ६ प १६१ ६४
६ सर० १।२०३३ ॥ क १४३ ४४ म स १६७ ६८ ४६४ ६५ ५ ० ५५६ बिहारी ४६४, ५२६, ५६० ५८३ शा० नि ४।२७, १८।४१, प० प्र० ४८ ४६

हुकार के रूप मे वर्णित किया है।[1] उदाहरण-स्वरूप भिखारीदास का एक छद द्रष्टव्य है—

जानु जानु बाहु बाहु मुख मुख भाल भाल,
सामुहैं भिरत भट मानो थरु थरु है।
गाढ़े ठाढ़े उरज ढलत नख घाइ लेत
दाहे ऽिग करन-सजोगी बीर बरु है।
टूट नग छूट बान सिंजित बिरद बोल
ममरन मारू बाज बाजत प्रबरु है।
राधे हरि कोउत अनेकनि समरकला
मानो मडी सोभा औ सिंगार सौं समरु है ॥[2]

कृष्णभक्त कवि सूरदास ने ऐसे वणना म कही दस च द्रमा को एकत्र चित्रित किया है तो कही असख्य ग्रहो को।[3] जायसी ने तो नायिका क विभिन्न वस्त्राभूपणो के टूटने का एसा उल्लख किया है मानो सग्राम भूमि मे शत्रुपक्ष की सेना छिन्न भि न हो गई है—

भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज विधसि विरह सग्रामा ॥
टूटे अग-अग सब भेसा। छूटी माग, भग भए केसा ॥
कचुकि चूर, चूर भइ ताती। टूटे हार, मोति छहरानी ॥[4]

सुरतान्त

इस प्रसग म नायिका के शिथिल अग निमीलित या अर्द्धो मीलित नेत्र, बिखरे केश और कशपुष्प स्वेद, दीघ नि श्वास, पसीने से फले हुए कुकुमादि के तिलक, अव्यव स्थित और टूटे हुए वस्त्राभरण आदि का वणन प्राप्त होता है। रीतिकाव्य के लिए एस वणना के स्रोत सस्कृत प्राकृतादि भाषाएँ एव हिंदी का पूर्वनिर्मित प्रभूत साहित्य रहे हैं।[5] अमरुक कवि ने एक ऐसे ही श्लोक मे उक्त अवस्था का सफल अकन हुआ

---

१ श्रीक १५।२२ गउडवहो ११५३ ५६ कु म ५७२ व जा ३२७
२ शृ नि २४४
३ सूर १ ।१९८६ १९६ १९९८ २ ३२ २ ३५ २।२९
४ पद्मावत २७।३३
५ कु० स ८।८८ ऋतु० ५।७ ५।११ १२ १४ १५ नष १८।११४ २० श्रीक० १५।४० ४६ [illegible] म ३८७ ८८ ३९० गीत २।६।८ श्लो० ४ ष १९२ श्लो० ५ ६ ष १९३ ९४ पवन० ६ गउडवहो ७८८ ११६१ वज्जा ३२८ पद्मावत २७।४२ सूर १०।६९० १९९९ १९९४ २० ९ ११ २ ३४ २।७९ ८० मा० का ५।१२३, वनि० १७४ ७८ २ ७ म० स० ४७८, ५०२

है।[1] पद्माकर का वर्णन बहुत अंश में उक्त श्लोक से साम्य रखता है।[2]

सुरतान्त में जिन दशाओं का वर्णन किया जाता है उनका किंचित् परिचय नायक के पक्ष में खण्डिता के वर्णन में भी मिल जाता है।

विविध विहार

संयोग शृंगार के वर्णन में काव्य परम्परा के अनुसार विविध विहारों के वर्णन का प्रमुख स्थान रहा है। ऐसे विहारों में ऋतुओं की उद्दीपक पृष्ठभूमि पर अनेक क्रीडाओं का आयोजन नागरक वृत्ति की विशेषता थी। वात्स्यायन ने इन ऋतु विहारों का विस्तृत उल्लेख किया है।

फाग-क्रीडा

फाग क्रीडा में इन्द्रिय सुख का सर्वाधिक अवकाश रहता है। सामाजिक विधि निषेध का बन्धन भी इस मदन महोत्सव में शिथिल हो जाता है। परकीया प्रणय लीलाएँ निर्बन्ध हो जाती हैं। रागोद्दीपन में वसन्त का मादक वातावरण पूर्ण योग देता है। वात्स्यायन ने कामसूत्र में नागरकों की विलास क्रीडाओं के वर्णन में फाग क्रीडा के अनेक रूप मिलते हैं।[3] इन क्रीडाओं में से सुवसन्तक को ही जयमंगला टीका में मदनोत्सव कहा गया है। इसमें नृत्य गीत वाद्य आदि का सम्यक् विधान होता है। मदनोत्सव में कामदेव को प्रसन्न करने और अभीष्ट वर प्राप्ति के लिए काम पूजन का विधान प्राचीन साहित्य में प्राप्त होता है। यह उत्सव चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को मनाया जाता है। इस उत्सव का हर्षोल्लास चैत्र पूर्णिमा को अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

---

१ आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं।
किंचिन्मृष्टविशेषकं तनुतरं स्वेदाम्भसां शीकरं।
तन्व्या यत्सुरतान्ततान्तनयनं वक्त्रं रतिव्यत्यये
तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतं ॥ —अमरु० श्लो०

२ कंन कुण्डल जहं झुमत झुनत अलकावलि विनमित।
स्वेदसीकरन मंदित तनक तिलकावलि सुनमित।
सुरतमध्य अति लसत हरप हुलसत चख चंचन।
पद्माकर अपि उझपि उझपि झपि रहत दृगंचल।
नित सो विपरीत सुरति समय ऐस मुख सुख साधक ज सब।
हरिहरविरंचिपुर उरपुर सुरपुर न कहूं आज अब॥ —पद्माकर ज वि० ६१९

३ 'यक्षरात्रि कौमुदीजागरः सुवसन्तक सहकारभंजिकाऽभ्यूषखादिका बिसखादिका नवपत्रिका उदकक्ष्वेडिका पांचालानुयानम् एकशाल्मली यवचतुर्थी आलोलचतुर्थी मदनोत्सवो मदनभंजिका होलाका अशोकोत्तंसिका पुष्पावचायिका चूतलतिका इक्षुभंजिका कदम्बयुद्धानि तास्ताश्च माहिमान्यो देश्याश्च क्रीडा जनेभ्यो विशिष्टमाचरेयुरिति सम्भूय क्रीडा॥ —का० सू० १।४।४२

कामसूत्र में उदकक्ष्वेडिका क्रीडा का उल्लेख बाँस की पिचकारी में सुगंधित जल भरकर प्रियजनों को उसमें सराबोर करने की प्राचीन परम्परा का संकेत देता है। इसका दूसरा नाम 'शृंग क्रीडा' भी मिलता है। फाल्गुन पूर्णिमा को नगरनिवासी पिचकारी से एक-दूसरे पर किंशुक आदि कुसुमों के रंग से युक्त जल को छोडते तथा पटवास का भी प्रक्षेपण करते थे।[१]

रीतिकाल पूर्व भक्त कवियों ने राधा कृष्ण की फाग-लीला का बडा विशद वर्णन किया है।[२] रीतिकाव्य में बहुत कुछ उसी प्रकार फाग का वर्णन मिलता है। इस उत्सव में शृंगार की सामग्री सबसे अधिक उपलब्ध होती है। ऋतु के अनुकूल केसरिया और पीत वस्त्रों की बहार, कोकिल और पपीहे की पुकार, नृत्य, वाद्य, गुलाल केसर और अबीर की झोंनी पिचकारी की फुहार, स्त्री पुरुषों की लपक झपक धर पकड रीझ-खीझ, फाग खेल वस्त्रों की खींचा-तानी, छक-छैल मदन वनी आदि सभी उपकरणों को एकत्र किया गया है।[३] रसिक सामन्तों का यह प्रिय खेल हो गया था। संस्कृत साहित्य में तो मदनमहोत्सव का ही वर्णन मिलता है होली खेलने का क्रम अर्थात् कामदेव का पूजन प्रमुख और रंग गुलाल खेलने का गौण स्थान था। फिर भी रत्नावली नाटिका में कुंकुम अबीर के प्रयोग के साथ चर्चरी नृत्य का वर्णन मिलता है।[४] फाग क्रीडा में प्रिय सान्निध्यजन्य सात्विक भावों के उदय का वर्णन भी प्राय मिलता है।[५]

रीतिकाल में होली का सबसे अधिक और वैचित्र्यपूर्ण वर्णन पद्माकर ने किया है। प्रेम की व्यंजक चेष्टाओं का नादात्मक और चित्रात्मक शैली में पद्माकर ने जैसा वर्णन किया है वैसा फाग क्रीडा के प्रसंग में किसी भी पूर्ववर्ती कवि ने नहीं किया।[६] मतिराम बिहारी और भिखारीदास के चित्र उतने रंगीन और भावमय नहीं हो पाए हैं।[७]

उपवन विहार

संयोगकालिक क्रीडा विनोद में उपवन विहार का विशेष रूप से वर्णन होता

---

१ होलाका फाल्गुनपूर्णिमायां शृंगकाम्भिकनेन किंशुकादिकुसुमरागाम्भसा परस्परोक्षणम्, मिश्र पटवास प्रक्षेपश्च। —का सू जयमंगला टीका पृ ४९

२ छीतस्वामी पद स० ५६ ५७ तुलसीदास गीतावली उत्तरकांड छ० २१ २२ सूर० छ० २८५६ २९२१ न र ४।५६ ६१

३ डा बच्चनसिंह रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना प ३५३ ५४

४ रत्ना १।१९ १८ कु म ८९२ ९०

५ गाथा ४।१२ बिहारी, १४८

६ पद्माकर ज वि १२ ७८ ८९ ९१, १५६ १८७ २०० २३९ ३०१ ३४० ४१ ३४८, ३९९ ४२ ४३८ ४४५ ४५५ ४६४ ४९९ ५०३ ६३ प्रबोध ५९ ६१ पदमाभरण ८३

७ मतिराम ग्र स० ४४७ ४९ बिहारी १९६ ९७ २०२ ३ २ ४१४ भिखारीदास र सा० २५२

रहा है। कालिदासोत्तर शास्त्रीय महाकाव्यों में ऐसे वर्णन प्रायः मिलते हैं जिसमें वसंत के उद्दीपक वातावरण में नायक नायिका किसी उपवन में विहार करते चित्रित किए हैं।[1] श्रीकंठचरित में तो पूरे छठे सर्ग में अप्सराओं और पार्वती के साथ शंकर का उपवन विहार ही वर्णित हुआ है। पौराणिक साहित्य में भी ऐसे प्रसंग आए हैं।[2] वात्स्यायन ने नागरकवृत्त की चर्चा करते हुए उसके उद्यानगमन का भी वर्णन किया है। नागरक की वलासिक क्रीडाओं में से अनेक क्रीडाओं का सम्बन्ध उपवन विहार से है।[3] साहित्य परम्परा में इन उपवन विहारों की चर्चा करते हुए उपवन में बने क्रीडा शैल, क्रीडा सरोवर और प्रेंखादोला का भी वर्णन किया गया है। शुक सरिताएं, मयूर और कोकिल ऐसे वातावरण को और भी उद्दीपक बनाते आए हैं। कभी-कभी गृहाराम में भी इन सब वस्तुओं की चर्चा मिलती है। मेघदूत में यक्ष का गृहोद्यान इसी प्रकार का था।[4] वाल्मीकि रामायण में अशोक वाटिका में राम और सीता के संयोगकालीन विहारों का वर्णन मिलता है।[5] श्रीकृष्ण का तो लीला क्षेत्र ही वृन्दावन था। कुछ पदों में कृष्ण भक्तों ने राधा कृष्ण की मिलन चेष्टाओं के साथ कुंज और उपवन की शोभा का भी वर्णन किया है।

रसिकवृत्ति की प्रधानता के कारण क्रमशः वन विहार से उपवन या गृह वाटिका में विहारों का वर्णन अधिक होने लगा किन्तु रीतिकालीन कवियों ने वाटिका में नायक और नायिका को जाने के कष्ट से भी मुक्ति दिला दी। अधिकांश क्रीडा विनोद रंगमहल में ही सीमित हो गए। फिर भी कुछ कवियों ने प्रकृति के मोह परवश के आग्रह और जहांगीर के बागों से प्रेरणा प्राप्त कर उपवन विहार का वर्णन किया है। उपवन विहार के प्रसंग में पुष्प चयन पुष्पाभरणों के द्वारा नायिका का मंडन पुष्प समृद्धि की प्रशंसा एवं वसंत श्री का वर्णन प्राप्त होता है।[6]

जल क्रीडा

रीतिबद्ध या शास्त्रीय महाकाव्यों में उपवन विहार के साथ ही कहीं-कहीं जल क्रीडा का भी वर्णन प्राप्त होता है। उपवन विहार से थके हुए नायक-नायिका जल क्रीडा के द्वारा अपना मनोरंजन करते हुए पाये जाते हैं। वात्स्यायन ने नागरकवृत्त प्रकरण में उपवन विहार के ही अन्तर्गत जल क्रीडा का वर्णन किया है।[7] जल क्रीडा का वर्णन

---

१ किरात ८।२२ २६ शिशु ७।७ ३७ ७।४७ ५७ नषध १।८ ११८ जी० च ४।८
२ पद्मपुराण पाताल खंड ८३।४३ ५३
३ कामसूत्र १।४।४ ४।४।४२
४ मेघदूत २।१३ १६
५ वा० रा उत्तर कांड ४२।२ १२
६ विक्र १ ।४१ ६० श्रीकं० ८।१४ ५४ क र ३।६ म स० २३१ बिहारी १६६ ४३८
७ कामसूत्र १।४।४१

मुख्यत ग्रीष्म ऋतु म होता है परन्तु कही कही वसत ऋतु की सामान्य गर्मी से विकल होकर भी नायक नायिकाओं की जल क्रीडा का वर्णन मिलता है।

सर-सरिता के तटो पर स्नान के व्याज स परकीयाओ से मिलन स्नान करती हुई नायिका के भीगे वस्त्रो स झलकते अगो का दर्शन, उनकी सलज्ज विलास चेष्टाएँ, गुप्त सकेत या मौन सम्भाषण अनेक काव्यो म वर्णित हुए है। ऐसे स्थलो पर जल क्रीडा का स्वच्छ द अकन नही हुआ है।

प्रिय के साथ जल क्रीडा करन म सयोग सुख अधिक प्रगाढ हो उठता है। नायक-नायिका का जल को विशेष आधातो स एक दूसरे पर उछालना तरना डुबकी लगाना आदि का वर्णन जल क्रीडा म प्राय मिलता है। सस्कृत प्राकृत आदि प्राचीन काव्यो मे सरिता तट क प्रणय व्यापार और जल क्रीडा क अवसर की भी विलासिक चेष्टाएँ वर्णित हुई है।[1]

पुराण साहित्य म भी जल क्रीडा का वर्णन पाया जाता है।[2] कृष्ण की लीलाओ का केन्द्र यमुना का पुलिन प्रदेश रहा है परन्तु जल क्रीडा का जैसा वर्णन सस्कृत के शास्त्रीय महाकाव्यो म मिलता है वैसा पुराणो म नही। पुराणो म इतिवृत्त की प्रधानता होने के कारण ही सभवत जल क्रीडा का विस्तार स वर्णन नही किया गया।

हिन्दी म कृष्ण भक्तो ने कही कुछ पदो म राधा कृष्ण की जल क्रीडा का वर्णन किया है पर विस्तार स नही।[3] डा० मिथिलेश कान्ति न लिखा है, जल क्रीडा प्रसग म माधुरीजी न यमुना क अदर ही एक महल की कल्पना कर ली है जिसम जाकर राधा कृष्ण केलि करत ह। इसी प्रसग म उन्होन नौका विहार का भी उल्लेख किया है। वल्लभ रसिक ने यमुना क स्थान पर सरोवर म जल-क्रीडा का वर्णन किया है।[4]

लगता है रीतिकाल के पूर्व ही जल क्रीडा क वर्णन म कवियो की उदासीनता का कारण जन रुचि का परिवर्तन है। प्राचीन काल म लोग सरिता सरोवरो म ही स्नान करत थ किन्तु धीरे धीरे कुछ तो पर्दा प्रथा के कारण और कुछ शारीरिक श्रम स बचने क कारण लोगो ने नदी तालाब म स्नान करना कम कर दिया था। मुगल बादशाहो मे भी जल क्रीडा क शौकीन कम ही रहे होग। इसीलिए जसे वन विहार की प्रथा मन्द पड गई थी उसी प्रकार जल विहार की भी रुचि कम हो गई थी वरना किसी न किसी रीति कवि ने अपने आश्रयदाता की दानशीलता युद्धवीरता क साथ साथ तराकी की भी प्रशसा की होती और रानियो के साथ जल-केलि की भी।

---

१ रघु १६।५४ ५६ शिशु ८।१७ ३८ गाथा ५।७२ गउडवहो ७ १६१ ६६ विक्र० १०।७० ८६ १२।६१ ७ श्रीक ६।२३ ३२ न० च पु० १८३ ख ८।५७ पवन० १७ ३३ ३५ ८३ जी च ४।१७ २३ कु म० ६८४ ६०

२ भागवत १०।३३।२४, १ १६ ।७ ६ पद्म० पाताल खण्ड ८३।५१ ६

३ सूर १०।११८६ ६५

४ डॉ मिथिलेश कान्ति हिन्दी भक्ति शृगार का स्वरूप पृ १७६

बिहारी और पद्माकर ने जल क्रीडा के वर्णन मे रुचि अवश्य दिखाई है पर वह प्राय एकांगी है केवल अर्थात् नायिका के तरने स्नान करने का ही वर्णन किया गया है।[1] ऐसे वर्णन संयोग शृंगार के नही कहे जा सकते। हाँ जहाँ नायिका नायक को देखती हुई देर तक स्नान करने का बहाना किए बैठी रहती है उस वर्णन प्रसंग को संयोग शृंगार का अंग माना जा सकता है।[2]

रीतिकाल के कवियो ने जल क्रीडा की अपेक्षा नद-नदी के तट प्रदेश पर मँडराने वाले रूप-लोलुप रसिकों का ही अंकन किया है और उससे भी अधिक इन कवियो ने सद्य स्नाताओ का वर्णन किया है। इन वर्णनो की परंपरा यद्यपि प्राचीन साहित्य में सुरक्षित है किन्तु लगता है इन कवियो ने आत्मानुभव के आधार पर ही ऐसे वर्णन किए हैं। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि रीतिकाल के कवियो ने जल क्रीडा का वर्णन किया ही नही।[3]

सद्य स्नाताओ के प्रसंग मे उनके अधखुले अंगो नखक्षतादि रति चिह्नो धुले हुए तिलक काजल अलक्तक बालो से चूते हुए जल बिंदुओ और मण्डनहीन रूप-श्री के वर्णन मे कवियो का विशेष रुचि लेना वलासिक युग-बोध का प्रतीक है। ऐसे वर्णन संस्कृत से लेकर रीतिकाल तक मिलते हैं।[4]

दोला क्रीडा

नागरकवृत्त का वर्णन करते हुए वात्स्यायन ने उसकी वाटिका म सघन छाया मे प्रेङ्खा-दोला का होना आवश्यक माना है। उन्होने चक्र-दोला का भी उल्लेख किया है।[5] संभवत यह चक्राकार घूमने वाला कोई यन्त्र रहा होगा। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है 'प्रेंखादोला की प्रथा वर्षा ऋतु म ही अधिक थी। सुभाषितो म वर्षा ऋतु के वर्णना के अवसर पर ही प्रेंखादोलाओं का वर्णन पाया जाता है।[6] वर्षा की मोहक और रागोद्दीपक पृष्ठभूमि मे हर्षोल्लसित प्रेमियो की दोला क्रीडा का वर्णन संस्कृत प्राकृतादि साहित्यो मे खूब मिलता है। झूला झूलने म स्पर्श के साथ वायुवेग से लहराते

---

१ मंह पखारि मुंडहर भिजै सीस-सजल कर छवाय।
   और उचै घूटन नै नारि सरोवर न्हाय॥ —बिहारी ५२१

२ मुंह धोवति एडी घसति हसति अनगवति तीर।
   धसति न इंदीवरनयनि कालिंदी के नीर॥ वही ५२०

३ पद्माकर ज विo ७७

४ किरात ८।३४ ३६ शिशु ८।५५ ८।६१ ७० गाथा० ६।५५ गउडवहो ७७७ ८७ आर्या० ४ ४ भागवत १०।६०।१० ११ कपूर १।२६ १।२८ २।२४ नीक ६।३३ सूर० १ ।११६६ कवि ८१ बिहारी ४७३ ६७३

५ स्वास्तीर्णा प्रेंखादोला वृक्षवाटिकायां सप्रच्छाया स्थण्डिल पीठिका च सकुसुमेति भवनविन्यास।
   —कामसूत्र १।४ १५

६ डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ ४१

वस्त्रों खुलते अंगों, झनझनाते आभूषणों और प्रमुदित कटाक्षों के साथ नायिकाओं की वैलासिक चेष्टाओं का भी वर्णन किया गया है।[१]

शरद-क्रीडा

शरद रात्रि में जागरण करके क्रीडा विनोद करने का संकेत वात्स्यायन के यक्षरात्रि में कौमुदीजागर से मिलता है।[२] कृष्णलीला में रास का आयोजन अधिकांशत: शरद रात्रि में ही मिलता है। इसलिए रासलीला के वर्णनों को शरद रात्रि की क्रीडाओं में लिया जा सकता है। शेष काव्य साहित्य की परंपरा में शरद क्रीडा का रासेतर वर्णन नहीं मिलता। शरद की रात्रि ज्योत्स्नाधवलित होने से रागोद्दीपक होती है। इसी रात्रि में रीतिकालीन कवियों ने नायक नायिका के विलास और सुरत क्रीडा के वर्णन किये हैं पर वे भी स्वल्पमात्रा में ही हैं। कृष्ण और गोपियों की रास क्रीडा का वर्णन परम्पराबद्ध शैली में ही मिलता है।[३] रूपगोस्वामी ने रास क्रीडा और कंदुक क्रीडा को चारुविक्रीडा नाम दिया है।[४]

अष्टयाम

अष्टयाम के अन्तर्गत उच्च अभिजात्यवर्गीय जीवन के आदर्श पर रसिकतापूर्ण दिनचर्या का उल्लेख मिलता है। चार प्रहर दिन और चार प्रहर रात्रि की अवधि को मिलाकर अष्टयाम की विलास क्रीडाओं का वर्णन किया जाता है। नायक-नायिका की अनवरत प्रवर्द्धमान विलास-तृष्णा के संतर्पणार्थ कवियों ने अष्टयाम का विधान करके उनके सुखपूर्वक कालयापन का नुस्खा तैयार कर दिया। इसका विशेष प्रयोग कृष्ण भक्तों ने किया। उन्होंने अपनी श्रद्धाजुष्ट रचनाओं में आराध्य देव के अष्टकालिक पूजाविधान का वर्णन किया है। यद्यपि इसका मूल ध्येय इष्टदेव के समय समय पर भोग राग उत्थापन शयन पूजा आरती की व्यवस्था देना था किन्तु बाद में कवियों ने उसे अपनी रुचि के अनुरूप वर्णित किया।

---

१ रघु ९।४६ विक्र ७।१६ २७ १।३२ ३६ श्रीक ७।५५ ६६ कपूर २।३ ३७ पद्म ४८ छीतस्वामी प० स० ६२ ६५ बिहारी ७ ९ अ वि २६१ ४ ६ प० प्र ६४ ६७

२ का सू १।४।४२

३ हरिर्नवघनाकृति प्रतिवधूद्वय मध्यत

स्तडिद्विलसदंगजो भ्रमति विभ्रमैरुन्नतो।

वधूश्च तडिदुज्ज्वला प्रति हरिद्वय मध्यत

गभीधृतरसाम्बुजा नटति पश्य रासोत्सवे ॥ उ नी० श्ला ४२ पृ० ४८९

तुलतीय-गोपिन मैंय निसि सरद की रमत रसिक रसरास।

लहाछह अति गतिन की सबनि लखे सब पास ॥ -बिहारी १७३।

४ रासकन्दुकखेलाद्या चारुक्रीडात्र कीर्तिता ।।४२।। उ० नी० पृ २२७

अष्टयाम का सकेत वात्स्यायन के कामसूत्र म मिलता है। उन्होने नागरक की दिनचर्या का विधान किया है। वात्स्यायन ने इस प्रसग म नागरक के प्रात जागन, नित्य क्रिया स निवत्त होकर अनुलेप (सुगधि प्रयोग) करन धूप आदि स वसन को सुवासित करन माला पहनन अलक्तक लगान ओठो पर चिकनाहट के लिए मोम लगाने मुख सुवासित करने के लिए ताम्बूल ग्रहण करन और प्रसाधन की पूणता जानन के लिए दपण देखन का वणन किया है। नागरक दोपहर म भोजन के अनतर शुक सारिका के प्रलापन सुन लावक कुक्कुट मष आदि के युद्ध का दश तथा पीठमद विट विदूषक आदि के साथ मनोरजन करता हुआ शयन कर। पुन तीसरे प्रहर गोष्ठी म जाय। शाम को सगीत का आयोजन करे उसक उपरात रात्रि होन पर वह सुग धित धूप से पूण सुसज्जित शयन-कक्ष म जाकर सहायक के साथ अभिसारिका की प्रतीक्षा करे दूती भेजे या स्वय जाए। प्रिया के आ जाने पर मधुर आलाप स उसका स्वागत करे। उसके सौंदय प्रसाधना के विलुप्त होन पर स्वय उसका मण्डन कर।[1]

कृष्ण और राधा का अष्टयाम इससे कुछ भिन्न है। जसा कि पहल कहा जा चुका है उनके अष्टयाम म पूजा विधि को प्रमुखता दी गई किंतु जब भक्तगण अष्टयाम का गान करने लगे तो श्रद्धेय कृष्ण एश्वयशाली नागरक बना दिए गए। प्रात उत्थापन के पदो मे सुरता त और रात्रि शयन के पदो म सलज्ज रति म लकर विपरीत रति और रति रण तक का वणन किया जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि आराध्य की दिव्य लीलाएँ लुप्त हो गइ और उनके स्थान पर इद्रियोपभोगपरक शृ गारी लीलाओ की प्रमुखता हो गई। खोज रिपोर्टों के साक्ष्य पर प्रमाणित किया जा सकता है कि इसे प्रभूत सामग्री के सकलन को अष्टयाम नाम दकर शृ गारपरक ग्रथो की सख्या मे अतिशय वद्धि की गई। रीति कवियो के फुटकल छदो मे अष्टयाम का आयाम न समा सका अत उ होंने स्वतत्र ग्रथ लिखकर अपनी अष्टयाम-वणन की अभिलाषा पूरी की।

वैभवपरक क्रीडाएँ

शृ गार के सयोग पक्ष के अतगत उक्त विलास क्रीडाओ के अतिरिक्त कुछ अन्य गौण विलास क्रीडाएँ भी आ जाती हैं। समय के साथ इन क्रीडाओ म परिवतन होता गया, फिर भी कुछ अपने रूप मे सुरक्षित हैं। इसी प्रकार कुछ क्लासिक क्रीडाओ म विदेशी प्रभाव के कारण वद्धि भी हुई। इनका सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाएगा।

चोरमिहीचनी (आखमिचौनी)

भारतीय साहित्य म चोरमिहीचनी की प्राचीनता का सकेत हाल की गाथा सप्तशती की एक गाथा से लगता है जिसम शिव का पावती के नेत्रो को अपने हाथो

1 का सू० १।४।१६ २९

मूदने का उल्लेख है।[1] रीतिकाल के पूर्व कृष्ण भक्तो ने चोरमिहीचनी का सुरुचिपूर्ण वर्णन किया है। नैषध चरित मे भी नल का छिपकर दमयन्ती के नेत्रो को बंद कर लेना और दमयन्ती का नल के स्पर्श को पहचानकर मान करना वर्णित है।[2] रीतिकाव्य मे चोरमिहीचनी खेलते हुए नायिका के स्पर्शजन्य सात्विक भावो का रमणीय अंकन हुआ है।[3]

मदपान

मदपान के प्रभाव मे पद-पद पर स्खलित होनेवाली मदघूर्णित नेत्र आरक्त कपोलो वाली नायिका की उद्दीपक चेष्टाए संस्कृत प्राकृत और रीतिपूर्व हिन्दी साहित्य मे वर्णित हुई है। मानिनियो के आगमन की औषध कामदेव का स्पष्ट्र, मान शत्रु और लज्जा संकोच के नाशक आदि रूपो मे इसका वर्णन प्राचीन साहित्य मे पाया जाता है। वाल्मीकि रामायण मे अशोक वनिका मे विहार करते हुए रामचन्द्रजी और सीताजी के मधुमैरेय पान का वर्णन मिलता है।[4] कालिदास से लेकर पद्माकर तक के कवियो ने मदपान का वर्णन करते हुए मदमत्त प्रणयी-युग्म की चेष्टाओ और उनकी रूप शोभा का उद्दीपक वर्णन किया है।[5]

कृष्ण लीला विहार विषयक ग्रथो मे गोपी कृष्ण के लीलाचौर्य का भी वर्णन मिलता है। रूपगोस्वामी ने लीलाचौर्य के अन्तर्गत वशी वस्त्र और पुष्प आदि चुराने का वर्णन माना है।[6] कृष्ण की वशी चुराती हुई राधिका का वर्णन निम्नलिखित है—

> नीचैर्यासदय चरणयोर्नू पुरे मूकयन्ती
>
> धत्वा धत्वा कनकवलयान्युत्क्षिपन्ती भुजान्ते।
>
> मुद्रामक्ष्णो चकितचकित न्यस्य दालोकयन्ती
>
> स्मित्वा स्मित्वा हरति मुरलीमक्ततो माधवस्य॥[7]

---

१ रइकेलिहिअणिअसणकरकिसलअरुद्धणअणजुअलस्स।
रुद्दस्स तइअणअणं पव्वईपरिउम्बिअं जअइ॥ —गाथा ५।५५
नैषध० २ ।११ ९३

३ मतिराम र० रा० छ १६
लाल तिहार संग मैं खेलन खेल बलाय।
मूदत मेरे नयन हौ करन कपूर लगाइ॥ वही २
म० स० ५६ ११७ २१८ २ विहारी ४२३ ३३० ३१६ का नि १२।४

४ वा० रा० उत्तरकाण्ड ४२।१८ २८

५ कु स सर्ग अष्टम् ऋतु ५।१ किरात० ९।५१ ७१ शिशु० ११।४३ ६७ श्रीक १४।८ पद्मपुराण [पातालखड ८३।५४ गाथा ६।५ गउडवहो १६२ ६४ ३६६ ८३६ ११४ ११४५ ४८ उ नी श्लो २१ पृ २८८ श्लो ५३ पृ० ४६२ बिहारी १३१ ३६४ ५०८ ५८६ ६६४ ज० वि० ४८६

६ लीलाचौर्य भवेद्वशीवस्त्रपुष्पादि हारिता॥ उ नी० श्लो० ४७ पृ० ४८१

■ वही श्लो ४८ पृ० ४६१

इसी प्रकार भागवत के माखन व मुरली चुराने प्रसंग को लेकर राधिका की क्रीड़ा का वर्णन बिहारी ने भी किया है :

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनु हँसै दैन कहै नटि जाइ॥[1]

संयोग शृंगार में सखाभिसरण के कारण स्वकीयत्व का कुछ रूप बन जाता किन्तु प्रिय का मान दूर करने हेतु उसका मुख्य रूप रह गया है। इस काव्य में वर्णन किन्तु की अपेक्षा का वर्णन मिलता है।

उक्त गीतादि विलास व उपलब्ध आनन्द का अवसर में अनेक प्रकार का मूल भाव का भी वर्णन मिलता है।[2] यह रस रस की प्रधानता में सुरत क्रीड़ा और रति आदि की भावना मानी थी। कहीं-कहीं नाना प्रकार का वर्णन मिलता है। यह रचना का सामान्य स्तर नायक-नायिका में भावनाशील और परस्पर भी उसका था जिससे समयानुसार प्रकार नाना करता था।[3] रसिकता की वृद्धि के साथ इसका प्रभाव भी बढ़ता गया होगा और इस प्रकार जन का सुख साधन माना जाने लगा होगा। विलासिता के साथ साथ जलक्रीड़ा आदि क्रीड़ायें अधिक प्रचलित हुई। अन्य परिस्थिति प्रहेलिका क्रीड़ा और समस्या विनोद का भी वर्णन कहीं-कहीं पाया जाता है।[4] पद्मपुराण में कंदुकक्रीड़ा का भी उल्लेख मिलता है।[5] रीतिकालीन कविता ने पवन और मधुकर आदि उद्दीपनों का वर्णन किया है जो स्पष्टतः पुराणादि प्रभाव है।

वियोग शृंगार

मानव की मूल वृत्ति काम का आधार प्रेम होता है और प्रिय वस्तु या व्यक्ति का सान्निध्य आनन्ददायक होता है। आनन्द प्रेम की प्रवर्धित दशा है। इस प्रवर्धित दशा को प्राप्त करने के पूर्व और पश्चात् भी प्रायः उस प्रिय वस्तु को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहता है तथा उसे प्राप्त करने के बाद जब उसका किसी कारणवश अभाव हो जाता है तब प्रेमी-व्यक्ति वियोग दुःख का अनुभव करता है। साहित्यशास्त्र में पहली स्थिति को पूर्वराग और दूसरी स्थिति को वियोग कहा गया

---

१ बिहारी दो ४७०

२ प्रमद० ३७ ८२

तुलनीय—मैं मिसहा सोयो समुझि मुँह चूम्यो ढिग जाय।
हँस्यो खिस्यानी गर गह्यो रही गरे लपटाय॥ —बिहारी ४३०

उ० नी० श्लो० ५५ पृ० ४६३

३ गर्ग संहिता २।२।११ उ० नी० श्लो० ६२ व ३५७ श्लो० ५६ पृ० ८०३

४ का० सू० १।४।१२

५ हाला० ५७ मा० का० ५।१७

६ पद्मपुराण पाताल खण्ड ८३।७१-७२ उ० नी० श्लो० ४४ पृ० २२७-२८

सूर० १।११६४ पद्मावत २७।२४ का० नि० १२।२

है। कुछ लेखकों ने वियोग को दुःखकारी और अप्रियावह माना है। इसी आधार पर सयोग शृंगार का स्थायी भाव जहा रति माना है वहा वियोग शृंगार का स्थायी भाव अरति ग्रहण किया है। किंतु तात्विक दृष्टि से विचार करने पर उक्त मत का निराकरण हो जाता है। विप्रलम्भ में यद्यपि दुःखात्मक अनुभूतियो की प्रधानता रहती है किंतु उसका स्थायी भाव अरति कभी भी भाव नही हो सकता। प्रेमी कष्ट झेलता हुआ भी प्रिय का स्मरण और अनुचिंतन नही छोडता। उसमें प्रिय के प्रति आसक्ति और विश्वास की कमी नही होती। अरति संचारी भाव हो सकता है स्थायी नही। वियोग की व्यथा में भी प्रेमी के हृदय में रति भाव विद्यमान रहता है इसीलिए वियोग में भी मनोनुकूल प्रेमी के प्राप्त होने की आशा और सुखसंवेदनात्मक सयोग की स्मृति चाहे वह भूत हो या भावी, निरंतर विद्यमान रहती है। श्रीहर्ष ने इसीलिए चकई-चकवा के नित्य नूतन और प्रवर्द्धमान राग को आदर्श रूप माना है जो वियोग के कारण सयोग की एकरसता को दूर करता रहता है। क्षणिक वियोग या मान की महत्ता इसलिए स्वीकार की गई है कि वह अरति का परिणाम न होकर रति को नित्यनूतनता प्रदान करता है। अत कुछ कवियो द्वारा सयोग की अपेक्षा, वियोग की मधुरता की स्वीकृति समीचीन ही है।

विप्रलम्भ के भेदापभेद का निरूपण सभवत सर्वप्रथम भोजराज ने शृंगारप्रकाश में विस्तृत रूप से किया है। जैसा कि पहले कहा गया है प्रथम मिलन से पूर्व के और सम्मिलन के पश्चात् के वियोग में कुछ अन्तर अवश्य होता है। इस अन्तर या वैशिष्ट्य को दृष्टि में रखते हुए दशरूपककार ने शृंगार के तीन भेद—सयोग अयोग और विप्रयोग किए हैं।[1] वियोग के उपभेदों में कुछ लोगों ने अभिलाष ईर्ष्या, विरह प्रवास और शाप—पांच ग्रहण किए हैं और कुछ ने केवल पूर्वराग मान प्रवास और करुण—चार भेदों को ग्रहण किया है। इनमें अभिलाष और पूर्वराग वस्तुत एक ही है जो धनजय के अयोग का पर्यायवाची है।

१ पूर्वानुराग

इस अवस्था में प्रेमी प्रिय को प्राप्त करने की अभिलाषा से प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में अभिलाषा की तीव्रता आकाक्षा और सकल्प से पुष्ट होकर राग का प्रवर्द्धन करती है। उक्त अभिलाषा दो प्रकार से उत्पन्न होती है—(१) श्रवणजन्य (गुणो के सुनने से) और (२) दर्शनजन्य (प्रिय के प्रत्यक्ष देखने से अथवा चित्र में या स्वप्न में देखने में)[2]। पूर्वराग में केवल अभिलाषा ही नही होती अपितु औत्सुक्य, निर्वेद ग्लानि आदि की स्थितिया भी पाई जाती हैं, ऐसा दशरूपककार का भी

---

१ अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा। —दशरूपक ४।५

२ साक्षात्प्रतिकृतिस्वप्नच्छायासु भ्रान्तिदर्शनम्।
श्रुतिर्व्याजात्सखीगीतमागधादिगुणस्तुते॥ वही, ४।५४

मन है।[1]

डॉ० बच्चनसिंह ने अभिलाष दशा की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए लिखा है *मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभिलाष का संबंध किसी-न-किसी मूलप्रवृत्ति से होता है।* पूर्वानुराग में 'अभिलाष' मूल यौन प्रवृत्ति (सेक्स इंस्टिंक्ट्स) से सम्बद्ध है। किसी के गुण-श्रवण या दर्शन से मन में एक क्रियात्मक प्रेरणा (इम्पल्स) उत्पन्न होती है। यह क्रियात्मक प्रेरणा अभिलाष को जन्म देती है। इसके अनन्तर सामाजिक अवरोध या व्यवधान नायिका के मन में अनेक प्रकार के संवेगों (इमोशन्स) को जन्म देते हैं। इन सभी संवेगों में बेचैनी (अनइज़ीनेस) मूल रूप से संनिविष्ट रहती है।[2] वास्तव में कामदशाओं में इन्हीं संवेगों की प्रमुखता रहती है। भारतीय साहित्यशास्त्र में अनुसार इन्हें अभिलाष चिंतन अनुस्मृति गुण-कीर्तन उद्वेग प्रलाप उन्माद, व्याधि जड़ता और मरण नामक दस अवस्थाओं में अन्तर्भुक्त किया गया है।[3] कुछ लोग इनका निबन्धन अन्य नामों से करते हैं जैसे चक्षुप्रीति मनसंग स्मरण निद्राभंग तनुता, व्यावृत्ति लज्जानाश उन्माद मूर्च्छा तथा मरण।[4] इनमें चक्षु प्रीति और अभिलाष वास्तव में एक ही दशा है। मन संग और चिंतन या चिंता तत्त्वतः एक हैं। व्यावृत्ति और मरण के अनुस्मृति में कोई अंतर नहीं है।[5] लज्जानाश, उन्माद की ही एक अवान्तर दशा मानी जा सकती है। तनुता और व्याधि भी एक ही हैं। इन दशाओं में विरही की शारीरिक और मानसिक दोनों अवस्थाओं का सम्यक उदघाटन होता है।

इस संदर्भ में मुग्धा वियोगिनियों की दशा बड़ी विचित्र होती है। वे अपनी चक्षु प्रीति को लज्जा के कारण प्रकट नहीं कर पाती। ऐसी स्थिति में उनकी सखियाँ कामदशा की अवाप्ति को रोग समझकर कभी कोई उपचार करने लगती हैं और कभी ताप आदि के उपशमन के लिए शीतोपचार की व्यवस्था में लग जाती हैं। काव्य ग्रंथों में शीतोपचार की लम्बी सूचियों का प्रयोग प्रायः पाया जाता है। रीतिकाव्य में तो ऐसे विवरण अनेक स्थलों में मिलते हैं। रीतिकवियों को वियोग की इन दशाओं के वर्णन में कवि शिक्षा संबंधी पुस्तकों से पर्याप्त सहायता मिली होगी इसमें दो मत नहीं हो

---

१ दृष्टे श्रोऽभिलाषात्त्व कि नौत्सुक्यं प्रजायते।
अप्राप्तौ किं न निर्वेदो ग्लानिः किं नातिचिन्तनात् ॥ वही ४।५६ ५७

२ डॉ० बच्चन सिंह रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना पृ० १६४

३ दशावस्थः स तत्राभिलाषोऽथ चिन्तनम् ॥
स्मरणं गुणकथोद्वेगप्रलापोन्मादसंज्वराः ।
जडता मरणं चेति दुरवस्थं यथोत्तरम् ॥ —दशरूपक ४।५१ ५२

४ चक्षुःप्रीतिर्मनःसङ्गः सङ्कल्पोत्पत्तिरतिः ।
प्रनाशो जागरः कार्श्यमरतिर्विषयान्तरे ॥
लज्जात्यागस्तथोन्मादो मूर्च्छा मृत्युः ।
मरणं धनिविज्ञया क्रमेण प्रेम पुष्यम् ॥ वही २।९६ १ ०

५ नाट्यशास्त्र २४।१६५

सक्त। कविकल्पलता में वियोगदशा के अन्तर्गत वर्णित होने वाली स्थितियों का निरूपण करते हुए लिखा गया है कि इसमें ताप निःश्वास, चिन्ता, मौन, कृशांगता, वर्ष की गणना, रात्रि की दीर्घता, जागरण, शीतलता की उष्णता आदि का वर्णन होना चाहिए।[1]

२ मान

आचार्यों ने मान के प्रणयजन्य और ईर्ष्याजन्य दो भेद किए हैं।[2] प्रणय मान निर्हेतुक होने के कारण यद्यपि तात्विक दृष्टि से वियोग के अन्तर्गत नहीं आ सकता, किन्तु विद्वानों ने इसे भी वियोग में गृहीत किया। नायकगत, नायिकागत या उभयगत मानकर इसके तीन भेद किए हैं। ईर्ष्यामान सहेतुक होता है। इसका कारण प्रिय का अपराध माना जाता है। प्रिय के अपराध को सूचित करने वाली नायिका की चेष्टा विशेष को मान कहते हैं।[3] शिंगभूपाल ने निर्वेद, अवहित्था, ग्लानि, दीनता, चिंता, चपलता, जड़ता और मौन आदि को इसका संचारी माना है।[4] यह तीन प्रकार का होता है—लघु, मध्यम और गुरु। अल्प प्रयास से अपनेय मान को लघु कहते हैं। कष्टतर और कष्टतम प्रयास से दूर होने वाले मान को क्रमशः मध्यम और गुरु माना जाता है।[5] भानुदत्त ने चौथे प्रकार के असाध्य मान को रसाभास माना है।[6] काव्य ग्रंथों में उक्त तीन प्रकार के ही मान पाए जाते हैं। दूसरी स्त्री को देखने हुए देखने पर लघु, गोत्रस्खलन से मध्यम और दृष्ट समोग या भोगाक स्थान के कारण उत्पन्न होनेवाला मान गुरु होता है। हँसी विनोद के द्वारा मनोरंजन करने पर लघु मान दूर होता है, मध्यम मान पुनः वैसा अपराध न करने की बात कहने अथवा नायक के शपथ लेने पर समाप्त होता है और गुरु मान मानिनी नायिका के चरणों पर गिरने से या उसे भूषणादि देने से दूर होता है।[7]

३ प्रवास

प्रवास के हेतु का निरूपण करते हुए धनंजय ने इसे तीन प्रकार का माना है—१—कार्यवश २—भ्रमवश अथवा ३—शापवश।[8] यह कार्यवश प्रवास भी तीन

---

१ विरहे तापनिःश्वासचिंतामौनकृशांगता।
अब्दसंख्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्णता॥ —कविकल्पलता १।३।२७

२ मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययोः। —दशरूपक ४।५८

३ प्रियापराधसूचिका चेष्टा मानः। —रसतरंगिणी (चौ) पृ० ४३

४ रसार्णव सुधाकर (त्रिवेन्द्रम संस्क०) पृ० १८१।

५ स च लघुर्मध्यमो गुरुश्च। अल्पापनेयो लघुः कष्टतरापनेयो मध्यमः कष्टतमापनेयो गुरुः।
— रसमञ्जरी पृ० ४३

६ असाध्यस्तु रसाभासः। वही पृ० ४३

७ वही पृ० ४३

८ कार्यतः सम्भ्रमाच्छापात्प्रवासो भिन्नदेशता। दशरूपक ४।६४

अवस्थाओं में विभक्त किया गया है—१—भावी २—भवन और ३—भूत ।[1] अर्थात् प्रवास की सम्भावना, तज्जन्य उद्विग्नता और सम्पन्नता जिसे क्रमशः यास्यत्प्रवास, गच्छत्प्रवास और गतप्रवास कहा जा सकता है। हिन्दी रीतिकवियों ने यास्यत्प्रवास या भावीप्रवास और गच्छत्प्रवास या भवन प्रवास का अन्तर स्वीकार न करते हुए केवल दो भेदों को ही स्वीकार किया है। भावी प्रवास का तात्पर्य प्रवास की सम्भावना से है जिसमें अवधि या प्रवास के क्षण की दूरी निश्चित रहती है किन्तु भवन में वह क्षण समुपस्थित होता है। इसमें प्रिय जाने को उद्यत रहता है और भावी में भविष्य में जाने वाला होता है। पूर्वानुराग में निरूपित दस दशाएँ इसमें भी होती हैं।

प्रोषितपतिका के अश्रु, निःश्वास, कार्श्य और अप्रसाधित केश-कलाप का वर्णन किया जाता है। याज्ञवल्क्य ने प्रोषितपतिका के आचरण को नियमबद्ध करते हुए लिखा है कि उसे क्रीड़ा, शरीर का अलंकरण, सामाजिक उत्सवों का दर्शन, हास और परगृहगमन नहीं करना चाहिए।[3]

भारतीय साहित्य में प्रवासजन्य वियोग की कुछ रूढ़ियाँ हैं जैसे सन्देशप्रेषण, पत्र-लेखन, उद्दीपक तत्वों के प्रति उपालम्भ और चित्र-लेखन। इन रूढ़ियों के प्रयोग का अवकाश गत प्रवास या प्रोषितपतिका के वर्णन में ही अधिक रहता है। पूर्वराग और मान में वियोग दशाओं का विस्तार प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार अस्वाभाविक हो जाता है। मिश्रजी ने लिखा है— पूर्वराग में उत्कट अभिलाष मात्र रहता है इसलिए वेदना का विस्तार दिखलाने की जगह वहाँ नहीं रहती। जो लोग ऐसा जानते हुए भी पूर्वानुराग में ही नाना प्रकार की व्याधियाँ खड़ी कर दिया करते हैं वे प्रेम के स्वरूप को ठीक नहीं समझते। मान भी घर के घेरे के भीतर होता है, इसलिए उसमें भी वेदना का बढ़ा चढ़ा रूप ठीक नहीं। संचारियों की भाँति मान का कोप भी संचरण करता रहता है।[4] किन्तु सामान्यतः पूर्वानुराग में भी विरह दशाओं का वर्णन पाया जाता है।

कतिपय वर्णन रूढ़ियाँ

वियोग शृंगार का सामान्य परिचय देने के बाद सम्प्रति वियोग वर्णन की कुछ रूढ़ियों की चर्चा की जाएगी। रुद्रट, कविकल्पलताकार के अनुसार वियोग में वर्णित कतिपय रूढ़ियों का उल्लेख किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी वर्णन रूढ़ियाँ हैं। यहाँ उन सभी रूढ़ियों की परम्परा का परिचय दिया जाएगा।

१ गुणकथन [illegible] होना वियोग की अवस्था में ही सम्पूर्ण

---

१ [illegible] ॥ वही [illegible]

२ [illegible] ॥ —[illegible]

३ क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति १।८४

४ प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का [illegible] ३२५ ।

विरहोद्दीपक हो जाती हैं जो संयोग की दशा में सुखद होती हैं।[1] यहाँ तक कि शीतल घनसार भी तापदायक प्रतीत होने लगता है।[2] विरही की मन:स्थिति ही ऐसी हो जाती है कि उसे सारी प्रकृति विपरीत दिखाई पड़ती है। संयोग शृंगार में नाना विलासों का जो दीक्षागुरु[3] और 'अनेकसुरतसमागमनाम्य लीलोपदेशोपाध्याय'[4] का सम्मानित पद प्राप्त करनेवाला वासन्त है वही वियोग की स्थिति में निर्दिन आवरण वाला पिशाच[5], व्याघ्र[6] चाण्डाल[7] धूर्त[8] दलाल[9] और इन्द्रजालक[10] के रूप में दिखाई देता है। विरहिया ने उसकी भर्त्सना करते हुए उसे उपालंभ भी कम नहीं दिए हैं। संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और रीतिकाल के पूर्व हिन्दी साहित्य में इस अनेक उपालंभों का वर्णन है जिसकी परंपरा रीति काव्य में भी अक्षुण्ण दिखलाई देती है।[11] कामदेव ही नहीं उसके प्रिय मित्र बसंत की भी कम भर्त्सना नहीं हुई है। जिसे जितना सम्मान मिलता है उस विपरीत दशा में उतना ही अपमान भी। बसंत को रागोद्दीपक होने के कारण ही काम राज्य का प्रधान मन्त्री[12], संधि विग्रहिक[13] ऋतु कुलपति[14] शृंगार मन्त्री[15] काम सेनापति[16], योद्धा[17] आदि का पद प्रदान किया गया है किन्तु विरही या विरहिणी के लिए वह ठग या बटपरा[18] एवं वधिक[19] के समान मालूम पड़ता है। कामसंदेश

---

१ यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे।
तान्येवारमणीयानि जायन्ते मे तया विना॥ —वा रा किष्कि १।१७०

२ भर परम कर हियौ खर जर पर जार।
नावति धारि गनाव सा मल मिन घनसार॥ — विहारी ३

३ शाङ्ग प० ३४४४ ३६७० वि० प ६२।१२ अ त्रि ३५६

४ कादम्बरी प० ४२६

५ वही प ४८१ स० क० ५।६७ शा० प ३३४६

६ वि प० ५७।२ सूर० १०।१७०२ म म० ६३५ विहारी १३४ ३५

७ गाउ सत्ता ३ प० १५७ प्रा प्र २।१६५

८ नीक १५।१७

९ वि प ४८।८

१० वही ३२।२ म स २१५ का नि० १७।२०

११ प्र शा० ३।६ मालवि ३।२ का० प ४७१ नपद्म ४।७५ हन ५।२२ नागा पू ३८ २।७ रत्ना० २।१ जी प ४।३१ सु० प० ५।१ छिताई ४१५ ६१४

१२ विक्र ७।३६ वलि० २३६

१३ श्रीक ६।४ ६।२६

१४ नीक० ७।१२

१५ विक्र १।१६

१६ विक्र १।१० रत्ना १।१७ १८ श्रीक ६।८

१७ ऋतु० ६।१ ६।२७ २८

१८ श्रीक० ६।३३

१९ ज वि० २५६, ५ ४ प० प्र० ५८

वाहक[1] मान निवारण म पण्डित[2] प्रिय सगी[3] कोयल वियोग की दशा म कटारी[4] पापिनि[5] और कसाइनि[6] बन जाती है। पलाश को किसी विरहिणी ने कामदेव की लाल आँखो[7] की तरह देखा तो किसी को दावाग्नि[8] का भ्रम हो गया। कामदेव का सदेशवाहक[9], अगरक्षक[10] और उसका सम्मोहन मत्र जपनेवाला[11] भ्रमर, कामाग्नि का धूम[12], यम का काला नागपाश[13], मानच्छेदक कृष्ण कृपाण[14] आदि की तरह त्रासदायक हो जाता है।

वसत ऋतु से ही थोडी थोडी गर्मी पडने लगती है। सयोगियो के लिए रातें कामोद्दीपक और सुखद लगने लगती है। इसीलिए वसत ऋतु के प्रारभ होते ही शुभ्र ज्योत्स्ना धवलित रात्रि म चन्द्रमा मकरकेतु के श्वेत छत्र[15] की भाति शोभित होने लगता है। स्मरचमू के श्रेष्ठ योद्धा[16] शृ गार दीक्षागुरु,[17] शृगार बधु[18] शृगार सजीवन,[19] मन्मथ सम्प्रदाय के दीक्षागुरु[20] चन्द्र को देखकर वियोगिनियाँ विकल हो जाती हैं। कोई स्वय राहु बनकर उसे ग्रसने की कामना करती है[21] तो कोई राहु की सामर्थ्य वृद्धि के लिए प्रार्थना[22] करती है। कोई विरहिणी अपनी सखी से कहने लगती है कि वह चन्द्ररथवाहक हरिणो को तमाल किसलय खिलाए जिससे उनकी तोद बढ जाय और चन्द्रमा उससे ढँक

---

१ रघु० ६।४७
२ श्रीक० ६।१४ १६
३ शाङ्ग ग ३७६६
४ बिहारी ४४२
५ का नि० १५।२५
६ अ वि ३८३
७ श्रीक ६।१६
८ रघु ६।२१ शिशु , ६।२१ बिहारी ४२६ म० स ५८५ ।
९ शाङ्ग ग २७६५
१० श्रीक ६।४६
११ काव्य शप ४५४
१२ श्रीक ६।४५ ७।२५
१३ वही ७।३२
१४ हनु २।५
१५ वा० रा अयोध्या ४।३७ वासवदत्ता पृ ८५ का० पृ० ४८१ शाङ्ग ग ३६४१ ३६४४
श्रीक १२।८ विक्र ११।६४ म स ५५६ बिहारी ४६
१६ श्रीक ११।१२
१७ शाङ्ग ग ३६३६
१८ श्रीक १२।६४
१९ श्रीक० ११।६५
२ शाङ्ग ग ३७२१
२१ का नि० १५।३१
२२ नप० ४।६४-७१

जाय ।[1] किसी प्रोषितभर्तृका को वह यमराज[2] की तरह दिखाई पडता है तो किसी को कसाई[3] की तरह। चांदनी ज्वाला,[4] बिच्छू के डंक[5] और चन्द्र किरण मरिच[6] की तरह लगती है।

काम मित्र,[7] केलि सूत्रधार[8] और काम के वेगवान रथ[9] मलयानिल को विरहिणी अग्नि-सा दाहक,[10] गरल[11] यमराज,[12] त्रिशूल एवं अहिमग्गी[13] मानती है। किसी पथिक वधू के लिए वह यम दिशा से आनेवाले काम-सर्प का फूत्कार सा लगता है[14] तो किसी विरहिणी के शरीर पर अग्नि की वर्षा करने वाला।[15] यही नहीं वियोग की अवस्था में आभूषण बंधन,[16] माला जाल[17] और मारुत[18] चंदन विष,[19] इंधन[20] और अग्निवत[21] शय्या हुताश[22] और बाणवत[23] निःश्वास द्रौपदी के चीर[24] और प्रलय अनिलवत[25] एवं प्राण अधम तिथि[26] की तरह (होते हुए भी न होने के समान) लगने लगते हैं।

---

१ नय ४।५६
२ श्रीक ११।५४
३ का नि १३।५
४ म स० ३७१
५ र० रा ४१४
६ म स० ७१
७ श्रीक ६।४४
८ श्रीक० ७।४
९ वही १२।७
१० वा रा किष्कि १।५४
११ गीत ४।८।२
१२ शा० ग० ३८११
१३ का० नि १३।११ र० सा० २६८
१४ श्रीक० ७।२४
१५ वही ७।४
१६ महापुराण २२।६
१७ गीत ४।८।१०
१८ गीत ४।६।१
१९ वही ४।६।२ ६।१८।३
२० महापुराण २२।६
२१ वही ७३।३ ८
२२ गीत ४।६।६
२३ पृ रासो २५।११६
२४ का नि १ ३
२५ म म ५४८
२६ बिहारी १४०

२ विरह व्यथा की अधिकता के कारण विरहिणी का मृत्यु को उपगत मानना[1] कहीं कहीं विरही या विरहिणियों की मरण दशा का भी वर्णन हुआ है।[2]

३ प्रिय के समीप रहने पर युग क्षण की शीघ्रता से व्यतीत हो जाते हैं किन्तु प्रिय के वियोग में व्यथापूर्ण समय कटे नहीं कटता। कवियों ने इसीलिए विरहिणी के कष्टपूर्ण दिनों की दीर्घता का वर्णन किया है।[3] नायिका ने विरह के दिन को ग्रीष्मऋतु के दिन और रात्रि को हेमन्त की रात्रि के समान लम्बी बतलाया है।[4] ऐसे ही भाव बिहारी के कई दोहों में वर्णित हैं।[5] गंग महिला और सेनापति के कवित्त रत्नाकर में अवधि दीर्घता प्रायः इसी प्रकार से अप्रस्तुत द्वारा वर्णित है।[6]

४ प्रिय के वियोग में विरहिणी को नींद भी नहीं आती। नींद न आने से प्रिय के स्वप्न में भी दर्शन होने की सम्भावना नहीं रह जाती इसलिए विरहिणी की व्याकुलता और भी अधिक बढ़ जाती है यदि नींद आ भी जाती है तो प्रिय का स्वप्न नहीं आता, यदि स्वप्न भी आता है तो वह पूरा नहीं हो पाता और बीच में ही नींद टूट जाती है। उक्त भावों को विरह वर्णन के प्रसंग में प्रायः अनेक कवियों ने निबद्ध किया है।[7]

५ विरहियों के सम्मुख प्रिय के समीप सन्देश भेजने की समस्या बड़ी कठिन होती है। वहां तो विरहिणी स्वयं ही आत्मग्लानि से भरकर कह उठती है कि जिस प्रिय के प्रवास करते ही उसीके साथ मैंने प्रयास नहीं किया और न जिसके वियोग में मैं मरी ही उस प्रिय को सदेश देते हुए मैं लज्जित होती हूं।[8] और कहीं कागज पर उससे लिखत नहीं बनता और सदेश कहने में लज्जा मालूम होती है।[9] इसी प्रकार के भाव अन्यत्र भी व्यक्त किए हैं किंतु फिर भी पत्र लिखना पड़ता है, सदेश देना पड़ता है।[10]

---

१ शाङ्ग प० ३४०४
तुलनीय–कहा कहौं वाकी दसा हरि प्रानन के ईस।
विरह ज्वाल जरिबो लखै मरिबो भई असीस॥ —बिहारी ८७

२ मा० भा २१२ रत्ना० २१९ ह स० २।३६ ज वि ६२३

३ मेघदूत २।२६ २।४५ ह स २।३३ वज्रा० ३९४ क० र ३।३२ ३।४७ बिहारी ४७८

४ नैषध ११४१
तुलनीय–जातें सब हुते माह की राति निसाथ के घीम की भानु भजावते। का० नि० ११।२१

५ बिहारी १६५ २६६

६ पश्यन्तीना कृष्णमाण नेत दु खयन मकम्।
प्रवधि पादविलप बामनस्य कराति हि॥ —गंगे स २।१८।१२
तुलनीय—बीती अवधि आवन की सार मनभावन की
डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥ —क र ३।२८

७ [illegible] शा० ६।२५ मेघदूत २।२८ विक्रमो २।१० शाङ्ग प ३४३४ [illegible] क ६४८

८ सन्देश रासक २।७०

[illegible] शाङ्ग प० ३४७७ तुलनीय बिहारी, ६६

१४ क० पृ० ६३७-६८ मा भा ६।६२४ ३०

६ वियोग की अवधि की दीर्घता और बीतते हुए यौवन की अस्थिरता के लिए विरहिणियाँ प्राय पश्चात्ताप करती हुई वर्णित की गई है।[1]

७ विरह म प्रमग म वियोगिनियों के विरह-ताप का वर्णन प्राय ऊहात्मक ढंग से किया गया है। दमयन्ती के शीतलोपचार के लिए जो ताजे कमल-पुष्प हृदय पर रखे जाते थे वे तापाधिक्य के कारण क्षण भर में ही सूख जाते थे।

८ वियोग को प्रेम का पोषक माना गया है। रूपगोस्वामी सभोग की पुष्टि के लिए वियोग को आवश्यक मानते हैं जैसे रंग पक्का करने के लिए वस्त्र का कषायित होना आवश्यक होता है।[3] इसीलिए वियोगावस्था में विरही की देह ज्यों ज्यों क्षीण होती है अनुराग पुष्ट होता है।[4]

९ वियोगी को प्रिय की प्रत्येक वस्तु प्रियवत् लगती ही है[5] कहीं उसका प्रणय-पत्र मिल जाय तो विरही क्षणभर को आनन्द विभोर हो उठता है।[6] प्रिय सन्देश विरहिणी के लिए जीवनोपयोगी होता है।[7]

१० वियोगी को सर्वत्र प्रिय ही दिखलाई पडता है। ऐसा वर्णन अनेक कवियों ने किया है।[8]

११ काव्य परम्परा के अनुसार वियोगियों को प्रियविहीन [illegible] वस्तुओं के दुखद लगने का वर्णन है — चन्द्र[9] प्राण[10] मन नेत्र प्रिय[11] बादल[12] पपीहा चन्द्र[13] आदि का उपालम्भ देते हुए भी वर्णित किया गया है।

१२ वियोग में भी मिलन की आशा में वियोगिनियाँ प्राण-त्याग नहीं कर

---

१ घा० रा युद्धकाण्ड ५।५ सू म० ६७७ ढोला० ११५ २२ १७० ७८
२ इमर नागनागिनियों तथा बहु मद्ग सरस सरगाद्रुम।
अभिनुम्नमये करम रगा [illegible] ॥ —नैषध ४।२६
तुलना । र म [illegible] ४२ म म० ५२१ २२ विहारी ५५
३ न विना विप्रलम्भेन सम्भोग पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान रागो विवर्धते ॥ ■ उ नी० पृ० ४१६
४ तुलनात्मक गाथावली विष्णु द म म० ९२८ विहारी १३०
५ ह० वा प ७ विक्रमो २।१४ म० मा ३।२६ रत्नावली ४।४
६ विक्रमो २।१४ न० च पृ० १७१ गाथा स० ४।१५।१ ह० र० ८।६
७ वा रा सुन्दरकाण्ड ६६।१४
८ अ ज पुनरपि [illegible] पुरओ [illegible] मत्तो।
तुह पडिमापडिवाडि वहइ व्व सयल दिसाभोओ ॥ गाथा ६।३०
समस० १०२ सुन्दर वामि प ७३ मा मा ११४१
९ अ शा ६।७ रा द प ४६४ रत्ना पृ० ५२ ५४
१० का० पृ० ४६३ र गा ४।३ ढोला ३७१
११ का० पृ० ६५८ म० स० २०६ ३७६
१२ म स ४।१६
१३ का० पृ० ४८१

पाती अथवा उनके प्राण पुर्नमिलन की आशा में अटके रहते हैं। इसी दशा का वर्णन रीतिकाव्य में भी विरह-वर्णन की रूढ़ि निर्वाह के कारण प्राप्त होता है।[1]

१३ प्रिय मिलन की उत्कंठा से वियोगिनी प्रिय के आने की अवधि गिना करती है।[2] कहीं-कहीं अवधि बीतने पर भी प्रिय के न आने से व्याकुल विरहिणी का चित्रण मिलता है। कहीं कहीं वह शकुन विचारती हुई भी अंकित की गई है।[3]

शृंगार रस के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग के शास्त्रीय और परंपरित रूप की चर्चा के अनंतर इसके कुछ अंगों का वर्णन किया जाएगा जिनके स्वतन्त्र रूप से पल्लवन की परंपरा प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत नायिका भेद, नखशिख, षड्ऋतु बारहमासा, अष्टयाम आदि के ग्रंथ आते हैं। रीतिकाल में उक्त विषयों पर अनेक स्वतंत्र ग्रंथ लिखे गए एवं रीति निरूपक ग्रंथों में मुक्तक छंदों के उदाहरण भी दिए गए। सम्प्रति नायिकाभेद की प्रवृत्ति के हेतुओं की विवेचना करते हुए उसके स्वरूप का परिचय दिया जाएगा।

नायिकाभेद हेतु और स्वरूप

नारी सामाजिक एवं साहित्यिक परिप्रेक्ष्य—नारी के प्रति भोगप्रधान दृष्टिकोण केवल रीतिकाल में ही नहीं पाया जाता अपितु प्राचीन साहित्य में भी इसके संकेत मिलते हैं। आचार्य भरत ने सुखभोग का केन्द्र नारी को माना है। उनकी यही मान्यता नायिका भेद के निरूपण में भी है।[4] नायिका के भेद प्रभेदों के निरूपण में काव्यशास्त्रीय विधान के मूल में भी उसी विचारधारा का परिचय मिलता है जिसका स्रोत कामशास्त्र था। इसीलिए कुछ काव्यशास्त्रियों ने भी स्पष्टतः कामशास्त्रीय भेदों—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी का उल्लेख किया है।

कालिदास के काव्य में वैदिक प्रभाव के कारण नारी का सहधर्मचारिणी रूप उभर कर आया है किन्तु उसमें भी उसे पुरुष की वशवर्तिनी ही सिद्ध किया गया है। लगता है कालिदास के पूर्व ही उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व लुप्त हो गया था। प्रिय से उपेक्षित होकर भी नारी की गति पति को छोड़कर अन्यत्र नहीं थी। तभी तो शकुंतला के लिए शार्ङ्गरव राजा दुष्यन्त से कहते हैं यह आपकी पत्नी है चाहे इसे ग्रहण करें या त्याग दें,

---

१ आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां।
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ —मेघदूत १।१
भा भा ६।२६ के र २।६७

२ शेषा मासा विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा।
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ॥ —मेघदूत २।२४
भ शा ६।१३ के जा ३७७ ७१ के० र० २।६१

३ के० र० २।६१ र सा० १४३

४ भूयिष्ठमेव लोकोऽयं सुखमिच्छति सर्वदा।
सुखस्य हि स्त्रियो मूलं नानाशीलाश्च ताः पुनः ॥ —ना शा २२।६६

क्योंकि पत्नी पर पति की पूरी प्रभुता होती है।"[1] और शकुन्तला से कहते हैं, 'यदि जैसा दुष्यन्त कहते हैं, तुम वैसी ही हो तो तुम जैसी कुलटा से क्या प्रयोजन ! किन्तु यदि तुम अपने को पवित्र जानती हो तो पति के घर तुम्हारा दासीवत् भी रहना उचित है।'[2] नारी की इस विवशता और सामन्ती भोगवृत्ति के कारण उस समय में ही बहुविवाह-प्रथा प्रचलित हो गई थी। आभिजात्यवर्गीय सुखोपभोग के उपकरण के रूप में दिनानुदिन नारी का स्थान प्रमुख होता गया। उसके धार्मिक महत्त्व का तिरोभाव और सामाजिक उपेक्षा ने धीरे धीरे नारी के अधिकार की सीमा अत्यन्त संकुचित कर दी। विलासिक मनोरंजन की वृद्धि ने उसके मातृत्व और भगिनीत्व को अपेक्षा कामिनीत्व को ही प्रमुख माना। डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने नारी के प्रति पुरुष की इस मनोवृत्ति का विश्लेषण करते हुए लिखा है "पुरुष ने स्त्री को सदा अपनी भावनाओं के अनुकूल देखा। एक 'स्त्री' शब्द ही ऐसा है जो अपनी मूल अर्थ स्थिति में है, अन्यथा इसके जितने भी काव्योपयुक्त पर्याय या समानार्थक शब्द हैं सब पुरुष की भिन्न भिन्न भावनाओं के द्योतक हैं। पुरुष की सौम्य लिप्सा ने स्त्री को सुन्दरी, रमण प्रवृत्ति ने रमणी, कामना ने कामिनी, प्रेम ने प्रिया, प्रमिका या प्रणयिनी, विलास ने विलासिनी और इस प्रकार अनेक प्रवृत्तियों ने उसके अनेक रूप दिये हैं।'[3] यदि रीतिकाव्य में नारी के विभिन्न पर्यायों को देखा जाय तो वे अधिकतर पुरुष की विलास-वृत्ति से ही सम्बद्ध मिलेंगे। श्री सुधांशु ने पुरुष की प्रवृत्ति के अनुसार नारी रूप का विवेचन प्रस्तुत करते हुए उसके सुनयना, सुलोचना, मृगनयनी, कृशांगी, नितम्बिनी, सुहासिनी आदि नामों को उसके आंगिक सौन्दर्य एवं गजगामिनी, मृदुभाषिणी, सुहासिनी आदि नाम उसके गुण या धर्म को लक्षित करने वाले बतलाये हैं।[4] नारी की मोहक विलासिक चेष्टाओं पर भी उसके कई नामकरण किए गए हैं जो पुरुष की भोगवृत्ति के द्योतक हैं। काव्य परंपरा में उसके सौन्दर्य और विलास का जितना अंकन हुआ उतना उसकी आंतरिक उदात्त वृत्तियों का नहीं। कालिदासोत्तर संस्कृत काव्यों में उसका रमणीत्व अधिक प्रतिपादित हुआ, सहधर्मचारिणीत्व और मातृत्व कम। इसकी विशेष चर्चा आगे के अध्याय में की जाएगी।

पुरुष की स्वच्छन्दचारिता और भोग लिप्सा ने सारे अधिकार अपने पक्ष में सुरक्षित करके नारी को अपनी वशवर्तिनी बना लिया। परकीया प्रेम का प्राधान्य उसकी इस स्वच्छाचारिता का ही प्रतीक है। वह स्वकीया से तृप्त न होकर परकीया और सामान्या तक व्याप्त है। परकीया प्रेम की उत्पत्ति के लिए सुलभ बनाकर उसे शास्त्रीय मर्यादा तो प्रदान की गई किंतु अलक्ष्य पुरुषानुरक्ता नारी को कुलटा का कलंकित अभिधान

---

१ तदेषा भवतः पत्नी त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी॥ अ० शा० ५।२६

२ वही ५।३०

३ डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु : जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त पृ० २२४

४ वही पृ० २२४-२५

भी दिया गया। पुरुषों के कुलटात्व को काव्यशास्त्रियों ने भी कोई महत्त्व न दिया अपितु यदि वह अनेक नारियों के साथ प्रणय का कपट प्रदर्शन सफलतापूर्वक कर ले जाता है तो उसे दक्षिण या प्रशंसासूचक नाम दिया जाता है। हाँ, यदि उसका कपटाचार प्रकट हो जाता है तब उसे शठ धृष्ट की संज्ञा अवश्य दी जाती है पर उसमें वैसा तिरस्कार भाव नहीं जैसा कुलटा में है। स्वकीया होकर भी शकुन्तला को सौता का प्रिय करना है और अपराधी होकर भी दुष्यन्त उसके कोमल व्यवहार का अधिकारी है।[1] यही दृष्टिकोण नारी को पुरुष की दयाकांक्षिणी और पोष्या बना देता है। पति की दृष्टि में आने और उसके प्रेम को प्राप्त करने के लिए नारी में वयःज, यत्नज और अयत्नज न जाने कितने अलंकारों की आवश्यकता होती है। यदि इस क्षेत्र में कोई न्यून है तो वह ज्येष्ठा कभी नहीं बन सकती और पति प्रेम से भी वंचित रह जाती है। इसी दृष्टि से कवियों ने भी विशिष्ट नायिकाओं को अपने वर्ण्य क्षेत्र में ग्रहण किया है। जिनमें कटाक्ष विक्षेप की क्षमता न हो, ऐसी गोबर पाथती हुई, खेत निराती हुई, गृहकर्म में उलझी हुई स्त्रियाँ उनके काव्य का विषय नहीं हो सकतीं क्योंकि उनमें वक्तव्य को मादक बनाने की क्षमता नहीं थी। रीतिकाल का कवि सौन्दर्य को तब तक बहुत कीमती वस्तु नहीं समझता जब तक वह मादक बनकर न प्रकट हुआ हो—सहज वस्तु को मादक बनाकर उपभोग्य समझना रीतिकालीन मनोवृत्ति की सबसे बड़ी विशेषता है।[2] डा० द्विवेदी ने उक्त बातें रीतिकालीन कवियों की नारी भावना को स्पष्ट करते हुए लिखी हैं परन्तु ये बातें शास्त्रीय महाकाव्य लिखने वाले संस्कृत के उन कवियों के लिए भी उतनी ही सत्य हैं जितनी कि रीति कवि के लिए।

काव्य-परम्परा में नारी की प्रत्येक चेष्टा उसकी प्रत्येक भावभंगी उद्दीपक रूप में ही चित्रित की गई और काव्यशास्त्रियों ने तो शृंगार के क्षेत्र में नायिका के उन ही व्यापारों का चयन मान लिया जो उद्दीपन या स्वयं उद्दीप्त की दशा के द्योतक हैं। यहाँ तक कि खण्डिताओं की मानभरी झिड़कियाँ भी उन्हें प्रणय लीला ही लगीं। इस प्रसंग में पुरुष की निर्लज्ज कामुकता के नग्न चित्र अंकित किए गए हैं। निरपराध होने पर भी नायिका अपने को ही अपराध भागी मान लेती है।[3] इससे बढ़कर और उसकी निरीहता का रूप क्या हो सकता है! खण्डिता यदि कोप में भी मृदु रहती है तो उसे धीरा की

---

१ कालिदास ग्र० शा० ४।२०

२ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृ० ३४०

३ बाले ! नाथ ! विमुञ्च मानिनि ! रुषं रोषान्मया किं कृतं।
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते।
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते॥ अमरु ५७
तुल०—क्यों न करौ दृग आन तिया ? अँसुवानि रह्यो भरि नैन सरोज।
कौन दिन [illegible] है जिनके तुमसे मनभावन छैल छबील॥ रसराज० ४८

उपाधि मिलती है अन्यथा अधीरा या धीरा धीरा कहलाती है। मानिनी की मनुहार में भी नायक के सुरतानुभव का वर्णन किया गया है। उसका कोप पुरुष के लिए रति उद्दीपक चेष्टा से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखता। मानवती के कोप का भी शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार एक निश्चित सीमा है। यदि नारी ने उस सीमा का उल्लंघन किया तो उसकी चेष्टाएं रसाभास मानी जाती हैं।[1] इस प्रकार नारी की भावनाओं को भी पुरुष ने अपने अनुरंजन की सीमा में आबद्ध कर दिया। मान करने में यदि वह अधिक कठोर हुई और नायक असफल प्रयत्न होकर लौट गया तो बाद में उसे ही कलहान्तरिता के रूप में चित्रित करके कवियों ने नारी के मानसिक क्षोभ और आत्मग्लानि का प्रदर्शन कराया है।

धर्मशास्त्रियों ने राजा के लिए जितनी छूट दी उससे भी अधिक काव्यशास्त्रियों ने नायक को उन्मुक्त आचरण की छूट दी है।

नारी अन्यसम्भोगदुःखिता के रूप में भी पुरुष के उच्छृंखल आचरण को सहती आई है। सखी या दूती को पति द्वारा किए गए रतिचिह्न—नखाघात दन्तक्षतादि से समन्वित देखकर नारी [illegible] का अनुभव कर सकती है। इसी प्रकार खण्डिता नायिका नायक को देखकर भी मृदु कोप ही कर सकती है।

रीतिकाल तक आते आते मुगल बादशाहों की बढ़ती कामलिप्सा के फलस्वरूप नारी को छिपकर रहने का कठोर विधान मिला। इसके परिणामस्वरूप वह और भी कुण्ठित और समाज विच्छिन्न सी हो गई। कवियों ने जिस रूप में नारी का चित्रण किया है वह उसकी नितान्त कोमलता और साहसहीनता को द्योतित करता है। डा० नगेन्द्र ने लिखा है 'उसकी समस्त सक्रियता—सभी चेष्टाएं वास्तव में उसकी उपभोग्यता में श्रीवृद्धि करने के ही निमित्त प्रदर्शित की गई हैं । नारी के व्यक्तित्व—उसके प्रेम विरह, सुख दुःख, हाव भाव, नाना विलास का एक ही उद्देश्य है उसके आकर्षण को समृद्ध करते हुए उसको अधिक-से-अधिक उपभोग्य बना देना। नायिकाभेद का विस्तार नारी के इसी भोग्य रूप का विस्तार ही तो है।'[2] नायिकाभेद के ग्रंथों में नारी के इन्हीं गुणों की गणना तथा उसके अंग प्रत्यंग की अलंकृति इस बात को सिद्ध करती है कि नारी की लज्जा, मदभाव, क्रीड़ा आदि पुरुषों के अनुरंजन के लिए ही चित्रित किए गए हैं। यहां तक कि उसकी 'नाहीं' में भी पुरुष के अनुरंजकत्व का आरोप करके उसे स्वीकृतिगर्भ निषेध माना गया।[3] काव्यपरिपाटी में इसके प्रचुर और रमणीय उदाहरण मिलते हैं।[4]

---

१ अनौचित्यस्तु रसाभास । —भानुदत्त र० म० पृ० ४३

२ डॉ० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ० १६२

३ नहिं सुनि पर कर गहत दियाल्ली की ईंठि ।
गही सु चित नाहीं करनि करि ललचौंही डीठि ॥ —बिहारी ६०८

४ सव्रीडस्मितमर्द्धवलित मा मास्पृशेति मन्मुखा ।
आक्रोशमत्य वातायन पिधाय स्थित प्रियया ॥ —आर्या० ६२८

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि नायिकाभेद के मूल म नारी के प्रति उक्त वलासिक दृष्टिकोण ही था। प० वरुणापति त्रिपाठी न शास्त्रीय दृष्टि म गहीत नारी के वर्गीकरण रूप चित्रण व विकास की विवेचना करत हुए लिखा है 'संस्कृत साहित्य के नायिका भेद सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचना की जो रूप रखा उपयुक्त पक्तियो म प्रस्तुत की गई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी म ही नही संस्कृत के आचार्यों मे भी उस (सामन्ती ह्रासोन्मुख) युग की शृगारी मनोभावना का प्रवाह प्रौढ हो चला था। शृगारी रचनाओ की सजना और स्वीय लक्ष्य—श्लोको द्वारा नारी सम्बन्धी काममावना तथा अग प्रत्यग के वासनामय सौन्दर्यवन को लेकर मधुर रचनाओ का निर्माण प्रचुर मात्रा म होने लगा था। वलासिक मनोरजन के उतवणीय वासनामय काव्य का निर्माण उन्हे अधिक प्रिय था। यद्यपि रसमजरी शृगारमजरी के समान ग्रथो म शास्त्रीय स्तर पर विषय का निरूपण और विश्लेषण किया जा रहा था तथापि नायिका का कामज-सौन्दय और उसकी उद्दीपकता मे मन रम रम जाता था। रस तरगिणी लिखकर भी नायिकाभेद के ग्रथो का भानुदत्त द्वारा निमाण इसी भावना का परिचायक है।[1] अर्थात् रीतिकाव्य की विलासानुप्रेरित रचनाएँ अपने पूर्वविनिर्मित पुष्कल साहित्य की परपरा म ही आती हैं और नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण भी पर परित है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस तथ्य को और भी तीखेपन के साथ उद घाटित करते हुए लिखा है 'संस्कृत और प्राकृत के पुराने शृगारी कवि किसी भी स्वभाव और शीलवाली स्त्री की शारीरिक चेष्टाओ और कम व्यापतियो को सुन्दर रूप मे उपस्थित करने म रस ले सकते है। केवल एक ही शत लगाना चाहते हैं—उद्दिष्ट नारी सुन्दरी हो युवती हो अनुरागवती हो। फिर वे और कुछ नही सोचते। वे प्रेम के सहज रूप को कम और उसके मनोहर रूप को अधिक पसन्द करते हैं। वे उसके कल्पना-कोमल रूप को उभारने का अधिक प्रयत्न करते हैं और उसकी अनायास मोहन शोभा को कम वे चित्र को कलापूर्ण बनाने म अधिक श्रम करते हैं वयक्तिक सम्बन्धो की अनुभूतियो को रगन म कम।[2] रीतिकाल म उक्त संस्कृत प्राकृत कविमो के भावो का ही पल्लवन हुआ है। युग धम के प्रभाव से साहित्यिक परम्परा से प्राप्त नारी भावना रीतिकाल म और भी सकुचित और रुग्ण होकर काव्य म आई। सम्प्रति नारी के प्रति सामाजिक और साहित्यिक भावना का सामान्य परिचय देने के उपरान्त नायिका भेद के शास्त्रीय रूप का उल्लेख किया जाएगा।

नायक नायिका भेद

रीतिकाव्य म नायक-नायिका भेद का शास्त्रीय विस्तार संस्कृत काव्यशास्त्र के

कु० स ८।१४ शिश १।७ नष १८।१४ १८ ७० ७२ आर्ड स० ३६६१ ३६६६ कु म १२७ म स ३१७ विहारा २ ६

1 प० वरुणापति त्रिपाठी ना० प्र० पत्रिका वष ६४ अक २४ पृ २४६

2 डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य प० ३२७ २८

आधार पर हुआ। संस्कृत काव्यशास्त्र में इस विधा का विस्तार मुख्य रूप से नाट्यशास्त्र और गौण रूप से कामशास्त्र की प्रेरणा से हुआ। सम्भवतः कामशास्त्रीय ग्रन्थों में सबसे प्रथम और व्यवस्थित रूप में वात्स्यायन के कामसूत्र में इन भेद प्रभेदों की चर्चा मिलती है। किंतु वात्स्यायन का उद्देश्य कामशास्त्रीय ग्रन्थों के उद्देश्य से किंचित् भिन्न था। कामसूत्र का उद्देश्य मानव जीवन में त्रिवर्ग मुख्य रूप से काम की सिद्धि है जबकि काव्यशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है काव्यांगों का विवेचन। कामशास्त्र में नायक नायिका, सखी और दूती का विधान भिन्न परिप्रेक्ष्य में किया गया है। वहां स्वकीया के अतिरिक्त परकीया को प्राप्त करने प्राप्ति के पश्चात् उसका अनुरंजन करने तथा अनुरंजित होने के पश्चात् उसमें अनुराग उत्पन्न करके पूर्ण रूप से समागम करने के लिए विविध प्रयत्नों, चेष्टाओं और कलाओं का आयोजन किया गया है।[1]

परवर्ती कामशास्त्रीय ग्रन्थ रति रहस्य में कक्कोक ने नायिका के जिन चार भेदों—पद्मिनी चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी का उल्लेख किया है वह यद्यपि नायिकाभेद के ग्रंथों में उतना प्रचलित नहीं हुआ फिर भी काव्य ग्रंथों में उसका यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। चंद ने पृथ्वीराजरासो में इन भेदों का संक्षिप्त वर्णन किया है। वात्स्यायन ने नायक नायिका के भेदों में यौन वैशिष्ट्य को ही दृष्टिपथ में रखा।[2] इसीलिए काव्यशास्त्र में उसका सम्यक ग्रहण नहीं हुआ।

आचार्य भरत ने नायक-नायिका का भेद सामान्यतः दृश्यकाव्योपयोगी नाटकीय पात्रों को दृष्टि में रखकर किया है। उनके सम्मुख काव्यशास्त्र में आनेवाले शृंगार रस के आलम्बनों का विवेचन नहीं था। हां धनंजय ने दशरूपक में श्रव्य दृश्य का सम्मिलित रूप लिया और उनका नायक नायिका भेद रस दृष्टि से अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ।

काव्यशास्त्र के अंतर्गत रस सिद्धान्त का निरूपण करते हुए कई आचार्यों ने नायक नायिका भेद का सविस्तर उल्लेख किया है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में रुद्रट के काव्यालंकार रुद्रभट्ट के शृंगारतिलक भोजराज के सरस्वती कंठाभरण और शृंगारप्रकाश वाग्भट्ट प्रथम के वाग्भटालंकार हेमचन्द्र के काव्यानुशासन शारदातनय के भावप्रकाश वाग्भट्ट द्वितीय के काव्यानुशासन विश्वनाथ के साहित्यदर्पण आदि ग्रंथों के अतिरिक्त कृष्ण की भक्तिसमन्वित रस धारा में आचार्य रूपगोस्वामी के उज्ज्वल नीलमणि नामक ग्रंथ में भी इसे विस्तार मिला।

हिंदी के आचार्य कवियों ने संक्षेपतः मूल भेद प्रभेदों की चर्चा करके उसके सरस उदाहरणों की रचना द्वारा परितोष लाभ किया। पं० करुणापतिजी ने 'शृंगार तिलक'

१ समाध्याया सुखसिद्धि सिद्धायास्त्वानुरंजनम्।
रक्तायाश्च रतिं सम्यक कामशास्त्रप्रयोजनम्॥ —कक्कोक रति रहस्य

२ पद्मिनी पृ० रा० २५।१२६ हस्तिनी पृ० रा० २५।१२७ चित्रिणी पृ० रा० २५।१२८ शंखिनी पृ० रा० २५।१२६

३ कामसूत्र २।१।१२

का रीतिकालीन [illegible] कविता का [illegible] पर [illegible] किया [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] मधुर [illegible] रस की [illegible] का [illegible] है। [illegible] प्रमुख [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस परम्परा का [illegible] [illegible] किया है। [illegible] [illegible] की [illegible] भेद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नायिका [illegible] [illegible] स्वाभाविक [illegible] [illegible] [illegible] है।

उक्त ग्रन्थ में [illegible] में नायिका-भेद [illegible] महत्त्वपूर्ण स्थान [illegible] का [illegible] है। [illegible] नायिका-भेद के प्रमुख और उपभेदों का [illegible] में सम्पूर्ण किया। सबसे पहिले [illegible] [illegible] नायिका के मुख्य तीन भेद (सामाजिक व्यवहार के आधार पर) स्वकीया, परकीया और सामान्या का [illegible] पुनः स्वकीया के तीन भेद किये—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा के दो भेद—अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना। यद्यपि आचार्यों ने मध्या और प्रौढ़ा जैसा भेद स्वकीया में ही माना है किन्तु [illegible] [illegible] दृष्टि से विचार किया जाय तो ये भेद परकीया में भी हो सकते हैं। सामान्या में मुग्धात्व न भी माना जाय तो मध्यात्व और प्रौढ़ात्व तो माना ही जा सकता है। आचार्यों ने [illegible] प्रति (विपाक) विकल्पना के आधार पर [illegible] [illegible] धीरा और [illegible] [illegible] का [illegible] किया है तथा प्रगल्भा के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] और मध्या और प्रगल्भा नायिकाओं के [illegible] भेद धीरा, अधीरा और धीराधीरा। [illegible] के आधार पर [illegible] नायिकाओं के ज्येष्ठा और कनिष्ठा दो भेद [illegible] किये गए। इस प्रकार स्वकीया के कुल १३ भेदों का उल्लेख [illegible] परकीया के [illegible] [illegible] [illegible] भेद [illegible] किये गए। गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना और मुदिता का अन्तर्भाव परकीया में ही कर लिया गया। अवस्थाविभागानुसार नायिकाओं के आठ भेद—[illegible] विरहोत्कण्ठिता, स्वाधीनपतिका, [illegible] खण्डिता, [illegible] [illegible] तथा अभिसारिका का ग्रहण [illegible] [illegible] [illegible] ही किया है।[2] इस प्रकार १३ स्वकीयाएँ, २ परकीयाएँ, १ सामान्या कुल १६ प्रकार की नायिकाएँ अवस्था या

१ नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६४ अंक २ पृ० ११८-१६
२ र० म० पृ० ४५-४६, एवं ना० शा० २२।२११-१२

परिस्थितिवश आठ प्रकार की होती हैं। अन इनके कुल (१६ × ८ = १२८) १२८ भेद होते हैं जो गुणानुसार उत्तम मध्यम और अधम भेद में ३८४ हो जाते हैं। इस संख्या में भानुदत्त द्वारा निरूपित – अन्यसंभोगदुःखिता और वक्रोक्तिगर्विता (प्रेमगर्विता रूपगर्विता) तथा मानवती की गणना नहीं की गई है। अवस्थानुसार प्रवत्स्यत्पतिका नामक नायिका के नव भेद का आर भी भानुदत्त ने संकेत किया है।[1]

शास्त्र निरूपित इन नायिकाओं में से कुछ नायिकाओं का काव्य साहित्य में बारम्बार वर्णन हुआ है। इसका मूल कारण प्रेम वैचित्र्य में उन अवस्थाओं का बार बार आना है। रीतिकाव्य में इन विशिष्ट दशाओं की नायिकाओं का अंकन बहुत कुछ पूर्ववर्ती वैष्णव काव्याभिव्यक्ति के अनुसार ही हुआ है।

शृंगार के आलम्बन नायक और नायिका होते हैं। काव्यशास्त्र में नायक की अवस्थाओं का वैविध्यपूर्ण निर्देश नहीं मिलता। उसे केवल युवक और सुन्दर होना चाहिए, किन्तु काव्य साहित्य में नायिकाओं की यौवनावस्था के प्रारम्भ होते ही उसकी मानसिक और शारीरिक अवस्थाओं का रमणीय वर्णन मिलने लगता है। इसका प्रारम्भ वय संधि वर्णन से होता है।

वय संधि

वय संधि उस अवस्था विशेष को कहते हैं जब नायिका में यौवन के आकर्षक प्रभाव दर्शित होने लगते हैं। शैशव का अन्त और यौवन का आरम्भ जिस बिन्दु से होता है उसे काव्य परम्परा में वय संधि की अवस्था कहते हैं। इसमें नारी के शारीरिक परिवर्तनों के साथ मानसिक परिवर्तन भी होते हैं। नारी की चेष्टाओं में अपूर्व परिवर्तन आने लगता है शैशव की चपलता अल्हड़ता के स्थान पर लज्जा और संकोच का प्रादुर्भाव रमणीयत्व का सर्जन करता है। कवि परम्परा के अनुसार इस अवस्था में यौवन के प्रधान उपादानों में स्तनों का उभार और नितम्बों की पृथुलता का प्रारम्भ और तज्जन्य गति की मंदता, नेत्रों की चपलता, लज्जारुण कपोलों की सचिक्कणता कटि की क्षीणता, रोमराजि की ईषद स्फुटता आदि का वर्णन किया जाता है।[2]

---

१ इमाश्च प्राचीनप्रमनप्रगनाष्टप्रमदाणो देशान्तरनिश्चितगमने प्रयाति प्रवत्स्यत्पतिकापि नवमी नायिका भवितुमर्हति। –र ॥ पृ० ८५

२ गौडीय वैष्णव पदावली में अभिसारिका वासकसज्जा उत्कंठिता विप्रलब्धा खण्डिता और कलहान्तरिता नायिकाओं की दशा के वर्णन करने वाले पद ही मुख्य रूप से पाए जाते हैं। हिन्दी का पद्य बद्ध साहित्य इस प्रकार के भेद प्रकरणों में बाँटकर इनका वर्णन नहीं करता। केवल खण्डिता नायिका में सबंधित पद तो खण्डिता संज्ञा देकर सूरसागर में संगृहीत हैं अन्य कुछ नायिकाओं का वर्णन करने वाले पद भी सूर ने बनाए हैं।

डॉ० रत्न कुमारी हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि पृ० ४२३

३ दे०, न० च० ३।३० ३२ म० म० ११४ ११२ २०७, बिहारी १६६ २०६ ३११ का० नि० ११ ३०

वय संधि को नायिका भेद के शास्त्रीय पक्ष में कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं मिला क्योंकि इस अवस्था का अन्तर्भाव मुग्धा में ही हो जाता है। जिस रूप में विद्यापति आदि कवियों ने वय संधि का वर्णन किया है उसका साहित्यशास्त्र में कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है। वय संधि में चूंकि शैशव और यौवन का सम्मिलित प्रभाव दृष्टिगत होता है, इसलिए कवियों ने इसकी उपमा दुहरे काल, दुहरे राज्य और दुहरे ऋतुओं से या इनकी संधि वेला से दी है।[1] पृथ्वीराजरासो में वय संधि की उपमा सन्ध्याकाल से दी गई है जिसकी छाया बिहारी पर स्पष्ट लक्षित होती है।[2] वलिकार पृथ्वीराज ने वय संधि की तुलना स्वप्नावस्था से की है। उन्होंने शैशव को सुषुप्तावस्था और यौवन को जाग्रतावस्था मानकर इस अवस्था विशेष का बड़ा ही सांकेतिक चित्रण किया है।[3]

वय संधि को पार करते करते नायिका के अंगों में यौवन का निखार आ जाता है। वय संधि की भांति यौवन के भी मोहक चित्र कवियों ने अंकित किए हैं।

यौवनावस्था

शैशव और कैशोर अवस्था के उपरांत यौवनावस्था का आविर्भाव होता है। इस अवस्था में काम भावना का ईषद् उन्मेष और लज्जा की सघनता नारी के रूप-लावण्य को और भी रुचिर और सम्मोहक बना देती है। महाकवि कालिदास ने पार्वती की यौवनावस्था का बड़ा ही मार्मिक अंकन किया है।[4] कवि परम्परा के अनुसार नायिका के इस शारीरिक उत्कर्ष और मानसिक आह्लाद की तुलना वसंतश्री से सम्पन्न प्रकृति से की जाती है।[5] बिहारी ने यौवन को ज्येष्ठ मास की तरह मानकर नायिका के कुचों की क्रमिक वृद्धि की ज्येष्ठ दिन मान की वृद्धि से एवं उसकी कटि की क्षीणता की रात्रि की क्षीणता से तुलना की है।[6] यौवन को भी अनेक रूपों में देखा गया है, जैसे किसी ने उसे अमीर या "नासक"[7] के रूप में देखा तो किसी ने हरकारा[8] के रूप में।

जैसा कि पहले कहा गया है यौवनागम के कारण स्फुट आंगिक शोभावाली

---

१ शायना रस (बिहारी १६६) गोधूली सन्ध्या (पृ रा ४७।३६ ४० उपकाल (वलि १६ म० र० २।२६) दुराज (बिहारी ३११ का नि० ११।३० १२।२१ १८।२१ १६।२२ र सा० २३ ३३ हिमउष्णमध्य (पृ रा ४३।४
२ ज्यों बरकारिम संकर मैं। रानि निसि संधानि।
या जव्वन ममव स मय। आनि सपतिय कानि ॥ पृ रा० ४७।४१
तुल०-बिहारी २७६
३ वलि १५
४ उन्मीलित तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥ कु स १।३२
५ नवघ १।१६ २ पृ रा ४७। ८ ४७।५ ४७।५६ वलि १८६
६ बिहारी २४१
७ वही ३४६ र भा २८
८ प्रो० चं० ३।२० र० भा० २३

नायिका ही शृंगार के आलंबन योग्य मानी गई है। शैशव की अवस्था में न तो वह शृंगार रस का विषय ही हो सकती है न आश्रय ही। शारीरिक विकास के साथ ही मानसिक विकास भी होता है। यौवनागम के साथ नायिका में काम भाव का अंकुरण होने लगता है। जब काम भावना आती है तभी वह लज्जा, भय आदि संचारियों का अनुभव करती है। उसमें अपने आंगिक परिवर्तनों के प्रति सहज जिज्ञासा उत्पन्न होती है। ऐसी जिज्ञासाओं का वर्णन अनेक कवियों ने अलंकृत शैली में किया है। जिज्ञासा के साथ ही वह काम-वृत्तियों से परिचित होने लगती है। उस समय कभी वह अपने शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के प्रति सजग और सचेष्ट प्रतीत होती है और कभी उनकी उपेक्षा करके शैशव की नैसर्गिक चंचलता, निर्भयता और लापरवाही का प्रदर्शन करती है। रस निरूपक आचार्यों ने इस स्थिति की भिन्नता को दृष्टिपथ में रखकर मुग्धा के अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना नायिकाओं के भेदों की चर्चा की है।

यौवनागम से उत्पन्न होने वाले शारीरिक और मानसिक आकर्षणों को काव्य शास्त्र में सम्यक् रूप से निरूपित किया गया है। शृंगार-रस के स्वरूप-परिचय में भरत के अनुसार जिन वाचिक, आंगिक और सात्विक भावों का उल्लेख किया गया है वे सब यौवनावस्था में ही उत्पन्न होने वाले भाव हैं। नायिका भेद की दृष्टि से नायिका के वय क्रमानुसार—मुग्धा मध्या और प्रौढ़ा—भेद किए गए हैं। शिंगभूपाल ने प्रौढ़ा के बाद भी 'निर्मांसता' नामक चौथे भेद का उल्लेख किया है। किंतु शिंगभूपाल की चौथी प्रकार की नायिका की बात दूर रही, तीसरी को भी शृंगार के योग्य नहीं माना क्योंकि प्रौढ़ा में काम भाव की प्रधानता तथा चेष्टाओं में आकर्षक नवीनता के स्थान पर पुनरावर्तन मात्र होता है।[1]

यौवनावस्था के अनुभावों को धनंजय प्रभृति आचार्यों ने अलंकार की अभिधा दी है। शारदातनय ने इन अनुभावों को दो कोटियों में विभक्त किया है—मानस अनुभाव या मनारंभानुभाव और कायिक अनुभाव या गात्रारंभानुभाव। इन दोनों की संख्या दस-दस मानी गई है।[2] मानस अनुभावों में हाव भाव हेला, शोभा, कांति दीप्ति, माधुर्य प्रागल्भ्य धैर्य और औदार्य आते हैं। इनमें से विश्वनाथ और धनंजय आदि ने हाव, भाव और हेला को अंगज अलंकार तथा शोभा कांति, दीप्ति, माधुर्य प्रागल्भ्य, धैर्य और औदार्य को अयत्नज अलंकार माना है। ये किसी यत्न, साज सज्जा या प्रसाधन से साध्य नहीं होते। गात्रारंभानुभावों में लीला विलास, विच्छित्ति विभ्रम किलकिंचित् मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, ललित तथा विहृत की गणना की जाती है।[3] विश्वनाथ ने इनमें

१ तत्र शृंगारयोग्यत्व स्ताद्यान्त कारणम्।
आद्य न्तीयो एव न तृतीयचतुर्थयो ॥ —रसार्णवसुधाकर १।१७६
२ मन आरम्भानुभावा भावाद्या दश योषिताम् ॥

गात्रारम्भानुभावा लीलाद्या दश योषिताम् ॥ —भावप्रकाशन पृ० ६, पंक्ति १४-१६
३ भावप्रकाशन पृ ६ पंक्ति १३

कुतूहल, चकित, हास, मद, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप और केलि इन आठ अलंकारों को और जोड़कर इनकी संख्या १८ कर दी।[1] इन्हें स्वभावज अलंकार भी कहा जाता है। रसतरंगिणीकार ने सभी गात्रारम्भानुभावों को हाव माना है। भानुदत्त की ही परंपरा रीतिकाल के कवियों में चली। किसी किसी ने हेला को भी हाव मानकर इनकी संख्या ११ कर दी है। ये चेष्टाएँ यौवनावस्था में नायिकाओं की शोभा आदि की तरह सहज होती हैं न कि भाव प्रेरित। इसीलिए कुछ विद्वान् इन्हें अनुभाव न मानकर अलंकार मानते हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अनुभाव और अलंकार का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है — आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं और आलंबन की चेष्टाएँ उद्दीपन के अन्तर्गत। शास्त्रग्रंथों में हावों को या अलंकार के भीतर आनेवाली इन चेष्टाओं को अनुभावों के ही अन्तर्गत माना गया है। बात यह है कि आश्रय या विषयी तथा आलंबन या विषय का भेद नायक नायिका में ठीक उसी रूप में नहीं समझा जाता जैसा अन्य रसों में। शृंगार के भीतर नायक और नायिका एक दूसरे के परस्पर आलंबन और आश्रय माने जाते हैं इसलिए इन चेष्टाओं की भी गणना अनुभावों के भीतर ही कर दी गई है। पर यदि इन पर विचार किया जाय तो पता चलता है कि ये अधिकतर उद्दीपन के ही अन्तर्गत आएँगी, अनुभाव के अन्तर्गत नहीं। जहाँ इनका वर्णन होगा वहाँ नायिका आलंबन होगी, नायक या तो उन चेष्टाओं का वर्णन करता हुआ माना जाएगा या उन चेष्टाओं का स्मरण करता हुआ। इस दृष्टि से ये उद्दीपन के भीतर ही आ सकेंगी।[2] अतः इन्हें यौवनावस्था के अलंकार मानना अधिक समीचीन होगा।

नायिकाओं में ये अलंकार उनके रूप-सौन्दर्य को आकर्षण प्रदान करते हैं। संस्कृत काव्य-परंपरा में सुन्दर नायिका के रूप-सौन्दर्य का कैसा वर्णन होता आया है तथा रीतिकाव्य में उसका चित्रण कैसा हुआ है यह द्रष्टव्य है।

रूप सौन्दर्य

साधारणीकरण में रूप द्रष्टा पर प्रभाव डालता है। इसके ही परिणामस्वरूप उसके भीतर भावों या मनोविकारों का जन्म होता है। रूप-दर्शन से मन में रति स्थायी भाव उद्बुद्ध होता है। यद्यपि रूप बाहर होता है किन्तु वास्तव में अन्तर्मुखी

1 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] —सा० द० ३।९२-९३

2 पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० [illegible]

वृत्ति होने पर वह अन्तस में व्याप्त हो जाता है। शृंगार के भेद में रूप का इसीलिए महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुन्दर और मधुर लगनेवाले रूप से भिन्न सौंदर्य और माधुर्य की सत्ता नहीं होती। सौंदर्य बोध का मूल सुन्दर वस्तुओं का मन में आना ही है। इस मानसिक रूप विधान का नाम भावना या कल्पना है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है मन के भीतर यह रूप विधान दो तरह का होता है। या तो यह कभी प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं का ज्यों का त्यों प्रतिबिम्ब होता है अथवा प्रत्यक्ष देखे हुए पदार्थों के रूप रंग गति आदि के आधार पर खड़ा हुआ नया वस्तु व्यापार विधान। प्रथम प्रकार की आभ्यन्तर रूप प्रतीति स्मृति कहलाती है और द्वितीय प्रकार की रूप-योजना या मूर्ति विधान को कल्पना कहते हैं।[1] इन दोनों —प्रत्यक्ष स्मृति और कल्पनाजन्य रूप की अनुभूतियाँ आनन्दा मक होती हैं। इस आनन्ददायक वस्तु के गुण को ही सौंदर्य कहा जाता है। सौंदर्य का अधिष्ठान शरीर है अतः रूप सौन्दर्य के वर्णन में शरीर और उसके गुण धर्मों का ही सामान्यतः वर्णन होता है।

राजानक रुय्यक ने युवतियों (नायिकाओं) के शारीरिक उत्कर्ष के सहायक तत्वों में गुण अलंकार, जीवित और परिकर की गणना की है।[2] उन्होंने शोभा विधायक धर्म को गुण कहा है[3] और इसके अन्तर्गत रूप वर्ण प्रभा राग आभिजात्य विलासिता, लावण्य, लक्षण, छाया और सौभाग्य की परिगणना की है।[4]

रूप से तात्पर्य है अवयवों की रेखाओं की स्पष्टता।[5] नारी शरीर में रेखाओं की स्पष्टता यौवनागम से प्रारम्भ होती है। रूप का पानिप वय सन्धि-स्थान से ही निखरने लगता है। अंगों के आकार ग्रहण के रूप का उत्कर्ष द्योतित होता है। रूप आकार का सौंदर्य वृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग होता है। काव्य-परम्परा में सामुद्रिक शास्त्र और काम शास्त्र के आधार पर नायिका के विभिन्न अंगों का आकार निर्धारित किया गया है जिसके वर्णन में कवि अनेक प्रकार के अप्रस्तुतों की सहायता लेते हैं। नखशिख के प्रसंग में इसका विशेष विवेचन किया जाएगा।

वर्ण में अंगों के स्वाभाविक गौरता श्यामता आदि की गणना की जाती है।[6] सम्भवतः गौरवर्णवाली नायिका के लिए ही गौरी शब्द प्रयुक्त होता था जिसका हिन्दी

---

१ पं० रामचन्द्र शुक्ल रसमीमांसा पृ०२६

२ युवत्यां अत्युत्कर्षो देहे गुणालंकारजीवितपरिकरेभ्य ।
–राजानक रुय्यक सहृदयलीला (का० मा० गुच्छ ५) पृ १५८

३ तत्र शोभा विधायिनो धर्मा गुणाः । वही पृ १५८

४ रूप वर्ण प्रभा राग आभिजात्य विलासिता ।
लावण्य लक्षण छाया सौभाग्य चेत्यमी गुणा ॥ वही

५ अवयवानां रेखास्पष्टत्व रूपम् । वही

६ गौरतादिधर्मो विशेषो वर्णः । वही

म गोरी व रूप म विराग हुआ। का य परम्परा म नायिका का वण सामायत गौर ही गहीत हुआ।

सूय की भाति चमर (कासराय) वाली कांति को प्रभा कहत हैं।[1] प्रभा क अतगत कांति और दीप्ति का ग्रहण किया जा सकता है। अग प्रत्यग क यथोचित सस्थान स उत्पन्न होनवाल सौन्दय म प्रभा का महत्त्वपूण योग होता है। यौवनावस्था म काम क आविर्भाव स उत्पन्न होनवाली शोभा को कान्ति कहत हैं। भरत धनजय आदि आचार्यों ने शोभा की इस विकसित अवस्था को कान्ति माना है। कान्ति की उत्कर्षावस्था को दीप्ति कहते हैं।[3]

नायिका क अगो की शोभा का वणन करत हुए कवियो ने उनकी अग-कान्ति या दीप्ति का विशेष उल्लेख किया है। कांति की सघनता म फिर उसक अगो का स्पष्ट लक्षित न होना अनेक कवियो द्वारा वर्णित हुआ है।[4] केशव मिश्र ने अलकार शेखर म तन द्युति क उपमान रोचना स्वण विद्युत हरिद्रा वराटक, चम्पक हमकतकी आदि मान हैं।[5] कवि परम्परा म सबस अधिक स्वण[6] स ही तनद्युति की उपमा दी गई है, शेष क्रमश चम्पक,[7] हेमकतकी[8] विद्युत[9] मशाल,[10] दीप ज्योति[11] आदि का भी प्रयाग

---

१ कामकाव्यरूपा रविवत्कान्ति प्रभा। —रा० र सि सी प० १५८

२ विज्ञेया च तथा कान्ति शोभवापूणमन्मथा।
कान्तिरेवातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयत॥ —ना शा २२।२८ एव दशरूपक २।३५

३ कान्तिरेवातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयते। सा० द ३।६६

४ प्राणवरेण रभसापहितात्तरीय
कपोलको जघनबिम्बमपत्रपिष्णो।
अग प्रभाजनवनवद्य तिसस्तवेन
कस्याश्चन स्वयमिवावरणान्तराणि। श्रीक १५।१६
दुननीय-दीप उजरेहू पतिहि हरत बसन रति-काज।
रही लपटि छवि की छटनि नकी छटी न लाज॥ बिहारी ३ ▮
यथा—सुदरी सा भवत्येष विवेक केन जायते।
प्रभामात्र हि तरल दृश्यते तत्र नान्यत्। शाग ३३६६

५ रोचनास्वणविद्यु भिहरिद्राभिवराटक।
चम्पकहेमकेतक्या वर्ण्यते तत्तनोद्यु ति॥ अ श ५।२ ३

६ वा रा० अरण्य ४६।१६ श्रीक १३।२ विक्र ८।८४ शाग ३ ६६ सूर १।२१११
क० र २।१ भ स ३४७

७ प रा ३६।२ १ ४७।३६ सूर १।११६७ बोधा ४६२ बिहारी ५७२

८ शाग ३३७६ बिहारी ६ ६

९ प रा ६१।३७४ वि प ४८।१२ बिहारी ४२ १६२ का नि० ३।१६ ज वि० ५१
२ ७ ३६६

१० क० र २।४ र सा० २४ ८३ २

११ बिहारी ६४ ६४२ ज वि २०७

मिलता है। कभी कभी नायिका की देह की भी उपमा उक्त उपमानों से दी जाती है।

अधरों पर स्वाभाविक हँसी खेलते रहने के कारण सबकी दृष्टि आकर्षित करने वाले धर्म विशेष को राग कहते हैं।[1] नायिका की इस स्वाभाविक मुस्कान का वर्णन प्रायः सभी शृंगारी कवियों ने किया है। इसके वर्णन में जिन उपमानों का प्रयोग किया गया है उनका परिचय 'नखशिख' के प्रसंग में दिया जाएगा।

फूल के समान मृदुता और पेशलता नामक गुण जो लालन आदि के रूप में एक विशेष प्रकार का स्पर्श या सहलाव होता है उसे आभिजात्य कहा गया है।[2] माधुर्य मार्दवादि को भी इसी में अन्तर्भुक्त कर लिया गया है। नायिका के आभिजात्य या मार्दव का वर्णन कवियों ने अत्युक्तिपूर्ण शैली में किया है। इस प्रकार के वर्णन के मूल में कवियों की चमत्कार प्रदर्शन वृत्ति अधिक सक्रिय प्रतीत होती है। कहीं-कहीं तो उनका सौंदर्य बोध कुंठित-सा प्रतीत होने लगता है। कोई सखी या दूती नायिका के ऐसे ही मार्दव का वर्णन करती हुई नायक से कहती है "जो केसर की मालिका और अंगों में घना विलेपन भी नहीं सह सकती तथा दीप शिखा भी नहीं देख सकती है वह विरहताप को कैसे झेल सकेगी ?"[3] इसी प्रकार जयदेव की राधा के अंग कुसुम-सदृश कोमल हैं[4] तो रीतिकाल की नायिका जावक रंग के भार से रास्ता नहीं चल पाती।[5] वह भार के डर से ही आभूषण उतार देती है[6] फिर भी बाल के भार से उसकी कमर छड़ी की तरह लचक जाया करती है।[7] माघ की याचक रमणियाँ भी कम कोमल नहीं जो मृणाल-तन्तु-विनिर्मित आभूषणों को भी धारण करने में असमर्थ हैं।[8] बाणभट्ट ने कोमलांगी के लिए आलक्तकरस को चरणों का भार, बकुलमालिका को गति में विघ्नकारक, अंगराग को निःश्वासाधिक्य का कारण, अंशुकभार को अंगग्लानिकारक, मांगलिक हस्तसूत्र को करकंपन का हेतु, अवतंसकुसुम को श्रम का जनक एवं कर्णपूर के कमल पर बैठे मधुकरों के पंखों का पवन भी क्लेशकारक सिद्ध किया है।[9] फिर रीतिकालीन कवि ही क्यों पीछे

---

१ नैसर्गिकस्मेरत्वमुखप्रसादात् सर्वेषामेव चक्षुर्वशकरो धर्मो रागः। —सहृदयानंद पृ० १५८

२ कुसुमधर्मा मार्दवादिर्लालनादिरूप स्पर्शविशेष पेशलताख्यमाभिजात्यम्। वही

३ केशं कुसुममालिकामपि शिरःया बिभ्रती खिद्यते
मा गात्रे च घन विलेपनमपि यस्या न सोढं क्षमा।
दीपस्यापि शिखां न वासभवने शक्नोति या ईक्षितुं
तापं सा विरहानलस्य महत सोढुं कथं शक्ष्यति॥ शार्ङ्ग० ३४५८

४ गीत० १।२।११

५ ज वि ३६७

६ ज वि ४२९ तुलनीय—रु म ६८४

७ प प्र ४६

८ शिशु ८।४४

९ कादम्बरी प ५२६ तुलनीय—म स ४२२ बिहारी ३४१ ४६०, ५२६ ५४४ ६५६ का० नि० ११।८ ११।१६, ज वि १२ पद्माभरण १२१ १८०

रहत ? उनके सामने तो प्रयूप या मुग्ध ह्रग ी वगम ही प्राप्त था। प्रस्तु सामा जिक प्रभाव उन पर था जा पना हा ना पूर्ववर्ती रसिया न वा न प्रथा गा भी उनकी रचनाओ पर काफी प्रभाव नहीं हो सकता है।

यौवनावस्था म अ गा उपामा ता अन्त पर कामन्ना का प्रकाशित करने वाली कटाक्ष, भ्रूक्षेप आदि विलास चेष्टाओ को विलासिता कहते हैं।[1] रीतिकवियो ने अनुभाव विधान में इन चेष्टाओ का वणन पूण रूप म किया है।

चन्द्रमा की भांति प्राह्लादकारक सौन्दर्य का उत्पन्न लावण्य वह स्निग्धमधुर धम है जो अवयवो के उचित सन्निवेश से व्यंजित होता है।[2]

उपयु क्त गुणो का वणन युवतियों के रूप सौन्दर्य चित्रण म चिरकाल से होता आया है। इनके अतिरिक्त नारी सौन्दय के निरूपण म उनके आकषक वस्त्राभरणो के वणन की भी परिपाटी रही है। राजानक रुय्यक ने शोभा के समृद्धीकर अलकारो को सात प्रकार का माना है।[3] उनके अनुसार रत्न और स्वण से नाना प्रकार के अलकार बनते हैं जिन्हे आवेध्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य भेदो म बाटा जा सकता है। वस्त्रो का प्रयोग मात्र अंगगोपन के लिए ही नही होता अपितु उनके द्वारा विशेष मोहकता उत्पन्न होती है। ये वस्त्र भी वण और सजावट के भेद म नाना प्रकार के होते है। इसी प्रकार माल्य के भी अनेक भेदो की चर्चा की गई है।[4] द्रव्यमय मण्डन के अन्तगत कस्तूरी कुकुम चन्दन, कपूर, अगरू कुलक, दतसम, पटवास सहकार, तैल, ताम्बूल आलक्तक अजन गोरोचन प्रभृति की गणना होती है।[5]

सस्कृत प्राकृतादि साहित्य म नायिकाओं और नायको के भी कही-कही इन सौंदर्योपकारक द्रव्यमय मण्डनो का वणन मिलता है। लगता है रुय्यक ने इन काव्य ग्रंथो के आधार पर ही इन मण्डनों का वणन किया है। उन्होने योजनामय मण्डन के अन्तगत भ्रूघटना केशरचना और जूडा बाधने को माना है।[6] पूरा भारतीय ललित साहित्य ऐसे अलकार विधानो के वणन से पूण है। रीतिकाव्य मे जूडा बाधने वाली नायिकाओ की मोहकता का भी वणन परपरित शैली म प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त

---

१ अंगोपांगाना यौवनोदभवी मन्मथावस्थाप्रथक कटाक्षादिभ्रूविक्षेपादिचेष्टाविशेषो विलासिता।
—सहृदयानन्द पृ १४८

२ तरंगितस्वभावाप्यवयवसंनिवेशव्यापि स्निग्धमधुर इव चन्द्रिमोत्कर्षभार इव पूर्णेन्दुवदाह्लादको धम सस्थानमुद्रितव्यंग्यो लावण्यम्। वही

३ रत्न हेमांशुके माल्य मण्डन द्रव्ययोजने।
प्रकीर्ण चेत्यलंकारा सप्तैवेते मया मता॥ वही

४ दे राजानक रुय्यक सहृदयानन्द प १४६

५ कस्तूरीकुंकुमचन्दनकर्पूरागुरुकुलकदन्तसमपटवाससहकारतैलताम्बूलालक्तकाञ्जनगोरोचनादि निवृत्तो मण्डनद्रव्यमय। वही

६ भ्रूघटनालकरचनाधम्मिल्लबन्धादियोजनामय॥ सहृदयानन्द पृ १४६ ६०

श्रमजन और मदिरा के मद आदि जय अलंकारों[1] से युक्त नायिकाओं की शोभा का भी वर्णन रीतिकवियों ने किया है। विशेष अलंकारों[2] में दूबा, अशोक पल्लव, यवांकुर, रजत त्रपु, नख, तालदल, दन्तपत्रिका, मृणालवलय और करक्रीडनादिक का प्रयोग युगानुरोध से काफी कम हो गया था। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में रीति कवि की मनोवृत्ति की ओर संकेत करते हुए उपर्युक्त अलंकरणों के युगानुसार परिवर्तित रूप का वर्णन किया है। वे लिखते हैं "यद्यपि रीतिकाल के शृंगारी कवि का प्रधान आकर्षण नारी का मांसल रूप ही है तथापि इस साहित्य में चित्रित नारी अपनी महिमा से महीयसी नहीं बन पाई है। वस्तुतः उसके चित्र में रईसी की धाक है। नायिकाओं के चित्र को मादक बनाने के लिए उसने आडम्बरपूर्ण वातावरण और महार्घ वेषभूषा का सहारा लिया है। उसकी नायिकाएँ विशाल प्रासादों में रहती हैं उनकी सेज की चादरें चाँदनी और दूध की उज्ज्वलता को लज्जित करती हैं उनके पायदान में बहुमूल्य मखमल का उपयोग होता है, उनकी सेवा में नियुक्त दासियाँ जिन पानदानों, इत्रदानों और फूलदानों का व्यवहार करती हैं उनमें सोने चाँदी की बहार रहती है। नायिकाओं के परिधान में कीमखाब, साटन, मलमल और अतलस के वस्त्र प्रयुक्त होते हैं। उनकी साड़ियाँ की किनारी सुवर्णखचित होती है और चारु चूनरी चटकीले रंगों से रंगी होती है। पुष्पों के वस्त्रों का उतना उल्लेख नहीं है। अनेक प्रकार के अंगराग, उबटन, पान, मिस्सी, मेंहदी, अंजन, काजल, सिंदूर, रोरी, कुंकुम, जावक के साथ-साथ सीसफूल, कर्णफूल, तरौना, झुमका, बेसर, नथ, कई कई लरों के हार, हसली, कठुला, हमेल, दर्पण, बाजूबंद, कंगन, पहुँचा, चूड़ी, अंगूठी, मुंदरी, आरसी, करधनी, पायल, बिछुआ नायिका की शोभा को सौगुनी बनाते रहते हैं। गुलाब और बेला के गजरे, जूही और चमेली की भीनी भीनी महक, चम्पा और मौलसिरी के कोमल और लुभावने हार कस्तूरी और केसर के अंगराग और गेंदा, गुलदाऊदी, गुलाब, गुलवास, गुलाबांस, गुल लायची, गुल लाला की गमक से यह शोभा मूर्तिमान मद बनकर प्रकट होती है।[3]

रीतिकाल में यद्यपि अलंकारों के रूप में कुछ परिवर्तन हो गया किन्तु उनके प्रकार—आवध्य, प्रक्षेप्य और आरोप्य में अन्तर नहीं हुआ। सभी प्रकार के अलंकार रीतिकाव्य की नायिकाएँ पहनती हैं। साथ ही पुष्पमय मंडन और यातनामय अलंकारों का भी प्रचलन मिलता है। यह तो हुई साज सज्जा की बात। अब नारी के रूप चित्रण की परम्परा का रीतिकाल तक विकास क्रम निर्धारित करते हुए यह दिखलाने का प्रयत्न किया जाएगा कि रीतिकाव्य को इस क्षेत्र में कितनी प्रेरणा पूर्ववर्ती साहित्य और शास्त्र से मिली।

---

१ सहृदयानन्द पृ० १६

२ वही

३ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य पृ० ४३–४६

रूप-चित्रण

यद्यपि नायिका के रूप चित्रण म तीन प्रकार की परम्पराएँ पाई जाती हैं जिन्हें क्रमश नखशिख वणन, अगसमष्टि-वणन और स्फुट अ ग वणन कह सकते हैं किन्तु काव्य परम्परा के अन्तगत सबको नखशिख-वणन ही माना जाता है। सुविधा के लिए नख शिख-वणन के स्वरूप और स्रोतो का उल्लेख बाद म किया जाएगा पहले स्फुट अ ग वणन की परम्परा का परिचय दिया जाएगा।

स्फुट अग-वणन

प्रबन्धेतर काव्यो म नायिका के नख से शिख तक के सौंदर्य वणन का अवसर नही रहता अत एक या दो छन्दो मे ही नायिका के कतिपय विशिष्ट अगो क सौंदय का वणन कर दिया जाता है। रीतिकाव्य म ऐस छद अनेक मिलते हैं जिनमे नायिका के नेत्रो या कुचो का ही वणन कर दिया गया है। एक अ ग के सौन्दय स सर्वाग सौन्दय के बोध की परम्परा ऐस वणनो मे विशेष सहायक हुई है। स्फुट अगो म भी वे ही उपमान या अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं जो नखशिख की परम्परा म होते आए हैं अत इसकी चर्चा नखशिख-वणन के ही प्रसग म की जाएगी।

अग समष्टि-वणन

अग-समष्टि के वणन की भी परम्परा बहुत कुछ स्फुट अगो के वणन जैसी रही है। एक-दो छन्दो म ही नायिका के सर्वांग का वणन मुख्यत प्रधान यौन आकषण के केन्द्रो का उल्लेख करके उसके मोहक प्रभावो का अकन किया जाता रहा है। इसके अन्तगत पूर्वोल्लिखित अ ग प्रभा या कान्ति का सकेत करत हुए नायिका की कुछ उद्दीपक चेष्टाओ का निर्देश किया जाता रहा है। रीतिकाव्य मे भी पूववर्ती काव्य परम्परा का अनुसरण किया गया। अत इस सदभ म भी कोई नवीनता लक्षित नही होती।

नायक-नायिका के रूप सौन्दय का शृ गार रस के पोषण म महत्वपूर्ण स्थान रहा है अत शृगारी साहित्य की मुख्य विशेषता रूपाकन की रही है। डॉ० विपिन बिहारी त्रिवेदी ने इसकी परम्परा का निर्देश करत हुए लिखा है भारतीय काव्य धारा की एक बहुत बडी विशेषता रूप-वणन म निहित है। सस्कृत साहित्य के लगभग प्रत्येक कवि न रूप-वणन को अपने काव्य का मुख्य अग बनाया है। प्राकृत साहित्य भी इसी प्रकार क रूप राग म भरा पडा है। हिन्दी कवियो की रचनाओ म प्रारम्भ से ही इस काव्य पद्धति का अनुसरण मिलता है।[1] जिस रूप चित्रण का विकास सस्कृत प्राकृत और हिन्दी साहित्य म उत्तरोत्तर एहिक होता गया उसका मूल रूप अपार्थिव देवी देवताओ की स्तुतियो म देखा जा सकता है। सवप्रथम उपयुक्त म उषा क रूप का अकन किया गया है। भक्तिपरक काव्य म आराध्य क अलौकिक सौन्दय का उद्घाटन

---

१ डॉ विपिनबिहारी त्रिवेदी चन्दबरदाई और उनका काव्य दरबार के हिन्दी कवि पृ १३६

लौकिक उपमानों के द्वारा किया गया। केशव मिश्र ने नारी शरीर के निम्नलिखित गुणों की चर्चा की है—उसमें सौन्दर्य, मृदुता, अतिकोमलता, कान्ति, उज्ज्वलता और आवल्य या सुकुमारता का वर्णन होना चाहिए।[1] प्राचीन साहित्य में इन गुणों का नाना देवियों के ध्यान में विधान किया गया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है 'इन गुणों का नाना देवियों के रूप से संगृहीत होना अनुमान का विषय है। लक्ष्मी और गौरी के ध्यान में स्वर्णप्रभा, अन्नपूर्णा और सरस्वती के ध्यान में सौकुमार्य या लावण्य, तुलसी के ध्यान में अंग का यष्टित्व और आवल्य, सावित्री और सरस्वती के ध्यान में औज्ज्वल्य तथा राधिका और सरस्वती के ध्यान में कान्ति का उल्लेख पाया जाता है। इन देवियों के रूप में सौन्दर्य का प्रधान उपादान माना गया है। समस्त देवियों को दिव्य-वस्त्राभरणों से युक्त माना गया है और इसी प्रकार के आभरणों को भारतीय काव्य में स्त्री रूप का एक आवश्यक अंग मान लिया गया है। इसीलिए कनक-यष्टि और सपुष्प लता के साथ स्त्री शरीर की तुलना करना रूढ़ हो गया है।'[2]

भारतीय साहित्य के मध्यकाल में अनेक भक्तों ने दिव्यालंकारभूषिता देवियों के स्तुति ध्यान का वर्णन किया है। शंकराचार्य ने भवानी की स्तुति में उनके अंगों के गुणों का वर्णन काव्य परम्परा के अनुसार ही किया है। वे ऐसी गौरी की स्तुति करते हैं जिसके मुख में ताम्बूल, नेत्रों में कज्जल की कला, ललाट पर केसरतिलक और ग्रीवा में मौक्तिक का हार सुशोभित है, जिसके पृथु कटि प्रदेश पर साड़ी के ऊपर स्वर्णखचित मेखला सुशोभित है। स्तन तट पर मंदारकुसुम का हार, वीणा की झंकार, कानों में कुण्डल और जिसकी गति भंगिमा हस्तिनी के समान है। जो चंचल नेत्रों से विजयशीला, मणि और कनकमय आभूषणों से नवीन सूर्यवत् प्रभा में मण्डित अंगोंवाली, तड़ित्वत् पीताम्बर और मंजीर से युक्त कर-पल्लववाली है। जो पुष्प और मुक्ताभरणों से युक्त और अलकरूपी भ्रमरों से शोभायमान है।[3] इसमें विविध वस्त्रालंकारों से युक्त देवी के रूप का चित्रण किया गया है। इन्हीं ध्यान स्तुतियों का मूल कुछ विद्वान आगमों को मानते हैं। सम्भव है कवि को इसी से लौकिक काव्य में भी नारी रूप चित्रण की प्रेरणा मिली हो। त्रिपुरसुन्दरी के स्तवनों में नारी सौन्दर्य उभरकर आया है। देवी के अंग प्रत्यंग का वर्णन परम्परायुक्त विशेषणों से किया गया है।[4] इसी प्रकार नवरत्नमालिका[5] और

---

1 अलंकार शेखर पृ० ५२

2 डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका (नवीन संस्करण) पृ० २६०-६१

3 बृहत् स्तोत्ररत्नाकर १७० आनन्दलहरी श्लोक ३-६।

4 नितम्बजितभूधरां नताविकम्पालोचनां महाहमणिहारिणां त्रिशङ्कापावनां कुचोपमितशैलयां मृगाङ्क कपालयां कुटिलकुन्तलावृतां मन्दहासविलासितां घनस्तनभारानतां गलितचूलिकां सकुसुमविलेपनामलं कविविरञ्जिकां समन्दहसितेक्षणां मदनभावनमोहिनीं

—बृहत्स्तोत्ररत्नाकर १७१ त्रि० सु० स्तोत्र

5 बृ० स्तो० १६७ नवरत्नमालिका।

'त्रिपुरसु न्दरीप्रात स्मरणम्' म भी भक्त कवियो के परवर्तित रूप चित्रण की भारी मिलती है। त्रिपुरसु रीविजयस्तव के प्रत्या श्लोक म दवी के रूप एव अग और उनकी रुचिर वेशभूषा के सान्दर्योद्घाटन म संलग्न है।[2] भारतीय काव्य म रूप चित्रण की परम्परा को प्रभावित करने म आगमा म अनुप्रेरित भक्तिभावित इन अलौकिक सौन्दर्य व्यजक उद्गारो का कम महत्त्व नहीं है।

अगसमष्टि के वणन म जिन प्रमुख अगा के सौन्दर्य रूप का निरूपण प्राय किया जाता है उनका सकेत राजशेखर की निम्न उक्ति स मिलता है। रूप रमजरी म वे लिखते है 'युवावस्था म लावण्यपूर्ण अग आरक्तनमित नोचन स्थूल स्तन त्रिवलिया स युक्त मुष्टिग्राह्य मध्यभाग और नखाकार (स्थूल और वतुल) नितम्ब के गतिविभ्रम और स काम ही क्या ? इन्हा पाँच अगा स तरुणियाँ कामदेव की विजय वजयन्ती हो जाती हैं।[3]

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि नारी के रूप चित्रण म कामशास्त्रीय विधान को भी कवियो ने दृष्टिपथ म रखा है। सौन्दर्य रूप के कारण पद्मिनी और चित्रिणी नायिकाओ के गुणा का आधान प्राय नारी रूप चित्रण म किया जाता रहा है। उनके अगा की विशेषताओ का उद्घाटन कवशेखर पण्डित ने बडी सूक्ष्मता से किया है।[4]

हिन्दी के आदिकाल म उपलब्ध काव्य ग्रथा म पृथ्वीराजरासो रूप चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। उसम पृथ्वीराज जिन राज कन्याओ से विवाह करत है कवि चन्द ने उन सभी राजकुमारियो का रूप चित्रण विस्तार क साथ किया है। साथ ही दासियो सेविकाओ पनिहारिनो और दूतियो क भी रूप चित्रण कम आकपक नही हैं। हिन्दी के इस प्रारम्भिक ग्रथ म रूप वणन की रूढियो का सम्यक निर्वाह दृष्टिगत होता है।

पूवमध्यकालीन भक्तिधारा म आराध्य का रूप चित्रण उसी तन्मयता से किया गया है जिस प्रकार शृगारी काव्या म नायक नायिका का मिलता है। रूढियाँ प्राय वही हैं अन्तर इतना ही है कि एक आराध्य के प्रति पूज्य-बुद्धि जगाकर भावो का उन्नयन करता है तो दूसरा नारी का रमणीयता का उद्घाटन कर भोग वृत्ति की सम्वद्धना। भक्ति काल म अधिकतर नखशिख वणन आराध्यदेव का हुआ है चाहे वे राम हो या कृष्ण। भक्तिकाल के पूर्व हिन्दी काव्य म पुरुष का रूप या नखशिख वणन इतने विशद

---

१ व स्तो २०१ त्रिपुरसुन्दरी प्रात स्मरणम्।

२ वही २ ४ त्रि स जियास्तव।

३ रूप रमजरी १९६

४ भवति कमलनेत्रा नासिकाक्षुद्ररध्रा अविरलकुचयुग्मा दीर्घकेशी कृशांगी।
मृदुवचनसुशीला नृत्यगीतानुरक्ता सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगधा॥
भवति रतिरसज्ञा नातिदीर्घा न खर्वा तिलकुसुमसुनासास्निग्धनीलोत्पलाक्षी।
कठिनघनकुचाढ्या सुन्दरी सा सुशीला सकलगुणविचित्रा चित्रिणी चित्रवक्त्रा॥
—कवशेखर रतिरहस्य।

रूप में नहीं प्राप्त होता। सूर के काव्य में तो बाहु भी जिस अवस्था में कृष्ण दीख गए हैं, कवि ने आत्म विभोर होकर उनकी छवि का अंकन किया है। फिर भी वे दृष्टि मुक्त नहीं हो पाए हैं। अतः कवि के वे ही उपमान कृष्ण के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं जिनका प्रयोग प्रायः नारी के रूप चित्रण में कवि परम्परा करती आई है।

नखशिख वर्णन

रीतिकाव्य का नखशिख वर्णन बहुत कुछ कालिदासोत्तर रूढ़िबद्ध महाकाव्यों, संस्कृत के काव्यशास्त्रीय और कवि शिक्षा विषयक ग्रंथों और अपने पूर्ववर्ती हिन्दी के काव्य-साहित्य से प्रभावित है।

कालिदास की सौन्दर्य चेतना जिस उदात्त और व्यापक भावभूमि पर प्रतिष्ठित है वह क्रमशः भारवि माघ और श्रीहर्ष में क्षय ग्रस्त हो गई। कालिदास के परवर्ती कवियों में मानव के बाह्य सौन्दर्य और अन्तः सौन्दर्य का परस्पर की मौलिक प्रतिमा न रह गई। शकुन्तला पार्वती और इन्दुमती के सौन्दर्य का जिस व्यापक परिप्रेक्ष्य में नाना रूप रंग से संकुलित और मौलिक प्रतिमा के आधार पर अंकन किया गया है वह परवर्ती कवियों की क्रमशः विकासप्रवण दृष्टि से दूर होता गया। बलात्मक अनुरंजन की प्रधानता के कारण कवि स्वाभाविक स्फूर्ति और ताजगी को त्यागकर श्रमसाध्य बौद्धिक रूप जटिल और अलङ्कृत दीर्घकायों में सीमित होता गया। इसका मूल कारण था लोक रुचि और युगानुराग।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि वाल्मीकि अश्वघोष भास कालिदास आदि कवियों ने भी रूप चित्रण में परम्परित उपमानों का प्रयोग किया है किन्तु उनमें एक ताजगी है जो चमत्कृत करने की अपेक्षा आह्लादित अधिक करती है। परवर्ती कवियों में आह्लादन की अपेक्षा अनुरंजन की वृत्ति अधिक लक्षित होती है।

नखशिख-वर्णन में कवि परम्परा नारी के अंग प्रत्यंग चित्रण में जिस सूक्ष्मदर्शिता का परिचय देती आई है, उसका स्फुरण पुरुष पात्रों के चित्रण में दृष्टिगत नहीं होता। नारी अंगों की सुकुमारता वर्ण कान्ति आकार प्रकार कुन्तलों की घनी श्यामता केशों का अलङ्कृत विन्यास, लटों की वक्रिमा वेणी की दीर्घता और सविकम्प जूड़ाशोभा ललाट की शुभ्रता और उस पर अंकित विभिन्न वर्ण आकार के तिलक या बिन्दी भौंहों की वक्रिमा विलासपूरित चपल चितवन कर्णाग्रों की वेधकता नेत्रों की श्वेत श्याम रक्तिम आभा उसमें विलसित कज्जल रेखा पतली-नुकीली नासिका मधु मुस्कानयुक्त कोमल रक्तिम अधर, छोटे तीक्ष्ण और चमत्कार दाँत जिनमें चमत्कार और लज्जारक्त सुकोमल कपोल कपोलों की गुराई पर तिल की कान्ति आभा सुडौल तीन रेखायुक्त ग्रीवा, आनम्र स्कंध सुढार बाहु, आरक्त पाणितल पूर्ण अंगुलियाँ मात्राओं में सुशोभित उन्नत पुष्ट और वर्तुल वक्षोज सूक्ष्म श्यामल रोमराजि त्रिवलीयुक्त उदर गंभीर और आवर्तयुक्त नाभि सूक्ष्म कटि स्थूल चक्राकार नितम्ब चिकन सुडौल उरु अलंकृत गुल्फ जावकयुक्त चरण रक्तिम चरणतल, प्रभामय चरणनख विलासपूर्ण गति के साथ अनेक

[illegible] है।

[illegible]

[illegible] है।

[illegible] है।

[illegible] (काम) [illegible]

[illegible] साहित्य में भी मिलता है।

---

१ [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
रोमालि [illegible] ॥ [illegible]

स्तोत्रों में अधिकांश वर्णन समग्र रूप में मिलते हैं जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है। कुछ भक्त-कवियों ने 'चण्डी कुचपंचाशिका' और 'विष्णुपादकेशान्त वर्णन' जैसे ग्रन्थों की रचना करके भक्ति काव्यधारा में रूप चित्रण की परम्परा पुष्ट की।

संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में नारी रूप चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इन सब ग्रन्थों में यद्यपि नारी के अंगों के उपमान प्राय सीमित और रूढ़िबद्ध हैं फिर भी उनका संयोजन नवीन ढंग से किया गया है जिसमें कवि की चमत्कार प्रदर्शन वृत्ति अधिक सक्रिय जान पड़ती है। माघ और श्रीहर्ष के नखशिख-वर्णन प्रसंग इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

शिख नख और नख-शिख

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नख शिख वर्णन की एक व्यवस्था दी गई है। कविकल्पलताकार ने लिखा है कि मानवी-नखशिख वर्णन में शिख से प्रारम्भ करके पद नख तक वर्णन करना चाहिए और दिव्य रूप वर्णन में इसके विपरीत पद नख से शिख तक का वर्णन करना चाहिए।[1] आचार्य केशवदास ने भी इस परम्परा का समर्थन किया है।[2] दिव्य आलंबन के वर्णन में नखशिख की परिपाटी तो मिलती है किन्तु अदिव्य आलंबन के वर्णन में शिख नख का वर्णन ही नख शिख के नाम पर किया जाता है।

फारसी-काव्य पद्धति में भी सरापा का वर्णन मिलता है। इसमें सर से पैर तक के वर्णन में शिखनख की ही परम्परा का निर्वाह किया जाता है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है 'उनके यहाँ दिव्यादिव्य की स्थिति नहीं है। दिव्य निर्गुण है निराकार है। डरते डरते उसके चरण और हाथ की उँगलियों तक की चर्चा किसी प्रकार की गई। अन्य अंगों का प्रश्न ही नहीं। इसी से वहाँ अदिव्य वर्णन ही चला। सरापा या शिखनख तो साहित्य में आया पर नखशिख नहीं। नखशिख का विभाग भारतीय सरणि है। जो स्थापना केशव ने की है वह उनसे पूर्व सूरदास और तुलसीदास में भी दिखाई देती है। उन्होंने दिव्य और दिव्यादिव्य के वर्णन में वही क्रम रखा है अर्थात नख से शिख का क्रम ग्रहण किया है।[3]

रीतिकाव्य में नखशिख वर्णन की परम्परा उससे पूर्व विनिर्मित काव्य से आई। कृष्णभक्त कवियों ने राधा और कृष्ण दोनों के अंगांगों का मरम वर्णन पर्याप्त मात्रा में किया है। सूफी प्रेमाख्यानकों में नायिका के रूपाकर्षण का वर्णन सविस्तर किया गया है। *विद्यापति ने केवल स्फुट अंगों का ही वर्णन किया परन्तु उनमें भी वे ही उपमान ग्रहण* किए गए जो नखशिख की परम्परा में चिरकाल से प्रयुक्त होते आए थे। उनसे पूर्व चंद

---

१ मानवा मौलितो वर्णा देवाश्चरणतः पुनः ॥ —कविकल्पलता १। २७

२ नख तें सिख लौं बरनियै देवी दीपति देखि।
सिख तें नख लौं मानुषी केसवदास बिसेषि ॥ —क० प्रि० १४।३

३ केशव ग्रन्थावली तृतीय भाग सम्पादकीय पृ० १३

और अपभ्रंश के कवियों ने नखशिख की परिपाटी को समृद्ध किया। चन्द का नखशिख वर्णन रूढ़ियों से ग्रस्त है।

इस प्रकार नखशिख वर्णन की परम्परा पूर्ण रूप से रूढ़ियों पर आधारित है। सम्प्रति नखशिख वर्णन के प्रसंग में प्रत्येक अंग के परपरित उपमानों का परिचय दिया जा रहा है।

केश

नायिका के रूप की स्वर्णाभा काले चिकने और घुंघराले केशों की पृष्ठभूमि में और भी अधिक निखर आती है। केशों की दीर्घता सघनता, कुटिलता नीलिमा और मृदुता सौंदर्य और सौभाग्य के प्रतीक माने जाते हैं।[1] केशव मिश्र ने उक्त गुणों के व्यंजक उपमानों की सूची दी है। उसमें उनकी श्यामता पर विशेष बल दिया गया है जैसे तम बादल भ्रमर यमुना-तरंग नीलमणि और धूम। इनमें केशों की सघनता को व्यंजित करने वाले उपमान मुख्य रूप से बादल शैवाल चामर तम और आकाश माने जा सकते हैं। दीर्घता का आभास मयूरपिच्छ से मिलता है।[2] चिकनाहट और चमक की व्यंजना यमुना की तरंगों और नीलमणि एवं गंध की व्यंजना नीलकमल से होती है। कोमलता का गुण प्रायः सभी उपमानों में पाया जाता है।

केश का वर्णन कई रूपों में किया गया है। कहीं खुले केशों की सघनश्यामलता वर्णित है तो कहीं वेणी की सुगंधिता तो कहीं पुष्प और मालाओं से सुसज्जित जूड़े की मोहकता का उल्लेख मिलता है। कवि परंपरा ने टेढ़ी और चिकनी लटों का भी वर्णन अनेक अप्रस्तुतों द्वारा किया है। कविकल्पलताकार के अनुसार वेणी की उपमा सर्प असि और भ्रमरपंक्ति से तथा समस्त केशों (जूड़े) की उपमा राहु से दी जाती है।[3]

साहित्य में प्राप्त केशों के मुख्य उपमान भ्रमर या भ्रमरसमूह[4] मयूर पिच्छ[5] चमरी की पूंछ या चामर[6] पुंजीभूत अंधकार[7] मेघ[8] राहु[9]

१ बहुत्व दीर्घत्व स्निग्धत्व कुटिलत्व नीलत्वानि केशानाम्। केशव मिश्र अलंकारशेखर ५२
२ तम शैवाल... भ्रमरचामरै।
यमुनावीचिनीलाश्मनीलाब्ज मेघ धूम॥ वही ५।१।२
इति धूमतमः... । वही ५२
३ वेण्याः सर्पासिभृंगाल्यः धम्मिल्लस्य विधुन्तुदः। वही पृ ५१
४ मा० न० ३५८८ मान १२।२४।४ स रा० २।३२ ठि ना १६ नमा ४।४।१०।१ क जि० १ र र २।३ म म ५०४ पद्मावत २३
५ रघु० ६।६७ मेघ० २।४१ नष० २।३।७।२० २२ विक्र १३।२७ मीन १२।२४।६ का क ८।१४ का जि १७।२६
६ नैष १।२५ २।२० साह म ३२८ मान १२।२४।६ कि १० ८।१
७ नष० ७।२१ साह द ५२१ कि प १।१७ ने० जि ९ पद्मावत २१ २३
८ विक्र १ ।८८ साह म० ३ ६७ मान ७।१५।२ ११।२२।६ कि० प १६।४ क र० २।७ का कि ४।२६ पद्मावत २३
९ कि प १२।८ पद्मावत ४।४ १ ।१७ सूर १ ।१ ७६ बिहारी ४८६

शवाल[1] मखतूल[2] और जल-बन्लाल[3] प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त काम पाश,[4] काम धूम[5] आदि का भी प्रयोग अप्रस्तुत के रूप में किया गया है। वेणी की उपमा भुजगी,[6] कंचन खंभ पर नाग[7] या चंदनलता पर नाग[8] नवशृंखला[9], अलि कलाप,[10] कामरूपी कृष्णसर्प,[11] यमुना या यमुना तरंग[12] से दी गई है। अलक के लिए कुवेनी (वंसी),[13] अहि शिशु[14] सर्प[15] अलि[16] राहु की छाया[17] के अतिरिक्त उसके ममत्व प्रभाव के कारण फंद[18] और कापा[19] का भी प्रयोग अप्रस्तुत के रूप में किया गया है।

माग

रीतिकालीन कवियों ने माँग का वर्णन बहुत कम किया है। संभव है कि अप्रकाशित नखशिख के ग्रंथों के प्रकाश में आने पर उनमें माँग के भी वर्णन मिलें।

केश के बीचोबीच की माँग को कविकल्पलताकार ने रास्ता और दण्ड से उपमित करने की व्यवस्था दी है।[20] वर्णरत्नाकर में चतुरस्र चतुरंगुल, कनक पट्टिका सुंदर, निराल, स्फुट सरल आदि ललाट के गुण आकार के वर्णन के साथ सदृश (सि) दुर दंति (=शिर) कानकृत सीमन्त का भी उल्लेख किया है।[21] माँग के लिए साहित्य में

---

१ वि० प० १८।३ क० शि० १ रूपमाभरण ३६
२ के शि० १ का० नि० ६।२
३ स० रा २।३१
४ बलि ८२
५ कु० म० ४४
६ श्रीक० ८।३४ पउमचरिउ ३८।३ सूर० १।२ ७६ पदम ३।६ १०।१ ४१।४ का० नि० ३।४७
७ पृ रा० ६।२८ ३६।२०१ ४७।७३ ६१।३४६ सूर० १।११६७ र० र २।७
८ प गा० २५।३१०
६ श्रीक० ६।२६
१ श्रीक ६।३ शाङर्ग ३३७८ पदुमा ४१।४
११ श्रीक० १५।४५
१२ पद्मा ४१।४ बलि० ८५ र० र० २।७ जग० वि० १३
१ र सा १६४
१४ सूर० १।२१३३ का नि० ४।१६
१५ सूर १०।११६६ का० नि ६।८
१६ कु० म० १ ६ सूर १।१२०६
१७ कु० म० १०६
१८ सूर० १०।२२७२
१६ वही
२ सीमन्तस्याध्वदण्डौ च। —अ श पृ ५१
२१ वर्णरत्नाकर, द्वितीय कल्लोल पृ० ६ २०क

जिन अप्रस्तुतो का प्रयोग किया गया है वे मुख्यत नदियां—यमुना म सरस्वती या यमुना मे गगा का स्रोत[1] सुरा की सरिता[2] आकाशगगा,[3] गगा,[4] या पय[5] किरण[6] दामिनी,[7] रेखा[8] आदि पतली और चमकदार चीजें ही हैं।

सूरदास ने माग के लिए काम धाम की सरणि[9] का अप्रस्तुत विधान किया है सभवत इसीस प्रभावित होकर भिखारीदास ने वेणी के लिए सुरलोक की सीढी[10] की उत्प्रेक्षा की है।

ललाट

ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने ललाट के आकार प्रकार की चर्चा करते हुए लिखा है कि इसे चौरस चार अगुल का सुन्दर निराल और स्फुट होना चाहिए। इसकी उपमा कनकपट्टिका से दी जानी चाहिए।[11] सामुद्रिक लक्षण के अनुसार ललाट का समतल होना सौभाग्य का सूचक होता है।[12] इसकी उपमा प्राय अष्टमी के अर्धचन्द्र स दी जाती है।[13] कहीं कहीं केवल चद्र से ही उपमा दी गई है, अर्धचद्र या चद्रकला का उल्लेख नहीं किया गया है किंतु यह प्रवृत्ति सस्कृत काव्य म नहीं दृष्टिगत होती। ऐसे प्रयोग प्राय हिंदी कवियो न ही किए हैं।[14]

अधिकाश कवियो ने उपयुक्त आकार प्रकार को ध्यान मे रखकर उसमे सुशोभित तिलक या बिंदु पर अनेक प्रकार की उत्प्रेक्षाए की हैं। तिलक या बिंदु के अध्ययन से सस्कृत प्राकृत से लेकर रीतिकाल तक अनेक प्रकार के तिलकों का परिचय

---

१ पद्मावत १०।२
२ कै० शि० छ० २
३ कलि० ८५
४ प० रा० ४७। ६ सूर १०।१०७६
५ पद्मावत १ ।२ छि० वा १६६
६ सूर १ ।२११४
७ पदमावत १०।२
८ वही
६ सूर० १ ।२१८४
१ मध्य सन्देस तें है ब्रह्माड लौं लोग कहैं सुरलोक निसेनी। —का० नि ८।६२
११ वर्णरत्नाकर द्वितीय कल्लोल प ६ २० क
१२ बृहत्सहिता ७ ८
१३ अलकार शखर ५।१।४ एव नष० ७।२२ ७।२२ शाड ग० ३२२१ पद्मा ३।६ बिहारी ४८७
१४ प०रा ४५।१०५ पद्मा १०।३ ४।१६ ढोला० ४६६ बिहारी ४८६, का०नि० ८।४२

मिलता है। इसमें मुख्य रूप से कस्तूरी[1] चन्दन,[2] सिंदूर,[3] केसर[4] गुलाल,[5] अभ्रक[6] रोरी[7] आदि के तिलक और बिन्दी का उल्लेख मिलता है। तिलक की शोभा वर्ण और आकार के आधार पर कवियों ने अनेक प्रकार की उत्प्रेक्षाएं की हैं जिनमें कुछ में तो केवल वर्ण-साम्य या वर्ण विरोध को प्रकट किया गया है, जैसे गोरे ललाट पर कस्तूरी का तिलक वर्ण-वैषम्य के कारण अधिक आकर्षक लगता है तो सिंदूर रोरी गुलाल आदि दीप्ति को दुगुनी करने में सहायक सिद्ध होता है। अप्रस्तुत में कस्तूरी तिलकित भाल के लिए चंद्र कलंक[8] या चंद्रमण्डल में राहु, रोरी या सिंदूर बिंदु से शोभित भाल के लिए चंद्रमा पर बालसूर्य,[9] शिवनेत्र[10] दीप-ज्योति,[11] मंगल[12] बुध[13] और चंदन बिंदु के लिए चंद्र[14] आदि की योजना की गई है। तिलक को प्रेमी या द्रष्टा के चित्त को घायल करनेवाला और लताओं के बीच होने के कारण धनुष पर चढ़े काम बाण[15] से या भल्ली से दी गई है।[16]

यद्यपि रीति काव्य में ग्राम्य जीवन उनके रहन सहन खान-पान वेशभूषा आदि का वर्णन कम मिलता है। इसमें आभिजात्यवर्गीय चमक दमक अधिक है फिर भी कवियों ने विशेषतः बिहारी ने ग्राम्य तरुणियों के तिलकों की रूढ़ि से भिन्नता प्रतिपादित की है। कोई गवारि (ग्राम्य) चन्दन की आड़ लगाती है[17] तो कोई सानंदिखा का।[18] मतिराम की नायिका मसूर की बिंदी से भी कम शोभित नहीं होती।[19]

१ शाङ्ग प० ३२६८ ब्रह्मवै पुराण ४।२८।६५ सूर० १ ।११६ डोला ४६६ ज वि० ४४०
२ ब्रह्मवैवर्त पुराण ४।२८।६६ गीत० ११।२२।६ सूर १०।२११७ बलि० ८७ बिहारी ५१३
३ ब्रह्मवैवर्त ४।२८।६५ प रा० ४५।११५ वि प १२।८ बिहारी ४८६
४ सूर १०।१७ २ बिहारी ४६६
५ ज वि० ४३६
६ बिहारी ४ ४
७ ज वि० ५८४
८ शाङ्ग प० ३२६४ सूर० १०।११६३
९ प० रा० ४५।११५ वि० प १२।८ सूर० १ ।१ ८३ बिहारी ४८६
१ बलि ८७
११ म स १०६
१२ का नि० १८।१६ बिहारी ४८७
१३ का० नि १८।१६ बिहारी २७८
१४ ब्रह्मवैवर्त० ४।२८।६६
१५ शाङ्ग प० ३२६५ सूर० १ ।१२०४ १ ।२४४६ बिहारी १३८ ३५७
१६ भाले नीलमन्दरवेष भान भल्लीव राजते ।
भ्रूलताचापमाकृष्य न विद्म क हनिष्यति ॥ शाङ्ग प० ३२६३
१७ गन्दराने तन गोरटी चन्दन आड़ लिलार । बिहारी १३६
१८ बिहारी १५८
१९ म०स० १२३

[illegible]

[illegible] जाती है।

[illegible] द्वारा [illegible] होता है। [illegible] वर्णन [illegible] अनुसार और [illegible] सौन्दर्यवर्द्धन [illegible] में वर्णित है। [illegible] सौभाग्यशाली होता है [illegible] टीकाकार [illegible] का प्रमाण माना है। इन विवेचनाओं को दृष्टिपथ में रखते हुए और [illegible] व्यापक प्रभाव एवं आकर्षक [illegible] किया है। भ्रू के उपमान चयन में कवियों की दृष्टि सबसे अधिक [illegible] ही गई मालूम पड़ती है। इसीलिए इसकी उपमा कामधनु[1], धनु या [illegible]लता[2], तीर[3] आदि से दी है। काम विजय पताका रूपी भौंहों को देखकर कामदेव [illegible] स्वाभाविक ही है।[6] भौंहों की कालिमा [illegible] माला[10] या अंजनरेखा[11] से दी जाती है।

नेत्र

नारी और पुरुष के आकर्षक अंगों में नेत्रों का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। कवियों ने नेत्रों के वर्णन में अपनी प्रतिभा का पूरा विनियोग किया है। वराहमिहिर ने उन नेत्रों

१ [illegible] ७०७
२ [illegible]
३ वही पृ० [illegible]
४ [illegible]
५ [illegible] टीका।
६ [illegible]
७ [illegible]
८ [illegible]
९ [illegible]
१० [illegible]
११ [illegible]

को प्रशस्त कहा है जो नीलकमल की द्युति का अपहरण करने वाले हों।[1] इनके विशेष गुणों में स्निग्धता, विशालता, चञ्चलता, अपांगों की दीर्घता, नीलता, प्रान्तभाग की अरुणिमा, श्वेतता, कनीनिका की निविडता आदि का वर्णन किया जाता है।[2] उक्त गुणों के आधार पर इनके उपमान मृग, मृगनेत्र, कमल, कमलपत्र, मत्स्य, खंजन, चकोर तथा केतक, भ्रमर और कामबाण माने गए हैं।[3] कविकल्पलतावृत्तिकार ने आकार-साम्य के कारण चकोर को भी नेत्रों का उपमान माना है।[4] परन्तु इसका प्रयोग प्रायः प्रेमी के नेत्रों की रूपासक्ति के कारण होता है। उक्त उपमानों में मृगाक्षों में दीर्घता, चंचलता और भोलापन है, कमल में स्निग्धता, कोमलता, रक्तिमा और आकार साम्य है, मत्स्य में सजलता, चंचलता और आकार साम्य आदि गुण हैं। खंजन में भी चंचलता, श्वेत श्यामता आदि विशेषताएँ हैं।

कवि-परंपरा के अनुसार नेत्रों के उपमानों में सबसे अधिक कमल[5] का प्रयोग किया गया है। फिर क्रमशः मृग[6], खंजन[7], चकोर या चक्रवाल[8], चकोरी[9], मीन[10],

---

१ बृहत्संहिता ७० ७

२ नेत्रे स्निग्धे विशाले च लोलतापाङ्गदीर्घता।
नीलता प्रान्तलौहित्यं श्वेतत्वं निविडत्वता ॥ —अ० शे० पृ० ५२

३ अ० शे० ५।१।६ ७

४ कविकल्पलतावृत्ति पृ० १३६

५ शिशु० ७।५६ नैष० २।८३ ७।३२ श्रीक० ६।३१ ७।१२ १५।४१ विक्र० ८।८४ शाङ्ग० प० ३३०१ ३८६६ ३४४६ ३४३ गीत० ५।११।६ ७।१६।१ प० १३४ रत्नो० २ पृ० रा० ४८।११८ कै० शि० ७ का० नि० २११६ र० सा० २३१ अ० वि० ५२३

६ नैष० २।२१ ७।३२ श्रीक० ६।२८ ६।७ विक्र० ८।३३ शाङ्ग० प० ३ ६२ ३८३२ गीत० १० १ ८ रत्नो० १ १२।२४।३ पृ० रा० ४५।१०४ वि० प० १२।१ पद्मा० ४।१३ सूर० १० ११६७ कै० शि० ७ कवि० ८८ क० र० २।१ बिहारी ५२ १३४ ४४३ ६२३ का० नि० ८।७८ ११।२७ र० सा० १६४ २५८ अ० वि० ८६ १४१

७ का० ५१२ नैष० २।२३ शाङ्ग० प० ३३०१ गीत० ११।२४।४ पृ० रा० ४७।७३ प्रा० प्रै० २।१५३ वि० प० १५।४ पद्मा० ४।४ १०।५, सूर० १०।११६७ कै० शि० ७ क० र० २।१ का० नि० ६।८ १।२४ २२।१७ बिहारी २१ ४४१ ५६३ अ० वि० १ ६ प० प्र० ३६ ३७ पद्माभरण २६ ३५

८ शिशु० ६।४८ विक्र० ८।४२ १३।६१ श्रीक० ६।६ ६।३६ नैष० ७।३२ गीत० १०।१८।१ पृ० रा० ४५।६२ वि० प० १४।२ सूर० १।२१३३ कै० शि० ७ क० र० २।४६ बिहारी ६७७, का० नि० १६।१६ र० सा० १६२

९ श्रीक० १३।८७ का० नि० २२।१७

१ पृ० रा० ३६।१६७ सूर० १।१७३६ कै० शि० ७ क० र० २।१ बिहारी १६३ ६२३ का० नि० १०।२७ २२।५ २४।४ र० सा० ६७, २६७ अ० वि० १४१ ४१८ प० प्र० ३६ पद्माभरण ११, २६

भ्रमर[1], शफरी[2], तुरग[3], कमल पत्र[4], चातक[5] सारस[6], कुमुद आदि पुष्पों और पशु पक्षियों का प्रयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक उपादानों में से कहीं-कहीं बादल से भी उपमा दी गई है। कुछ कवियों ने नेत्रों की वक्रता के कारण इनकी उपमा सर,[7] कृपाण[8] पनच[9] निषग[10] आदि शस्त्रों से दी है, परन्तु इनका प्रयोग कटाक्षादि नेत्र व्यापार के लिए ही होता है। रूपसी के विभिन्न अंगों पर भटकने और धीरे धीरे चलने से नेत्रों की कल्पना पथिक[11], प्रेमसदेश लाने या प्रेम को प्रकाशित करने के कारण दूत या पायक[12] जासूस[13] चुगल[14] आपस में लड़ने के कारण भट[15], सामन्त[15] चित्त को चुराने या लूटने के कारण चोर[17] बटपरा[18], परयसोहर[19] आदि के रूप में की गई है। अप्रस्तुतों के अतिरिक्त नेत्रों के गुण धर्मों को दृष्टिपथ में रखकर अनेक विशेषणों का प्रयोग किया गया है जैसे सेनापति ने लिखा है—

दीरघ दरारे अनियारे, नक रतनारे,
कज से निहारे कजरारे तेरे नन हैं।[20]

रीतिकवियों ने इन विशेषणों के अतिरिक्त नेत्रों के अनेक गुणों के अनुसार विशेषणों का प्रयोग किया है।

---

१ भागवत १०।१६।४३ विमु० ६।४ वि० प० १०।८ सूर० १०।१४१५ पद्मावत १०।५ म० स० ४६२ का० नि० ४।२४ ८।४३ बिहारी ६२१ पद्माभरण २६७
२ श्रीक० ६।६ शाह् म० ३५२१ ह स० २।१ प० प्र० ४५
३ पद्मावत १०।५ म० स ४६ १३३ ३४ का० नि० १ ।३५ बिहारी ६१३ पद्माभरण १०६
४ श्रीक० १३।१ प० रा० २६।२ १ का० नि ८।१६ २२।५
५ वि० प० ४५।३
६ का० नि० ८।२६ १६।२६ २०।१३
७ कु० म १८४ कलि० ८६ का० नि० १०।२७ ११।२५ २२।४ र० सा २५४ बिहारी २४ ३१८ ६६४
८ का० नि २१।५६
९ सूर०१ ।१२०४
१० प० रा० ४५।६२
११ नप० ७।६ रत्ना० ११।१ २।१ बिहारी २२५
१२ क र २।२४ बिहारी ४३३
१३ बिहारी ६१६
१४ बिहारी २८
१५ सूर १०।२२६७ ८८ म० स ३२६ का० नि० १ ।४ ११।४ , बिहारी ४००
१६ म० स० ३३८
१७ सूर० १०।२२७१ बिहारी १७८
१८ सूर० १०।२२८५ बिहारी १७८
१९ का० नि० १ ।२७
२० सेनापति कवित्त रत्नाकर २।५

नायिका के रूप वर्णन और नखशिख चित्रण में कवियों ने सबसे अधिक वर्णन नेत्रों का ही किया है, इसके बाद कुचों का।

नेत्र-व्यापार

कटाक्षपात या अपांगवीक्षण (चितवन) में उनके विशेष प्रभाव सम्मोहनादि का विशेष रूप से वर्णन किया जाता है। कटाक्ष की उपमा विषामृत, बाण और मदिरा से दी जाती है।[1] इसीलिए केशवदास ने लिखा है —

मिलत जिवाइवे कौं बिछुरत मारिबे कौं।
बान यें पियूष विष बोरिके कढाए हैं॥[2]

रीति-कविता द्वारा इन गुणों के कारण ही कवि-परंपरा के अनुसार कटाक्ष या चितवन की उपमा बर्छी[3] बाण या कामशर[4], तलवार[5], कटक,[6] बिच्छू के डंक[7] आदि वेधक वस्तुओं से दी गई है। अपभ्रंश की नायिका को इसीलिए वक्रिम दृष्टि करने से मना करती हुई कोई कहती है कि ऐसी दृष्टि हृदय में पैठकर फलदार भल्ली की तरह घायल करती है।[8] इसी प्रकार की अभिव्यक्तियां काव्य परंपरा में बराबर पाई जाती हैं।[9] प्रिय की दृष्टि प्रेमी को अपने वश में कर लेती है इसलिए कहीं इसकी उपमा बाज[10] पक्षी से दी गई है तो कहीं बंधु[11] (लासा) से। इसके प्रभाव को दृष्टि में रखकर इसकी तुलना विष[12] से की जाती है। प्रेमी की दृष्टि बराबर प्रिय की ओर लगी रहती है इसलिए किबलेनुमा[13] से भी उसकी उपमा दी गई है।

---

१ कटाक्षो यमुनावीचिर्म गारविविषामृत। अ० कौ० ५।१।१७
२ केशवदास शिखनख छं ७
३ म स ६८६ बिहारी २५८
४ अ गा ६।१० शाङ्ग ३२६६ ३३०० ३३०३ ३७८ ३५०२ श्री ३।७।१४ बि० पं० ३५।१२ प्रा० प्र० २।१२६ सूर १ ११९८६ कवि ८६ भ० स ६८ का० नि० ११।४६ बिहारी २७४ ६१
५ का० नि १ १४ ११।४६ बिहारी ४३३
६ क र० २।२५
७ बिहारी ५३१
८ विहिए मइ भणिय [illegible] मा कुरु वंका दिट्ठि।
पुत्ति सकण्णी भल्लि जिव मारइ हियइ पविट्ठि॥ —हेमचं० प्रा० व्या० ८।३३०।३
९ पनी तिरछौंही भौंनि रीति नचौंही मुख
कादि सकुचौंही मेनापति ज्यार जिय की।
नक भरसौंही प्रम रस बरसौंही चुभी
चित में हमोंही चितवन ताही तिय की॥ —पद्माकर, क० र २।३
१० बिहारी ३७१
११ बिहारी ४४१
१२ शाङ्ग ३३ २
१३ बिहारी ६५०

दशन लालायित नेत्रों की चपल गति के कारण इनकी उत्प्रेक्षा चन्दनधार[1] श्वेत कमल की माला[2] दुग्धप्रवाह[3] कुवलयदल की शोभा का दिशाओं में प्रसारण[4] आदि से की गई है। नेत्रों के मिलन पर प्राप्त होने वाले नवजीवन शीतलता और सुख के कारण इसकी उपमा अमृतवर्षी मेघ[5], सुधा[6] दूज का चाँद और रतिरस निधि द[7] से दी जाती है।

कपोल

कपोल मणिसदृश स्वच्छ और कोमल, उभरे हुए और चमकदार होते हैं इसलिए इसकी उपमा चन्द्रमा और शीशे से दी जाती है।[8] वर्णन रूढ़ियों के अनुसार इसके उपमान मुकुर या मणि मुकुर[9] कम्बु[10] मधूक[11] गति[12] और कनकनिता[13], दाडिमकुसुमगुच्छ[14], परिशावकदल[15] नारंग[16] यमस[17], स्वर्ण तवक[18] आदि पाए जाते हैं।

मुख

सामान्यतः मानवीय सौंदर्य की परख मुख से ही की जाती है। इसकी सुकुमारता, गन्ध प्रसन्नता आदि का वर्णन किया जाता है। मुख पर हृदय के भावों की स्पष्ट छाप पड़ती है, अतः नारी के मधुर कोमल व्यक्तित्व की झलक कवियों ने उसके मुख

१ रघु ११।५
२ मा०मा० ३।१६
३ मा० मा० ३।१६
४ प्रिय २।५
५ काद व ४२६ मा०मा० ३।१६
६ क०र २।१
७ कपू र० २।४१
८ का० पृ०४२६
९ धन्यास्यो कपोलस्य अलंकार शेखर ५।१।४
१० काद० पृ ५२६ व शि ११ का नि ३।४७ ना४२ का न १ ।२१
११ का नि ५६।२
१२ गाथा० ७।३६ आ० स ५६८ न नि ११ म स ५७४ का नि ६।२
१३ शाड ग ३ १६ ३३१५
१४ शाङ्ग ८३ ६
१५ स रा० २।३४
१६ हृत०ना ११।६
१७ पद्मा १ ।११ ६११४
१८ वही ४१।१४
१९ वे शि ११

वर्णन में दी है। मुख की उपमा चन्द्रमा, कमल या दर्पण से दी जाती है।[1] मुख मण्डल के वर्णन में कहीं कहीं केश, ललाट, कपोल, नासिका, नेत्र, अधर आदि के भी गुण व्यापारों का वर्णन किया गया है।

मुख के अमृतत्व, दीप्ति और औज्ज्वल्य आदि के कारण ही इसकी उपमा चन्द्र से दी जाती है।[2] स्निग्ध-कोमलता, रक्ताभा और माधुरी के कारण कमल और चिकनाहट, चमक और उज्ज्वलता के कारण दर्पण इसके उपमान माने गए हैं। स्वत मुख का सौन्दर्य पर्याप्त प्रभावोत्पादक होता है किंतु हाव, भाव, हेला, सात्त्विक अनुभाव आदि की दृष्टि से मुखमण्डल को महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। मोगच्छामूलक प्रेम व्यापारों को व्यक्त करने के लिए प्रमुख रूप से आंखों की प्रमोद्दीपक क्रियाओं का खूब वर्णन हुआ है जिसमें नाक, भौंह आदि की चेष्टाओं का भी उपयोग किया गया है।[3]

कवि-परंपरा के अनुसार नायिका के अंगों से उपमान की निकृष्टता द्योतित करने के लिए उसके छिपने, नष्ट होने या मलिन होने का वर्णन प्राय किया जाता है। शार्ङ्गधर पद्धति में ऐसे अनेक श्लोक संगृहीत हैं जिनमें उपमेय की उत्कृष्टता द्योतित की गई है। उदाहरण के लिए निम्नोदधृत श्लोक देखा जा सकता है—

तस्या मुखस्यातिमनोहरस्य कर्तुं न शक्तः सदृशं प्रियायाः।
अद्यापि शीतद्युतिरात्मबिम्बं निर्माय निर्माय पुनर्भिनत्ति ॥[4]

तथा —

ओ गोरी मुह निज्जिअइ बद्दलि लुक्कु मयंकु।
अन्नुवि जो परिहविय तणु सो किव भवइ निसंकु ॥[5]

और गोरी के मुख की ज्योति तो ऐसी है कि वह अधखुर में भी आ देख लेती है।[6]

इसके अतिरिक्त विशिष्ट स्थितियों में मुख की विशेष शोभा भंगिमाओं को भी कवियों ने निपुणता से अंकित किया है। वर्णन रूढ़ियों के अनुसार सबसे अधिक मुख की उपमा चन्द्रमा[7] से दी गई है। वह भी सामान्य चन्द्र से नहीं निष्कलंक

---

१ मुखस्यन्दकन्दर्पणा। म श ८।१।५

२ पूर्णिमाक चाद अमतपूरन अइसन मह। —वर्णरत्नाकर ि क पृ० ५।

३ डा० बच्चन सिंह रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना पृ० १५५।

४ शार्ङ्ग ग० ३३२

५ प्राकृत व्याकरण ८।४ ।१२

६ निम मुह करि विमुद्ध कर अधारइ पन्पिक्खइ।
ससि मंडल चंदिमए पणु काइ दूर देक्खइ॥ — प्रा व्या० ४।३४९।१
तुल पत्राहा तिथि पाइयत वा घर क चहु पास।
नितपूनि पूयौई रहै आनन ओप उजास॥ —बिहारी २६

७ वा रा अरण्य ४६।११ थीन ६।३६ ८।२३ शाड ग ३ ६२ ३७८ महापुराण ७०।११।६, गीत ३।७।१६ १ ।१६।१ श्रा प ११७ २।६६ प रा ३६।७ १ ६१। ७२ वि प १२।८ १७।२ पद्मा ४।४ बलि २२ छि ना० १७ ४ ६ ७ के० प्रि २१८ बिहारी २१ २७८ श नि ३।१४ ४८ ४२६ ज० वि २४१४६ प भ० ११२८७

चन्द्र,[१] शरदचन्द्र[२] या पूर्णिमा के चन्द्र से। कमल या तो प्रत्येक अंग के उपमान होने की क्षमता रखता है पर विशेषत उससे मुख की उपमा दी गई है।[३] आरसी को उपमान के रूप म कम कवियो ने प्रयुक्त किया है।[४]

हास (मुस्कान)

नायिका के मुख की अनुरागव्यञ्जक हँसी और मुस्कान का वर्णन कवियो ने बड़े मनोयोगपूर्वक किया है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने उसे कामदेव के गर्व का प्रकाशक, आठो सात्त्विक भावो का भाण्डार और काम के पाचो बाणो की सधान शक्ति से पूर्ण मानकर इसकी महत्ता का प्रतिपादन किया है।[५] हास म आकर्षण श्वेताभा उज्ज्वलता, स्निग्धता कोमलता और शीतलता आदि गुण पाये जाते हैं अत इसकी उपमा ज्योत्स्ना कुन्द-पुष्प पीयूष, फेन और कुमुदिनी आदि से दी जाती है।[६] वर्णरत्नाकर के अनुसार इसके उपमान कुमुद कुद कदम्ब, कास, भास कपास कपूर और पीयूषकान्ति के प्रसार आदि उज्ज्वल और श्वेत पदार्थ माने गए हैं।[७]

हास या मुस्कान नायिका के मुख का स्वाभाविक गुण माना जाता है। इसके प्रभाव को दृष्टिपथ म ही रखकर प्राय उपमान निश्चित किए गए हैं। वर्णन कवियो के अनुसार हृदयाह्लादक होने से हास या मुस्कान के लिए तडित,[८] फुलभडी,[९] ज्योत्स्ना[१०] मिठाई[११] अमृत विस्तार[१२] चन्द्र[१३] विकसित पुष्प समूह[१४] चमेली[१५] कमल विकास[१६]

---

१ वि प १७।२ १७।२ का नि ११।२६
२ का नि० १५।५६ प० म २८
३ गीत ६।२६ नव १।२३ गाढ ग ३३२२ ३५३ गीत ३।७।५ १५ ३।१६।२ १ ।१६।१ प्रा प २।६६ पु रा २५।२६ ६१।३७२ वि० प० १३।१ पद्या ३।६ का नि ।२६ ३० ६।१६ ज० वि० १४६
४ का० नि० ८।७८ १०।१
५ वर्णरत्नाकर द्वि क प० ७।
६ ज्योत्स्ना कुन्दपुष्पपीयूषफेन रवनकदम । —अ० श ५।१।१७
७ वर्णरत्नाकर द्वि० क प० ७
८ पद्मा ३६।११ ४१।२ श्रा नि ३।४७ ८।२६ १०।३२
९ वही ४१।३ म स ४१५
१० नव ७।४ वि प ।२ वलि २२ क र० २।१२ म श ३१४
११ र रा १
१२ गाढ ग ३३७१ वि प० ३५।१ का० नि० १५।१७
१३ धीर० ११।२ नव १।२४
१४ का० प ५२६
१५ का नि २ ।१
१६ पु रा० ४५।८

पीयूष विषयुक्त,[1] मिठासमय सार,[2] विष[3] आदि अप्रस्तुतों का प्रयोग किया गया है।

नासिका

नासिका के दोनों पुटों का समान होना सौभाग्य सूचक माना जाता है।[4] इसकी तिल प्रसून से उपमा दी जाती है।[5] रागोद्दीपक होने के कारण कवियों ने इसके वर्णन में तिल प्रसून,[6] काम-तूणीर,[7] तिलप्रसून विनिर्मित काम तूणीर,[8] कीर,[9] चम्पककली,[10] किंशुक,[11] खड्ग,[12] दीपशिखा,[13] आदि अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है।

अधर

काव्य-ग्रंथों में अधरों की मधुरिमा, कोमलता, स्फीति और लालिमा वर्णित की गई है। गोवर्द्धन ने भी अधर के उक्त गुणों की चर्चा की है।[14] सामुद्रिकशास्त्र में बन्धुजीव के समान लाल और अमांसल (पतले) अधर को शुभ माना गया है।[15] इन्हीं गुणों के कारण इनकी उपमा प्रवाल, बिम्बा फल, बन्धूक-पुष्प, पल्लव तथा मधुर पदार्थों से दी जाती है।[16]

अधरों की सुवर्णता, मधुरता, कोमलता आदि गुणों के उत्कर्ष द्योतन के लिए कवियों ने अनेक प्रकार के सम्भावनामूलक अप्रस्तुतों का विधान किया है। ऐसा ही

---

१ म० स० ३३९
२ वही ६७२
३ सूर० १ ।७४७
४ ब० म० ७० ७ एवं गरुड़ पुराण अध्याय ६४
५ तिलप्रसून नासाया । अलंकार शेखर ।
६ गा० स० ३६५८ च० रा० ४५।१२ पद्मा० ४१।६ १०।२१८४ के० शि० १० का० नि० ६।४१ ११।६
७ विक्र० ८।३१ काव्य स० ३३०४, के० शि० १०
८ नय ७।३६
९ प० रा० ५२।१४४ [२६।२०१, ४५।१११ ६१।२४६ नि प० ११।८ पद्मा० ३।६ ३६।१० सूर० १ ।३३९ बलि० ६८ का० नि ३।४७ ८।४२ ६।८ २२।१७ र० ग्रा० २१६ ज० वि० ६०४ पद्माभरण १९
१० सूर० १०।१०७६ बिहारी २०६
११ का नि ६।४१ का र० ८।२४
१२ प० मा० ३६।११ ४१।६
१३ बलि० २२
१४ अधरेऽत्यन्तमाधुर्यमुच्छ्वासत्व सुरक्तता । —अलंकार शेखर प० ५२ ।
१५ बृहत्संहिता ७० ६
१६ प्रवालबिम्बबन्धूकपल्लवाधरोष्ठको।
मध्यो माधुर्यमाश्रित्य यावन्मधुरवस्तुभि । —अलंकार शेखर, २।११७-८

[illegible] की [illegible]
[illegible] है

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥[9]

[illegible] है। [illegible]
[illegible] है।

[illegible]

[illegible] की [illegible] और [illegible] है [illegible] [illegible] और [illegible] है [illegible] की [illegible] है। [illegible] में भी [illegible] है।[12] [illegible] (प्रकार [illegible]

---

१ [illegible] १३१४

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible] १२

६ [illegible]

७ [illegible]

८ [illegible]

९ [illegible] । —[illegible] पृ ५२

१० [illegible] ।
[illegible] ॥ —[illegible]

११ [illegible] ७० ६

१२ [illegible] पृ० [illegible]

दाने)[1] कुन्द[2] मोती,[3] हीरा[4] और दामिनी[5] हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कवियों ने तारे[6] का भी प्रयोग किया है।

वाणी

गोवर्द्धन के अनुसार वाणी में माधुर्य और स्पष्टता होनी चाहिए।[7] केशव मिश्र ने हसावली शुक किन्नर, वेणु वीणा, कोकिल आदि के स्वर और मधुर पदार्थों को इसके उपमान माना है।[8] कवियों ने मुख्य रूप से कोयल[9] सुधा,[10] और वीणा[11] से इसकी उपमा दी है। मधुर पदार्थों में ईख, माध्वीक मधु द्राक्षा, मिश्री आदि से इसकी उपमा दी जाती है।[12]

कठ

गोवर्द्धन के अनुसार कठ में दीर्घता और त्रिरेखा होनी चाहिए।[13] इसके उपमान कबु और कपोत हैं।[14] वाराहमिहिर ने कम्बुवत् कठ को सौभाग्य का सूचक माना है।[15] वर्णरत्नाकर के अनुसार इस तूल (रक्त वर्ण) कोमलप्राय और तीन रेखाओं से समन्वित होना चाहिए।[16]

---

१ प रा० ६।१२५ ४७।३६ वि० प० १२।८ सूर० १०।२४५ पद्मा० स १६ के० शि० १३ का नि ८।४२ १६।२६ पद्माभरण १८
२ शाङ्ग ग० ३६५८ प रा० ४५।१२ क० र २।१
३ मत्स्यपुराण ७ ।११।१५ सु० प ४।३ का नि ३।४७
४ पद्मा ३।६ ३६।११ ४१।१० छि वा० १७५ के० शि० १३
५ कु म ४७ प रा० २५।१४२ ३६।२०१ पद्मा० ४।४ के शि १३
६ वेलि २२ के शि० १३
[illegible] अलकार शखर प ५२
८ वही ५।१।६
९ रा० म अरण्यपर्व छ० ६६७ विक्र ७।२७ श्रीक ८।८ ८।३ नप० ३।६० शाङ्ग ग० ३ ६३ सूर० १ ।७३८ १० ११६७ का० नि० १७।२६ ज० वि० ५२८
१ रा म अरण्य ६६७ गीत ३।७।१५ १२।२३।३ क र० २।४८ म० स ३६७ का० नि० ४।१६ १५।४६
११ का० प ५२८ नप ३।६ ७।५ का नि ६।२८
१२ शाङ्ग ग ३३७३ विहारी १६३ का नि० १६।२१ ज० वि० ७२ २६७
१३ अलकार शखर प ५२
१४ वही ५।१।६
१५ बृहत्संहिता ७ ७१
१६ वर्ण० र० क० पृ ४ १६ ख

कवियों ने शंख,[1] कपोत[2] त्रिरेख[3] मोर[4] आदि इन्हीं उपमानों का प्राय: प्रयोग किया है। कंठ की पारदर्शकता का भी वर्णन कहीं-कहीं मिलता है।[5]

बाहु

गोवर्द्धन ने बाहु में मृदुता और समता आदि गुण माने हैं।[6] इसका वर्णन कमलनाल, विद्युतमालिका और मृणाल के समान करना चाहिए।[7] इसके उपमान कविकल्पलता में लता, लहरी, पाश और शाखा माने गए हैं।[8] वर्णरत्नाकर में भी विशालता, वलितत्व, त्रिपलताकारत्व आदि इनके गुण माने गए हैं।[9] भुजा की तुलना कामदेव के पाश और बेंत की सांट से की गई है।[10]

कवियों ने बाहु के उपमानों में मुख्य रूप से मृणाल या मृणाल लता,[11] पाश, लता पाश या वरुणपाश,[12] लता[13] और डाल[14] माने हैं।

कर

गोवर्द्धन के अनुसार इसमें मृदुता, शीतलता और पूरे हाथ में रक्तिमा आदि गुण होने चाहिए।[15] इसीलिए इसकी उपमा कमल पल्लव और विद्रुम से दी जाती

---

१ विक्र० ८।५२ श्रीकं० ११।१६ शार्ङ्ग ग ३०९३ गु प० ४।३ गग० रा० कदा० खंड १।१ वि० प० १८।५ पद्मा १०।१३ छि० वा० १७६ सूर० १ ।२११७ के० शि १६ का० नि० ८।४२

२ प० रा० २५।१४१ पद्मा ४१ १२ सूर० १ ।७३६ के शि० १६ का० नि० २२।१७

३ प० रा० ३६।२०१ का नि० २२।१७

४ प० रा ४७।७० पद्मा० १०।१२ का० नि० २२।१७ पद्माभरण ४४

५ पुनि तेहि ठाव परी तिनि रेखा।
घूंट जो पीक लीक सब देखा॥ –पद्मावत १ ।१३
तुल०–परी लसनि गोरे गरें धसति पान की पीक।
मनो गुलूबंद लाल की लाल लाल दुति लीक॥ –बिहारी १२८

६ मृदुता समता भुज। –अलंकार शेखर पृ० ५२

७ बाहुबिसेन विद्युत्ल्लिमणाल। वही ५।१।१

८ वल्लरी लहरी पाश शाखा बाहूपस्य च। वही पृ० ५१

९ वर्ण०, द्वि० क० प० ४ १६ ख

१० कामदेवक पाश अइसन बाह। बतक सांट अइसन बा। वही प ५

११ काद० पृ० ५३६ विक्र ८।६४ नष २।२७ ७।६८ ६६ शार्ङ्ग ग ३ ६३ ३३७८ कु० स ५०, गीत० ७।१५।४ सु० च० ४।३ स० रा २।३५ वि० प २०।६ पद्मा १०।१४ ४१।१६ छि० वा० १७१ सूर० १०।११५७ के० शि० १८ क० र २।४३ का नि ८।४२ ज वि ४५

१२ शार्ङ्ग ग ३३३० ,४३७ प्रा० पैं २।१२६ वि० प० २३।७ बलि २३ के शि० १८

१३ शार्ङ्ग ग० ३३३१ क० र० २।२५

१४ का० क ३।६७ का नि० ८।७८

१५ करेऽति मृदुताशत्य सर्वभाग च शोणता। –अ० शे०, प० ५२

है।[1] हथेली का सुमम होना सौभाग्यसूचक होता है।[2] व ... म हाथों के सुकुमार, अनुरक्त निमन, नलिन और रक्ताभप्राय आदि गुणों की चर्चा की गई है।[3] सामुद्रिक ग्रंथों में हाथ की अंगुलियों की ... को सौभाग्य ... माना गया है। इसके मुख्य उपमान कमल[4] और पल्लव[5] हैं। कहीं-कहीं इनकी उपमा काम के पांच बाणों से दी गई है।[6]

वक्षोज

नारी के प्रधान आकर्षण के रूप में स्तन के ... महत्त्व कुचों का है। शृंगारप्रधान काव्यों में नारी के वक्षोजों का वर्णन प्रायः बहुत प्राप्त होता है। इनके आकार, गुण और प्रभाव को लेकर कवियों ने अनेक प्रकार के अप्रस्तुतों का विनियोग किया है। गोवर्द्धन ने वक्षोजों के सौन्दर्य श्यामाग्रता, विरलता, ... और पाण्डुता आदि आवश्यक गुण माने हैं।[7] वाराहमिहिर ने वर्तुलाकार, घन, अविषम और कठिन उरोजों को शुभ माना है।[8] इस सन्दर्भ की टीका में उद्धृत निम्नलिखित श्लोक से भी इस बात की पुष्टि होती है—

पद्मकोशप्रतीकाशौ सुवर्णकलशोपमौ।
स्तनावविरलौ यस्याः सा नारी सुखमेधते॥

वर्णरत्नाकर में भी वाराहमिहिर के द्वारा दिए गए स्तनों के गुणों का उल्लेख किया गया है।[9] स्तनों के उपमान प्रायः आकारसाम्य और वर्णसाम्य ही द्योतित करते हैं। विभिन्न रूपाकार के वक्षोजों की उपमा पूगफल (सुपारी) कमल, कमलकोरक बिल्व, ताल, गुच्छ, करिकुम्भ, पहाड़, घन, शिव, करवाक, मौवीर, जम्बीर, बीजपूर, समुद्गक, शालग्राम और घन आदि माने गए हैं।[10] कवियों ने अधिकतर करिकुम्भ,[11]

---

१ करस्तु पद्मनः। पल्लवविद्रुमकाभ्याम्। ... /१।१८।१

२ बृहत्संहिता ... ४

३ वर्ण ... क० प ४ (१६ ख)
शा... ग ... ६ गीत ७।१२।४ ७।१६।४ १२।२३। ... १।८ बी० दे० रा० ११३
कै शि० १६ का नि० १।३२ बिहारी २१

५ विक्र ८।५४ नप ७।७१ शा... ग० ३३३२ ३७०६ गु ... २।२५ का नि०
८।२०

६ नष ७।७० ... २८ म स ... ६७

७ स्तन श्यामाग्रता नत्यविरलता ... ना। ... —अलंकार ...

८ बृहत्संहिता ७ ६

९ वर्णरत्नाकर द्वि० क ... प ४ (१६ ख)

१० पूगा ... बिल्वताल ... करिकुम्भ ...
मौवीर जम्बीर बीजपूर समुद्गक शालग्राम ... । ... ८।१।११

११ गाथा ... ।६ विक्र १।८४ गीत १४।१२ नष ७।७८ शा... ग ३१०८ ३३२८ ८४ ०
८।८६ गीत० पृ ६४ शो ... २ १ ।१६।५ सूर १ ।११६७ ... २४ कै० शि २०,
म स ५ १ का नि० ८।८६

श्रीफल,[1] कलश,[2] गिरि,[3] कमल,[4] कंचन कमल[5] कचनार,[6] तालफल[7] नारंग या नवरंग,[8] निंब,[9] कनक निंब,[10] गुच्छ[11], मदनघट,[12] कोक[13] दाड़िम,[14] मेरु,[15] कंदुक या नवरंग कनक कंदुक,[16] कमल कोरक[17] स्वर्ण कलश,[18] बीजपूर,[19] बदरी[20] आदि का प्रयोग कुचों के उपमान के रूप में किया है।

रोमराजि

उदर के मध्य नाभि से स्तन तट पर्यन्त लम्बित रोम पंक्ति का वर्णन कवियों ने बड़े मनोयोगपूर्वक किया है। गोवर्द्धन ने रोमावली में मार्दव, सूक्ष्मता, श्यामता और

---

१ वा० रा० अरण्य० ६।१३ नप० १।६४ ७।७६ प० रा० ४५।१११ वि० प० ८।४ पद्मा० २७।१० सूर १०।११६१ के० शि० २ का० नि० ६।२ ८।८६ ज० वि० १०० पद्माभरण १४०

२ का० प० ३६४ नप० ७।७५ शाङ० ग० ३५३२ ३७०४ गीत० ६।१८।२ १२।२६।४ पु० रा० ३६।२ १ वि० प० ७।८ ३०।१२ क० र० २।१२ का० नि० ८।८६

३ हनु० २।५ सूर० १०।१०७६ के० शि० २० क० र० ३।४४ बिहारी १०७ १६८ का० नि० ४।२६, ८।८६ र० सा० १६५ पद्मा० ४४

४ गीत प० १८, श्रीक० ५ पु० रा० ६६।२०६ वि० प० १२।६ सूर० १०।६८६ म० स० ५०१ क० र० २।१ का० नि० ६।२ ज० वि० १०६।

५ श्रीक० १५।२२ सूर० १०।१२०१

६ सु० वा० पु० २८ नपध० १।३२ ७।७७ शाङ० ग० ३३४८ पु० रा० ६१।११६८ वि० प० २३।५ सूर १०।१४१५, के० शि० २० का० नि० ८।३० ८।८६

७ वा० रा० अरण्य० ४६।१६ ६०।२० नप० ६।७४ गीत० ६।१८।२ के० शि० २० का० र० ५।३६

८ पु० रा० ३६।२०१ ४७।६७ वि० प० ४।१०, पद्मा० १०।१५ का० र० ७३

९ प० रा० २५।३१५ ३६।१७४ के० शि० २० क० र० २।२३ का० नि० ३।४८ १५।३० १७।२६ १८।७ ज० वि० ४५ २६८ ४०३

१ वि० प० ८।१ १८।५

११ रघु० १२।३२ का० नि० ८।८६ ज० वि० ३५

१२ शाङ० ग० ३५३० गीत० १२।२४।१ के० शि० २

१३ श्रीक० ६।४४ शाङ० ग० ३२२१ का० नि० ८।४२ पद्माभरण २१।

१४ शाङ० ग० ३६३६ बिहारी १६८ ५६५

१५ पु० रा० २५।३१५ वि० प० १।२ सूर १०।१८३ के० शि० २० २२ वलि० २५ म० स० ४७५ का० नि० १।२२ र० सा० २६१ पद्माभरण ५६

१६ श्रीक० ६।२७ का० नि० ८।८६

१७ स्व० वा० प० २८ वि० प० २०।५ के० शि० २० का० नि० ३।५१ ८।२० ८।८६ प० प्र० ४६

१८ सूर १०।११४८ के० शि० २१ क० र० २।३७, म० स० ५०१, पद्माभरण ६३

१९ वि० प० ८।४ पद्मा० १०।१५

२० वि० प० ४।१०

नाभिपर्यन्तता आदि गुणों का वर्णन किया है।[1] इसके अनुसार रोमावली की उपमा शैवाल, धूम (रेखा) भ्रमरावलि, लता आदि से दी जाती है।[2] रोमराजि यौवनागम के साथ साथ सघन और स्फुट होने लगती है अतः कवियों ने शैशव-यौवन की विभाजक रेखा[3] पति के लिए सुरक्षित अर्द्धांग की सीमारेखा,[4] यौवन श्री के द्वारा काम शासन लिखते समय गिरी रोशनाई की धारा[5] या रसराज स्याही से लिखी यंत्र पंक्ति के घन अक्षर[6] आदि से इसकी उत्प्रेक्षा की है। कालिंदी की धारा[7] शैवालमंजरी,[8] धूमशिखा[9] मधुपाली[10] लौह शृंखला[11] रस्सी[12] अंधकार की रेखा[13] भुजगी[14] कृपाण[15] तटिनी[16] शृंगारलता,[17] पिपीलिकापंक्ति[18] आदि इसके उपमान कवियों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं।

नाभि

वर्णरत्नाकर में नाभि के गुण गंभीरता और दक्षिणावर्तमंडलाकृतित्व बतलाए गए हैं।[19] विवर और कमल[20] के अतिरिक्त इसके उपमान रसातल, आवर्त, सरोवर, कूप और नद आदि माने गए हैं।[21] कवियों ने इसकी उपमा कूप या कुंड या ह्रद[22] गुहा,[23]

---

१ रोमल्या मार्दव सौक्ष्म्य श्यामता नाभिगामिता। —अलंकार शेखर पृ० ५२

२ शैवालधारालिभुजगी रोमालिस्तेन तादृशी।
शैवालधूमभृंगालिलताद्य रुपमीयते। वही ५।१।१२

३ नय० २।३० का० क० ३।७०

४ नय० ७।८३

५ विक्र ८।३१

६ का० नि० २०।१२

७ पद्मा १।१६ सूर १।२४४७ का नि० ११।८०

८ शाङ्ग प० ३३४८ प रा ६१।३७३ सूर १०।२४४७ कै० शि २३

९ शाङ्ग प० ३३४६ का क ८।४६

१० पद्मा १।१६ क शि० २३ का० नि० १३।२६

११ विक्र ८।२७ नय० ७।८५ सु० च ४।२

१२ विक्र ८।२८ ८।३३ नय ७।८४

१३ विक्र ८।२४ सूर १।२४४७

१४ सु च० ४।२ वि प १४।६ का० नि १८।७ १६।४३

१५ म म० ३४६

१६ सूर० १०।२१८४

१७ का० नि १६।४३

१८ पउम च ३८।८ पृ० रा २४।१३६ ४७।६६

१९ वर्णरत्नाकर ि र प० ४ (१६ ख)

२० अलंकार शेखर कविकल्पलता का उद्धरण प० ५१

२१ अलंकार शेखर ५।१।१

२२ विक्र ८।३३ शाङ्ग प० ३३४८ कु म० १८७ जी० च २।३५ पद्मा० १०।१६ कै० शि० २५ का नि० १३।३५

२३ श्रीक० ६।३४

रम्भा या बिथर[1] [illegible] भी [illegible] गयी है।

त्रिवली

उदर म मासपेशियों के कारण [illegible] तीन रेखाओं को त्रिवली कहते हैं। इसका होना सौभाग्यसूचक माना जाता है।[2] त्रिवली की उपमा [illegible] और उसके समान रूपवाली चीजों से[3] तथा [illegible] सोपान और निश्रेणी से दी जाती है।[4] कवियों ने अधिकतर तीन [illegible] उपमाएँ दी हैं [illegible] -त्रिवली[6] त्रिभुवन विजय रेखा[7] [illegible] इनके अतिरिक्त अंगुलियों के निशान[10] सोपान[11] [illegible] और [illegible][12] आदि अप्रस्तुतों का प्रयोग किया गया है।

पीठ

डा० हजारीप्रसाद [illegible] पीठ का वर्णन प्रायः कवियों में प्रसिद्ध नहीं है साधारणतः [illegible] सौन्दर्य का वर्णन ही प्रसिद्ध है पर अवस्था विशेष में (जैसे [illegible] हुई अवस्था में) पीठ की उपमा कंचन पट्टिका से दी जाती है। [illegible] कंचनपट्टिका[16] को इसका उपमान माना है।[17] इसके अतिरिक्त [illegible] से भी पीठ की उपमा दी जाती है।[18]

---

१ शाङ [illegible] १४।१६
२ विक्र० ८।१
३ [illegible] १८७
४ वाराहमिहिर [illegible]
५ [illegible] ।१।१३
६ वीचिसोपानमिव [illegible]। [illegible] ४१
७ बलि० २५
८ शाङ [illegible]
९ न [illegible] ५।६ [illegible] ४६
१० के शि २६
११ नष [illegible] ४ १ ।१२८ [illegible]
१२ विक्र० ८।३५ ३६ [illegible] शि २६
१३ सूर १ ।२१८४ के शि [illegible] ८।४२ १३।३८
१४ वि० प १४।६
१५ डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिं [illegible] साहित्य की भूमिका प २६६
१६ नष ७।८७
१७ पृष्ठ कांचनपट्टक। [illegible] ।१।१३
१८ का [illegible] ।१२

कटि

वर्णरत्नाकर में कटि को क्षीण, सुकुमार, वलित तथा मुष्टिग्राह्य माना है।[1] इसके उपमान सूक्ष्मताबोधक पदार्थ माने गए हैं जैसे सुई की नोक, शून्य, अणु, वेदी, सिंह की कटि आदि।[2] कवियों ने सिंह या सिंहकटि[3] मुरार (मृणालतन्तु),[4] नभ[5] छड़ी,[6] मवतूल-तार[7] दो नदी की सीमा[8] काम कमान का मध्यभाग[9] चार के अंक के समान[10] क्षपा (शीतकालीन),[11] आदि अप्रस्तुतों का इसके लिए प्रयोग किया है।

नितम्ब

यौवनावस्था में मुख्यरूप में विकसित होनेवाले अंगों में स्तन और नितम्ब हैं।[12] यही कारण है कि हैवलाक एलिस आदि मनोवैज्ञानिकों ने यौन उपादानों में इन अंगों को विशेष महत्त्व दिया है।[13] ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने पीन मांसल और कूर्मपृष्ठाकार होना इसकी विशेषता मानी है।[14] इसके उपमान पीठ प्रस्तर भू चक्र आदि माने गए हैं।[15] कवियों ने नितम्ब की उपमा रथचक्र,[16] शिलातल[17] कामदेव का पादपीठ[18] याद्रा[19] आदि से दी है।

---

१ वर्णरत्नाकर द्वि० क० पृ० ४ (१६ ख)
२ सूक्ष्मप्रतलशून्याणुवेदीसिंहा भि सम।
मुष्टिग्राह्यो मध्यमध्य ॥ —अ० शे० ५।११।१४
३ मु० च० ४।२ ग० रा० ४५।७२ ६।१२५३ वि० प० १२।४ सूर० १।१७८९ १।११९७ ढोला ४५४ का० नि० १८।७ २४।४ र० सा० २६
४ का० नि० १२।१८
५ का० नि० ८।०
६ पद्माकर प्रकीर्णक ४६
७ ज० वि० १८७
८ पृ० रा० २६।१७६
९ प० रा० २५।१३८
१० का० नि० ८।२
११ बिहारी २४१ ४४४
१२ बिहारी १४
१३ द० डॉ० बच्चन सिंह रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना पृ० १८
१४ वर्णरत्नाकर द्वि० क० पृ० ४ (१६ ख)
१५ पीठप्रस्तरभूचक्र नितम्ब परिवर्णवत्। —अ० श० ५।११।१८
१६ नप० २।३६ ७।८८ पृ० रा० ६।१७८ बं० शि० २७ का० क० ३।७६
१७ का० पृ० ५२८ कु० स० ११४
१८ श्रीक० ११।१८ बं० शि० २७
१९ र० सा० २८

उरु

गोवद्धन के मतानुसार उरुप्रो म कान्ति वत्तानुपूर्वता मांसलता प्रत्यन्त मन्दता प्रौर शीतलतादि गुण होने चाहिए।[1] वण रत्नाकरकार भी इसी मत का समथन करते हैं।[2] इसके उपमान हाथी की सूड कदली प्रौर करभ हैं।[3] काव्य ग्रन्था म इसकी उपमा रम्भा[4] हाथी की सूड[5] कदली खम्भ[6] प्रादि स दी गई है।

चरण

ज्योतिरीश्वर ठाकुर के मतानुसार चरणा का उन्नत कोमल लालिम सम, सुतल प्रौर सालकार होना चाहिए।[7] वाराहमिहिर ने स्निग्ध उन्नत प्राग का पतन लाल नाखून वाले सम उपचित प्रौर सुन्दर गुप्तगुल्फ समन्वित प्रगुलियाँ सटी हुई प्रौर कमल की कान्ति वाले चरणतल जिस कुमारी के हो उससे विवाह करने वाले पुरुष को राज्य सुखभोक्ता बतलाया है।[8] उक्त गुणा के प्रनुसार चरणा के उपमान पल्लव कमल स्थल कमल प्रौर प्रवाल प्रादि माने गए हैं।[9] इन उपमाना म चरणा के वण, प्राकार प्रौर कोमलता को ध्यान म रखकर स्थल कमल[10] या प्ररुण कमल[11] किसलय[12] प्रनार पल्लव[13] केवल वण की दृष्टि म रखकर सिदूर या मूगा[14] प्रनार पुष्प गुलाब गुडहल या बन्धुजीव का प्रयोग किया गया है।[15]

---

१ कान्तिव त्तानपूवत्व जघयोर्नातिदीर्घता।
 मत्म तम दता शत्य ॥ —प्र० शी० पृ० ५२
२ वणरत्नाकर ज्यो० क प० ४ (१६ ख)
३ उपस्तु करिहस्तेन कदल्या करभेण च। —प्र० शी० ५।१।१५
४ श्रीक० १५।२५ मध० २।३७ शाङ ग० ३०६६ ३३२१ सु च ४।२ कु म ११५ गीत० पृ ११ प्लो० ७ स० रा २।३८ पृ रा ३६।१७८ २०१ वि प १२।४ १३।४ सूर० ७३६ वलि २६ ढोला ४५४ का नि० १८।७
५ वा रा प्ररण्य ४६।१८ विक्र ८।१६ नव ७।६४ पद्मामरण ११३
६ विक्र० ८।१५ श्रीक ११।४६ शाङ ग ३५२१ छि० वा १८१ वलि० २१ का० नि ८।२ ४२
[illegible] वण ज्यो क पृ० ४ (१६ ख)
[illegible] वहत्सहिता ७ १
६ प्रलकार शखर ५।१।१६
१ विक्र ८।७ ८।१ गीत १०।१६।१६ कु० म ५६ वि० प० १३।४
११ शाङ ग० महापुराण २८।१२।८ म च ४।२ गीत १२।२३।१ का नि ३।४४ बिहारी २१
१२ विक्र० ८।११ नष० ७।६८ गीत० ७।१५।१६ १२।२३।१ वि० प० १२।४
१३ जी० च० ३।४४
१४ नव ७।६६ का० नि ३।५४ बिहारी १२४
१५ का नि ३।५४

नख

नखों की उपमा पूर्णेंदु से दी जाती है।[1] कवियों ने इसकी उपमा रत्न या रत्न राजि[2], तारे[3] चंद्र[4], दीपमालिका[5] जलकण[6] दर्पण[7] और अन्य चमकदार एवं लाल रंग के पदार्थों से भी है।

गमन

नारी के गमन की मंदता मनोहरता और भंगिमा के कारण इसकी उपमा गज और हंस के गमन से दी जाती है।[8] सामुद्रिक लक्षणों के अनुसार जिसका गमन हंस की तरह होता है वह राजरानी होती है।[9] गमन के साथ ही अधिकतर नूपुरध्वनि का भी वर्णन होता है। इसके उपमान हंस और सारस के शब्द है।[10]

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने गति मंदता का कारण नितंब की गुरुता मानी है।[11] कवियों ने गमन की उपमा हंस[12] मत्तगज[13] सारस[14] आदि से दी है।

प्रस्तुत विवेचन से रीतिकाव्य में वर्णित नखशिख की रूढ़िबद्धता का अनुमान लगाया जा सकता है। रीतिकाव्य का प्रेरणा केंद्र में उक्त विवेचन के अंतर्गत आगत शास्त्रीय और साहित्यिक ग्रंथों का महत्त्व अक्षुण्ण है।

रीतिकवियों ने उत्प्रेक्षाओं में जो कुछ नवीनता का परिचय दिया है उसका भी आधार बहुत कुछ वर्णन की परंपरा रही है जिसका संकेत वाल्मीकि रामायण से लेकर नैषधचरित तक बराबर मिलता आया है। इस प्रसंग में कतिपय नूतन अप्रस्तुतों

---

१ अलंकार शेखर ५।१।१६

२ काव्य प ५३७ विक्र० ८।६ आइ ग ३३६२ गीत ७।१५।* छि का १८२ वनि २७

३ महापुराण २८।१२।१६ स क ४१२ वलि २७

४ आइ ग ३,६२ प रा० ४५।१ ५ त्रि प ३१।२ वलि० २७

५ के शि० २८

६ वनि० २७ के शि २८

७ जी० च ३।४४ प रा ६१।३८६

८ गमन हंसहस्तिवत्। —अ० श ५।१।१६

९ हंसस्यवगनियस्यास्साधिराणी भविष्याति। (हंस सन्देश की टीका से उद्धृत।)

१० हंससारसशब्दाभ्यां वर्ण्यते नूपुरध्वनि।— अलंकार शेखर ५।१।१८

११ हिंदी साहित्य की भूमिका पृ० २६७

१२ विक्र ८।१२ १।३२, श्रीक ६।३७ आइ ग ३ ६६ कु० म० ५७ प च० ३८।३ स० च ४।१ प रा २५।१३३ २४ ३६।१८६ ४१।३६ ६१।२५५ पद्मा २७।१३ ३६।११ सूर १।१।४८ क० र० ३।४ का० नि० २२।१७ प प्र ३६

१३ विक्र ८।१ श्रीक ६।३६ नैष ७।१०१ काव्य ग० ३३६१ ३,६४ ६५ कु म ५७ प्रा प १।१३२ प० रा ४५।७२ वि० प १२।४ पद्मा २।६ २७।१३ सूर० १।१।०४८ ढोला ४५४ क र० २।२७ का नि० ४।१६ १८।७ २१।५३ ज० वि० २४ १६१ २३५ पद्मा

१४ पृ रा० ३६।२ १

का वणन आगे य अध्याय म किया जाएगा।

नखशिख वणन या रूप चित्रण का ही भाँति प्रकृति चित्रण या अन्य वणन म भी रूढ़ि निर्वाह की ही प्रवृत्ति रीति कवियो म पाई जाती है।

षड ऋतु और बारहमासा

रीतिकाल म अधिकाश कवियो न ऋतुओ का वणन स्वतन्त्र ग्रथो म किया है। इनम प्रकृति का उद्दीपन रूप ही लिया गया आलंबन नही अर्थात प्रकृति को स्वतन्त्र रूप मे न लेकर रूढ़ और विलास सम्ब म ही ग्रहण किया गया।

संस्कृत साहित्य म प्रकृति क नाना रूप मिलते हैं। वह अपनी गरिमा और आक षण के कारण भी कवियो क द्वारा वर्णित चित्रित हुई। संस्कृत महाकाव्यो म प्रकृति क नाना रूपो का मनोरम चित्रण हुआ है। आदि कवि न हमारे ऋतु का बडा ही बिम्बग्राही वणन किया है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने इस सम्बध म लिखा है बिम्बग्रहण वही होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओ के अग प्रत्यग वण आकृति तथा उसके आस पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट चित्रण कर। यही समझना चाहिए कि कवि न बाह्य प्रकृति को आलबन क रूप म ग्रहण किया है।[1] प्राचीन महाकाव्यो म यत्र तत्र ऐसे संश्लिष्ट खण्ड चित्र पाए जाते है। उनम प्रकृति क सभी रूपो का मार्मिक अकन हुआ है। कवि प्रकृति को भी व्यापक परिप्रेक्ष्य म लेता है। उसके सौन्दय सम्पन्न रूप के चित्रण म जितनी तल्लीनता मिलती है उतनी ही तल्लीनता उसके विपन्न और बडौल रूप के अकन म भी। किन्तु कालिदासोत्तर महाकाव्यो म जसे जसे रूढिबद्धता आती गई कवि का दृष्टिकोण सीमित होता गया। प्रकृति की स्वत त्र सत्ता का लोप होता गया और मानव के वासनात्मक राग क उद्दीपन म सहायक रूप का प्राधान्य होता गया। परवर्ती महाका यो म इसीलिए प्रकृति का बिम्बग्राही वणन नही मिलता। जिस प्रकार नखशिख वणन या रूप चित्रण म बधी बधाई परपरा का निर्वाह कवि प्रौढोक्ति सिद्ध रूपराति शयोक्तियो क प्रयोग द्वारा होने लगा था उसी प्रकार प्रकृति चित्रण भी कतिपय वस्तुओ की परिगणना मात्र करक किया जाने लगा था। शुक्लजी ने इस ओर सकेत करते हुए लिखा है कि स्थन वणन म तो वस्तु वणन की सूक्ष्मता कुछ दिनो तक वसी ही बनी रही पर ऋतु वणन में चित्रण उतना आवश्यक नही समझा गया जितना कुछ इनी गिनी वस्तुओ का कथन मात्र करके भावो के उद्दीपन का वणन।[2]

इस नदी मे प्रकृति का अकन भारवि माघ और श्रीहष क महाकाव्यो म पयाप्त मात्रा म मिलता है। इन कवियो ने प्रबध के अतगत यद्यपि प्रकृति के नाना रूपो का अकन किया है पर तु उसम इनकी दृष्टि उसके व्यापक रूप को ग्रहण करने म उतनी समथ नही हुई है जितनी कि शास्त्रानुमोदित परपरित रूप को ग्रहण करने मे। इनम

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रस मीमासा प १

२ चिंतामणि दूसरा भाग (२ ०२ वि) प २१

व्यक्तिगत पर्यवक्षण शक्ति का परिचय उतना नहीं मिलता जितना परपरा का निर्वाह। प्रकृति का नायक नायिका की रागात्मक पृष्ठभूमि में ही रूप में अंकित किया गया है। इस प्रकार के चित्र कालिदास के ऋतुसहार में मिलते हैं। उसमें कवि ने ऋतु-सुखद वस्तुओं की गणना उसी रूप में की है जिसका विकास सेनापति और परवर्ती रीतिकवियों पद्माकर ग्वाल आदि में दिखाई पड़ता है।

डा० शिवप्रसाद सिंह का अनुमान है कि छठी सातवीं शताब्दी से प्रकृति चित्रण का दूसरा रूप प्रकार तब अलंकृत काव्य (पोयटिक आर्ट) के रूप में विकसित हुआ।[1] इसमें प्रकृति के स्वतन्त्र प्रभाव के स्थान पर उसका मानवीय भावोद्दीपक के रूप में चित्रण होने लगा। वह आकर्षण और सौ र्य की अधिष्ठात्री होने के कारण स्वय वर्ण्य न रह गई। इसमें बहुत कुछ योग दिया आचार्यों द्वारा निर्मित प्रकृति वर्णन के नियमों और कवि समयों ने। प्रकृति का वह भाग जो मानव भावना को व्यापक बनाता है इन परवर्ती कवियों की दृष्टि से ओझल सा हो गया। आचार्य शुक्ल ने लिखा है भूमि पर्वत चट्टान नदी नाले टीले मैदान समुद्र आकाश मेघ नक्षत्र इत्यादि की रूप गति आदि से भी हम सौन्दर्य माधुर्य भीषणता भव्यता विचित्रता उदासी उदारता सम्पन्नता इत्यादि की भावना प्राप्त करते हैं।[2] किन्तु परवर्ती रूढ़िग्रस्त संस्कृत महाकाव्यों में कवियों की दृष्टि विलास या शरीर-सुख की ही सामग्री प्रकृति में ढूंढती रह गई। उनमें उस रागात्मक सत्त्व की कमी है जो व्यक्त सत्ता मात्र के साथ एकता की अनुभूति में लीन करके हृदय के व्यापकत्व का आभास देता है।[3] रीतिकाव्य में भी प्रकृति का इसी संकुचित रूप में ग्रहण किया गया। इसकी विशेष चर्चा अगले अध्याय में की जाएगी। सम्प्रति षड्ऋतु की रूढ़ियां से रीतिकवि किन्ने प्रभावित हुए हैं और उनके ऋतु वर्णन के स्रोत क्या थे इसका ही परिचय दिया जाएगा।

पहले रूढ़िबद्ध ऋतु वर्णन के प्रसग में कहा गया है कि कवियों को संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रथों से वर्ण्य वस्तु की बनी बनाई सूची मिल गई और उसी के अनुसार उन्होंने वर्णन किया। ऋतु वर्णन की सामग्री का परिचय विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में मिलता है। उन्होंने शृंगाररस के अन्तर्गत छहों ऋतुओं सूर्य चन्द्र, उनका उदय और अस्त जल विहार वन विहार प्रभात मधुपान रात्रि क्रीडा चन्दनालेपन, भूषण धारण आदि के वर्णन का विधान किया है।[4] इनके अतिरिक्त राजशेखर जिनसेन अमर देवेश्वर और केशव मिश्र ने अपने अपने शास्त्र ग्रथों में षड्ऋतु और कवि समय

---

१ डा शिवप्रसाद सिंह सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य पृ ३२

२ रस मीमांसा पृ १०

वही पृ १३

४ तत्र स्यादृतुषट्कं च चन्द्रादित्यौ तथोदयास्तमयं ।
जलकेलिवनविहार प्रभातमधुपानयामिनीप्रभृति ॥
अनुलेपनभूषाद्या वाच्य शुचिमध्यमयच्च । —साहित्यदर्पण ३।२१२-१३

की मानिकाएँ उपस्थित की हैं।[१] शारदातनय ने भावप्रकाशन में भी ऋतु-वर्णन की संक्षिप्त सूची दी गई है।

षड्ऋतु वर्णन प्रायः संयोग की अवस्था में उनके रागात्मक रूप में किया जाता है। वे ही ऋतुएँ, जो वियोग-दशा में दुःखद होती हैं संयोग की अवस्था में सुखद हो जाती हैं। आचार्य शुक्ल ने नागमती और पद्मावती की दृष्टि में भिन्न भिन्न मनोदशाओं में पावस के रूप की ओर संकेत करते हुए लिखा है नागमती को जो बूँदें विरह दशा में बाण की तरह लगती हैं पद्मावती को संयोग-दशा में वे ही बूँदें बीरबहूटी की चमक में सान की-सी लगती हैं।[२] पहले वियोग-वर्णन में इस प्रकार प्रकृति के सुखद और दुःखद रूपों की चर्चा की जा चुकी है। कवि परम्परा के अनुसार संयोग की स्थिति में प्रकृति के जिस उल्लसित और आनन्दप्रद रूप का वर्णन अनेक अप्रस्तुतों द्वारा किया गया है वियोग में उन्हीं वस्तुओं के दुःखद रूप का वर्णन भी अनेक अप्रस्तुतों द्वारा किया गया है। इन अप्रस्तुत योजनाओं में कवियों ने द्रष्टा या भोक्ता के मानसिक राग विराग की स्थिति को और भी स्पष्ट एवं सबल बना दिया है।

रीतिकाव्य में मुक्तक की प्रधानता होने के कारण ऋतु-वर्णन क्रमिक और ब्योरेवार रूप में नहीं मिलता। कहीं किसी दोहे या छंद में संयोग की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति आई है तो कहीं वियोगदशा की व्यंजना में संकेत रूप से किन्तु यदि इन स्फुट छंदों का अध्ययन किया जाय तो छहों ऋतुओं के वर्णन इनमें मिलेंगे। रीति कवियों ने प्रायः ऋतु वर्णन में रूढ़ियों का ध्यान रखा है और उनका सम्यक् निर्वाह किया है। जैसा कि पहले कहा गया मुक्तक प्रधान काव्य होने से ऋतुओं का पूर्वापर क्रम नहीं रह गया है किन्तु अनेक ऐसे भी कवि हैं जिन्होंने प्रसंग में षड्ऋतु और बारहमासे के ग्रंथ लिखे हैं। उन ग्रंथों में अधिकांश वर्णन वसंत या ग्रीष्म से प्रारम्भ किया गया है कुछ कवियों ने वर्षा से भी ऋतु वर्णन प्रारम्भ किया है।

वसंत

शारदातनय ने वसंत के रागात्मक विभावों में गंधपूरित वायु कुसुमित तरु लताएँ भ्रमर, कोकिल भवन कोमल शय्या सुरा इत्यादि की गणना की है।[३] कवि कल्पलताकार ने वसंत ऋतु में दोला कोकिल पवन सुगति (उत्तरायणत्व) वर्णो

---

१ राजशेखर काव्य मीमांसा (दलाल) अठारहवाँ अध्याय जिनसेन अलंकार चिंतामणि पृ ७८ अमर वाग्रूपवार्तिक टि प्रतान पृ ३० देवेश्वर कविकल्पलता पृ ४ ४२ केशव मिश्र अलंकार शेखर षष्ठ रत्न टि मरीचि ।

२ जायसी ग्रंथावली भूमिका पृ ४६

३ गन्धा सुरभयो वाताश्चरव कुसुमाचिता ।
भ्रमरा कोकिलाद्यश्च मृद्वीशय्या सुरासव ॥ —भावप्रकाश पृ ८३ ८४

में नवीन प्रकरण मालती के अतिरिक्त अन्य लताओं का पुष्पित होना, आम्रमंजरी और भ्रमरों की झंकार के वर्णन की व्यवस्था दी है।[1]

संस्कृत प्राकृत के काव्य ग्रंथों में वसंत ऋतु के उद्दीपक वर्णन में उक्त परम्परा का निर्वाह प्राप्त होता है।[2] भर्तृहरि ने वसंत ऋतु की सुख सामग्रियों के वर्णन द्वारा आभिजात्य वर्गीय जीवन का सफल चित्र अंकित किया है।[3] संदेशरासक में विरहिणी वसंत के उद्दीपक रूप का ही वर्णन करती है। कवि ने प्रकृति की सम्पन्नता में विरहिणी की विपन्नावस्था का बड़ा ही मार्मिक उद्घाटन किया है। वह पथिक से कहती है 'वसंत ऋतु में एक एक क्षण यम के कालपाश की तरह दुःसह हो रहा है। सुगंधित सुन्दर पुष्पों से दसों दिशाएं सुशोभित हैं। नई नई मंजरियां इस ऋतु में निकली हुई हैं।'[4] इसी प्रकार रासो में विरह की शंका से व्याकुल इच्छिनी पृथ्वीराज को विदा जाने से रोकती हुई कहती है 'हे चौहानश्रेष्ठ! इस ऋतु में चलने को न कहो। मैं जानती हूँ इस समय में प्रिय का प्रयाण प्राणों का प्रयाण होगा।'[5] कवि ने शशिव्रता के वियोग की पृष्ठभूमि के रूप में भी वसंत का वर्णन किया है।[6]

वसंत ऋतु में प्रकृति के वैभव का अंकन करते हुए भी कवियों का ध्यान उससे उद्दीप्त विरही या संयोगी की दशा की ओर बराबर रहा है। मतिराम और पद्माकर ने रसाल के लाल पल्लवों और किंशुक के लाल फूलों पर विरहिणी के भावों का आरोप किया है।[7] इन चित्रों में चमत्कार के प्रदर्शन की वृत्ति अधिक लक्षित होती है भावों का अंकन कम। बिहारी ने विरहिणी की व्यथा का इनकी अपेक्षा सफल अंकन किया है।

---

१ सुरभौ दाक्षादिचित्रमाकन्दमूलमतिलकन्यादृश्यम् ।
मालतीतरपुष्पचयनाम्रमञ्जरीभ्रमरझंकाराः ॥ —कविकल्पलता १।३।२६

२ का० प० ४१२ १४ गू० श० २६३३ गाथा स० ,७८६ शिशु० ६।२ २ गउड० श्लो० ७८८ ७६१ गीत० १।३।१ १ ,१।४।१ ११

३ आवासः किल किंचिदेव दयितापार्श्वे विलासालसः
कर्णे कोकिलकामिनीकलरवः स्मेरो लतामण्डपः ।
गोष्ठी सत्कविभिः समं कतिपयैः सेव्याः सितांशोः कराः
कस्यापि स्मरस्यवेहि हृदये चैत्र विचित्रा क्षपा ॥ —शृं० श० ३१

४ सं० रा० २१५

५ तन रितु मुन चहुआन वर चलन कहै जिन जीय ।
हौं जानु पहिले चल प्रान प्रयान कि पीय ॥ —पृ० रा० ६१।३

६ पृ० रा० २५।१०७ ८

७ उडत और कपूर लस पल्लव लाल रसाल ।
मनो सधूम मनोज को पोज अनल की ज्वाल ॥
विरच अरुन गेरू बरन गुंजा बाज समान ।
किंसुक मनो मनोज के कालकूट जुत बान ॥ —मं० म० ५८६ ८७
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की
डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं। —ज० वि ३८२

रात की चाँदनी का उद्दीपक प्रभाव विरहिणी को अचेत किए डालता है।[1]

वसंत वर्णन में रीतिकवियों का मन काम क्रीडा के हास परिहासपूर्ण वातावरण को अंकित करने में अधिक रमा है। इसमें भी प्राचीन भारत के वसन्त उत्सवों की प्रेरणा का योगदान होने से परम्परा का ही अनुसरण किया गया। वसन्त उत्सवों की चर्चा सामन्तों की विलास क्रीडाओं के प्रसंग में पहले की जा चुकी है।

ग्रीष्म

वसन्त के बाद ग्रीष्म ऋतु आती है। शारदातनय ने ग्रीष्म ऋतु के रागोद्दीपक तत्त्वों में उद्यान विहार, जल क्रीडा, कुंजादि की छाया में विश्रामों से निर्मित तथा द्राक्षासवी, लवण, कपूर, हिमजल, चन्दन, शालागृह, पुरानी शराब, धारागृह, हिमगृह, मृणालयुक्त मणिकुट्टिम, त्रिफिल पुष्प, मुक्तामाला, परिकल्पित वस्त्र आदि की गणना की है।[2] कविकल्पलता में भी प्रायः इन्हीं वस्तुओं का संकेत है।[3]

ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में कवियों ने प्रायः ताप शमन करने वाले शीतल पदार्थों का वर्णन किया है। इस परम्परा का मूल स्रोत ऋतुसंहार से ही मिलता है।[4] कालिदास ने ग्रीष्म की भीषण तपन और उसके उपचारार्थ शीतल पदार्थों के सेवन का उल्लेख किया है। रघुवंश के सोलहवें सर्ग में ग्रीष्म ऋतु के अनेक संश्लिष्ट चित्र मिलते हैं। परवर्ती कवियों में प्रकृति के भीषण भयावह रूप का प्रायः स्वतन्त्र अंकन नहीं मिलता। भर्तृहरि ने ग्रीष्मऋतु की सुखद वस्तुओं का सेवन करनेवाले भाग्यवानों का वर्णन किया है।[5] कर्पूरमंजरी में ग्रीष्म की तपन, शीतल और रागोद्दीपक पदार्थों का सेवन वर्णित है।[6]

संदेशरासक में विरहविदग्धा नायिका पथिक से एक वर्ष पूर्व ग्रीष्मऋतु में

---

१ कौ यह ठमाई ममी जहाँ सुधाकर कुल देत।
घन चाप की चाँदनी डारत किए अचेत ॥ —बिहारी ४६३

२ उद्यानमन्दिरक्रीडाः छाया विस्तारविस्तराः।
द्राक्षानवकर्पूररश्मिसारभ्रमचन्दनाः ॥
शालागृहाणि चित्राणि पुराणासवसीधवः।
धारागृहं हिमगृहं मृणालमणिकुट्टिमे ॥
फुल्लकेसरकह्लारमुक्तानेत्राम्बराण्यपि।
भवनाङ्गणवल्ली मया वासो गरिकल्पितम् ॥
इत्याद्यस्य समस्ता ग्रीष्मे रागदीपना ॥ — भा प्र प ८४

३ कविकल्पलता १।।

४ कालिदास ऋतुसंहार १।१ २८

५ स्रजो ह्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणा
परागः कासारो मलयजरजः सीधु विशदम्।
शुचिः सौधोत्सङ्गः प्रतनु वसनं पङ्कजदृशो
निदाघर्तावेतत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः ॥ —श्रृं श० ३५

६ कर्पूरमंजरी ४।१६

परदेश गमन करनेवाले प्रियतम के वियोग में किस प्रकार उसने ग्रीष्म व्यतीत किया इसका वर्णन करती है। कवि अद्दहमाण ग्रीष्म ऋतु में उत्कंठित चातक तथा आम्रभार से नम्र वृक्षों का वर्णन करता हुआ विरहिणी की कातर अवस्था का मार्मिक अंकन करता है।[1]

पृथ्वीराज रासो में पुंडीरनी ग्रीष्म ऋतु की भीषणता और गृह सुख का वर्णन करके पृथ्वीराज को रोकती है। इस प्रसंग में संयोग सुख और वियोग दुःख का साथ साथ वर्णन किया गया है।[2]

जायसी ने षड्ऋतुवर्णन खण्ड में पदमावती के साथ सुखोपभोग करते हुए रत्नसेन की ग्रीष्मकालीन सुख सामग्री का वर्णन किया है। इस वर्णन में वे ही वस्तुएँ हैं जिनका उपयोग परम्परा से वर्णित होता आया है।[3] सेनापति ने भी इन्हीं सुखोपभोग की सामग्रियों का उल्लेख किया है।[4] सेनापति ने जेठ के निकट आते ही खसखाने और तहखाने की मरम्मत और अतर, गुलाब की खरीद का ही उल्लेख किया है। रीतिकालीन कवि पद्माकर की दृष्टि में राज भोग की उक्त सारी साज सज्जा अंगूर से ऊँचे कुच के बिना फीकी है अतः उन्होंने अंगूर की टाटी की ओट बैठकर अंगूर से ऊँचे कुचवाली के साथ अंगूर की शराब और अंगूर की ही गजक के उपभोग करने की व्यवस्था की।[5]

वर्षा

ग्रीष्म के बाद वर्षा ऋतु आती है। शृंगारपरक काव्यों में रागोद्दीपक ऋतुओं में वसंत के बाद वर्षा का ही विशेष वर्णन मिलता है। प्रकृति की रंगीनी इन्हीं दो ऋतुओं में विशेष रूप से दिखलाई पड़ती है।

शारदातनय के अनुसार वर्षा ऋतु के उद्दीपक तत्त्व कदम्ब, केतकी, लोध्र, कदली, कुन्द आदि के पुष्प, मयूर, हरितभूमि, इन्द्रवधू, गिरि, निर्झर, तालाब, जलपूर्ण

---

१ सन्देशरासक १४४-३४
२ पृ० रा० ६१।१६२४
३ पद्मावत २६।६
४ जेठ नगिचाने सुधरत खसखाने तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मति विविध जल जंत्रन की
ऊँचे ऊँचे अटा ते सुधा सुधारियत हैं।
सेनापति अतर गुलाब अरगजा साजि
सार तार हार मोल ले ले धारियत हैं।
ग्रीष्म के बासर बराइबे कौं सीरे सब
राज भोग काज साज यौं सम्हारियत हैं। —क० र० ३।१
५ बारहू दरीन बीच चारहू तरफ त्यौं अंगूर ही की टाटी है। —ज० वि० ३८४

नदियों, गज वारियारों का गर्जन, मतंगजों की क्रीड़ा, नाग-कन्या की प्रासाद, उत्कण्ठा-मुदायक मरकत हरित, श्यामल पत्र-प्रान्त, सागर की दर्द की दशा, धूप कालागुरु की सुगंधि, पद्मराग मणियों के आभूषण इत्यादि हैं।[1] कविकल्पलता में भी उपयुक्त वस्तुओं की नामावली गिनाई गई है।[2]

वर्षा ऋतु में मेघगर्जन मान मानिनियों के मानभंग के लिए पर्याप्त है, फिर कदम्ब के फूल और सुगन्धित वातावरण में मयूर की पुकार तथा पपीहे की रटन और धारासार वृष्टि आदि का कहना ही क्या ?[3] मेघों की घमंड गर्जन से तो सयोगिनियों का भी धैर्य छूट जाता है फिर प्रिय से दूर रहनेवाली वियोगिनियों की क्या दशा वर्णित न हो।[4]

कालिदास आदि कवि परम्परा में ऋतु गुण वस्तुओं की परिगणना की परिपाटी प्रचलित हो गई थी जिसका विकास रीतिकाव्य में हुआ। भर्तृहरि के ऋतुवर्णनपरक श्लोकों में यह वृत्ति प्राय प्राप्त होती है।[5]

वर्षा की उद्दीपक पृष्ठभूमि में कवियों ने सयोगियों और वियोगियों की भिन्न भिन्न मनःस्थितियों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।[6] कवि ने वर्षा-वर्णन में कहीं फौज का रूपक दिया है[7] और कहीं राजा का[8] तो कहीं कामदेव के राज्याभिषेक की उत्प्रेक्षा[9] की है। इन अप्रस्तुत विधानों में भी मूल में ऋतु की उद्दीपकता का ही प्रदर्शन है। इन अप्रस्तुतों के साथ ही कवियों ने बादल, कदम्ब, मयूर, पपीहा आदि के विशेषणों का भी प्रयोग किया है। इन विशेषणों से भी सयोग या वियोग की दशा में उनके प्रति मानवी प्रभावों का ही प्रदर्शन किया गया है। ऐसे विशेषणों और अप्रस्तुतों की कुछ चर्चा पहले वियोग वर्णन में की जा चुकी है।

---

१ का० प्र० पृ० ८४

२ कविकल्पलता १। ।३१

३ शिश ६।३८

४ मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत ।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ —मेघ० १।३

५ तरुणाश्च दीपितकामा विकसितजाति पुष्पसगन्धि ।
उन्नतपीनपयोधरभारा प्रावट तनुते कस्य न हर्षम ॥ —शृ० श० ७ ३७

६ किरात १ ।१६ २३ शृ० श ३६ ४१ विक्र १३।१६ ६० रा म मु न्र १ २३ न च ३।८१।४३ शिशु० ६।२५ ३२ गउड० ३८३ ४१३ ६८६ ६४ कु० म ५८५ ६२ भागवत् स्कंध १ अध्याय २ प्रा प १।१६६ १।१८८ २।३८ २।८१ ८६ २।१३३ १८१ ग रा० २५।३४ ४६ ५७।१३८ ४२ ६१।२७ ३५ सूर० १ ।६८४ ८५ १०।११८८ ८६ १०।१६६ ६२ म० स ४५३ ५ ६ ग क [illegible] २२७ २३४ बिहारी ४ ६ ४ ८ ४५६ ६६५ का नि ४।१७ ७।१८ ६।२६ १ ।३७ १७।३६ १८।३४ २२।१ ज० वि १३३ ३१६ ३८५ ८७ प० प्र० ६२।६३

७ ढोला २५५ पद्मा २६।७

८ ऋतु० २।१ ४ ढोला १८।६३

९ न च० पृ० ५३

वर्षा में प्रणयीजना की हिंडोल क्रीडा का विशेष रूप म वर्णन मिलता है जिसका उल्लेख यथास्थान पहले किया जा चुका है।

शरद

वर्षा के बाद शरद ऋतु का वर्णन होता है। शारदातनय के अनुसार इस ऋतु में चन्द्रिका शीतल मंद सुगंधित वायु मरालयुक्त पद्मिनी स्वच्छ जल तट प्रदेश, कमल कस्तूरी गंध हंस सारस की मधुर ध्वनियां, मुक्तामणि और पके धान्य, स्वच्छ पथ, ललित समलीलाएं शय्या मरकत वैदूर्य आदि की मालाओं, स्वच्छवस्त्र आदि का रागोद्दीपक वर्णन होता है।[1]

संयोगियों को उक्त वस्तुएं सुखवर्धक होती हैं किंतु वियोगियों के लिए दुःख का कारण। ऋतुसंहार में कालिदास ने चन्द्रकिरण हंस, नील-कमल और बंधुजीव की विरहोद्दीपकता का वर्णन किया है।[2] भागवत में तो इस ऋतु म उद्दीपक वातावरण में रासलीला का मनोहर वर्णन प्राप्त ही होता है।[3] महाकाव्यों और खण्डकाव्यों में इसके उद्दीपक वर्णन ही प्रायः प्राप्त होते हैं जो बहुत कुछ परम्परा के अनुसार है।[4] सेनापति ने शरद ऋतु वर्णन म प्रायः उन्हीं उद्दीपक पदार्थों का उल्लेख किया है जिसका निर्देश कवि शिक्षा की पुस्तकों म मिलता है।[5] मतिराम को शरद ऋतु की स्वच्छ चांदनी मे विकसित मालती कुंज कामदेव के ज्योतिमय भुवन का पुंज सा दिखता है।[6] पद्माकर ने शरद ज्योत्स्ना की व्यापकता का अलंकृत शैली म वर्णन किया है।[7] इन वर्णनो मे प्रकृति का उद्दीपन स्पष्ट ही लक्षित होता है।

हेमन्त

शरद के पश्चात हेमन्त ऋतु आती है। शारदातनय ने हेमन्त और शिशिर म

---

१ भा प्र प ८४ ८५
२ ऋतु ३।२४
३ भागवत स्कंध १ अध्याय २ पद्मावत ज वि ३८६
४ किरात १०।२५ २३ शिश ६।४२ ७।७४-७७ रा० म मानस २६ ५७ प्रा० प २१२ ५, प रा० २५।४४ ४६ ६१।३६ ४७ सूर १ ।११३८ ढोला २६६ ३००
५ क र ३।३७ ४२
६ म स ४
७ तालन प ताल पे तमालन प मालन प
व दावन वाथिन बहार बंसीवट प
कहै पद्माकर अखड रासमण्डल प
मडित उमड महा कालिन्दी के तट प।
छिति पर छान पर छाजन छान पर
ललित लतान पर लाडिली की लट प।
छाई भली छाई यह सरद जुन्हाई जिहि
पाई छवि आज ही कन्हाई के मुकुट प ॥ ज० वि० ३८८

सुगन्धित पदार्थ, पुष्प, वस्त्राभूषण, और शय्या को रमणीयतर बनाता है।[1] सब प्रथम कालिदास ने ऋतुसंहार में इस ऋतु में प्रफुल्ल नायक नायिकाओं के आलिङ्गन, आमोद प्रमोद आदि का वर्णन किया है।[2] कवि ने प्रातःकाल का वर्णन कर उत्प्रेक्षा की है कि मानो रमणियों के कुच ... के स्पर्श से प्रसन्न हुआ हेमन्त उनके प्रियतमों द्वारा उत्पीड़ित होकर मानो चीत्कार कर रहा है।[3] इस प्रकार प्राकृतिक उपादानों पर मानवीय भावारोपण और मानवीय भावों पर प्रकृति के उपादानों का आरोपण प्राचीन परम्परा रही है। ऋतुसंहार में ... के द्वारा हेमन्त में समागम की प्रचुर स्थिति का वर्णन किया गया है।[4] भर्तृहरि ने ऋतु गुणों में सुरतसुख के साधनों का सम्यक् वर्णन किया है।[5] श्रीहर्ष ने तो हेमन्त को रमणियों के अकृत्रिम कम्प सीत्कार और रोमांच उद्गम का कारण सिद्ध कर दिया है।[6] अन्य प्राचीन महाकाव्यों में भी इस ऋतु की उद्दीपक पृष्ठभूमि में समागम और वियोग की अवस्था में उत्पन्न होनेवाली भावनाओं का वर्णन किया गया है।[7] पृथ्वीराजरासो में पूरन्ध्री हेमन्त ऋतु की बढ़ती हुई रात्रि से अपने कुच भागों की वृद्धि और दिन मान के घटने से अपने विरह की क्षीणता की तुलना करती हुई एक ओर ऋतु की सम्भोग गुणमय अवस्था का संकेत करती है दूसरी ओर अपने यौवन के विकास की। बिहारी आदि कवियों ने भी इस प्रकार के साम्य स्थापन द्वारा नायिका का वर्णन किया है। यहाँ पूरन्ध्री का उद्देश्य पृथ्वीराज को विदेश गमन से रोकना है।[8] बिहारी ऋतु-गुण का संकेत मात्र करते हैं।[9] अन्यत्र वे केवल

---

१ गन्धद्रव्याणि वासांसि भूषणं शयनानि च।
तरुणीर्वास्यनुभूयन्ते हेमन्ते शिशिरेऽपि च॥ —भा० प्र० पू० ८५

२ ऋतु ४।२६

३ पीनस्तनो ... कामिनीवोपसि शीतवात॥ —ऋतु ४।७

४ ऋतु ४।८ १७

५ हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशनामांजिष्ठवासोभृत
काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धवपुषः खिन्ना विचित्रै रतैः।
पीनोरुस्तनकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरे
ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते॥ —शृं० श० ४३

६ शीतावद्ब्रिमोत्कम्प सीत्कारावायता यन।
रोमोद्गमगुरुस्त्रीणां हेमन्त प्रत्यञ्चयता॥ —रा म अरण्य ५०५
—तुल शृ श ४४

७ किरात १०।२८ २६ शिशु० ६।५५।६५ गउड २७० ७६

८ कुचवर जघ नितब निशा बढन्त घन बन्ती।
लघ छीन उर छीन छीन दिन मीन स चढ्दो॥
गिरिकन्दर तप जुगति जानि जोगीसर मन।
ते लम्भे कवि चन्द बाम कामी सर घन॥ —पृ रा ६१।१२

६ ज्यों ज्यों बढति बिभावरी त्यों त्यों बढ़त अनंत।
ओक ओक सब लोक सुख कोक सोक हेमन्त॥ —बिहारी २४४

शीतऋतु के व्यापक प्रभाव को अलङ्कृत शब्दों में संकेत करते हैं।[1] जायसी ने सम्भवत इसीलिए शीत को सौभाग्यदायक माना है कि इस ऋतु में शारीरिक मिलन सुखद होता है।[2] सेनापति ने भी हेमन्त के वर्णन में ऋतु सुखद वस्तुओं की परिगणना करके परम्परा का निर्वाह तो किया है, साथ ही अनेक छंदों में शीत की अधिकता के कारण सामान्य जन की स्थिति का भी चित्रण किया है। ऐसे स्वाभाविक चित्र अन्यत्र दुर्लभ हैं।[3] पद्माकर ने एक छंद में वर्णन परम्परा के अनुसार भोग और सजाग हित सुरत हिमन्त ही में का प्रतिपादन किया है।

शिशिर

हेमन्त के पश्चात् शिशिर ऋतु आती है। हेमन्त और शिशिर में प्राकृतिक रमणीयता उतनी नहीं रहती जितनी वसंत या वर्षा में। इसलिए कवियों ने इन ऋतुओं के वर्णन में विशेष रुचि नहीं प्रदर्शित की।

शिशिर ऋतु में कालिदास ने ऋतु-सुखद वस्तुओं—निर्वात निवास-स्थान, अग्नि सूर्य की धूप मोटे गरम कपड़े और नवयुवती की गणना की है।[4] साथ ही वे ऋतु विरोधी पदार्थों का भी उल्लेख करते हैं, जैसे चन्दन, चन्द्र हर्म्यपृष्ठ, ठण्डी हवा और लम्बी रातें।[5] कवि ने इस ऋतु में संयोग सुख का विस्तृत वर्णन किया है। नायक नायिका की विलास क्रीडाओं और शृंगार चेष्टाओं के अंकन में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।[6] शिशिर ऋतु की दीर्घ रात्रि प्रियाविरहित युवकों के लिए बड़ी ही कष्टकारक होती है। भर्तृहरि ने इसके कष्टकारकत्व का अलङ्कृत शैली में वर्णन किया है।[7] पृथ्वीराज रासो में चंद ने ऋतु के उद्दीपक रूप का ब्योरेवार चित्रण किया है।[8] पृथ्वीराज को विदेशगमन से रोकती हुई रानी कहती है—

---

१ कियो सबै जग काम बस जीते जिते अजेइ।
कुसुमसरहि सर धनुष कर अगहन गहन न देइ॥ —बिहारी १०२

२ धनि औ पिउ महँ सीउ सोहागा। दुहुँन्ह अंग एकै मिलि लागा॥
मन सौं मन तन सौं तन गहा। हिय सों हिय बिचहार न रहा॥ —पद्मावत ३१ ६

३ क० र० ३।४३ ४६

४ ऋतु ५।२

५ वही ५।, ४

६ ऋतु ५।५ १५

७ प्रायत्यौढप्रियगन्धनिभृति विदलत्कुन्दाद्यद्विरेफे
वाते प्रालेयवातप्रचलविलसितिनोद्यामन्दारदाम्नि।
येषां नो कण्ठलग्ना क्षणमपि तुहिनक्षोदरक्षा मृगाक्षी
तेषामायामयामा यमसदनसमा यामिनी याति यूनाम्॥ —शृ० श० ७ ४६

८ पृ० रा० ६१ ६०-७२

आगम फाग प्रवत वत सुनि मित्त सनेही।
सात भत तप तुच्छ होइ आनद सब ग्रेही।
नरनारी दिन रनि मन मदमाते हुल्ल।
सकुच न हिय छिन एक वचन मनमाने बुल्ल।
सुनो वत सुभ चित करि रयनि गवन किम कीजइय।
कहि नारि पीय बिन कामिनी, रिति ससिहर किम जोजइय॥[1]

इसी प्रकार प्रकृति की उद्दीपक पृष्ठभूमि म सदेशरासक की विरहिणी अपने यथापूण कालयापन की चर्चा करती है। वहाँ वियोग की स्थिति म प्रकृति का वणन किया गया है[2] शीत के शमन के लिए जायसी न भी वही उपचार बतलाया है जो परम्परा से वर्णित होता आया है।[3]

रीति कवि पद्माकर न शिशिर ऋतु के वणन म बिहारी[4] की भाति केवल धूप अग्नि और रजाई के होत हुए भी सिसिर सीत को तियनाह के बिन लपटे न मिटनेवाला ही नही बताया है। वे और भी एश्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए सुखोपभोग की सामग्री का ब्योरेवार विवरण उपस्थित करते हैं—

गुलगुली गिलमे गलीचा हैं गुनीजन हैं
चादनी है चिके हैं चिरागन की माला हैं।
कहै पद्माकर त्यों गजक गिजा हैं सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं अरु प्याला हैं।
सिसिर के पाला के न व्यापत कसाला तिन्हैं
जिनके अधीन एते उदित मसाला है।
तान तुक ताला हैं बिनोद के रसाला हैं
सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाला चित्रसाला हैं।[5]

कवि की की दृष्टि अपन आश्रयदाता की एश्वय सामग्री पर रही है जबकि बिहारी ने सामान्य जन की स्थिति का पता लिया है।

विभिन्न ऋतुओं के उद्दीपन रूप का परिचय काव्य परम्परा के अनुसार देने के पश्चात सम्प्रति ऋतु-वणन की दूसरी विधा बारहमासे का परिचय दिया जाएगा।

काव्य-परम्परा के अनुसार बारहमासे का वर्णन वियोग की स्थिति की और भी

---

१ वही ६१ ६४
२ स० रा० ३।१६२ ६६
३ भाइ सिसिर ऋतु, तहाँ न सीऊ। जहाँ माघ फागुन घर पीऊ॥
सौर सपेती मन्दिर रानी। दगन चीर पहिरहि बहु भांती॥ —पद्मावत २६।१०
४ तपन-तेज तापन-तपन तूल तुलाई माह।
सिसिर-सीत क्यों हू न मिटै बिन लपटैं तिय-नाह॥ —बिहारी २७०
५ पद्माकर ज० वि० छं० ३६१

सबद्ध बनाने के लिए किया जाता रहा है। रीतिकाव्य मुक्तक प्रधान होने के कारण बारहमासे की परम्परा का निवाह नहीं कर सका। कुछ कवियों ने पृथक रूप से षड ऋतु की भांति बारहमासा का भी वर्णन किया है। वास्तव में यह परम्परा शुद्ध रूप से लोकगीतात्मक है जिसमें किसी विरहिणी के वर्ष के प्रत्येक मास में अनुभूत दुखों का वर्णन किया जाता रहा है। संभव है जायसी को लोकगीतों में बारहमासे का वर्णन अधिक रुचिकर लगा हो और उसका विनियोग उन्होंने नागमती विरह वर्णन में किया हो। संस्कृत महाकाव्यों में षडऋतु-वर्णन की व्यवस्था और परम्परा पाई जाती है किंतु बारहमासे की नहीं।

हिंदी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य केशवदास की प्रतिभा एवं सूझ बड़ी गंभीर थी। उन्होंने लोकगीतों की मुखरकारी मधुरता से आकृष्ट होकर बारहमासे का संयोजन स्वतंत्र रूप से तो नहीं अलंकार-वर्णन के अन्तर्गत किया है। आक्षेपालंकार के एक भेद (शिक्षाक्षेप) के उदाहरण स्वरूप उन्होंने बारहमासे का वर्णन किया है। यह वर्णन बहुत कुछ चंदवरदाई के षडऋतु वर्णन की ही तरह है। चंद ने जिस तरह विदेश-गमनोत्सुक पृथ्वीराज को प्रत्येक ऋतु में रोकनेवाली रानियों के मुख से तत्तद ऋतु की विशेषताओं संयोगानुरूप सुख सामग्रियों और वियोग के दुख का निर्देश करते हुए वर्णन कराया है उसी प्रकार केशवदास ने भी बारहमासे के वर्णन में प्रत्येक मास में किसी न किसी नायक का विदेश गमन से वर्जन करती हुई नायिका कोई न कोई बहाना बनाकर उक्त मास के उद्दीपन का वर्णन करती हैं। यह बारहमासा चैत्र महीने से प्रारम्भ किया गया है।[1]

बारहमासे का वर्णन कहीं कहीं आषाढ़ और कहीं चैत्र महीने से प्रारम्भ किया जाता है। लगभग प्रत्येक जन भाषा में बारहमासा पाया जाता है।

प्रत्येक मास की प्रमुख विशेषता के साथ वियोगिनी अपने प्रिय का स्मरण करके अपनी व्यथा का प्रकाशन करती है। प्रकृति के परिवर्तन के साथ उसकी प्रतीक्षा की अवधि बीतती जाती है और वह निराश होकर अपनी कातरता व्यक्त करती है। प्रकृति का चित्रण इन बारहमासों में कहीं विरहिणी के अनुकूल किया गया है कहीं प्रतिकूल। कहीं वह प्रकृति को सहदु:खभागिनी रूप में स्वीकार धैर्य धारण करती है कहीं उसकी विपरीत दशा देखकर उपालंभ देती है। जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है वियोगिनी के ये उपालंभ बड़े मार्मिक होते हैं।

रीतिकाल में जो बारहमासे लिखे गए उनमें जनगीतियों का स्वच्छन्द प्रवाह नहीं दृष्टिगत होता लगता है षडऋतु वर्णन की भांति बारहमासे के वर्णन में भी कवियों ने बनी-बनाई परिपाटी का अनुसरण प्रारम्भ कर दिया था।

रीतिकाव्य में जैसा निर्देश किया गया है ऋतु-वर्णन के लिए तो अवसर मिल भी गया है पर बारहमासा के लिए अवकाश नहीं मिल पाया।

---

१ दे कविप्रिया १।२४ ३८

ऋतु-वर्णन में रीतिकवियों ने अपने पूर्ववर्ती भक्त कवियों से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की। इन भक्त कवियों में कुम्भनदास, चतुर्भुजदास और गोविन्दास ने ऋतुओं, विशेषतः वसंत और वर्षा का व्यापक वर्णन किया है। इनमें भी हिंडोला और फाग का विशेष वर्णन पाया जाता है। ऐंद्रिक अनुभूति की जितनी छूट और क्रीडा कौतुक की जितनी प्रधानता उक्त वर्णनों में भक्त कवियों विशेषकर पुष्टिमार्गीय कवियों में पाई जाती है वह रीति कवियों से किसी भी ग्रंथ में कम नहीं है। इन कवियों ने प्रकृति और जीवन के सामंजस्य और वैषम्य को अनेक प्रकार के अप्रस्तुत विधानों द्वारा प्रकाशित किया है। रीति कवियों में चमत्कार और ऊहात्मक उक्तिवक्रता अवश्य अधिक है पर उनके प्रेरणा स्रोत ये पूर्ववर्ती भक्तकवि माने जा सकते हैं।

रीतिकवियों ने ऋतु वर्णन में विरहिणी की आशंका, अभिलाषा और उत्कंठा को तीखा बनाकर उसकी मानसिक और शारीरिक स्थितियों का अंकन अधिक किया है, प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण कम। प्रकृति पर मानव भावना का आरोप करके अलंकृत शैली में रीतिकवियों ने पर्याप्त चित्र उपस्थित किए हैं। ऐसे उद्दीपक आरोपों से निर्मित प्रकृति चित्रों का किंचित संकेत पहले वियोग वर्णन में किया जा चुका है।

पाचवा अध्याय

अभिव्यक्ति के उपादान और माध्यम

अलकार और अप्रस्तुत विधान

रीतिकाव्य की मुख्य प्रवत्तिया म अलकरण वत्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रीति-कवियो को अपने भावो को सीधे और सरल रूप मे अभिव्यक्त करने की अपेक्षा उसे चमत्कारपूर्ण शली म उपस्थित करना अधिक प्रिय रहा है। इसके लिए उन्होने अनेक प्रकार के अलकारो का कभी अनायास और कभी सायास प्रयोग किया है।

भावाभिव्यक्ति को अलकारपूर्ण और चमत्कारप्रवण बनाने की प्रवत्ति केवल रीति-कवियो म ही नही उनकी पूर्ववर्तिनी चिरकाल से प्रवाहित साहित्य धारा म भी पाई जाती है। सभवत मनुष्य सभ्यता के विकास के प्रारभ से ही कला प्रिय रहा है। उसके जीवन को कलात्मक रुचि ने परिष्कृत और परिमार्जित भी किया है। आदिम जातियो म अपने शरीर को अलकृत करने की प्रवत्ति आज भी पाई जाती है। परिस्थिति और सामर्थ्य के साथ कलात्मक रुचि भी परिवर्तित परिवर्द्धित होती रही है। मानव केवल अपने शरीर, वासस्थान नगर आदि को ही नही अपितु अपनी अभिव्यक्ति को भी सज्जित और अलकृत रूप म उपस्थित करने म रुचि रखता है। शन शन अभिव्यक्ति के जितने भी माध्यम चित्र सगीत स्थापत्य आदि थ सबम अलकरण की प्रवत्ति बढती गई। किंतु इसका सबस उत्तम प्रकाशन काय कला मे ही पाया जाता है। वैदिक ऋषियो न भी अपने भावो को अलकृत शैली म ही अभिव्यक्त किया है। ऋग्वेद के हिरण्यगभ सूक्त — कस्मै देवाय हविषा विधेम म यह ध्वनि निकलती है कि अन्य देवता तुच्छ हैं केवल हिरण्यगर्भ ही एक महान देवता ह जो हवि के अधिकारी हैं। यहाँ व्यतिरेकालकार ध्वनित है। इसी प्रकार निम्नलिखित पद्य म रूपकातिशयोक्ति और विरोधाभास का अगागी सकर द्रष्टव्य है —

नीचा वत त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्त सहन्ते ।
दिव्या अगारा इरिण न्युप्ता शीता सन्तो हृदय निर्दहन्ति ।।[1]

उपर्युक्त उद्धरण स यह सिद्ध होता है कि अलकार कवल चमत्कार का ही सजन नही करते अपितु वण्य वस्तु का बिम्ब ग्रहण और उसम सन्निहित रस का सहज आस्वाद भी बनाते हैं। इसलिए यदि अलकारो को अभिव्यक्ति का सहज सहचर कहें

---

१ ऋग्वेद १ ।३४।६

तो अनुचित न होगा। उत्तम काव्य में भावों के साथ स्वाभाविक रूप से अलंकार आ जाते हैं अर्थात कवि को अभिव्यक्ति के शृंगार के लिए अलंकारों का बुद्धिपूर्वक नियोजन नहीं करना पड़ता। परन्तु सर्वत्र ऐसी बात नहीं है। कहीं कहीं उक्ति को अलंकृत करने का पृथक प्रयास भी लक्षित होता है। जहाँ सचेष्ट अलंकारों का आरोपण अधिक होता है वहाँ भाव, संप्रेषणीय न होकर जटिल हो जाते हैं या उनका तिरोभाव हो जाता है। इस दृष्टि से आनन्दवर्धन ने अलंकारों के दो भेद माने हैं—पृथग्यत्ननिर्वर्त्य और अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य। पहले प्रकार के अलंकारों को कवि भावों पर आरोपित करके पृथक प्रयत्न के द्वारा उपस्थित करता है किन्तु दूसरे प्रकार के अलंकार भाव सहजात होते हैं।[1] अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य अलंकार रसाभिव्यंजना के उपकारक होते हैं रसात्मक बोध को जागृत करने में सहायक होते हैं। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है, 'काव्य में अलंकार से होकर जब किसी संगत भाव या तथ्य तक पहुँचा जाता है तभी वह काव्य होता है। यदि भाव या विषय अलग हो और अलंकार अलग तो अलंकार फालतू हो जाता है काव्य प्राय बिगड़ जाता है।'[2] ऐसी स्थिति में वह काव्य का शोभाधायक न होकर शोभा में बाधक हो जाता है।

किसी भाव को प्रभावोत्पादक शैली में अभिव्यक्त करने के ही लिए कवि अलंकारों का आश्रय लेता है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में अलंकारों का नियोजन प्रभावोत्पादन के लिए ही होता है। ऐसा करने के लिए हम सदृश सामान्य वस्तुओं से तुलना के द्वारा अपने कथन को स्पष्ट बनाकर उसे श्रोता के मन में अच्छी तरह बैठाते हैं, बात को बढ़ा चढ़ाकर उसके मन का विस्तार करते हैं, बाह्य वैषम्य आदि का नियोजन करके उसमें आश्चर्य की उद्भावना करते हैं, अनुक्रम अथवा औचित्य की प्रतिष्ठा करके उसकी वृत्तियों को अन्वित करते हैं, बात को घुमा फिराकर वक्रता के साथ कहकर उसकी जिज्ञासा उद्दीप्त करते हैं, अथवा बुद्धि की करामात दिखाकर उसके मन में कौतूहल उत्पन्न करते हैं। अलंकारों के ये ही मनोवैज्ञानिक आधार हैं—स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, अन्विति, जिज्ञासा और कौतूहल। इनके मूल रूप हैं—साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार (वक्रोक्ति)।[3] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी अनेक प्रकार के अलंकारों के प्रादुर्भाव का मूल कारण नाना प्रकार की मानवीय वृत्तियों को माना है।[4] ये मानवीय वृत्तियाँ शाश्वत हैं। इसलिए ये अलंकार भी शाश्वत और सार्वभौम हैं। देश-काल के भेद से इनके बाह्य रूप में चाहे जो परिवर्तन आया हो किंतु मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ होगा।

रीतिकाल तक अनेक परिवर्द्धनों और परिवर्तनों को आत्मसात करती हुई

---

१ रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ॥ ध्वन्या० २।१६

२ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाङ्मय विमर्श, पृ० १३३

३ डॉ० नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० ८६, ८७

४ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, [illegible] पृ० ५

अलंकरण वृत्ति निरन्तर चलती रही। पहले कहा जा चुका है कि रीतिकाव्य के उपजीव्य दो प्रकार के ग्रंथ रहे हैं—एक में शास्त्रस्थिति सम्पादन हुआ है दूसरे में नाना प्रकार की मानवीय वृत्तियों का बहुरंगी पृष्ठभूमि में अंकन। एक में बुद्धि की प्रधानता रही है दूसरे में हृदय की। एक का शास्त्र की अभिधा प्राप्त हुई दूसरे को काव्य की। एक सुविचारित सुस्थ था तो दूसरा अविचारित रमणीय। जहाँ तक काव्य सम्पत्ति के रीतिकाल पर्यन्त क्रमिक विकास निरूपण का प्रश्न है पहले किया जा चुका है। सम्प्रति शास्त्र के प्रमुख अंग अलंकारों का क्रमिक विकास सवेनित किया जाएगा।

यह तो पहले ही कहा गया है कि वैदिक काल से ही हमें अलंकारों का प्रयोग मिलने लगता है जिससे सिद्ध होता है कि चिरकाल से मानव-वाणी के आभूषणों का संयोजन करके अपने भावों को सम्प्रेषणीयता प्रदान करता रहा है। जो वस्तु या भाव उसके मन और बुद्धि पर जैसी छाप छोड़ता है या जैसा प्रभाव डालता है वह उसे उसी प्रकार दूसरे सहृदय के मन और बुद्धि तक काव्य के माध्यम से सम्प्रेषित करने की चेष्टा करता है। इस चेष्टा का मुख्य आधार उपमा रूपक या उत्प्रेक्षा होती है। इनके माध्यम से वह अस्थिर भाव चित्र को शाश्वत रूप प्रदान करता है। मानव की इस जागरूक चेष्टा को शास्त्र में अप्रस्तुत विधान कहते हैं। जिस कवि की कल्पना जितनी परिष्कृत होगी उसका अप्रस्तुत विधान उतना ही स्पष्ट और बिम्बग्रहण कराने में सक्षम होगा। अप्रस्तुतों का चयन उसकी काव्य कला की कसौटी है। कवि अपनी प्रतिभा रुचि और वातावरण के अनुकूल अप्रस्तुतों का चयन करता है। डा० सावित्री सिन्हा ने लिखा है 'इन (अप्रस्तुतों) के नियोजन के द्वारा काव्य में प्रभावोत्पादकता विशदता तथा रसनीयता का समावेश किया जाता है। रमणीय अनुभूति के लिए रमणीय अभिव्यंजना की अपेक्षा होती है क्योंकि अनुभूति और अभिव्यंजना सौष्ठव के सन्तुलित समन्वय से ही आदर्श काव्य का निर्माण होता है।'[1] कवि का सौन्दर्यबोध जितना व्यापक होगा वह उतने ही भावानुकूल रमणीय अप्रस्तुतों का नियोजन कर सकेगा। चाक्षुष प्रत्यक्ष बाह्य विषयों के रंग रूप चेष्टा इत्यादि स्थूल गुणों तथा मानसिक प्रक्रियाओं की अनुभूति का व्यापक परिप्रेक्ष्य में सवेद्य चित्र अंकित करना रससिद्ध कवीश्वरों के लिए ही सम्भव है। सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा व्यापक परिवेश से लिए गए अप्रस्तुत जितनी प्रचुरता में कालिदासीय काव्य में उपलब्ध होते हैं उतने परवर्ती किसी भी कवि के काव्य में नहीं मिलते। इसका मूल कारण है—कवि की दृष्टि सकोच। उसकी स्वच्छन्द प्रतिभा को उन्मुक्त वातावरण न मिल सका। काव्यशास्त्रीय मान्यताओं की जकड़बन्दी में प्रतिभा का अपव्यय चमत्कार प्रदर्शन में अधिक किया जाने लगा परिणामतः जीवन का समग्र चित्र अपनी पूरी विविधता के साथ काव्य में अंकित होने से रहा, उसके स्थान पर पाण्डित्य प्रदर्शन के व्यामोह ने कवि को निष्प्रमित करके ज्योतिष वैद्यक और गणितशास्त्र के नियमों सिद्धान्तों का प्रयोग

---

1 डॉ सावित्री सिन्हा ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति-काव्य में अभिव्यंजनाशिल्प पृ० २६३

करके उसके काव्य को रसमय और रमणीय की अपेक्षा वहुनता की कसौटी मात्र बना दिया। इस प्रवृत्ति का उत्तरोत्तर विकास किरातार्जुनीय से लेकर 'हरविजय तक देखा जा सकता है। हिंदी में रूप' चित्रण भेद के महाकाव्यों की ही परम्परा आई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिए खेद के साथ कहा है कि 'हिन्दी की कविता का उत्थान उस समय हुआ जब संस्कृत काव्य लक्ष्यच्युत हो चुका था। इसी से हिंदी की कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों का वह सूक्ष्म वर्णन नहीं मिलता जो संस्कृत की प्राचीन कविताओं में पाया जाता है।'[1] रीतिकाव्य तो कालिदासोत्तर महाकाव्यों की चमत्कार प्रधान शैली से पूर्णतः प्रभावित है। महाकाव्य ही नहीं संस्कृत के मुक्तक संग्रहों में भी ऐसे चमत्कार प्रधान अनेक छंद मिलते हैं जिन्हें रीतिकवि का प्रेरणा स्रोत कहें रूप में देखा जा सकता है। इन छंदों में न तो कोई भाव ही स्पष्ट लक्षित होता है और न स्वरूप बोध ही। उदाहरण के लिए भर्तृहरि के कुछ श्लोक देखे जा सकते हैं—

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा॥[2]

या

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा॥

इसी शैली में सुबन्धु कवि ने वासवदत्ता का भी वर्णन किया है—

भास्वतालङ्कारेण चन्द्रेण वदनमण्डलेन लोहितनाधरपल्लवेन सौम्येनदशनेन गुरुणा नितम्बबिम्बेन विरचेन रत्नकमलेन शनैश्चरेण पादेन तमसा कचपाशेन ग्रहमयीव । [3] इसी परम्परा में रीतिकालीन कवियों की भी उक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

रवी सिरफूल मुख ससितूल महीसुत वदन बिंदु सु भाति।
पना बुध केसरि आड गुरौ नकभातिय मुकुर कर दुगसाति।
सती हैं सिगार वि तुद वार सज भवकेतु सज तन कांति।
निहारिये लाल भरें सुखजाल बनी नव बाल नवग्रह पांति॥[4]

यही तक नहीं नायिका के रूप चित्रण में बारहों राशियों को भी एकत्र कर दिया गया है—

सिंह कटि मेखला ज्यों कुंभ कुच मिथुन त्यों,
मुखवास अलि गूंज भौंहें धनुलीक है।

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रस मीमांसा पृ० १२६
[2] भर्तृहरि शृंगार शतक श्लो० ८१
[3] सुबन्धु वासवदत्ता पृ०३० १
[4] भिखारीदास काव्यनि० १८।१६

वृषभानु कन्या मीन नैनी सुवरन अंगी,
नजरि-तुला मे तोसा रति सो रतीक है।
ह्वै है विलगात उर कनक कटाक्षन सो,
चाहिए गलग्रह तौ लाग सुघरी कहै।
कुंडल मकरवारे सो लगी लगन अब,
वारहौ लगन को बनाव कयौ ठीक है ॥[1]

एक ओर इस प्रकार के चमत्कार के चक्कर में रूपक मुद्रा आदि अलंकारों के माध्यम से शास्त्र ज्ञान का प्रदर्शन किया जाता था दूसरी ओर कालिदास की विरहिणी यक्षिणी के चित्र——

तन्वी श्यामा शिखरिदशनापक्वविम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तानाभ्या
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु ॥[2]

में केवल उसका रूप रंग ही नही गुण धर्म भी स्पष्ट और भावपूर्ण है। इसी प्रकार रीतिकालीन कवि मतिराम का भी निम्नोद्धत रूप वर्णन नायिका के बाह्य और आन्तर सौन्दर्य को पूर्ण रूप से उद्घाटित करता है——

कुन्दन को रगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारु गुराई ।
आंखीन में अलसानि चितौन में मंजु विलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नही मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यो ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यो त्यो खरी निखरै-सी निकाई ॥[3]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि रीतिकाल न पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य से केवल अनुकरण-वृत्ति ही नही पाई कही कही मौलिक प्रतिभा और कवि सुलभ सहृदयता का भी परिचय दिया है। भर्तृहरि के अलंकृत श्लोक रीतिकाव्य के अलंकार अवश्य बने, सुबन्धु की चमत्कार प्रधान शैली से प्रेरणा जरूर ली गई परन्तु उन स्थल वर्णन चमत्कार की चकाचौध ही उत्पन्न कर सके उसमें न तो नायिका के रूप की रेखा ही मिल सकी न रस की बूद ही। यद्यपि ऐसे वर्णन युगानुरोध के कारण रीतिग्रन्थो में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं किन्तु ऐसे सरस रसीले स्थल भी कम नही जिन पर बिन मोल सहृदय रीझ सकते है। मतिराम की कविता में अनारोपित अलंकारों की सुन्दर छटा अनेकत्र लखी जा सकती है। ऊपर उद्धृत सवैया की अन्तिम दो पंक्तियों में कवि ने रूप के प्रभाव का वर्णन बड़ी कुशलता से किया है। सौन्दर्य का नवनवत्व व्यतिरेक सम्पुष्ट होकर द्रष्टा पर मोहक प्रभाव डालने में पूर्ण समर्थ है। "ज्यो ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैननि

१ भिखारीदास का नि० २४१४
२ कालिदास मेघदूत २।१९
३ मतिराम रसराज छ० ६

त्यो-त्यो गही तिर गी तिराई को पहार वरगण मनारि मान की उति ' गण क्षणे यनवतामु ति तन्च रप रमणीयताया । या मा जा ी है ति नु मतिराम की उवित म पूरी ताजगी है।

अलकार-विधान

रीतिकाल म कवि आचार्यों न अपन ग्रन्थकार निरूपण ग्रन्थ म ना प्राय सभी अलकारा न लक्षण उदाहरण दि है परन्तु रस नायिका भेद नखशिख ग्रौर ऋतु वर्णन सम्बन्धी ग्रन्थ म भी अलकारा का प्रचुर प्रयोग किया है। यहाँ स्थानाभाव क कारण सभी ग्रलकारा क श्लोपम सहित उदाहरण ता न ो दि जा सकत किन्तु कुछ मत ग्रलकारा का निर्देश मात्र किया जाएगा जिनको प्रेरणा पूर्ववर्ती संस्कृत प्राकृत ग्रपभ्रं श काव्या म उन्हें मिली ग्रौर उन्ान ग्रन्थ ग्रलकार ही न । बहुत स्थाना म भाव का भी ग्रहण किया। यह बा ता पय यह कदापि न नना चाहि ि रीतिकविया म स्वय उदाहरण रचन की क्षमता नही थी। शृ गार रस क अभिव्यंजक मनोहर ग्रौर मौलिक चित्रा की रीतिकाव्य म कमी नही है फिर भी य रीति र्घय संस्कृत काव्य ग्रौर प्राकृत स प्रभावित थ ग्रौर उनक काव्य म ग्रलकारा की सजावट भी संस्कृतादि प्राचीन भारतीय काव्यधारा स प्रभावित ग्रनुप्रेरित थी मात्र इतना ही लक्षित कराना उद्देश्य है।

जिस प्रकार रसात्मक मुक्तका म इन कविया न पूर्व परम्परा का सहारा लिया उसी प्रकार ग्रलकारा क प्रयोग म भी पूर्ववर्तिनी काव्य सरणि स प्रेरित हुए हैं।

उपमा

अर्थालकारा म उपमा का महत्वपूर्ण स्थान है। इसक प्रयोग द्वारा कविया ने नायिका के रूप का ही ग्रकन नही किया है बल्कि भाव ग्रौर ग्रनुभाव के चित्रण म भी इसका सफल प्रयोग किया है। मतिराम की नायिका मनमोहन क रूप पर ग्रासक्त होकर विरह म वसी ही विकलता का ग्रनुभव करती है जसी पिजडे म बन्द पक्षी किंतु न तो पक्षी को मुक्ति मिलती है न मतिराम की नायिका को ही—

सजनी मरो मन परयो मनमोहन के ग्रग।
छटपटात छूटत न ज्यो पजर परयो पतग ॥[1]

इसी प्रकार का चित्र गाथासप्तशती की नायिका का भी ग्रकित किया गया है। दोनो की विकलता की व्यजना पजरगत प क्षी की उपमा से की गई है—

एक्केक्कमवइवेठणविवरन्तरदिण्णतरलणग्रणाए।
तइ वालन्त बालग्र पजरसउणाइग्र तीए ॥[2]

---

१ मतिराम सतसई २८८

२ गाथा ३।२ । उक्त गाथा का भाव ग्रौर ग्रलकारसाम्य देव की निम्नोद्धत पक्तिया म देखा जा सकता है—

दव ज द्वार किवारन हू ग्रशरीन ग्ररोखन भाकि फिरी त्यो।
दान ज्यो मान जरा की भई स फिर फरक पिंजरा की चिरी त्यो॥ सु त० ६१

बिहारी ने भी कुलागना की मानसिक और शारीरिक स्थिति का प्रत्यक्षीकरण इसी प्रकार के उपमा प्रयोग द्वारा किया है—

कहति न देवर की कुबत कुलतिय कलह डराति।
पंजर गत मंजार ढिग सुक-लौं सूकति जाति ॥[1]

यहाँ उपमा के द्वारा विशिष्ट भाव चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त नखशिख वर्णन में तो मुख्य आधार उपमा को ही लिया गया है।

प्रतीप

प्रतीप अलंकार के प्रयोग द्वारा कवियों ने प्रायः नायिका के रूप सौन्दर्य का प्रसिद्ध उपमानों से उत्कर्ष द्योतित किया है। नारी के सहज शृंगार की चर्चा करते हुए भर्तृहरि ने उनके विभिन्न अंगों के उपमानों को उपमेय से नीचा सिद्ध किया है—

वक्त्रं चन्द्रविडम्बि पंकजपरीहासक्षमे लोचने।
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली।
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम् ॥[2]

इसी शैली में निबद्ध रीतिकाल से पूर्ववर्ती कवि तुलसीदास ने भी सीता का रूप-वर्णन किया है—

का घूघट मुख मूदहु नवला नारि।
चांद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥
गरब करहु रघुनन्दन जनि मन मांह।
देखहु आपनि मूरति सिय के छांह ॥[3]

मतिराम ने नायिका की अंगदीप्ति के वर्णन में प्रतीप का परम्परित प्रयोग किया है—

केसरि कनक कहा चम्पक बनक कहा,
दामिनी यों दुरिजात देह की दमक तें।[4]

इसी प्रकार बिहारी का भी नायिका की अंगदीप्ति सर्वातिशायिनी है—

कहा कुसुम कह कौमुदी कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखें आंख ऊजरी होति ॥[5]

और देव ने तो नायिका के केवल उपमानों की परिगणना ही नहीं की है बल्कि उसके रूप रंग रस सबकी अद्वितीयता का प्रतिपादन प्रतीप के प्रयोग द्वारा बड़ी सफलता से

१ बिहारी ८५
२ शृंगार शतक श्लो० २२
३ बरवै रामायण बाल कांड छ० १६ १७
४ रसराज छ० ९७
५ बिहारी दो० ८८

किया है —

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] जिन परतें ॥[1]

रूपक

रूपक अलंकार का प्रयोग प्राय नायिका की अवस्था या विरह स्थिति के चित्रण में मिलता है। भर्तृहरि ने नारी के [illegible] का वर्णन सांगरूपक के प्रयोग द्वारा किया है—

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ।
मा सञ्चर मनःपान्थ तत्रास्ते स्मरतस्कर ॥[2]

इसी प्रकार बिहारी ने भी ([illegible]) सांगरूपक द्वारा इसी भाव का अभिव्यान किया है—

चलत न पावत निगम मग जग उपजी अति त्रास ।
कुच उतंग गिरिवर गह्यो मीना मैन मवास ॥[3]

अपह्नुति

विरहिणी को संतप्त करनेवाले चन्द्र के प्रति नायिका या उसकी सखी की उक्तियों में शुद्धापह्नुति का प्रयोग प्राय मिलता है। चन्द्र तो शीतल होता है पर विरहिणी को वह तापदायक मालूम पड़ता है इसलिए वह चन्द्र के चन्द्रत्व का निषेध करके उस पर सूर्य का आरोप करती है किन्तु रात्रि में सूर्य का होना असम्भव है अतः यह अग्नि या अग्नि की ज्वाला है ऐसा अनुमान करती है—

नेन्दुस्तीव्रो न निश्यर्क सिन्धोरौर्वोऽयमुत्थित ।[4]
उहवु न है उजियरिया निसि नहिं घाम ।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम ॥[5]
जाहु नही यह तम वह [illegible]ये जु जगत निकेत ।
हात उद ससि के भयो मानो ससिहर सेत ॥[6]

१ सुधासागर तरंग छं ५
२ शृंगार शतक श्लो ४६
३ बिहारी दो २६८
४ अप्पय दीक्षित कुवलयानन्द श्लो० २७
५ तुलसीदास ब रा स कां छं० ३७
६ बिहारी दो २३३

हेत्वपह्नुति का उदाहरण देते हुए कवि लछिराम की विरहिणी ने चन्द्रमा को उसकी दाहकता के कारण वडवाग्नि माना है—

वाडव अनल विरहीन वारिव का आज।
आसमान ऊपर अचाना उदै भयो॥[1]

लछिराम का अप्रस्तुत उपरिलिखित अप्पयदीक्षित के अप्रस्तुत का ही अनुवाद है।

उत्प्रेक्षा

नायिका के विभिन्न अंगों के अप्रस्तुतों की सम्भावना के आधार पर उत्प्रेक्षा की गई है। कवि किसी विशिष्ट वस्तु या दृश्य को देखकर स्वयं जैसा अनुभव करता है व उसका सामान्य वस्तु या दृश्य से काल्पनिक साम्य दिखाकर उसे सहृदय संवेद्य बना देता है।

बिहारी ने नील अंचल में छिपे और झलकते नायिका के मुख को देखकर यह संभावना की कि यदि कालिन्दी के नीले जल में पूरा चाँद झलके तो जैसा उसका रूप होगा वैसा ही उस नायिका का है—छिप्यो छबीलो मुख लसै नीले अंचल चीर। मनो कलानिधि झलमलै कालिंदी के नीर।[2] नीले अंचल में दीप्तिमान मुख के लिए जिस दृश्य की सम्भावना की गई है वह नायिका के बाह्य रूप का ही बोधक है आन्तर धर्म का नहीं। इस प्रकार की वस्तूत्प्रेक्षाएँ परम्परा प्राप्त हैं। संस्कृत के एक श्लोक में इसी प्रकार की उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है—

नीलाचलेन संवृतमाननमाभाति हरिणनयनायाः।
प्रतिबिम्बित इव यमुना गभीर नीरान्तरेणाङ्कः॥[3]

तुलनीय,

बिहँसत नील दुकूल में लसत बदन अरबिंदु।
झलकत जमुना रूप में मानो पूरन इंदु॥[4]

प्रिय मिलन को उत्कंठित वासकसज्जा के नेत्र इतनी आतुरता से द्वार पर लगे हैं कि मानो उसके वन्दनवार बंध गए हैं—

सुंदरि सेज सवारि के साजे सकल सिंगार।
दृग कमलन के द्वार पै बाँधे वंदनवार॥[5]

नेत्रों के वंदनवार रूप की सम्भावना एक ओर नेत्रों के गुण धर्मों का उद्घाटन करती है दूसरी ओर नायिका की मनोदशा का भी। इसी प्रकार मानुन्त की राधा वसन्त के भ्रम में द्वार पर चकित दृष्टि से देखती हुई नेत्र कमलों का तोरण सजा देती है—

१ लछिराम रावणेश्वर कल्पतरु प २ छ ४
२ बिहारी दो० १६६
३ रस गंगाधर प २५८
४ मतिराम सतसई दो० ४७६
५ रसराज, दो० १७७

राधा मधार्विभ्रममावहन्ती कुर्वीत नेत्रोत्पलतोरणानि ।[१]

तुलनीय,

सोखी दिन चारिक ते तीखी चितवनि प्यारी
दरबह भरि दृग देखति जितै-जित ।
आछो उनमील नील सुभग सराजन की
तरल तनाइयत तारन तितै तित ॥[२]

रीतिकवियों ने अलंकार निरूपण करते हुए संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से केवल लक्षण ही नहीं लक्ष्य भी लिए हैं। यद्यपि इन रीति-कवियों ने प्रायः उदाहरणों को किंचित परिवर्तन के साथ ही उपन्यस्त किया है तथापि कहीं कहीं अनुवादमात्र से ही काम चलाया गया है जैसे आचार्य चिंतामणि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के निम्नोद्धृत अंशों को संस्कृत ग्रंथ से अनुवाद करके रख लिया है—

हेतूत्प्रेक्षा

बरसत अंजन नभ मनो तम लोपत जनु अंग ।[३]

तुलनीय, लिम्पतीवतमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।[४]

सुन्दरि भूमि धरे मनो लाल तिहारे पाइ ।
मुख समता इच्छा मनो विधु लखि कमल रिसाइ ॥[५]

तुलनीय रक्तौ तवाङ्घ्री मृदुलौ भुवि विक्षेपणाद्ध्रुवम् ।
त्वन्मुखाभेच्छया नूनं पद्मैर्वैरायते शशी ॥[६]

असिद्धविषयाफलोत्प्रेक्षा का प्रयोग कवियों ने प्रायः नायिका के अंगों से पराजित उपमानों के तप करने की सम्भावना में किया है। भिखारीदास कहते हैं कि कुछ दिन तक खजरीट नहीं दिखाई देते वे मानो बाला के दृगों की समता प्राप्त करने के लिए तपस्या करने चले गए हैं—

खजरीट नहिं लखि परत कछु दिन साची बात ।
बाल दृगनि सम होन को, मनो करन तप जात ॥[७]

इसी प्रकार अन्य एक कवि की भी सम्भावना है कि स्वर्ण वर्ण कर्णिकार मानो गोरी मुख से पराजित होकर वनवास का सेवन कर रहा है—

---

१ रसमंजरी श्लो० १२५
२ सुधासागर तरंग, छं० ५७१
३ कविकुलकल्पतरु ३।७०
४ कुवलयानन्द श्लो० ३३
५ कविकुलकल्पतरु ३।७१
६ कुवलयानन्द श्लो० ४
७ काव्य निर्णय ८।१६

उग्र यणिआर पफुल्लिवग्रउ वन्चण कांति-पयासु ।
गोरी वयण विणिज्जिग्रउ न सेवइ वण वासु ।।[1]

रीति कवि के दोहे म काफी हद तक इसका भाव साम्य पाया जाता है। इस प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ प्राय रूढिग्रस्त ही रही जाएगी इनमें कवि की मौलिक कल्पना का प्रस्फुरण नही लक्षित होता।

रीति कवि लछिराम न बादलो को हाथी और बूदो को उनकी सूंड द्वारा छोडे गए फुहार के रूप में उत्प्रेक्षित किया है—

ऊँचो करि सु डादण्ड छाडत फुहारे भरे
नारे मदवारे मही ऊपर चलत है।[2]

अतिशयोक्ति

रीति कवियो का अतिशयोक्ति वडी प्रिय थी। व किसी बात का चमत्कारपूर्ण बनाकर खूब बढा चढाकर कहते थे। रीतिकाल के पूर्व भी नायिका के सौकुमाय माधुर्य आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है। प्रशस्तिपरक काव्यो में तो इसकी सहायता के बिना कवि जैसे कुछ कह ही नहा सकता।

नायिका के वक्षोजो की कठिनता का वर्णन रूढि सा है। काठिन्य की अतिशयता का प्रदर्शन अनेक रूपो में किया गया है। महाकवि कालिदास की पार्वती के कुचो पर गिरकर प्रथम वर्षा के जल बिंदु चूर्णित हो जाते हैं—स्थिता क्षण पक्ष्मसु ताडिताधरा पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता।[3] तो माघ की नायिका के कठिनकुचाग्र पर गिरकर वे सकडो टुकडो म विभक्त हो जाते हैं—

प्रथममलघुमौक्तिकाभमासीच्छ्रमजलमुज्ज्वलगण्डमण्डलेषु ।
कठिनकुचतटाग्रपाति पश्चादथ शतशकरता जगाम तासाम् ।।[4]

इसी प्रकार बिहारी की विरहिणी पर पावस की प्रथम वर्षा की बूँद तो नही पडती। हा आसू जरूर कुचो पर गिरते ह जो क्षण भर में ही छनछनाकर रह जाते हैं—

पलनि प्रगटि बरुनीनि बढि नहिं कपोल ठहरात ।
असुवा परि छतिया छिनक छनछनाय छिपि जात ।।[5]

कालिदास वर्षा की बूद के माध्यम से नायिका के विभिन्न अगो के उतार चढाव और कोमलता-कठोरता की सूक्ष्म व्यजना करते हैं किंतु माघ के वर्णन से नायिका का न तो कोई चित्र ही उपस्थित होता है न भाव ही। बिहारी की भी उक्ति यद्यपि कालिदास से प्रभावित है पर वह भी वह बात नही पैदा कर सकी, बस छनछनाकर रह गई। न तो

१ कुमारसभव ५।२४
२ लछिराम रावणश्वर कल्पतरु प २७
३ कालिदास कुमारसभव ५।२४
४ माघ शिशुपालवध ७।६६
५ बिहारी, दो० ३६६

कोई रूप, रंग हो उभार सखी, न सवन्ना ही जगा सखी।

पदमावत म जायसी ने पद्मावती के पारदर्शी कंठ का वर्णन द्रष्टव्य है—पुनि तेहि ठाव परी तिनि रेखा। घूट जो पीक लीक सब देखा।[1] इसी प्रकार बिहारी की नायिका भी जब पान की पीक घूटती है तो वह गले म स्पष्ट दीखती है मानो उसने कृष्ण का लाल-लाल गुलूबद पहन लिया हो —

> खरी लसति गोरे गरे धसति पान की पीक।
> मनौ गुलवद लाल की लाल-लाल दुति लीक ॥[2]

बिहारी ने केवल उत्प्रेक्षा गर्भित अतिशयोक्ति का ही प्रयोग नही किया, द्वापर के कृष्ण को मुगलकालीन लाल गुलूबद भी पहना दिया है एस होता है युग का प्रभाव।

रूपकातिशयोक्ति के द्वारा नायिका के रूप वर्णन की परम्परा रीतिकाल के पूर्ववर्ती साहित्य म पूर्ण रूप स पाई जाती है। ऐसे वर्णनो मे चमत्कार और कौतूहलोत्पादन ही कवि का लक्ष्य लक्षित होता है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

> कमलमनम्भसि कमले च कुवलये तानि कनकलतिकायाम।
> सा च सुकुमारसुभगेत्युत्पातपरम्परा केयम् ॥[3]
> तथा—तमस्तोम पूर्व तदनु सकल शीतकिरण—
> स्तत श्रीकद्वद्व तदनु न च किंचित्पुनरभूत।
> अनम्भस्यावतस्तदनु कदलीकाण्डयुगल
> ततोवाचो पथो विमिदमिति चित्रम रचना ॥[4]

हिंदी के आदिकालीन कवि चद ने जल भरनेवाली दासियो का रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग द्वारा वर्णन किया है—

> राहु चद इकलास। पास कोदड कुरगा।
> कीर बिंबफल जुगल। उभय भूतेस अनगा।
> मग्गराज गजराज। राज पिप्पिय एकत ।[5]

इसी प्रकार ढोला मारू रा दूहा म मारवाडी का रूप वर्णन भी द्रष्टव्य है—

> मारू घूघट दिट्ठ मइ, एता सहित फुणिद।
> कीर, भमर, कोकिल, कमल, चद, मयद, गयद ॥[6]

इस अलकृत वर्णन-परम्परा का निर्वाह रीतिकालीन कवियो ने भी किया है। भिखारीदास के व्यतिरेकानुप्राणित रूपकातिशयोक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

१ जायसी ग्रथावली पद्मावत नखशिख खड दो १३
२ बिहारी दो० १२८
३ का० प्र १०।४४६
४ शार्ङ्गधर पद्धति ३३२१
५ चन्दबरदाई पृथ्वीराजरासो ६१।३३७
६ ढोला मारू रा दूहा छ ४५५

जग जाके प्रसाद लता पर सैल ससी पर पंकजपत्र वसैं।
करि भाँति अनेकनि यो रचना जु बिरंचि हुकी रचना का हसैं ॥[1]

नायिका की विरह-दुर्बलता का वर्णन अतिशयोक्ति से पूर्ण किया गया है। कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—

याम्यामीत्युदिते तव्या वलयो भवदूर्मिका ॥[2]
च्युते वलयसंचये प्रबलरिक्ततादूषण—
व्ययाय निहितांमिकावलिरपि स्खलत्यंजसा।
निशम्य मुरलीकल सखि सकृद्विशाखे तनु—
स्तवासितचतुर्दशीशशिकला कृशत्वं ययौ ॥[3]

इसी प्रकार प्राकृत अपभ्रंश आदि काव्यों में भी चपलातिशयोक्ति का वर्णन मिलता है—

वायसु उड्डावंतिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड त्ति ॥[4]

भिखारीदास की नायिका की भी उक्त स्थिति चपलातिशयोक्ति के द्वारा व्यंजित की गई है—

दास कहै ता समै सोहागिनि को कर भया
बलया बिगत दुहु बातनि प्रसग त।
आधिक ढरकि गई विरह की क्षमता त
आधिक तरकि गई आनद-उमग त ॥[5]

ऐसे स्थलों पर नायिका की शारीरिक स्थिति का ही परिचय मिलता है मानसिक दशा का नहीं।

भेदकातिशयोक्ति के द्वारा नायिका की विशेष सुंदरता कोमलता आदि का निरूपण किया जाता है। संस्कृत कवियों ने ही नहीं प्राकृत अपभ्रंश और परवर्ती हिंदी कवियों ने भी प्रायः समान रूप से भेदकातिशयोक्ति के द्वारा नायिका की शोभा को व्यंजित किया है—

अन्य देवांगलावण्यमन्या सौरभसम्पद।
तस्या पद्मपलाशाक्ष्या सरसत्वमलौकिकम् ॥[6]

---

१ काव्यनिर्णय ६।४३
२ कुवलयानन्द श्लो० ४२
३ उज्ज्वलनीलमणि पृ० ४२३ श्लो २६
४ प्राकृत व्याकरण ४।३५२।१
५ काव्यनिर्णय ११। १२
६ साहित्यदर्पण पृ० ३२५

तथा—अण्णलडहत्तणअ अण्ण विश्रा का वि वत्तणच्छाया।
सामा सामाण्णपआवइणो रेह च्चिअ ण होई॥[1]

तथा अन्न ते दीहर लोअण, अनु त भुअ जुअलु।
अनुसु घणथण हारु, त अनु जि मुहु कमलु।
अनु जि केसकलापु सु अनु जि हाउमिहि
जण विअम्विणि घडिअ सु गुणु लाभन्न णिहि॥[2]

इसी प्रकार हिंदी कवि रहीम ने भी लिखा है—

आजु नयन के कजरा, और भांति।
नागर नेह नवेलिया, सुदिने जाति॥[3]

रीतिकालीन कवियों में बिहारी, मतिराम और भिखारीदास आदि ने सौन्दर्य के नव नवोन्मेषत्व और अनिर्वचनीयत्व का निर्देश किया है—

और आप कनीनिकनि गनी घनी सिरताज।
मनी धनी के नेह की बनी छनी पट-लाज॥[4]
और कछु चितवनि चलनि और मृदु मुसकानि।
और कछु सुख देत है, सकै न बैन बखानि॥[5]
चित्रित करगो क्या चितेरो यहि चाहि काल्हि,
परो दिन बीतें दुति औरै और दौरई।[6]

अत्युक्ति

आश्रयदाताओं की दानवीरता और कीर्ति का वर्णन कवियों ने अत्युक्तिपूर्ण किया है। अप्पयदीक्षित ने अत्युक्ति का जो उदाहरण दिया है उसकी छाया भिखारीदास के उक्त अलंकार के उदाहरण में देखी जा सकती है—

त्वयि दातरि राजेन्द्र ! याचकाः कल्पशाखिनः।[7]

तुलनीय—मंगन तेरे को मंगन सो कलपद्रुम आजु है मांगिबे लायक॥[8]

नायिका की विरहावस्था के वर्णन में भी कवियों ने अत्युक्ति का प्रयोग किया है—

---

१ काव्य प्रकाश १०।४५३
२ प्राकृत व्याकरण ४।४१४।१
३ बरव नायिकाभेद छं १७
४ बिहारी दो०५७
५ मतिराम सतसई दो० ४०४
६ का०नि० ११।४
७ कुवलयानंद श्लो १६३
८ काव्यनिर्णय ११।१८

पथिकवधूजनलोचननदीमातकप्रदेशेषु ।[1]

तुलनीय—गोपिन के असुवनि भरी सदा असीस अपार ।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर क वार ।।[2]

इस प्रकार की अत्युक्तिपूर्ण उक्तियाँ संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और रीतिकाल के पूर्व हिंदी-काव्य म भी पाई जाती हैं जिनके द्वारा नायिका के विरह-वैकल्य का निरूपण किया गया है।[3]

निदर्शना

कवियों ने अपनी उक्ति के समर्थन म उसके सदृश भाव वाली अनेक उक्तियों का उल्लेख किया है। मूम की सेवा वैसी ही होती है जैसे अरण्यरोदन, जैसे शवशरीर पर सुगंधि प्रयोग, स्थल पर कमल का लगाना, और ऊसर म वर्षा का होना आदि—

अरण्यरुदित कृत शवशरीरमुद्वर्तित
स्थलेऽब्जमवरोपित सुचिरमूपरे वर्षितम ।
श्वपुच्छमवनामित बधिरकर्णजाप कृता
धृतोऽन्धमुखदर्पणो यदबुधो जन सेवित ।।[4]

इसी भाव को किंचित् भिन्न संदर्भ म भिखारीदास ने भी निदर्शित किया है—

प्रान विहीन के पाइ पलोट्यो अकेले ह्वै जाइ घने बने रोयो ।
आरसी अंध के आगे धर्‌यौ बहिरे सौ मतो करि ऊतरु जोयो ।।
ऊसर मे बरस्यो बहु बारि पषान के ऊपर पंकज बोयो ।
दास वृथा जिन साहिब सूम के सेवन मे अपनो दिन खोयो ।।[5]

विरहिणी प्रिय के वियोग के कारण उत्पन्न अपनी विपन्नावस्था का वर्णन अलंकृत शैली म करती है—

वाहिव्व वेज्जरहिओ धणरहिआ सुअणमज्भवासो व्व ।
रिउरिद्धिदसणम्मिव दूसहणीआ तुह विओआ ।।[6]

इसी भाव को मतिराम ने निम्नलिखित दोहे म निबद्ध किया है—

छाह बिना ज्यो जेठ रवि ज्यो बिन औषधि रोग ।
ज्यो पानी बिन प्यास यो तेरा दुसह वियोग ।।[7]

---

१ आर्यासप्तशती श्लो ४
२ बिहारी दो १८२
३ देखिए प्रस्तुत प्रबंध का चतुर्थ अध्याय
४ कुवलयानंद प० ५६
५ काव्यनिर्णय ८।७४
६ गाथासप्तशती ४।६३
७ मतिराम सतसई दो ६६८

व्यतिरेक

व्यतिरेक अलंकार के प्रयोग द्वारा कवियों ने उपमेय में उपमान की अपेक्षा आधिक्य का प्रतिपादन किया है। मुख की उपमा चन्द्रमा से की जाती है या कमल से किन्तु कवियों ने दोनों को दोषपूर्ण दिखाकर नायिका के मुख का सौन्दर्य उनसे अधिक प्रतिपादित किया है—

> जाउ मयरहरु पइरु ससिबिंबु ण मगइ गयवराहु।
> मइ मुहहि तासु समु भणमि जडइ मरमु करहाणु॥[1]

इसी प्रकार रहीम की नायिका का मुख प्रिय की बुद्धि पर असर डालता है और उसको विधुवदनी कहा है

> गोरे मलिन बिलसतवा, मोगुन तोर।
> माहि रहत विधुवदनी गिय मनि हीन॥[2]

भिखारीदास को भी बाल-बदन की समता में चन्द्र लाघवयुक्त होने से तुच्छ लगता है—

> घटै बढ़ै रावरो गरिमा, सब जग रहे गवाय।
> बाल बदन सम है नहीं, रच मयंक एकाय॥[3]

बिहारी की नायिका ने न जाने कहाँ धनुर्विद्या की शिक्षा पाई है कि वह सामान्य निशाने को नहीं चंचल चित्त को बिना प्रत्यंचा के भौंहें कमान और बंक बिलोकनि बान से बेध देती है—

> तिय कित कमनैती पढ़ी बिनु जिह भौंह-कमान।
> चलचित बेझै चुकति नहिं बंक बिलोकनि-बान॥[4]

> तुलनीय—मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते।
> यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः॥[5]

भर्तृहरि की मुग्धा और बिहारी की नायिका दोनों सामान्य निशानेबाजों से विशिष्ट हैं। एक बिना प्रत्यंचा के चंचल चित्त को बेधती है तो दूसरी केवल गुण (प्रत्यंचा) से ही।

समासोक्ति

रीतिकालीन कवियों ने प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भान करानेवाले शब्दों या चेष्टाओं द्वारा अनूठी उक्तियाँ निबद्ध की हैं। ऐसी उक्तियाँ काव्य परंपरा में चिरकाल

१ पुष्पदन्त महापुराण २४।१।१४-१५
२ रहीम बरवै नायिकाभेद छं० ३४
३ भिखारीदास काव्यनिर्णय १।८
४ बिहारी, दो० २७४
५ भर्तृहरि शृंगारशतक श्लो० ८२

से अपनी व्यंजकता के कारण सहृदयानुरंजन करती आई हैं। पुष्प और भ्रमर की मधु क्रीडा के द्वारा नायक नायिका की मधु क्रीडाओं का संकेत किया गया है—

पिब मधुप वकुलकलिकां दूरं रसनाग्रमात्रमाधाय।
अधरविलेपसमाप्ये मधुनि मुधा वदनमर्पयसि ॥[1]

समासोक्ति के द्वारा गाथाकार ने भी इसी भाव का वर्णन किया है—

जाव ण कोसविकासं पावइ ईसीस मालईकलिआ।
मअरन्दपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ॥[2]

बिहारी ने भी इस भाव को एक दोहे में निबद्ध किया है—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली हीं सो बंध्यो आगे कौन हवाल ॥[3]

श्लेष

एक शब्द के द्वारा अनेक अर्थों के प्रकाशन से चमत्कार उत्पन्न करने वाले कवियों का प्रिय अलंकार श्लेष रहा है। ११वीं १२वीं शताब्दी ईसवी के लगभग श्लेषालंकार का प्रयोग इतना अधिक बढ़ा कि पूरे के पूरे महाकाव्य में श्लिष्ट पदों के प्रयोग से दो दो, तीन-तीन कथाओं का एक साथ प्रकाशन करने लगे। श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' में तो एक ही सर्ग में पंचनलीय प्रयोग मिलता है जिसमें क्रमशः इन्द्र[4] अग्नि[5] यम[6] वरुण[7] के वर्णन के साथ नल का भी वर्णन किया गया है तथा एक ही श्लोक में नल इन्द्र अग्नि, यम और वरुण का भी वर्णन मिलता है[8] किन्तु उनके समसामयिक कवि कविराज कृत 'राघवपाण्डवीय' महाकाव्य में पूरा महाकाव्य ही द्वयर्थक है। स्थानाभाव से यहाँ केवल यदुनाथ (कृष्ण) और रघुनाथ पर घटित होनेवाले एक श्लोक को उद्धृत किया जा रहा है—

यः पूतनामारणलब्धकीर्तिः काकोदरो येन विनीतदर्पः।
यशोदयालङ्कृतमूर्तिरव्यान् नाथो यदूनामथवा रघूणाम् ॥

रीतिकालीन कवि पद्माकर ने अनेक वर्ण्य श्लेष के उदाहरण स्वरूप उक्त संस्कृत श्लोक का अनुवाद ही प्रस्तुत कर दिया है—

---

१ आर्यासप्तशती श्लो० ३६७
२ गाथासप्तशती श्लो० ५।४४
३ बिहारी दो० ३४६
४ नैषधचरित सर्ग १३ श्लो० ३ ६ २७
५ वही श्लो० ६ १२ २८
६ वही श्लो० १५ १८ २६
७ वही श्लो० २१ २४ ३०
८ देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या।
नायं नलः खलु तवातिमहानलाभो यद्येनमुज्झसि वरः कतरः पुनस्ते ॥ —नैषध० १३।३३

द्विज तिय-नारा पूरनकामान म अति धीर।
गाराकर था न्म हर जग यदुपति रघुनार ॥[1]

भक्तिकालीन कवि केशवदास ने यह चमत्कार भूषण-वर्णन में दिखाया है। उन्होंने भूमि भूषण-वर्णन में इसका उल्लेख सामान्य रूप से किया है।[2]

रीति-कवियों में इस प्रकार के नाम परिवर्तनों के प्रयोग प्रभूत मात्रा में मिलते। सुंदर उदाहरण में इन्हीं के द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। भिखारीदास ने इन्द्र चन्द्र और चतुर्भुज जैसे शब्दों का प्रयोग करके किया है, जैसे —

छाया सों रतिर पर्भृत छोग इग्गन
    वाराम्ण हुंति गु पग्य गा नदु है।
जिनाा उदित छान्ा म तिनातिया,
    हरि महाराम न्न मानन्दिनादु है।
भव आभरा अरजुन सा मिलाप रर,
    जाना युजनय को हरा दुगरदु है।
एता गुनवारा नाग रनि है कि नदु है,
    कि दवी रो मृगेंदु है कि जसुमति नदु है ॥[3]

अप्रस्तुतप्रशंसा

अप्रस्तुतप्रशंसा के द्वारा कवियों ने प्रस्तुत के गुण रूप आदि की प्रशंसा की है। ऐसे स्थलों में कवि ने प्राय प्रकृति से ही अप्रस्तुतों का चयन किया है। चातक भ्रमर सिंह गजराज आदि की स्वाभाविक वृत्तियों की प्रशंसा के द्वारा प्रस्तुत याचक, दानी वीर आदि की प्रशंसा का संकेत मिलता है -

एक कृती शकुन्तेषु योऽन्य शक्रान्नयाचत ॥[4]

पद्माकर की उक्ति में संस्कृत की उक्ति का अनुवाद किया गया है—

धन्य गनौ जतु नगन मह चातक धर सुधीर।
सक्र सिवाय सु और सा नहिं जाचत है नीर ॥[5]

सामान्य निबंधन के द्वारा विशेष बात के कहने की भी परंपरा प्राय पाई जाती है। संस्कृत के महाकवि माघ ने बलशाली व्यक्ति (श्रीकृष्ण) से वैर करके शत्रु के प्रति उदासीन भाव से रहनेवाले व्यक्ति (शिशुपाल) की स्थिति का द्योतन सामान्य उक्ति से किया है—

---

१ पद्माकर पद्माभरण दो १०३
२ दे केशवदास कविप्रिया ७।७ ११ १८ २ २१ २४ २६ २८ ३ ३२ ३४ ३६ ३९
३ भिखारीदास काव्य निर्णय २०।७
४ कुवलयानन्द श्लो ६६
५ पद्माकर पद्माभरण १११

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ॥[1]

पद्माकर ने उक्त अलंकार के उदाहरण स्वरूप इसी श्लोक का अनुवाद प्रस्तुत किया है—

बड़े प्रबल सों बैर करि करत न सोच बिचार।
ते सोवत बारूद पर पट मे बाधि अगार ॥[2]

व्याजस्तुति

रीतिकालीन कवियों ने अन्यसंभोगदुःखिता नायिका की दूती के प्रति उक्तियों में प्रायः व्याजस्तुति का प्रयोग किया है जिसमें सामान्यतः तो दूती की प्रशंसा रहती है पर उससे निंदा की व्यंजना होती है। उक्त नायिका दूती के दंतव्रणित अधर तथा नखाघात से व्रणित पयोधरों की प्रशंसा करती हुई कहती है—

किं त्वं निगूहसे दूति स्तनौवक्त्रं च पाणिना ।
खण्डिता एव शोभन्ते शूराधरपयोधराः ॥[3]

इसमें शूर अधर पयोधरों की प्रशंसा तो स्पष्ट है किन्तु दूती के विश्वासघात की व्यंजना के कारण उसकी निंदा व्यंग्य है। बिहारी के निम्नोद्धृत दोहे में उक्त श्लोक के भाव मुखर हैं—

पट की ढिंग कत ढांपियत सोभित सुभग सुवेष ।
हद रद छद छवि देत यह सद रद छद की रेख ॥[4]

इसी प्रकार दूती के शौर्य की प्रशंसा में निहित निंदा का भाव द्रष्टव्य है—

पार्श्वाभ्यां सप्रहाराभ्यामधरे व्रणखण्डिते ।
दूति संग्रामयोग्यासि न योग्यादूतकर्मणि ॥[5]
साधु दूति ! पुनः साधु कर्तव्यं किमतः परम् ।
यन्मदर्थे विलूनासि दन्तैरपि नखैरपि ॥[6]

इसी प्रकार के भाव अन्य कवियों ने भी व्याजनिंदा के द्वारा व्यक्त किये हैं—

मैं पठयउ जिहि कमवा, आयसि साधि ।
छुटिगो सीस को जुरवा, कसि के बाधि ॥[7]

---

१ माघ शिशुपालवध २।४२
२ पद्माभरण ११५
३ शार्ङ्गधरपद्धति श्लो० ३९१०
४ बिहारी दो० ३८४
५ शार्ङ्गधरपद्धति श्लो० ३९.५
६ कुवलयानन्द श्लो० ७१
७ बरवै नायिकाभेद छ० २८

छिनु न तो सी और तिय पियहि मनावन जाइ ।
सहज जु तू मानिनि सखी उनमान के भाइ ॥[1]

दूती की ही नहीं नायक की भी उक्ति इसी प्रकार की गई है । खण्डिता नायिका कहती है –

कान्तानुरागचतुराऽसि मनोहराऽसि
नाथाऽसि किं च नवयौवनभूषिताऽसि ।
इत्थं निगद्य सुदृशा वदनं प्रियस्य
निःश्वस्य बाष्पजनिता निहिता दृगन्ता ॥[2]

इसी प्रकार मतिराम की भी नायिका कहती है –

तुम सों कीजे मान क्यों, बहु नायक मन रंज ।
बात कहत यों बाल के भरि आए दृग कंज ॥[3]

इन सभी उक्तियों में मुख्य अर्थ व्यंग्य रहता है।

आक्षेप

प्रवत्स्यत्पतिका नायिकाएँ यद्यपि प्रिय का विदेशगमन चाहती नहीं किन्तु वे उसे स्पष्ट मना भी नहीं कर सकतीं। उनकी उक्तियाँ यद्यपि प्रत्यक्षतः स्वीकारात्मक होती हैं किन्तु उनमें निषेध गर्भित रहता है। संस्कृत साहित्य में निषेध गर्भित प्रवत्स्यत्पतिकाओं की अनेक उक्तियाँ सुलभ हैं। रीति-कवियों ने प्रत्यक्षतः नहीं तो परोक्षतः इन उक्तियों से अवश्य प्रेरणा ली है। एक नायिका विदेश जाते हुए नायक से कहती है—

गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः ।
ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो भवान् ॥[4]

उक्त नायिका की ही स्थिति में पद्माकर की नायिका कृष्ण की ग्रीवा में गुलाब का गजरा डालकर हो ऋतु की उद्दीपकता और भविष्य में होनेवाले अपने वियोग कष्ट का संकेत करती है—

फूटि गहीं न गहो बहियाँ न गरो गहि गोविंद गौन तें फेरो ।
गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल को गल में गेरो ॥[5]

मतिराम की नायिका का चित्र उक्त सभी नायिकाओं की अपेक्षा सजीव एवं स्वाभाविक है। कृष्ण से सखी कह रही है—

आई ऋतु सुरभि, सुहाई प्रीति वाके चित्त,
ऐसे में चलो तो लाल ! रावरी बड़ाई है।

---

१ पद्माभरण दो० १२८
२ रसमंजरी श्लो० १४
३ रसराज दो० ४५
४ साहित्यदर्पण प० ३५०
५ जगद्विनोद छं० २९

सोवत न रैन-दिन, रोवत रहति बाल,
बूझे त कहति मायके की सुधि आई है ॥[1]

असगति

उपवन विहार म नायिका के नेत्र म पराग पडकर उसे कष्ट दने लगा, नायक ने उसे फूक से हटाना चाहा तो दूसरी युवतियो के नेत्र राप से पूण हो गए —

विनयति सुद शो दृश पराग प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन।
तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोद्व यमपि रोपरजोभिरापुपूरे ॥[2]

इसी प्रकार बिहारी के नायक न नवोडा नायिका की आखो म पिचकारी म रग डाल दिया। यह देखकर दूसरी नायिका क नेत्रो म रोचन के रग की लाली आ गई —

छिरके नाह नवोढ-दग कर पिचकी जल जार।
रोचन रग लाली भई विय तिय लोचन कोर ॥[3]

विचित्र

नीतिपरक मुक्तको मे कवियो ने विपरीत फल की इच्छा स उसके विरुद्ध आचरण का वणन किया है जस ऊचे उठन क लिए सिर को नीचा करना चाहिए और अमर होने क लिए मरना चाहिए —

प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवितहेतोर्विमुञ्चति प्राणान्।[4]

एसी ही उक्ति रीतिकालीन कवि देव की भी है—

को मुनिक विनमोल बिकाय न वालन कोइको मोल नहैये।
पैये असीस लचैये जो शीश लचो रहिए तव ऊँची कहैये ॥[5]

उल्लास

सीत्काराञ्चितलोचना सरभस यैश्चुम्बिता मानिनी।
प्राप्त तरमृत श्रमाय मथितो मूढै मुरै सागर ॥
जिन चाख्यौ तिय अधर तिन पाई सुधा अपार।
वृथा मूढ देवनि मथ्यो श्रमहित पारावार ॥[7]

शब्दालकार

रीतिकालीन कवियो न शब्दालकारो के प्रयोग द्वारा नाद-व्यजना का सफल

---

१ मतिराम रसराज छ २०६
२ शिशुपालवध ७।५७
३ बिहारी दो १६६
४ साहित्यदपण पृ ३५४
५ सुखसागरतरग छ ४४४
६ अमरुकशतक श्लो० ३६
७ पद्माभरण दो २२७

प्रयास किया है। ध्वन्यात्मक शब्दों की आवृत्ति के द्वारा छन्दों में विशेष लयमयता का सृजन हुआ है। दोहे में नाद-व्यंजना का उतना अवकाश नहीं रहता जितना [illegible] बड़े छंदों सवैया या कवित्त में रहता है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में होती हुई नाद-व्यंजना की प्रवृत्ति रीतिकाव्य में भी आई। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

वीप्सा

भ्राम भ्राम स्थितया स्नेह तव पयसि तत्र तत्रैव ।
आवर्तपतितनौकायितमनया विनयमपनीय ॥[1]
फिरि फिरि चित उत ही रहत टूटी लाज की लाव ।
अंग अंग छबि भौंर में भयौ भौंर की नाव ॥[2]

गोवर्धनाचार्य ने नायिका के रूपासक्त नेत्रों की स्थिति को भौंर में पड़ी नाव के अप्रस्तुत द्वारा प्रत्यक्ष कर दिया है, साथ ही भ्राम की वीप्सा द्वारा नाद और गति को भी चित्रित कर दिया है।

बिहारी ने उक्त विषय का तद्वत निबंधन किया है। भौंर भौंर 'भौंर' के अनुप्रास द्वारा मन्द मन्थर छन्द लय में विशेष गति आ गई है।

अनुप्रास

वृत्त्यनुप्रास के द्वारा हिंदी के सवैया कवित्तों में जैसी मनोरम और स्फूर्तिपूर्ण नाद-व्यंजना होती है वैसी संस्कृत में नहीं हो पाती। उदाहरण के लिए दोनों भाषाओं के छंद देखिए —

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण—
प्राप्तप्राणसमागमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥[3]

जागुरी जगाव जगु जगुरी जगन
उजगे न जोति जगे होति ही जो जग जगरी।
द्वार की डगर डगरी परति काँप डग
डग परी परतु डोलु डोले डग डगरी।
देव गुण आगरी उसास भर अगरी
दबाये दंत अंगुरी अचल अंग अंगरी।
लंक लगबगरी कलंक लग बगरी
सुखीन संग बगरी सखीन संग सगरी ॥[4]

१ आर्यासप्तशती छं० ४२२
२ बिहारी दो० ४२७
३ साहित्यदर्पण पृ० २७६
४ देव, सुखसागरतरंग छं० ६०७

उक्त छन्द में 'घ', 'क', 'ल', 'प', 'म', 'ज', 'ग', 'री' की आवृत्ति के द्वारा ध्वनि उत्पन्न की गई है।

लाटानुप्रास के प्रयोग द्वारा कवियों ने चमत्कार का सर्जन अधिक किया है भाव का प्रकाशन कम। मतिराम ने 'उरज' 'कठोर' पद की आवृत्ति से उक्ति का समर्थन किया है—

*प्रानपियारो पग पूर्‌यो तू न लखति यहि ओर।
ऐसो उर जु कठोर तौ उचितै उरजु कठोर॥[1]

अब जरा 'मग' शब्द की कवायद देखिए—

मृगनयणी, मृगपति मुखी, मृगमद तिलक निलाट।
मृगरिपु-कटि सुन्दर वणी, मारू अडहर घाट॥[2]
मृगपति जित्यो मुनक सौं मृगलच्छन मृदुहास।
मृगमद जित्यो सुनैन सौं मृग मद जित्यौ सुवास॥[3]
मन मृगया कर मृगदृगी, मृगमद-बदी भाल।
मृगपति-लंक मृगाकमुखि, अंक लिए मृगबाल॥[4]

यमक

यमक के द्वारा स्वयं दूती का स्वाभिप्राय ज्ञापन बड़ा ही वैदग्ध्यपूर्ण बन पड़ा है—

जन्तिअ गुलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाइसे जन्तं।
अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ॥[5]

इसी प्रकार बिहारी की स्वयंदूती भी कहती है—

लाज गहो बेकाज कत घेरि रहे घर जाहि।
गोरस चाहत फिरत हो गोरस चाहत नाहिं॥[6]

---

*मतिराम के दोहे का भाव निम्नलिखित श्लोक में देखा जा सकता है—

गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो
कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते सुभ्रु कठिनम्॥

पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृ० १५ श्लो ४०

१ मतिराम सतसई ३४
२ ढोलामारू रा दूहा छ० ४६६
३ मतिराम सतसई ३४
४ काव्य-निर्णय १६।४६
५ गाथासप्तशती ६।५४
६ बिहारी दो० ६१२

हाल की नायिका (गुड) 'गुन' हँसनेवाले नायक के प्रति निषेध 'शान्त रस (ईख का रस और रसिकता) के प्रयोग द्वारा स्वाभिप्राय प्रकाशन करती है और बिहारी की नायिका गोरस (दूध और इन्द्रिय रस) के द्वारा।

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि रीति कवियों ने यद्यपि अर्थालंकारों का अधिक प्रयोग किया है फिर भी शब्दालंकार उपेक्षित नहीं रहे। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है "वास्तव में दोनों प्रकार के अलंकारों का जितना प्राचुर्य इस काव्य में मिलता है उतना ■ अन्यत्र नहीं। रीति काव्य एक तरह से अलंकारों का समृद्ध कोष है जिसमें बढ़िया से-बढ़िया और घटिया से घटिया नमूने मिल सकते हैं। संयत और संतुलित रुचि के कवियों में अलंकारों का अत्यन्त कोमल और सूक्ष्म-तरल प्रयोग मिलता है। वर्ण मैत्री तथा अर्थ और शब्द के स्वास्थ्य के इतने सुन्दर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ हैं।"[1]

अप्रस्तुत विधान

रीतिकालीन कवियों की भावाभिव्यक्ति में उनके द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस क्षेत्र में भी इन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती भक्त कवियों से काफी प्रेरणा ली है। अन्तर केवल इतना है कि भक्त कवियों के भाव रीति कवियों की अपेक्षा अधिक सहज स्वाभाविक और सरल हैं जबकि रीति कवियों के भाव प्रायः रूढ़ि अनुमोदित और आरोपित हैं। मतिराम बिहारी देव भिखारीदास और पद्माकर आदि ने नारी की तन्मयता विह्वलता अल्हड़ता और न जाने कितने ही भावों की व्यंजना अनेक क्षेत्रों से चुने गए उपमानों के द्वारा की है। इन अप्रस्तुतों के प्रयोग का मूल लक्ष्य पाठक या श्रोता के मानस पटल पर वर्ण्य का भाव चित्र या स्वरूप बिम्ब अंकित करना है। व्यापक रूप में यही लक्ष्य काव्य कला का भी होता है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है "काव्य में कर्ता का लक्ष्य या तो किसी तथ्य तक पहुँचना होगा या किसी अनुभूति या भाव तक अथवा दोनों तक। काव्य वस्तुतः वही है जो किसी प्रकार की अनुभूति तक ले जाय। इसके लिए कर्ता केवल उन भावों को कह भर नहीं देता उनका नाम भर नहीं ले लेता इसके लिए उसे किसी पद्धति, शैली, मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है। इसी पद्धति शैली या विधि विधान का नाम कला है।"[2] अप्रस्तुत विधान इसका अंग है। रीति कवियों ने केवल चमत्कारप्रवण शैली या विधि विधान का महत्त्वपूर्ण आरोपित और रूढ़िग्रस्त अप्रस्तुतों के द्वारा ही वस्तु या भाव की अभिव्यक्ति नहीं की है उन्होंने अनेक संवेद्य और सहज अप्रस्तुतों का प्रयोग करके अपनी रागात्मिका वृत्ति का उद्घाटन भी किया है।

प्रेम पाश में आबद्ध या प्रेम सागर में डूबती उतराती नायिका की विवशता, व्याकुलता और तन्मयता के अनेक भावप्रेरित चित्र रीति काव्य में पाए जाते हैं—

---

१ डा नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका

२ प विश्वनाथप्रसाद मिश्र बिहारी भूमिका पृ १५४

सजनी मेरो मन पर्‌यो मनमोहन के अ ग।
छटपटात छूटत न ज्यो पजर पर्‌यो पतँग ॥[1]

पिंजडे मे पडी चिडिया के अप्रस्तुत विधान द्वारा कवि ने नायिका की विवशता का ही नही मुक्ति कामना का भी सकेत कर दिया है। इसी प्रकार देव की पूर्वानुरक्त नायिका का भाव प्रसूत शब्द चित्र देखिए—

ह्वै सपने तिय को पिय आय दई हिय लाय बनाय बिरी त्यो।
चुम्बन ही चख चौकि परी सुचितै चकि सेज ते भूमि गिरी त्यो।
देव जु द्वार किवारन हूँ झझकेन झरोखन झाकि फिरी त्यो।
दीन ज्यो मीन जरा की भई सु फिरै फरक पिजरा की चिरी त्यो ॥[2]

'जरा की मीन' और पिंजरा की चिरी इन दो अप्रस्तुतो के द्वारा नायिका की विह्वल किन्तु विवश दशा का अकन किया गया है। शेष ऊपर की तीन पक्तियो मे कवि ने पूरे वातावरण का नाटकीय चित्र प्रस्तुत किया है। घटनाए क्रमश भाव को उन्बाधित, प्रस्फुटित और सम्वर्द्धित करके एक ऐसे बिंदु पर पाठक को छोडती है कि पूरा का पूरा मानसिक द्वन्द्व आखो के सामने साकार हो उठता है। असमय ही निद्रा का भग नायिका की ग्लानि को तीव्र कर देता है। मतिराम के दोहे मे वातावरण को साकार करने का अवकाश ही नही है अत उसमे सवदना की तीव्रता उभर नही सकी। इसी प्रकार हाल की नायिका भी विह्वलता का अनुभव तो करती है पर सामाजिक मर्यादा का बन्धन उसे खिडकी की मजबूत सलाखो के बीच अश्रुपूरित नैनो से उसी प्रकार देखने भर की छूट देता है जिस प्रकार पिंजडे म आबद्ध पक्षी ललकपूर्ण दृष्टि स बाह्य प्रकृति को देखता है। प्राकृत की इसी सन्दर्भ की एक गाथा* मतिराम और देव के लिए प्रेरणा स्रोत भले ही हो किन्तु उनकी बान अपनी है और उसे अपने ढग से उन्होंने प्रस्तुत किया है।

अप्रस्तुत विधान मे कवियो ने कही मूत उपमेय के लिए मूत उपमान का प्रयोग किया है कही अमूत। इसी प्रकार अमूत उपमेय के लिए कही मूत उपमान का प्रयोग किया है कहीं अमूत। यदि विश्लेषणात्मक दृष्टि म विचार किया जाय तो मूत के मूत और अमूत के अमूत उपमान अधिक प्रयुक्त हुए हैं। अमूत व अमूत उपमानो का सयोजन कवि की सूक्ष्म पयवेक्षण शक्ति की अपेक्षा रखता है। मत के लिए मूत उपमान तो प्राय प्रयुक्त हुए ही हैं। इनम सबसे अधिक प्रयोग अमत के लिए मूत उपमानो का हुआ है।

मूत के मूर्त उपमान

कवि जिन मूत पदार्थों का साक्षात्कार करता है उनका वण, आकार और गुण

---

१ मतिराम सतसई दो २६८
२ देव सखसागरतरग छ० ६१
*तुलनीय—एक्केक्कमवन्वेठणविवरन्तरदिण्णतरलणअणाए।
तह वोलन्ते बालअ पजरसउणाइअ तीए॥ गाथा० ३।२०

साम्य के कारण प्राय मूर्त उपमानो के संयोजन द्वारा वर्णन करता है। कहीं कहीं पौराणिक उपमानो का भी प्रयोग मिलता है जैसे नायिका के रूपोत्कर्ष को ध्यान म रखकर उसकी उपमा रति[1] लक्ष्मी[2] या किसी अप्सरा[3] जैसे उर्वशी, मंजुघोषा आदि से दी गई है। इसी प्रकार नायिका के लिए फूलो की माला रूपनिगा, मंजरी या लता का अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है[4] इन प्रकृति गृहीत उपमानो के द्वारा उसकी देहकान्ति वर्ण और सुकुमारता आदि की व्यंजना की गई है। उक्त सभी उपमान मूर्त है और मूर्त उपमेय (नायिका) के लिए प्रयुक्त किए गए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के उपमेय और उपमान नीचे दिए जाते है।

मूर्त के अमूर्त उपमान

सस्कृत काव्य परम्परा म मूर्त के अमूर्त उपमानो का प्रचुर प्रयोग मिलता है जैसे कुच के लिए लावण्य राशि (स्व० वा० ५०२८) हृदय की एकत्रित कठोरता (विक्र० ८।४३), रोमावली के लिए अन्धकार की रेखा (विक्रमा० ८।२४) हिंदी म सूरदास ने भी रोमावली की उपमा अन्धकार की रेखा से दी है (सूर० १०। २४४७), कटि के लिए क्षपा (बिहारी २४१, ४४) नम (का० नि० ८।३०) कुच की क्रमश वद्धि के लिए जेठ दिन मिति (बिहारी २४१) आदि के प्रयोग मिलते है।

अमूर्त के अमूर्त उपमान

हास चन्द्र किरण[5] काम कीर्ति समूह का प्रकाश[6] प्राण प्रथम तिथि,[7] यौवनागम वसतागम,[8] वय संधि दुराज,[9] आदि।

अमूर्त के मूर्त उपमान

इसम कामदेव के लिए प्रयुक्त सभी मूर्त उपमान लिए जा सकते है क्योंकि काम

---

१ वा रा० अरण्य० ४६।१७ कु म० २२७ का प ३८६ पउमसिरी चरिउ १।४।५८ प रा० २२।८ ४५।६१ वि प २२।८ सूर १ ।७ ६ क० र० २।११ ज वि ४५ ४३४

२ वा रा अरण्य० ४६।१७ का पृ ३०६ प्रिय २।६ स श० ४।१ अ० ष ३।३ वि० प २२।३ सूर १ ।७ ६ बिहारी ३४१ का नि २१।५३ र सा १७

३ वा रा० अरण्य० ४६।१६ १७ पृ० रा ३१।७७७ सूर० १ ।७ ६ बिहारी २८७ का नि० १७।३०

४ प रा ६१।१६०४ ६१।५५४ सूर १ ।१ ७६ काना १३५ ४७३ बिहारी ४५७ म स० २८ का० नि० ८।२२ ६।२ ज वि १ ० ११५ १८३

५ नष ७।४३ वि० प० ३ ।२ ज वि १५

६ म स ४८६

७ बिहारी दो० १४०

८ विक्रमा ८।८५ ७७ नष० ११।१६ २० प रा० ४७।४०

९ बिहारी ३११ का० नि० ११।३ १२।२१

को पौराणिक आख्यान के आधार पर अमूर्त माना गया है। कुछ उपमान निम्नलिखित हैं—

महीपति,[1] नाविका का मजक,[2] व्याघ,[3]

इसी प्रकार लज्जा के लिए सगाम,[4] जेन,[5] नटी,[6] लाव[7] आदि का प्रयोग किया गया है।

रीतिकालीन कवियों पर अपने युग का प्रभाव काफी पड़ा है। इस उनके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न अप्रस्तुतों के अध्ययन द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति घर-गृहस्थी और ज्योतिष-वैद्यक आदि शास्त्रीय ग्रंथों से भी उपमान लिए गए हैं।

बिहारी आदि कवियों ने जड़ पदार्थों पर चेतनत्व का आरोप करके उसकी प्रभावमयता में वृद्धि की है। छाया जड़ वस्तु है किंतु कवियों ने उसमें चेतनत्व का आरोप करके बड़ा ही भावव्यंजक चित्र उपस्थित किया है। बिहारी ताप की असह्यता और भीषणता की निर्दर्शन छाया में चेतनत्व का आरोप करके करते हैं—

बैठि रही अति सघन बन बैठि सदन-तन माह।
निरखि दुपहरी जेठ की छाहौ चाहति छाँह।।

इस उक्ति पर अर्वाचीन वर्मा के निम्नोद्धृत श्लोक की छाया देखी जा सकती है—

दु सहतापभयादिव सम्प्रति मध्यस्थित दिवसनाथे।
छायामिव माछन्नी छायापि गता तरुतलानि।।[8]

इससे स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए जिन अप्रस्तुतों का विधान किया है वे प्राय परम्परित हैं। कुछ ही ऐसे हैं जिन्हें उन्होंने तत्कालीन सामाजिक या राजनीतिक स्थितियों से प्रभावित होकर ग्रहण किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के लघु कलेवर में उन सबका यथोचित समावेश सम्भव नहीं है अत उनका संकेत मात्र करके सन्तोष करना पड़ता है।

चित्र योजना

अप्रस्तुत विधान के द्वारा कवि कई प्रकार के शब्द चित्र प्रस्तुत करता है। इसम

१ शाङ्ग ग ३७११ पृ रा० ६२।६३ गीत ११३५, वि० प० २१५ सूर० १ ।२०२६ क० र० २।२६, म स ८७ ना नि ६।३५
२ नय० १ १२६ बिहारी २ ३ र सा १५६ का० वि ३
३ वि प० ३७।२ सूर० १ ।१७ २ म म० ६३५ बिहारी १३४ ६१३
४ म स २१८
५ म स २३६
६ बिहारी ४२७
७ बिहारी दो ४८१
८ शाङ्ग ग ३८५५

मुख्य रूप से या तो नायक या नायिका के व्यक्ति चित्र या आलम्बन चित्र होते हैं य अनुभावचित्र। उक्त दोनों प्रकार के चित्र कहीं स्थिर और कहीं गतिमय अंकित किए ग हैं। कवि चित्रों के द्वारा केवल रेखाओं को ही नहीं अपितु रंग को भी उभारकर अभीप्स प्रभाव उत्पन्न करता है। ये वर्णमय चित्र कहीं अनुरूप वर्ण-योजना द्वारा और कहीं प्रतिरूप या मिश्रित वर्ण योजना द्वारा चित्रित किए गए हैं। सुविधा के लिए एक एक प्रकार के शब्द चित्रों का क्रमशः परिचय दिया जाएगा और उन चित्रों के स्रोतों को भी ढूंढने का यथासम्भव प्रयास किया जायगा।

रीतिकालीन कवियों की चित्र योजना पर पूर्ववर्ती भक्त-कवियों विशेषत कृष्ण भक्ति धारा के कवियों का प्रभाव देखा जा सकता है। शृंगार रस के प्रमुख पक्षों के वर्णन निरूपण में पहले देखा जा चुका है कि रीतिकाव्य संस्कृत प्राकृतादि साहित्य की ऐहिकता और आमुष्मिकतापरक शृंगारी काव्यधारा से अनुप्रेरित, काव्यशास्त्रीय विधि विधानों से अनुवर्धित और सुसंगठित है। यहां उसके प्रमुख कवियों की चित्र योजना पर पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा के प्रभाव पर विचार करना प्रसंग प्राप्त है।

काव्य चित्र चाहे वे किसी प्रकार के हों कवि की प्रतिभा और कल्पना शक्ति के सच्चे प्रतीक होते हैं। कवि के अवचेतन मस्तिष्क पर कितना परम्परा का प्रभाव है और कितना अपने युग का, इसका प्रतिफलन उसके काव्य चित्र बड़ी सफलता से करते हैं।

रीतिकाव्य में चमत्कार उत्पन्न करने की वृत्ति प्रायः सर्वत्र लक्षित होती है। मतिराम जैसे कुछेक कवियों ने चमत्कार की अपेक्षा सीधे-सादे सवेद्य भावाभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। इस सबंध में उनके विषय में डा० महेन्द्र कुमार ने लिखा है मतिराम के काव्य चित्र भाव प्रधान होने के नाते मुख्यतः रेखामय ही हैं, परन्तु इसके साथ ही उन्होंने विविध प्रकार के रंगीन चित्रों की भी उपेक्षा नहीं की। हां, इतना अवश्य है कि सरलता में विश्वास रखने के कारण वे रंगों की सूक्ष्मता की दृष्टि से और असाधारण नहीं बना पाए। इसीलिए उनके अत्यंत जागरूक रहने पर भी न तो इनमें देव का सा रंग वैभव ही आ पाया है और न ही बिहारी की-सी नक्काशी ही केवल स्वच्छ और सूक्ष्म रेखाएं भी इनमें अंकित हैं जो व्यंजना के प्रकाश में चमक उठती हैं।[1] बिहारी देव भिखारीदास और पद्माकर आदि काव्यों में रेखाओं की बहुलता के साथ वर्ण-वैभव की भी प्रचुरता दृष्टिगत होती है। लाल पीत श्याम श्वेत हरे नील आदि रंगों के साथ ही दुरंग तिरंग, चौरंग और सतरंग। कई रंगों के मिश्रित प्रयोग द्वारा मध्य-वस्तु का चमक-दमक के साथ अंकित किया गया है।

रीतिकालीन कवियों की चित्र-योजना बहुत कुछ तत्कालीन सामन्ती वातावरण से प्रभावित है। उस समय चित्रकला में जिस प्रकार का सजीव और शाही शानशौकत के अंकन में उत्पन्न विशिष्ट दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। कालिदास की व्यापक भावभूमि और उसके अंकन के लिए चराचर प्रकृति एवं मानव-जीवन के

---

1 मतिराम कवि और आचार्य पृ० १६२

विविध पक्षों से चुने गए अप्रस्तुत इन कवियों की सङ्कुचित दृष्टि से परे ही रहे। काव्य शास्त्रीय जकड़बन्दी के कारण रीतिकवियों में वह वैविध्य नहीं मिलता जो समग्र जीवन को प्रतिफलित कर सके। नायक नायिकाओं और आश्रयदाताओं की प्रशस्तियों के अतिरिक्त कुछ और देखने सुनने का इन्हें अवकाश ही न था। इसके परिणामस्वरूप संस्कृत-प्राकृत के वे तमाम काव्य चित्र इनके काव्यों में चित्रित होने से रह गए। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि शृंगार के क्षेत्र में नायिका की एक एक चेष्टा हाव भाव, मान मनुहार तथा उसके अंग की कांति-दीप्ति, वस्त्राभूषण अंगयष्टि का चढ़ाव उतार कोमलता-कठोरता आदि की बड़ी सूक्ष्मता और स्वाभाविकता के साथ अनेक आड़ी तिरछी रेखाओं और लाल-पीले-नीले-काले न जाने कितने रंगों में चित्रित किए गए हैं।

आलम्बन-चित्र

रीतिकाव्य में शृंगार का आलंबन के रूप में पूर्वमध्यकाल के आराध्य श्रीकृष्ण और राधा का ग्रहण किया गया किंतु उनका रूप तत्कालीन वातावरण से प्रभावित होकर काफी बदल गया है। यह परिवर्तन केवल रीतिकवियों के काव्य में ही नहीं तत्कालीन भक्त कवियों में भी लक्षित होता है। डा० सावित्री सिन्हा ने इस परिवर्तन की ओर संकेत करते हुए लिखा है 'पूर्व मध्यकालीन भक्त-कवियों की रचनाओं में मध्यकालीन मुगल वैभव के प्रभाव का स्पर्शमात्र हुआ था परन्तु रीतिकालीन कवियों ने अपने चित्रों में वर्णित कृष्ण के वैभव को किसी प्रकार भी बादशाही शान से नीचे नहीं आने दिया है।'[1] रीतिकाल में राधा-कृष्ण सामान्य नायक-नायिका के रूप में चित्रित किए गए हैं। बिहारी ने निम्नलिखित दोहे में नायिका का सहज चित्र अंकित किया है—

> बेंदी भाल तम्बोल मुँह, सीस सिलसिले बार।
> दग आँजे राजे खरी एई सहज सिंगार॥[2]

उक्त दोहे में क्षीण रेखाओं के द्वारा नायिका का सामान्य रूप चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक है। इस प्रकार के चित्र पूर्ववर्ती काव्य में भी द्रष्टव्य हैं। ढोला मारू रा दूहा में मालवणी का रूप बिहारी की नायिका से काफी मिलता जुलता है। राजस्थानी-कवि ने नायिका के रूप रंग अंगों के उतार चढ़ाव के साथ उसके गुणों का भी अंकन किया है—

> लखण बतीस मारुवी निधि, चन्द्रमा निलाट।
> काया कूँकूँ जेहवी, कटि केहरि सै घाट॥

---

१ ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प डॉ० सावित्री सिन्हा पृ० २४६
२ बिहारी ४७७

अहर, पयोहर, दुइ नयण, मीठा जेहा मरख।
ढोला, एही मारुई, जाण मीठो दरख ॥[१]

संस्कृत कवियों ने भी नायिका के एसे मनोज्ञ और सरल स्वाभाविक चित्र अंकित किए हैं जो रीतिकवियों के आलंबन चित्र के स्रोत माने जा सकते हैं। बिल्हण कवि ने अपनी प्रिया का जो कल्पना चित्र प्रस्तुत किया है उसमें उसके रूप, रंग, स्पर्श, गंध, मार्दव, विलास आदि का जाग्रत चित्र पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जाता है—

अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीं
फुल्लारविंदनयनां तनुरोमराजीम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वलितालसांगीं
विद्यां प्रमादगलितामिव चिंतयामि ॥[२]

बिहारी ने नारी के सहज रूप का जैसा चित्रण किया है वह बहुत-कुछ मत हरि के निम्नलिखित श्लोक से प्रभावित है किन्तु जितना विवरणात्मक और अलंकृत शैली का संस्कृत के कवि ने आश्रय लिया है उतना बिहारी ने नहीं। उसने रेखाओं के सीधे, तिरछे वर्तुल आदि अनेक प्रकार के प्रयोग द्वारा आकार को स्पष्ट और श्वेत, कृष्ण, रक्त, पीत आदि वर्णों के प्रयोग द्वारा वर्णमय चित्र को आकर्षक बना दिया है।[३]

कविवर बिहारी की बाल बाँधनेवाली नायिका का आलम्बन चित्र यद्यपि हल्की रेखाओं द्वारा ही अंकित है परन्तु इसकी ऐन्द्रिय उत्तेजक चेष्टा सीधी और अनारोपित होने के कारण सवर्णनीय है—

कर समेटि कच भुज उलटि खएँ सीस-पट टारि।
काको मन बाँधै न यह जूरो बाँधनिहारि ॥[४]

इसी प्रकार का एक चित्र माघ कवि का भी द्रष्टव्य है—

सीमन्तं निजमनुबध्नती कराभ्यामालक्ष्य स्तनतटबाहुमूलभागा।
भर्त्रा या मुहुरभिलष्यता निदध्ये नैवाहो विरमति कौतुकं प्रियेभ्य ॥[५]

बिहारी की अपेक्षा माघ कवि का चित्र अधिक उत्तेजक है। बिहारी में नायिका आलम्बन है किन्तु माघ में उसका रूप उद्दीपक कल्पना से समन्वित हो गया है। इसमें भी अधिक सूक्ष्म और वक्रिमापूर्ण रेखाओं और ध्वनियों से अंकित आलम्बन

---

१ ढोला मारू रा दूहा छं० ४६६ ७०
२ चौरपंचाशिका श्लो० १
३ वक्त्रं चन्द्रविडम्बि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम् ॥ शृं० श० २२
४ बिहारी दो० ७८
५ शिशुपालवध ८।६६

चित्र संस्कृत काव्य परम्परा से प्राप्त होते हैं।[1]

अनुभाव चित्र

रीतिकालीन कवियों ने आश्रय के अनुभावों द्वारा प्रेम की विभिन्न स्थितियों का सफल अंकन किया है। डा० बच्चन सिंह ने लिखा है, "अनुभाव का सम्बन्ध मन से होने के कारण इसके द्वारा अंकित चित्रों में मन की विविध दशाएँ स्वतः अभिव्यक्त हो उठती हैं।"[2] वे आगे इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "इनमें खीझ, व्यथा, उत्कंठा आदि मानसिक दशाओं को इस प्रकार अंकित किया गया है कि स्पन्द स्पर्श गंधादि का उनमें स्वतः सन्निवेश हो गया है।"[3] रीतिकालीन कवि बिहारी ने स्नानोपरान्त बाला को संयमित करती हुई प्रिया विदग्धा नायिका की प्रियदर्शनेच्छा का सफल अंकन किया है—

> अजनयनि मजन किए, बैठी ब्यौरति बार।
> कच अँगुरिन बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार।।[4]

नन्दकुमार को बालों के बीच उँगलियों से अवकाश बनाकर देखनेवाली नायिका का चित्र यद्यपि स्थिर-सा है किन्तु इससे उसके मानसिक औत्सुक्य अभिलाषादि की व्यंजना कम शक्तिशाली नहीं। कवि ने काले लम्बे बालों में गोरी उँगलियों के बीच चंचल दृष्टि का अंकन सीमित वर्णों और हल्की रेखाओं के स्पर्श से किया है। इसी भाव को गोवर्द्धनाचार्य ने अपेक्षाकृत अधिक वर्णों और रेखाओं के प्रयोग से चित्रित किया है।

> चिकुरविसारणतियक नतकण्ठी विमुखवृत्तिरपि बाला।
> त्वामियमगुलकल्पितचावकाशा विलोकयति ।।[5]

इसी चित्र को और भी सूक्ष्म रेखाओं से दूसरे संस्कृत कवि ने अंकित किया है। प्राकृत काव्य गाथासप्तशती की नायिका के अनुभाव चित्र और भी सजीव, गत्वर और भावोद्बोधक हैं। प्रिय प्रदत्त वस्तु प्रेमी के लिए कितनी महत्वपूर्ण होती है और उससे उसके रागात्मक सम्बन्धों में कितनी घनिष्ठता आ जाती है इसे प्रमाणित करने के लिए बिहारी की नायिका का अनुभाव चित्र पर्याप्त होगा—

---

१ आनम्याममविश्य पीठनिहित शोणाम्बरा प्रोनम
रोवल्ली नमदुन्नमत्कुचतटी दीयद दग लावला।
पाणिभ्यामवधूय कंकणक्वणत्कारावतारोत्तर
बाला नह्यति किं निजालकभरं किंवा मदीयं मन ।।

२ रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना पृ० ३८६

३ वही पृ० ३६

४ बिहारी दो ६१

५ आर्यासप्तशती, श्लो० २८१

छला छबीले लाल को नवल नेह लहि नारि।
चूमति चाहति लाय उर पहिरति धरति उतारि ॥[1]

नायिका पत्र पाने पर भी ऐसी ही चेष्टाओं द्वारा अपने हर्ष, आकुलता, उत्सुकता, लज्जा आदि संचारियों का प्रकाशन करती है—

कर लै चूमि चढाय सिर उर लगाय भुज भेंटि।
लहि पाती प्रिय की लखति बाचति धरति समेटि॥[2]

इस प्रकार के अनुभाव चित्र संस्कृत प्राकृतादि काव्यों में प्रभूत परिमाण में मिलते हैं। वेदान्तदेशिक के हंस संदेश में सीता की चेष्टाएं बिहारी की नायिका की सी अंकित की गई हैं—

भूयोभूय करसरसिजे न्यस्यरोमांचितांगी
मौलीचूडामणिविरहिते निर्विशती निधाय।
अन्तस्तापादधिगतरजोरादरादर्पयन्ती
पर्यायेण स्तनकलशयोरंगुलीयं मदीयम् ॥[3]

बिहारी ने छन्दानुरोध के कारण सीमित चेष्टाओं के द्वारा मनोगत भावों की अभिव्यंजना की है किन्तु वेदान्तदेशिक ने अपेक्षाकृत बड़े छन्द के प्रयोग द्वारा सीता की विरहावस्था में शारीरिक और मानसिक स्थितियों का भी अंकन किया है। भक्तिकालीन कवि सेनापति ने पूरे वातावरण के साथ इसी भाव का अंकन निम्नलिखित सवैये में किया है—

नैन नीर बरसत, देखिबे को तरसत,
लागे काम सरसत पीर उर अति की।
पाए न संदेसे तात अधिक अंदेसे बढ़े,
सोचैं सुकुमारि पै न कहै मन गति की।
ताही समै काहू औचकाही आनि चीठी दीनी,
देखत ही सेनापति पाई प्रीति रति की।
माथे लै चढ़ाई, दोऊ दृगनि लगाई,
चूमि छाती लपटाई राखी पाती प्रानपति की ॥[4]

उपर्युक्त छन्दों में एक ही संदर्भ में नायिका के अनुभावों का चित्रण किया गया है किन्तु बिहारी के चित्र में वातावरण का आरोप पाठक को करना पड़ता है जबकि वेदान्तदेशिक में उसका किंचित संकेत श्लोक में ही मिल जाता है। सेनापति ने उक्त वातावरण के निर्माण में सवैये की दो पंक्तियों का प्रयोग किया है साथ ही अनुप्रास के

१ बिहारी दो १८८
२ वही दो ७६
३ हंससंदेश २।१६
४ सेनापति कवित्त रत्नाकर तरंग २ छं० ६०

द्वारा नाद व्यंजना भी कराई गई है।

मुग्धा की सलज्ज चेष्टाओं के प्रकाशन में कवियों ने बड़ी ही स्वाभाविक और मार्मिक क्रियाओं का अंकन किया है। मतिराम की मुग्धा स्वकीया का एक चित्र देखिए—

लिख करक नख सौ पग का नख सीस नवाय के नीचे ही जोवै।
वाल नवेली न टसना जानति भीतर भौन मसूसनि रोवै ॥[1]

हाथ के नख से पैर के नख को कुरेदती हुई सिर नीचा करके नीचे देखती हुई नवेली बाला का चित्र उसकी विवश वेदनापूर्ण मनःस्थिति को स्पष्ट करने में बड़ा ही सफल है। इसी प्रकार का एक चित्र भक्तिकालीन कवि रहीम का भी देखिए

सीस नवाय नवलिया, निचवइ जोय।
छिति खनि छोर छिगुनिया सुसुकति रोय ॥[2]

वियोगावस्था की अपेक्षा संयोगावस्था के चित्र कम मर्मस्पर्शी नहीं है। संयोगावस्था में तन्मयता की स्थिति इस तरह की होती है कि प्रेमी सब-कुछ भूल जाता है। कवि पद्माकर के ललना का गो दोहन कम विचित्रतापूर्ण नहीं है और न नायिका की तन्मयता ही—

बछरा खरी प्याव गऊ तिहि को पदमाकर को मन ल्यावत है।
तिय जाति गिरया गही वनमाल सु एंच लला इच्यो धावत है॥
उलटी करि दाहनी मोहनी की अंगुरी थन जानि के दावत है।
दुहिबो औ दुहाइबो दोउन को, सखि देखत ही बनि आवत है ॥[3]

भला बतलाइए भ्रम का ऐसा उदाहरण और कहीं मिल सकता है ? उक्त छंद में न कोई भाव ही स्पष्ट होता है और न अनुकूल संवेदना ही जागती है। इसकी अपेक्षा सूरदास का चित्र कहीं अधिक स्वाभाविक और भावपूर्ण है—

रीता माठ विलोवई चित जहा व हाई।
उनके मन की कहा कहौ ज्यों दृष्टि लगाई।
लैया नाई वृषभएँ गया त्रिसराई ॥[4]

यद्यपि सूर में भी भाव की समुचित तन्मयता नहीं आ पाई है किन्तु वह उपहास्य स्पष्ट नहीं है। इसकी अपेक्षा नायिकाओं के सविश्वास परिहासवाले चित्र कहीं अधिक मार्मिक हैं। मतिराम की नायिका का शृंगार हो रहा है। सखी उस के बेन का निछुआ पहनाती हुई मजाक करती है यह प्रियतम के वाना के समीप सदा बजती

१ मतिराम रसराज छं १२३
२ रहीम बरवै नायिकाभेद छं ४०
३ पद्माकर जगद्विनोद छं ४४२
४ सूरसागर १ ।७१८

रहे।' इस भाव को सुनकर नायिका उस कमरे से भागना चाहती है पर भागती नहीं—

गौन में घोस निगारत या मतिराम सहेलिन का गुन मागो।
मन्दर में निहुरा परिगारत प्यारी गयो परिहास रह्यायो।
पीतम गौन समीप सखी बज्यो गर, या नहिं न परिहरायो।
मानिनि गौन न नावति। जो गर ऊनो रियो न चल्यो न पलायो॥[1]

यहाँ सखियों की चुहल और नायिका की लज्जा शोभा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र हुआ है। यद्यपि इस चित्र में रेखाओं की ही प्रधानता है, फिर भी स्वाभाविक उक्तियों के द्वारा उसमें पर्याप्त प्रभावमयता है। मतिराम की नायिका की ही तरह पार्वती की भी सखियाँ उसका परिहास करती हैं और वे उन्हीं चेष्टाओं द्वारा उसका उत्तर देती हैं जिनके द्वारा मतिराम की नायिका ने दिया है—

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान॥[2]

उपर्युक्त छन्द में नायिका के तिर्योक हाव की स्वाभाविक मनोहरता का चित्रात्मक प्रस्तुतीकरण श्लाघ्य है। इसी प्रकार विभ्रम हाव के चित्रण में नायिका की बाह्य शोभा और आन्तरिक सरसता का सूक्ष्म रेखाओं और रंगों के द्वारा अङ्कन कवि की कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं—

किंकिनी कलित कल नूपुर ललित रव,
गौन करो देखिबे सखनु करि गौन का।
मृदु मुसकानि मुखचंद चारु चाँदनी सो,
राख्यो के उज्यारो अभिराम द्वार भौनको।
सहज सुभावनि सो मोहनि के भावनि सो,
हरति है मन मतिराम मनरौन को।
रूपमद छाकी आजु छवि सों छबीली देति,
तिरछी चितौनि मन बरछी सी कौन को॥[3]

मतिराम ने उक्त कवित्त में ध्वनि, वर्ण और रेखाओं के संयोग से नायिका का प्रभावपूर्ण चित्र अङ्कित किया है। अंतिम पंक्तियों में पूरे छन्द का प्रभाव सिमट आया है। अमरुक का चित्र यद्यपि ध्वनि और वर्णों के प्रयोग से भड़कीला नहीं है किन्तु उसमें नेत्रों के सौंदर्य और प्रभाव का सूक्ष्म अङ्कन बड़ा ही उत्तेजक है—

अलसवलित प्रेमार्द्रार्द्र मुहुर्मुकुलीकृत
क्षणमभिमुखलज्जालोलनिमेषपराङ्मुख।
हृदयनिहित भावाकूत वमदभिरीक्षणै

---

१ मतिराम रसराज छ २६६
२ कालिदास कुमारसंभव ६।१६
३ मतिराम रसराज छ २५४

कथय सुकृती कोऽयं मुग्धे ! त्वयाद्य विलोक्यते ॥[1]

मतिराम और अमरुक दोनों कवियों ने लज्जा हर्ष औत्सुक्यादि से सवलित नेत्र व्यापार का चित्रण बड़ी कुशलता से किया है।

प्रेम विह्वल नायिका की सहसा उत्पन्न सभ्रम की विशिष्ट स्थिति के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ता का चित्र उसकी आन्तरिक वेदना नैराश्य ग्लानि आदि की व्यंजना में पूर्ण सक्षम है। कवि देव ने विप्रलब्धा की द्विविधाग्रस्त स्थिति का निम्नलिखित चित्र प्रस्तुत किया है—

एकहि बार रह्यो जनि ज्योंकि रयो मोहन तानि कै मानि महा दुख।
देव कछू रद बीरी दबी री सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख ॥[2]

इसी प्रकार दूसरा भी चित्र देखिए—

देव सकेत मिलै न इतै पर चित्त में सोच सकोच समायो।
लाज बस्यौ हियरा उकस्यौ कछु चाहै हस्यौ कछु आवत रोयो ॥[3]

उपरिलिखित विवेचन से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि रीति कवियों की अलंकरण-सामग्री या अप्रस्तुतों के चयन का क्षेत्र संकुचित था। प्रकृति की प्रायः वे ही बातें गृहीत की गई जो परम्परा प्राप्त थीं। इसी प्रकार जीवन से भी वे ही तत्त्व लिए गए जो उनके चतुर्दिक व्याप्त वातावरण से स्फुरित हो सके। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि उनकी जीवन दृष्टि भोगपरक थी और उसके आभोग में जो चीजें आ सकीं उनका ही उपयोग किया गया। डा० नगेन्द्र ने लिखा है "रीति काल के कवियों ने नवीन प्रयोगों द्वारा नवीन रुचि और नवीन सौंदर्य-बोध जागृत नहीं किया, समृद्ध उपमानों के प्राचुर्य से जगमगाहट उत्पन्न की है। प्रतीकों का प्रयोग रीति कविता में अत्यन्त विरल है। जो प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं वे रूढ़ हैं और वमे व सभी स्वीकृत रूप में काम प्रतीक हैं।'[4] इन काम प्रतीकों का बिलकुल उसी रूप में प्रयोग हिन्दी और उसके पूर्व की अन्य भाषाओं की काव्य परम्परा में मिलता है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन किया जाय तो रीति कवियों के प्रतीक प्रायः वे ही मिलेंगे जो संस्कृत के शास्त्रीय महाकाव्यों या मुक्तक कविताओं में प्रयुक्त होते आए हैं।

अब तक अभिव्यक्ति के प्रमुख उपादानों—अलंकार योजना, अप्रस्तुत विधान और चित्र योजना—की चर्चा की गई। इसके बाद अभिव्यक्ति के माध्यम के अन्तर्गत भाषा की चर्चा की जाएगी।

---

१ अमरुकशतक श्लो ४
२ देव सुखसागरतरंग छ० ६२६
३ वही छ० ६६२
४ डॉ० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृ० १६७

भाषा

अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम भाषा है। कवि अपने मनोगत भावों को तदनुकूल भाषा के द्वारा सर्वजन संवेद्य और प्रेषणीय बनाता है। पं० कृष्णाशंकर त्रिपाठी ने भाषा को कवि के कला कर्म में प्रमुख उपकरण माना है। वे लिखते हैं, 'कवि की अथवा किसी भी साहित्यकार की अर्थाभिव्यक्ति का साधन सवस्तनाम्रो (इमेजेज) भाव चित्र और स्वरूप मूर्तियों के अभिव्यंजन का कार्य भाषा के द्वारा सम्पन्न होता है। भावों और विचारों की वाहिका भाषा ही है। उसी के समुचित विनियोग और प्रयोग से भावबोध संवेदनीय और प्रेषणीय बनता है।'[1] इस अभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम की समृद्धि शब्द भंडार और शब्दार्थ बहुलता से होती है। व्याकरण से इसमें परिमार्जन और निश्चितता आती है। ईप्सित अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए शब्दगत और अर्थगत सौंदर्य का होना आवश्यक होता है।

रीतिकाव्य में जिस भाषा को काव्याभिव्यक्ति का माध्यम चुना गया वह ब्रजभाषा थी। उसकी शब्द संपत्ति और अर्थ संपत्ति के विषय में विचार करने के पूर्व उसका सामान्य परिचय प्राप्त करना उपयुक्त होगा।

ब्रजभाषा परिचय

अन्य भारतीय आर्यभाषाओं की तरह ब्रजभाषा का भी आदिस्रोत वैदिक भाषा रही है। वैदिक या छान्दस के बाद संस्कृत प्राकृत पालि अपभ्रंश आदि से विकसित होती हुई यह भारतीय संस्कृति और कलात्मक अभिव्यक्तियों के वैशिष्ट्य को आत्मसात कर अत्यन्त समृद्ध और सम्मानित काव्य भाषा के रूप में शताब्दियों तक मध्यदेश में प्रचलित प्रसरित रही है। डा० शिवप्रसादसिंह ने ब्रजभाषा के जिस विकास क्रम का संकेत दिया है, उसका विकास वैदिक भाषा से लौकिक संस्कृत पालि शौरसेनी प्राकृत शौरसेनी अपभ्रंश की सुदीर्घ परम्परा से माना जाता है। इस अविच्छिन्न परम्परा के साथ ही ब्रजभाषा को जो व्यापकता और समृद्धि मिली उसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व उसकी भौगोलिक स्थिति पर है। वह मध्यदेश की भाषा है। मध्यदेश का महत्वपूर्ण निर्देश करते हुए डा० शिवप्रसादसिंह ने लिखा है 'ईसा पूर्व एक हजार के आस पास संपूर्ण उत्तर भारत में आर्य जनों के आवागमन होने के समय से आज तक मध्यदेश की भाषा संपूर्ण देश के शिष्ट जनों के विचार विनिमय का स्वीकृत माध्यम रही है। समय और परिस्थिति के अनुसार तथा भाषा के आन्तरिक नियमों के कारण मध्यदेशीय भाषा ने कई रूप ग्रहण किए वैदिक या छान्दस के बाद संस्कृत, पालि शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश आदि इस प्रदेश की भाषाएं हुईं किंतु यह रूप-परिवर्तन भाषा भेद नहीं बल्कि भारतीय आर्यभाषा के विकास की अटूट शृंखला व्यक्त करता है।'[2] डा० हजारीप्रसाद

१ मतिराम ग्रंथावली कवि मतत्व पृ० १३३
२ सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य पृ० १८

द्विवेदी ने डा० सिंह की मान्यता को पुष्ट करते हुए लिखा है ' एक हजार ईसवी के आस पास शौरसेनी अपभ्रंश की अपनी जन्मभूमि से जिस ब्रजभाषा का उदय हुआ आरम्भ मे उसके सिर पर साहित्यिक अपभ्रंश की छाया थी और रक्त म शौरसेनी भाषाओं की परम्परा तथा सामाजिक सत्वा का ओज और बल था। यह भाषा चौदहवी शताब्दी तक अपभ्रंश बहुल सज्ञाशब्दा और प्राचीन काव्य प्रयोगो के आवरण से ढकी रहने के कारण परवर्ती ब्रजभाषा से भिन्न प्रतीत होती है पर भाषा वैज्ञानिक कसौटी पर वह निस्सदेह उसी का पूर्वरूप सिद्ध होती है।"[1] डॉ० शिवप्रसादसिंह ने शौरसेनी अपभ्रंश के परवर्ती रूप की विशेषताओ का बीजाकुरण वदिक या छादस भाषा म भी निर्दिष्ट किया है। उनका मत है कि ' भाषा निर्माण की कुछ स्थितिया जो १७वी शताब्दी की ब्रजभाषा की विशेषताए कही जाती हैं वदिक भाषा मे ही वर्तमान थी। स्वरागम, स्वर भक्ति, 'र' का विकल्पत लोप तथा 'र' 'ल' की परस्पर विनिमेयता वाक्य विन्यास म कर्ता कर्म, क्रिया की पद्धति भी वैदिक भाषा से ही मिलती है। ऋ का अ, इ, ई, उ ए, आ आदि म परिवर्तन अशोक के शिलालेखों की भाषा से ही शुरू हो गया था। इसी भाषा मे आदि 'अ' का लोप, अन्त्य अ का आ म परिवर्तन तथा न का ण के रूप म परिवर्तन भी दिखाई पडता है।

व्यजन समीकरण स्वरसकोच, स्वर भक्ति र ल की विनिमयता तथा अस् धातु के विभिन्न रूपो के सहायक क्रिया के रूप म प्रयोग की प्रवृत्ति, जिसे हम नव्य भाषाओ के विकास मे सक्रिय देखते हैं पालि म ही शुरू हो गई थी।

महाराष्ट्री प्राकृत मध्यदेश की भाषा थी। यह मध्यदेशीय शौरसेनी की कनिष्ठा थी। ह्रस्व स दीर्घ और दीर्घ से ह्रस्व मे परिवर्तन की स्वरप्रक्रिया यही से शुरू हुई। मध्यग व्यजनो का लोप तथा श्रुतियो का प्रयोग बढने लगा। कारको की संख्या म न्यूनता, सम्बन्ध-सम्प्रदान का एकीकरण भाषा म अश्लिष्टता का प्राधान्य रामाय कए दत्तम् जस रूपो म परसर्गों के आविर्भाव के सकेत इस भाषा म मिलते हैं।[2] इसी प्रकार बाद के परिवर्तनो का भी विवेचन करके डा० सिंह ने ब्रजभाषा के विकास क्रम को स्पष्ट किया है। उन्होने ध्वनि प्रक्रिया की दृष्टि स ब्रजभाषा को पुष्ट प्रमाणो के आधार पर शौरसेनी अपभ्रंश से प्रभावित सिद्ध किया है।[3] यही नही कारक विभक्तियो का तीन श्रेणियो म विभाजन, लुप्तविभक्ति पदो का लोप परसर्गों के विभिन्न रूप सर्वनामो के विकारी रूपो की वृद्धि क्रिया और कारक रचना म नई प्रवृत्तिया —कृदन्तो सहायक क्रियाओ का विधान आदि —का अपभ्रंश न के ही अनुरूप ब्रजभाषा के विकास को सिद्ध किया है।[4] इस प्रकार डॉ० सिंह ने प्राकृतपैंगलम् सदेशरासक और प्राकृत व्याकरण तथा अपभ्रंश के छन्दो के ध्वनि तत्त्व एव रूपों से ब्रजभाषा के ध्वनि-तत्त्व और

१ डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य भूमिका प घ
२ सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य प ३४७-४८
३ वही पृ ३६ ३७
४ वही पृ ३७ ३८

रूप-तत्व का विकास क्रम विवेचनापूर्ण ढंग से निर्दिष्ट किया है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रजभाषा ने अपने पूर्ववर्ती भाषाओं की साहित्यिक विशेषताओं और प्रवृत्तियों को ही नहीं ग्रहण किया अपितु उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम—भाषा को भी ग्रहण किया और उसे अपने अनुरूप बनाया।

कोई भी जीवित भाषा अपने देश-काल से अप्रभावित नहीं रह सकती। ब्रजभाषा और उसके पूर्ववर्ती शौरसेनी अपभ्रंश पर भी देश काल के प्रभाव की अमिट छाप देखी जा सकती है। इसका इतने विस्तृत भूभाग में प्रचार प्रसार था कि समग्र एकरूपता न रह सकी। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है राजपूताने में काव्य भाषा में इसी का व्यवहार होता था और वहां के लोग प्रादेशिक भाषा से अलग करने के लिए इसे पिंगल नाम से पुकारते थे और प्रादेशिक भाषा को डिंगल नाम से। बुंदेलखंड, पूरसेन देश और अवध के कवि काव्य भाषा में ब्रजी का व्यवहार करते थे, पंजाब के पूर्वी प्रांतों में यही काव्य भाषा थी। बिहार बंगाल मध्यभारत, महाराष्ट्र और गुजरात में भी यही सर्वमान्य काव्य भाषा थी।[1] बंगाल की 'ब्रजबुलि' में तो ब्रजभाषा की ही सीमित परिवर्तनों के साथ स्वीकृति है। बुंदेलखंड में जब इसका प्रयोग बढ़ा तो इसमें बुंदेलखंडी नाम और धातुओं का अनायास ही समावेश हो गया। इसी प्रकार अवध की क्षेत्रीय काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा के विकसित होने के साथ ही उसमें अवधी का प्रभाव आ गया। इतना ही नहीं राजनीतिक परिवर्तन का भी ब्रजभाषा पर प्रभाव पड़ा। इसका प्रभूत साहित्य दरबारों में लिखा गया जहां उस समय विदेशी भाषा—अरबी, फारसी का बोलबाला था। सामान्य जनता में भी ये विदेशी शब्द व्यवहृत होने लगे थे। अतः दरबारों की ब्रजभाषा—कविता में तो अरबी फारसी के शब्द आए ही सामान्य जनता के बीच प्रचलित भक्ति काव्य में भी इनका प्रभाव बढ़ने लगा। अतः आदिकालीन हिंदी काव्य में ही अनेक प्रकार की भाषाओं का सम्मिलन शुरू हो गया। इसीलिए चंद ने लिखा है—

> सस्कृत प्राकृत चैव राजनीति नव रस।
> षड भाषा पुरान च कुरान कथित मया॥

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने अनुमान लगाया है कि चंद की षड्भाषा में संस्कृत प्राकृत राष्ट्रीय या नागर अपभ्रंश तथा उस समय की डिंगल पिंगल आदि तीनों भाषाओं का मेल हो गया है। इतना होने पर भी शौरसेनी की अपनी मूल क्रियाएं और विभक्तियां उसमें सुरक्षित हैं। चंद के 'कुरान' का तात्पर्य उस समय की प्रचलित अरबी फारसी भाषा से ही है। रीतिकाल के आचार्य कवि भिखारीदास ने भी छह प्रकार की भाषाओं के मेल का संकेत करते हुए लिखा है—

> भाषा बृजभाषा रुचिर कहैं सुमति सब कोइ।
> मिलै संसकृत पारस्यो, पै अति प्रगट जु होइ॥

१ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र बिहारी पृ० १५३ ५४

ब्रज मागधी मिलै अमर, नाग जमन भाषानि ।
सहज पारसी हूँ मिल, षट विधि कवित बखानि ।।[1]

अर्थात् इस जीव त भाषा ने देशकालानुकूल अनेक भाषाओं के नाम और धातुओं को अपने म समाहित कर लिया। यह बात केवल ब्रजभाषा के लिए ही नहीं कही जा सकती, अवधी का काव्य भी विशुद्ध अवधी भाषा म ही नहीं लिखा गया। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी अभिव्यक्ति को सवजन-बोधगम्य बनाने के लिए इसी उदारता का आश्रय लिया। उन्होंने भी प्रसंगानुकूल अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। जायसी तो मुसलमान थे ही उन्होंने जिस प्रेम की पीर की विवृति की है उसकी अभिव्यक्ति म देशी विदेशी सब प्रकार की प्रचलित भाषाएँ ली गई हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के श्रेष्ठ कवि सूरदास तथा अन्य अष्टछापी वैष्णव कवियों की भाषा भी मिली जुली ही है। डॉ० सावित्री सिन्हा ने कृष्ण भक्ता की भाषा का विवेचन करते हुए सूरदास कुभनदास परमानन्ददास कृष्णदास चतुर्भुजदास, छीतस्वामी हरिदास और ध्रुवदास के काव्य ग्रन्थों से अरबी फारसी के शब्दों को चुनकर स्पष्ट कर दिया है कि भाषा को व्यावहारिक बनाने के लिए इन कवियों ने निसंकोच विदेशी भाषा के शब्दों को अपनाया है।[2]

रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य केशवदास ने भी अपनी भाषा म विदेशी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है।[3]

रीति कवियों ने साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप म चिरप्रचलित ब्रजभाषा को उसकी सारी विशेषताओं के साथ प्राप्त किया अर्थात् जिस रूप म यह प्रयुक्त होती आई थी उसी रूप म रीति कवियों न भी इसे प्रयुक्त किया।

शब्द समूह

शब्दों को मुख्यत पाच श्रेणियों म विभक्त किया जा सकता है—(१) तत्सम जो शुद्ध सस्कृत के हों (२) अर्द्धतत्सम जो सीधे सस्कृत स हिंदी मे आए हों (३) तद्भव, 'जो ऐतिहासिक विकास क्रम के अनुसार सस्कृत प्राकृत अपभ्रंश से हिंदी म आए हों (४) देशी जो क्षेत्रीय बोलचाल की भाषा से लिए गए हों, (५) विदेशी। हिन्दी के प्रथम ज्ञात महाकवि चन्दबरदाई स लेकर रीतिकालीन कवि पद्माकर तक सभी कवियों ने इन समस्त प्रकार के शब्दों का व्यवहार किया है। यहा स्थानाभाव के कारण प्रत्येक शब्द की उक्त परम्परा निर्देश करना सम्भव नहीं है। अनेक अनुसन्धायकों ने उक्त कवियों की भाषा के अध्ययन मे ऐसे शब्द समूहों का पृथक पृथक अध्ययन किया है।[4]

---

१ काव्य निर्णय १।१४ १५

२ दे० ब्रजभाषा के कृष्ण भक्तिकाव्य म अभिव्यजना शिल्प पृ ७७ ७८ ८७

३ द० डॉ० हीरालाल दीक्षित आचाय केशवदास प ९६ ६१

४ कृष्ण भक्तिकाव्य म प्रयुक्त तत्सम और अर्द्ध तत्सम शब्दों के परिचय के लिए देखिए डा सावित्री सिन्हा ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य मे अभिव्यजना शिल्प, पृ० ६१-७१ ८१-८४

विहारी

तत्सम	अर्द्ध तत्सम	विदेशी
राधा (८६)	स्रुति (श्रुति) (५)	इजाफा (१४)
मजन (५६३)	छितिपाल (क्षितिपाल) (४६)	जार (२५)
अलीक (६२)	मानिक (माणिक्य) (४८)	गुलाब (८८)
कनक (६६)	उरवसी (उर्वशी) (४८)	गिरह (५०)
अनुराग (७४)	छेम (क्षेम) (१७)	गुल्लाला (६४)
पंजर (८५)	तरौना (ताटक) (५)	कालबूत (६८)

भिखारी काव्यनिर्णय

अंक (१०।१)	अंतरजामि (अंतर्यामी) (२५।४४)	अन्देस (८।२७)
अंग (१।१३)	अनु (अन्न) (२१।६१)	अबूत (५।७)
भव (२।३१०)	अंबरा (अम्बर) (२१।२६)	आमिल (१२।२१)
अघ (८।१८)	अकथ्य (अकथ्य) (१६।४६)	इलाज (१७।३६)
मट (४।३५)	मज्जा (भार्या) (२।६५)	कहर (१५।१७)

पदमाकर जगद्विनोद

अंक (५४८)	अंगुस ~ अंकुश (१५७)	अरज (१६५)
अनुराग (२२३)	अंबरा < अम्बर (३०३)	आब (२०६)
अधर (१२)	अग्ग < अग (७१०)	इलाही (७०८)

तद्भव शब्द

मन < मयण < मदन (बिहारी १८)
मन < मलय < मलय (भिखारी २१)
सावन < सोमण < श्रावण (बिहारी २८)
मीचु < मिच्चु < मृत्यु (बिहारी ७६)
अंध्यार < अंधयार अंधकार (का० नि० ६।६८)
ईठ < इट्ठ < इष्ट (का० नि० ३।५४)
(ज० वि० ८५४)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियों ने हर प्रकार के शब्दों का उपयोग किया किंतु इनमें सर्वाधिक अर्द्धतत्सम शब्द ही प्रयुक्त हुए। तत्सम और रीतिकालीन प्रमुख कवियों के काव्यों में कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं। सुविधा के लिए विदेशी शब्द भी दे दिए गए हैं—

तद्भव शब्दों का प्रयोग कम हुआ है। अरबी और फारसी शब्दों को भी इन कवियों ने व्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल ध्वनियों में परिवर्तित करके ही प्रयुक्त किया है। विदेशी शब्द प्राय वीर रसात्मक कविताओं या सामन्ती वातावरण के चित्रण में प्रयुक्त हुए हैं। जहाँ शृंगार की धारा प्रवाहित होती है वहाँ अधिकांश तत्सम या उसके अर्ध विकसित रूपों को ही ग्रहण किया गया है। सूर, तुलसी आदि पूर्वमध्यकालीन भक्तों ने विनय-सम्बन्धी उक्तियों में ही अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है।

देशी शब्दों में अवधी बुन्देलखण्डी के ही शब्द लिए गए हैं। क्रियापदों में बुन्देलखण्डी प्रत्यय 'बो' का प्रयोग प्राय देखा जाता है।

कौन भाँति रहिहै विरद अब देखबी मुरारि।
बीधे मोसो आनि के गीधे गीधहिं तारि ॥[1]

कछु और उपाय करै जनिहो इतने दुख सों सुख सो भरिबी।
फिरि अनक सा बिन कल बसत सुआवत जीवत ही जरिबी।
बनबौरत बौरि ह्वै जाउगो देव सुने धुनि कोकिल की डरिबी।
जब डोलिहै औरै अबीर भरी सु हहा कहि बीर, कहा करिबी ।[2]

एतो सखि कीबी यह आसमौर दीबी,
अरु कहिबी वा अमरैआ राम राम कही है।
ऊब की उसासन को पूरो परगास सो तो
निपट उदास मौनहू तें पहिचानबी।
नैनन को ढग मो अभग पिचकारिन तें
गातन को रग पीरे पातन में जानबी ॥[3]

व्रजभाषा में अवधी क्रियाओं का प्रयोग भी प्राय देखा जाता है। लीन, कीन दीन, कीन्हीं लीन्ही दीन्ही आदि के प्रयोग सूर नन्ददास परमानन्ददास, चतुर्भुजदास आदि सभी व्रजभाषा के भक्त कवियों के काव्य में यत्र-तत्र पाए जाते हैं।[4] इन प्रयोगों के हेतु रूप में कहीं तो तुक का आग्रह स्वीकार किया जा सकता है पर चरण मध्य में इनका प्रयोग तो कवि की स्वेच्छा ही सिद्ध करता है। रीतिकाव्य में भी ऐसे प्रयोग बराबर देखे जा सकते हैं।

अनुरणनात्मक शब्दों का भी प्रयोग रीतिकाल के पूर्ववर्ती कृष्ण भक्तिकाव्य में मिलता है। ऐसे शब्द चद विद्यापति आदि आदिकालीन कवियों के छदों में भी ढूंढे जा सकते हैं। इन शब्दों के प्रयोग द्वारा कवियों को वातावरण के निर्माण में बडी सहायता

१ बिहारी दो १२२
२ देव सुखसागर तरग छ ५३७
३ भिखारीदास का नि ६।५१
४ पद्माकर जग [illegible] १५२
५ दे व्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जना शिल्प पृ ७६ ८१

मिलती है। वर्ण मैत्रिक छन्दों में तो अपभ्रंश के कवियों ने भी इस शैली का प्रयोग किया है।

मुहावरे और लाक्षणिकता

लाक्षणिकता और मुहावरे भाषा को केवल सजाने के लिए ही नहीं प्रयुक्त होते हैं बल्कि इनके द्वारा भाषा में प्रवाह आता है। वह व्यावहारिकता के निकट आती है और सबसे बढ़कर बात तो यह है कि उसकी व्यंजना शक्ति बढ़ जाती है। बात सीधी कही जाय तो उतना असर नहीं करती, लेकिन मुहावरों के प्रयोग से जब उसमें वक्रता आ जाती है तो उसका असर कुछ और ही होता है। यह वक्रता लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा आती है। ये लाक्षणिक प्रयोग बाद में रूढ़ हो जाते हैं जिनसे अर्थ प्रतीति तत्काल हो जाती है। संस्कृत-कवियों ने ऐसे लाक्षणिक प्रयोग पर्याप्त परिमाण में किए हैं। यही परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश में होती हुई हिन्दी में आई किन्तु संस्कृत के कुछ अपने ढंग हैं प्राकृत अपभ्रंश के अपने और हिन्दी के अपने। कहने का तात्पर्य है भाषा के परिवर्तन और गति के साथ इन मुहावरों में भी परिवर्तन होता रहा। इस परिवर्तन के स्वरूप और कारणों का अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय है। हिन्दी में मुहावरों का प्रचलन बहुत कुछ विदेशी प्रभाव (अरबी फारसी) को लेकर हुआ। हिन्दी कवियों ने विदेशी मुहावरों पर भी रंग चढ़ाकर उन्हें अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल कर लिया। अधिक स्वाभाविक और प्रचलित मुहावरों का प्रयोग कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। कृष्ण गोपी या उद्धव गोपी संवाद के स्थलों को ऐसे मुहावरों से अलंकृत पाया जाता है। रीतिकाव्य में भी खण्डिता या मानवती की उक्तियों में ऐसे मुहावरे भरे पड़े हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'बिन मोल बिकाना' का एक स्थल पर बड़ा ही सटीक लाक्षणिक प्रयोग किया है—

उठति बयरु, ममि भीजति, सलोने सुठि
शोभा देखवैया बिनु वित्त ही बिके है।[1]

इसी प्रकार मतिराम भी कहते हैं —

को बिन मोल बिकात नहीं मतिराम लहे मुसकान मिठाई ।।[2]

संस्कृत की लोकोक्ति 'अङ्गुलिदाने भुज गिलति'[3] का बिहारी ने बड़ा ही सटीक प्रयोग किया है—

छव छिगुनी पहुँचो गिलत अति दीनता दिखाय।
बलि बामन को ब्योंत सुनि को बलि तुम्हें पत्याय ।।[4]

---

१ तुलसीदास गीतावली अयो० ३७।२
२ मतिराम रसराज छं० ६
३ गोवर्धनाचार्य आर्यासप्तशती श्लो० ३३६
४ बिहारी दो० २०२

इसी प्रकार तमाम मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा रीति-कवियों ने अपनी भावाभिव्यक्ति को सबल और प्रेषणीय बनाया है। ये मुहावरे और लोकोक्तियां सामान्य जनता और काव्य साहित्य में चिरंतन काल से प्रयुक्त होती रही हैं। विद्वान अनुसंधित्सुओं ने प्राचीन कवियों के काव्यों में प्रयुक्त इन मुहावरों और लोकोक्तियों का अपने शोध ग्रंथों में अंतरंग परिचय दिया है। डॉ० सावित्री सिन्हा ने कृष्ण भक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों की विस्तृत चर्चा की है।[1]

छंद

रीतिकालीन कवियों ने संगीत और लय से युक्त अनेक मात्रिक और वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया है। ये छन्द भी हिंदी काव्य-परम्परा में अपभ्रंश से आए। अपभ्रंश का अपना विशिष्ट छन्द दूहा है। दूहा से ही दोहे की उत्पत्ति मानी जाती है। प्राकृत का प्रसिद्ध छन्द गाथा है। संस्कृत तो अपनी छन्द-सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध ही है। समय-समय पर नवीन छन्दों की उत्पत्ति और विकास का कारण लोक-जीवन की रुचि और आग्रह माना जा सकता है। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दों का भी प्रयोग हिंदी कवियों ने किया है, किन्तु उन्होंने उसके अपने विशिष्ट छन्द दोहा, छप्पय, सवैया सोरठा कुंडलिया आदि मात्रिक और कवित्त जैसे वर्णिक छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है।

शास्त्रस्थितिसम्पादन के प्रसंग में रीति कवियों ने पिंगल ग्रंथों का भी पृथक् निर्माण किया है। छन्द शास्त्र के निर्माण में इन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती संस्कृत प्राकृत-अपभ्रंश के शास्त्रीय ग्रंथों का अनुगमन किया है। इसकी प्राचीन परम्परा और विकास क्रम का अध्ययन विवेचन भी किया गया है। डा० जानकीनाथसिंह 'मनोज' ने 'द कन्ट्रीब्यूशन आव हिंदी पोएट्स टू प्रोसोडी' नामक अपने शोध प्रबन्ध में हिंदी छन्द परम्परा का सम्यक् विवेचन किया है।

इन शोधों ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिंदी की छंद परम्परा पुरानी है। पिंगल ग्रंथों के निर्माण का क्रम भरत पूर्व पिंगलाचार्य से प्रारम्भ होता है। पिंगलाचार्य इसके आद्याचार्य माने जाते हैं। उनसे भी पूर्व शेषनाग ने छंद शास्त्र का निर्माण किया था। नाट्यशास्त्र के १५वें अध्याय में छंदों का सम्यक् निरूपण किया गया है। भरत मुनि के उपरान्त केदारभट्ट का 'वृत्तरत्नाकर' हेमचन्द्र का छन्दोनुशासन और अपभ्रंश का 'प्राकृत पैंगलम' इस परम्परा के सर्वाधिक ख्यातिलब्ध ग्रंथ हैं।

डा० महेन्द्रकुमार ने रीतिकाव्य में प्रयुक्त अनेक छंदों के लक्षण निर्धारण में उक्त ग्रंथों के योगदान का निरूपण किया है।[2]

---

१ दे० डॉ० सावित्री सिन्हा ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प पृ० १ ५११४

२ डॉ० महेन्द्रकुमार मतिराम कवि और आचार्य पृ० ३११ ३२५

हिन्दी काव्य ग्रन्थों में प्रयुक्त विभिन्न प्रसिद्ध छन्दों का विवेचन करते हुए डा० हीरालाल दीक्षित ने लिखा है कि हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल की जैन गाथाओं की भाषा में रचनाओं में दूहा छन्द का प्रयोग मिलता है। इसके बाद 'पृथ्वीराजरासो' आदि वीर काव्यों में छप्पय, दूहा, तोमर, त्राटक, गाहा और आर्या आदि उस समय के प्रसिद्ध छन्द प्रयुक्त हुए हैं। भक्तिकाल के निर्गुण संत कवियों में कबीर आदि ने छन्दों में फिर परिचित दोहे का अधिक प्रयोग किया है। केशव के समकालीन अष्टछाप कवियों ने अधिकांश पद लिखे हैं। सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास आदि कुछ कवियों ने कुछ स्थलों पर दोहा, चौपाई, रोला, छप्पय, सार और सरसी आदि छन्दों का प्रयोग किया है। हाँ, केशव के समकालीन कवियों में एक महाकवि तुलसीदास अवश्य ऐसे हैं जिन्होंने केशव से पूर्व सबसे अधिक छन्दों का प्रयोग किया है।[1]

रीतिकाल में उपर्युक्त छन्द परम्परा यद्यपि जीवित रही किन्तु उनका विवेचन निरूपण प्राय पिंगल ग्रन्थों में ही रीति-कवियों ने किया। व्यावहारिक रूप से तो पूर्वोल्लिखित कतिपय प्रमुख छन्दों का ही प्रयोग होता रहा। दोहों में प्राय रीति-कवियों ने लक्षण प्रस्तुत किए और कवित्त सवैयों में उदाहरण। सम्प्रदाय-बोधक (मनगढ़ंत, दालक, पद्मावली आदि) ग्रन्थों में दोहों का ही अधिक प्रयोग मिलता है।

शृंगार रस के अनुकूल मधुर भगण-अतियुक्त सवैया छन्द ही पड़ा। रीति-कवियों ने सवैया का सर्वाधिक प्रयोग शृंगार-वर्णन प्रसंग में किया है। कवियों के द्वारा अधिकतर वीर प्रशस्तियाँ कवित्त या घनाक्षरी छन्द में लिखी गई।

उक्त सभी छन्दों का सम्यक विवेचन स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं।

प्रस्तुत अध्याय में अभिव्यक्ति के उपादानों और माध्यम का परिचय देकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि रीतिकाव्य में हिन्दी और उसके पूर्ववर्ती अभिव्यक्ति के उपादानों का ही आश्रय लिया गया है। इस क्षेत्र में भी रीतिकाल में कोई मौलिक विशेषता नहीं आई।

भाषा के सम्बन्ध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रीतिकवियों ने उसकी सामर्थ्य वृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया, किन्तु जो परिष्कार आवश्यक था वह न हो पाया। विदेशी प्रभाव के कारण रीतिकाव्य में यद्यपि अरबी फारसी के शब्द गृहीत हुए किंतु उन्हें तत्सम की अपेक्षा तद्भव रूप में ही ग्रहण किया गया जो ब्रजभाषा के अधिक निकट है।

भाषा के सम्भावित परिष्कार की कमी की ओर संकेत करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी जिससे उस च्युत संस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रजभाषा-काव्य में थोड़ा-बहुत

---

[1] आचार्य केशवदास पृ० २०२

पाया जाता है।[1] आचार्य शुक्ल द्वारा सकेतित दोष का परिमार्जन कई कारणो से नहीं पाया। उस समय यह भाषा अनेक क्षेत्रो मे काव्य भाषा के रूप मे गृहीत थी। प्रथम तो उसमे स्थानीय प्रयोगो के कारण सुस्थिरता न आ सकी दूसरे रीति कवियो मे अपनी भाषा के प्रति अपेक्षित जागरूकता न थी क्योकि वे व्याकरण के विद्वान नही थे। विदेशी शब्दो के प्रचलन और प्रयोग के कारण शब्दो के निश्चित रूप निर्धारण में भी शिथिलता आई और देशी विदेशी शब्दो के मेल से कुछ ऐसे भी शब्द बने जो न हिंदी के क्षेत्र में थे न अरबी फारसी के ही उनका रूप ही विचित्र रहा जैसे पद्माकर द्वारा प्रयुक्त गजगौहर (ज० वि० २१३)। इसमें सस्कृत गज के साथ फारसी 'गोहर' को जोडकर एक नया ही शब्द बनाया गया है।



1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २३०

सहायक ग्रंथ सूची

(संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश)

१	अग्नि० अग्निपुराण	व्यास
२	अ० शा०, अभिज्ञानशाकुन्तल	कालिदास (राजस्थान संस्कृत कालेज, काशी सं० १९९०)
३	अन्योक्ति शतक	वीरेश्वर भट्ट (काव्यमाला, गुच्छक ५ निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १८८६ ई०)
४	अमरु०, अमरुशतक	अमरुक कवि, (नि० सा० प्रे० बम्बई १९५४ ई०)
५	अ० शे० अलंकारशेखर	केशव मिश्र
६	आर्या० आर्या सप्तशती	गोवर्धनाचार्य (नि० सा० प्रेस, बम्बई १९३४ ई०)
७	उ० नी०, उज्ज्वलनीलमणि	रूपगोस्वामी (काव्यमाला बम्बई)
८	उ० रा० उत्तररामचरित	भवभूति (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी)
९	ऋतु० ऋतुसंहार	कालिदास
१०	कर्पूर० कर्पूरमंजरी	राजशेखर
११	क० क०, कविकल्पलतावृत्ति	गोवर्धन
१२	कादं० कादम्बरी	बाणभट्ट (चौ० सं० सीरीज काशी, १९५६ ई०)
१३	का० सू० कामसूत्र	वात्स्यायन (चौ० सं० सीरीज १९२९ ई०)
१४	का० प्र०, काव्यप्रकाश	मम्मट (डा० हरिदत्त शास्त्री, मेरठ २०१७ वि०)
१५	काव्या०, काव्यालंकार	भामह (काशी संस्कृत सीरीज बनारस, १९८५ वि०)
१६	काव्यालंकारसूत्र	वामन

१७ किरात०, किरातार्जुनीय	भारवि (चौ० स० सीरीज बनारस)
१८ कु० म०, कुट्टनीमतम	दामोदर गुप्त (इलाहाबाद १९६१ ई०)
१९ कु० न०, कुवलयानंद	अप्पय दीक्षित (नि० सा० प्रेस बम्बई)
२० कादि विरह	नारायण भट्ट (काव्यमाला गुच्छक ५, बम्बई)
२१ गउड० गउडवहो	वाक्पतिराज (सपा० एन० बी० उत्गीकर)
२२ गग० गगसंहिता	
२३ गाथा०, गाथासप्तशती	हाल (चौ० स० सीरीज बनारस १९६१ ई०)
२४ गीत० गीतगोविंद	जयदेव (नि० सा० प्रेस, बम्बई १९४९ ई०)
२५ घटखर्परकाव्य	कालिदास ?
२६ चतुर्वर्गसंग्रह	क्षेमेंद्र (काव्यमाला गुच्छक ५ बम्बई)
२७ चन्द्रालोक	जयदेव (चौ० स० सीरीज बनारस)
२८ चौरपंचाशिका	बिल्हण (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)
२९ जी० च०, जीवंधर चम्पू	हरिश्चन्द्र (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९५८ ई०)
३० दशरूपक	धनंजय (चौ० स० सीरीज, काशी, १९५५)
३१ ध्वन्या०, ध्वन्यालोक	आनंदवर्धन
३२ न० च०, नलचम्पू	त्रिविक्रमभट्ट (नि० सा० प्रेस, बम्बई, १९०३ ई०)
३३ नागा०, नागानंद	हर्षवर्धन
३४ ना० शा०, नाट्यशास्त्र	भरत (गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बडौदा)
३५ नै० च० या नैषध० नैषधचरित	श्री हर्ष (चौ० स० सीरीज बनारस)
३६ पंचशती	मूक कवि (काव्यमाला गुच्छक ५, बम्बई)
३७ प० च० पउमचरिउ	स्वयंभू (सिंघी जैन ग्रंथमाला बम्बई)
३८ पउमसिरीचरिउ	धाहिल (विद्याभवन बम्बई २००५ वि०)
३९ पवन० पवन दूत	धोयी (संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता)
४० पास चरिउ	पद्मकीर्ति
४१ पुरातन प्रबंध संग्रह	सपा० मुनि जिनविजय (सिंघी जैन ग्रंथमाला, कलकत्ता, १९३६ ई०)
४२ प्र० रु० यशो०, प्रताप रुद्र यशोभूषण	विद्यानाथ
४३ प्रा० पैं०, प्राकृत पैंगलम	सपा० डा० भोलाशंकर व्यास (प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, बनारस, १९५९)

४४ प्रा० व्या०, प्राकृत व्याकरण	हेमचन्द्राचार्य (बम्बई संस्कृत सीरीज, १९३६ ई०)
४५ प्रिय० प्रियदर्शिका	हर्षवर्धन (नि० सा० प्रेस, बम्बई, १८८४ ई०)
४६ ब्रह्म०, ब्रह्मवैवर्तपुराण	व्यास (मनसुखराय मोर कलकत्ता)
४७ बृहत्संहिता	वराहमिहिर (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, २००९ वि०)
४८ बृहत्स्तोत्ररत्नाकर	
४९ भविसयत्तकहा	धनपाल
५० भागवत श्रीमद्भागवतपुराण	व्यास (गीता प्रेस गोरखपुर २०१० वि०)
५१ भाव प्रकाश	शारदातनय (ओरियण्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा १९३० ई०)
५२ भोजप्रबंध	
५३ मा० मा०, मालतीमाधव	भवभूति (चौ० सं० सीरीज, बनारस, १९५४ ई०)
५४ मालवि० मालविकाग्निमित्र	कालिदास(, १९५१ ई०)
५५ मेघ० मेघदूत	कालिदास निर्णय सागर प्रेस, बंबई)
५६ रघु० रघुवंश	कालिदास
५७ रतिरहस्य	कक्कोक
५८ रत्ना०, रत्नावली	हर्षवर्धन (नि० सा० प्रेस बंबई)
५९ र० गं० रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ (चौ० सं० सीरीज)
६० र० त०, रसतरंगिणी	भानुदत्त
६१ र० म०, रसमंजरी	भानुदत्त (चौ० सं० सीरीज, १९५८)
६२ राजेन्द्रकर्णपूर	कवि शंभु (काव्यमाला गुच्छक ५, बम्बई)
६३ र० सु०, रसार्णवसुधाकर	शिंगभूपाल
६४ राधासुधानिधि	हितहरिवंश
६५ रा० म० रामायणमंजरी	क्षेमेन्द्र (नि० सा० प्रेस बम्बई १९०३ ई०)
६६ रावणवह महाकाव्य	प्रवरसेन (सम्पा० डॉ० राधागोविन्द बसाक, कलकत्ता १९५९ ई०)
६७ वक्रोक्तिजीवित	कुन्तक
६८ वज्जा०, वज्जालग्ग	जयवल्लभ
६९ व० र० वर्णरत्नाकर	ज्योतिरीश्वर ठाकुर
७० वा० रा०, वाल्मीकि रामायण	वाल्मीकि (चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९५७ ई०)
७१ सु० वा०, वासवदत्ता	सुबन्धु (जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता, १९०७ ई०)

७२ विक्र०, विक्रमांकदेवचरित	बिल्हण (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी)
७३ विक्रमो० विक्रमोर्वशीय	कालिदास (चौ० सं० सीरीज काशी, १९५३ ई०)
७४ शृं० प्र० शृंगारप्रकाश	भोजदेव
७५ श्रीकं०, श्रीकंठचरित	मंखक (नि० सा० प्रेस, बंबई १९०० ई०)
७६ शार्ङ्ग० शार्ङ्गधर पद्धति	शार्ङ्गधर
७७ शाण्डिल्य भक्तिसूत्र	शाण्डिल्य
७८ शिशु० शिशुपालवध	माघ (साहित्य सम्मेलन प्रयाग)
७९ शृं० श०, शृंगारशतक	भर्तृहरि (नि०सा० प्रेस, बम्बई, १९३६ ई०)
८० सं० रा० संदेशरासक	अब्दुल रहमान
८१ सनत्कुमार चरित (नेमिनाथ चरित)	हरिभद्र
८२ स० कं०, सरस्वती कंठाभरण	भोजदेव
८३ सहृदयानन्द	राजानकरुय्यक (काव्यमाला गुच्छक ५, बम्बई)
८४ सा० द०, साहित्यदर्पण	विश्वनाथ (शालग्राम शास्त्री, १९४६ ई०)
८५ सु० च० सुदर्शनचरित	
८६ स्व० वा० स्वप्नवासवदत्ता	भास (त्रिवेंद्रम संस्कृत सीरीज १५ १९१५ ई०)
८७ हं० सं० हंस संदेश	वेदान्तदेशिक
८८ हनु०, हनुमन्नाटक	दामोदर मिश्र

हिंदी

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल लखनऊ
२ अपभ्रंश साहित्य	डा० हरिवंश कोछड़ (दिल्ली) सं० २०१२ वि०
३ अलंकार मंजूषा	लाला भगवानदीन (इलाहाबाद सं० २०१७ वि०)
४ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डा० दीनदयालु गुप्त (हि० सा० सम्मेलन प्रयाग २००४ वि०)
५ आग्र और कवित्रिवेणी	जवाहरलाल चतुर्वेदी
६ कविकुल कल्पतरु	चिंतामणि (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १८७१ ई०)
७ क० र०, कवित्त रत्नाकर	सेनापति (सं० उमाशंकर शुक्ल प्रयाग १९३६ ई०)

८	क० प्रि० कविप्रिया	केशवदास (केशवदास ग्रंथावली इलाहाबाद)
९	का० क० काव्यकलाधर	गुमान मिश्र
१०	का० नि० काव्यनिर्णय	भिखारीदास (भिखारीदास ग्रंथावली ना० प्र० स० काशी सं० २०१४ वि०)
११	काव्यविलास	प्रतापसाहि
१२	केशव ग्रंथावली (तीनों भाग)	सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद १९५४ १९५५ १९५९),
१३	घ० क०, घनआनन्द कवित्त	घनआनन्द ग्रंथावली
१४	ग० क० गंग कवित्त	गंग (सं० बटेकृष्ण ना० प्र० स०, काशी २०१७ वि०)
१५	घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ० मनोहरलाल गौड़ (ना० प्र० स०, काशी)
१६	छि० वा०, छिताई वार्ता	नारायणदास (ना० प्र० स० काशी)
१७	छीत स्वामी	विद्या विभाग, कांकरौली
१८	ज० वि० जगद्विनोद	पद्माकर (पद्माकर ग्रंथावली)
१९	जा० ग्र० जायसी ग्रंथावली	सं० प० रामचन्द्र शुक्ल (ना० प्र० स० काशी सं० २०१३ वि०)
२०	जीवन के तत्व और काव्य	श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
२१	ढोला०, ढोला मारू रा दूहा	सं० नरोत्तम स्वामी (ना० प्र० स०, काशी, १९९७ वि०)
२२	तुलसी ग्रंथावली	ना० प्र० स० काशी २००८ वि०
२३	न० ग्र० नन्ददास ग्रंथावली	सं० ब्रजरत्नदास (ना० प्र० सभा, काशी २०१४ वि०)
२४	पद्मावत	जायसी (जायसी ग्रंथावली)
२५	पद्माकर ग्रंथावली	सं० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (ना० प्र० स० काशी २०१६ वि०)
२६	पद्मा०, पद्माभरण	पद्माकर (पद्माकर ग्रंथावली)
२७	पृ० रा० पृथ्वीराजरासो	चंद (ना० प्र० स०, काशी)
२८	प० प्र० प्रबोधक	(पद्माकर ग्रंथावली)
२९	प्रकृति और काव्य (दोनों भाग)	डॉ० रघुवंश (प्रयाग, २००५ वि०)
३०	प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
३१	प्राकृत अपभ्रंश का साहित्य और उसका हिंदी साहित्य पर प्रभाव	डॉ० रामसिंह तोमर (इलाहाबाद, १९६४ ई०)

३२ बरवै रामायण	तुलसीदास (तुलसी ग्रंथावली)
३३ ब्र० कृ० भ्रा० ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प	डा० सावित्री सिन्हा (दिल्ली) १९६१ ई०
३४ बिहारी	सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (काशी, २०१० वि०)
३५ भागवत संप्रदाय	पं० बलदेव उपाध्याय (ना० प्र० स० काशी, सं० २०१० वि०)
३६ भारत की चित्रकला	राय कृष्णदास (प्रयाग)
३७ भिखारीदास ग्रंथावली	सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (ना० प्र० स० काशी सं० २०१४ वि०)
३८ भूषण	सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (काशी, सं० २०१० वि०)
३९ मतिराम कवि और आचार्य	डा० महेन्द्रकुमार (दिल्ली १९६० ई०)
४० मतिराम ग्रंथावली	सं० कृष्णबिहारी मिश्र (गंगा ग्रंथागार लखनऊ सं० १९९१ वि०)
४१ मतिराम ग्रंथावली	(ना० प्र० स० काशी, सं० २०२१)
४२ म० स० मतिराम सतसई	(मतिराम ग्रंथावली)
४३ मध्यकालीन धर्मसाधना	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
४४ महाकवि मतिराम और मध्यकालीन हिंदी कविता में अलंकरण वृत्ति	डा० त्रिभुवन सिंह (हिंदी प्रचारक, वाराणसी, २०१७ वि०)
४५ मा० का० माधवानल कामकन्दला	गणपति
४६ मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी	डा० रामसागर त्रिपाठी (दिल्ली १९६० ई०)
४७ रसपीयूष निधि	आचार्य सोम नाथ
४८ रस रतन	पुहकर (सं० डा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० स० काशी, २०२० वि०)
४९ रस रहस्य	कुलपति
५० र० रा० रसराज	मतिराम ग्रंथावली
५१ रस सिद्धांत स्वरूप विश्लेषण	डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित (दिल्ली १९६० ई०)
५२ र० सा० रस सारांश	(भिखारीदास ग्रंथावली)
५३ रहीम रत्नावली	सं० मायाशंकर याज्ञिक (लखनऊ)
५४ राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धांत और साहित्य	डा० विजयेन्द्र स्नातक (दिल्ली)

५५	रामकथा (उत्पत्ति और विकास)	डॉ० कामिल बुल्के (प्रयाग, १९६२ ई०)
५६	रामचरितमानस	तुलसीदास (काशिराज संस्करण प्रथम संस्करण)
५७	रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह (बलरामपुर, २०१४ वि०)
५८	रीतिकालीन कविता की प्रेम-व्यंजना	डॉ० बच्चन सिंह (ना० प्र० स० काशी, २०१५ वि०)
५९	रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	डॉ० शिवनाथ जोशी
६०	रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र (दिल्ली १९६१)
६१	ल० ल०, ललित ललाम	(मतिराम ग्रन्थावली)
६२	वि० प० विद्यापति पदावली	स० रामवृक्ष बेनीपुरी पुस्तक भंडार, पटना
६३	बलि० बेलि क्रिसन रुकमिनी री	पृथ्वीराज (स० आनन्दप्रकाश दीक्षित गोरखपुर १९५३ ई०)
६४	शब्द रसायन	देव
६५	श्री राधा का क्रमविकास	डा० शशिभूषण दास गुप्त (हिन्दी प्रचारक काशी, १९५६ ई०)
६६	संस्कृत साहित्य का इतिहास	प० बलदेव उपाध्याय
६७	"	वाचस्पति गैरोला (चौ० स० सीरीज काशी १९६० ई०)
६८	सु० त०, सुखसागर तरंग	देव,(लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस १८९६ ई०) प० गोवर्द्धन लाल के सौजन्य से प्राप्त (टंकित प्रति)
६९	सु० शृं०, सुन्दर शृंगार	सुंदर (स० जगन्नाथ दास रत्नाकर १८९० ई०)
७०	सूरदास	डा० ब्रजेश्वर वर्मा (प्रयाग, द्वितीय संस्करण)
७१	सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य	डा० शिवप्रसाद सिंह (हिंदी प्रचारक काशी १९५८ ई०)
७२	सूर०, सूरसागर	सूरदास (ना० प्र० स०, काशी २००६ वि०)
७३	हरिवंश गोस्वामी, सम्प्रदाय और साहित्य	ललिताचरण गोस्वामी

७४	हिन्दी काव्यधारा	राहुल सांकृत्यायन (प्रयाग १९५४ ई०)
७५	हिन्दी और वैष्णव बंगाली कवि	डॉ० रत्नकुमारी
७६	हिन्दी भक्ति शृंगार का स्वरूप	डा० मिथिलेश कान्ति
७७	हिन्दी भाषा और साहित्य	डॉ० श्यामसुन्दर दास
७८	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास	डा० शम्भूनाथ सिंह (हिंदी प्रचारक, काशी १९५६ वि०)
७९	हिंदी मुक्तक काव्य का विकास	जितेन्द्रनाथ पाठक
८०	हिन्दी साहित्य (उसका उद्भव और विकास)	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (१९५२)
८१	हिन्दी साहित्य का अतीत (दोनों भाग)	पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (सं० २०१५ वि०)
८२	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा, १९५४ ई०
८३	हिंदी साहित्य का इतिहास	पं० रामचन्द्र शुक्ल (ना० प्र० स० काशी, ग्यारहवां संस्करण)
८४	हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग	सं० डा० नगेन्द्र (ना० प्र० स० काशी, २०१५ वि०)
८५	हिंदी साहित्य की भूमिका	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (चतुर्थ संस्करण, बंबई)

पत्र पत्रिकाएँ

१ आलोचना
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका
३ सम्मेलन पत्रिका
४ जर्नल आव द रायल एसियाटिक सोसायटी (बंबई)
५ खोज रिपोर्ट
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का त्रैवार्षिक विवरण १९०० से लेकर १९४३ तक

ENGLISH

1 A History of Indian Literature—H H Rowan
2 A History of Indian Literature—Dr M Winternitz Calcutta 1933
3 A History of Sanskrit Literature Dr A B Keith
4 Ancient Indian Erotics and Erotic Literature —Dr S K De, Calcutta, 1959

5 Aspects of Sanskrit Literature—Dr S K De Calcutta 1959
6 Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol X, James Hestings London
7 History of Maithili Literature Dr Jayakant Misra
8 History of Muslim Rule in India
9 Influence of Islam on Indian Culture Dr Tarachand (Indian Press Alld 1963)
10 J B B R A S Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society Vols 24 25 (1948-49)
11 Studies in Kam Sutra H C Chakaladar
12 Survey of Sanskit Literature Dr C Kunhan Raja (Madras 1962)
13 Varna Ratnakara of Jyotirisvara – Kavisekharacarya —Dr S K Chatterji & Babua Misra Calcutta 1940

O O O